गुरु तथा शिष्य

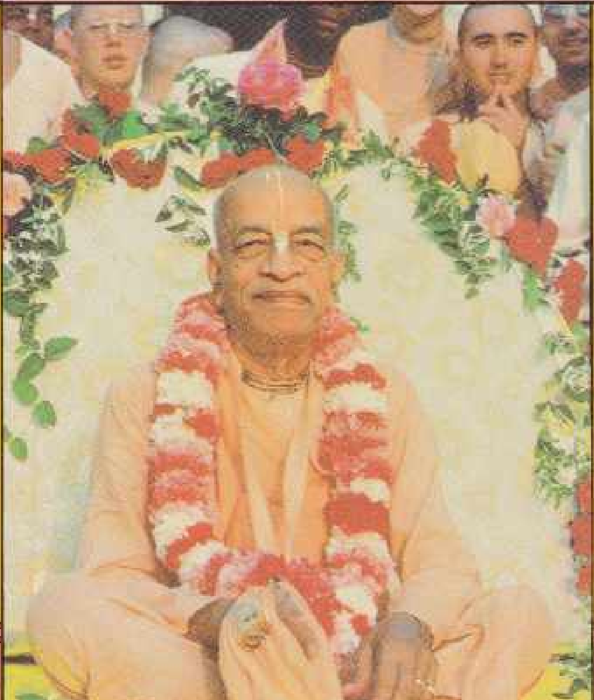

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति
श्री. श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

विषय सूची

वैदिक तथा वैष्णव साहित्य से गुरु विषयक मुख्य श्लोक १

भाग १ : प्रामाणिक गुरु बनाने की नितान्त आवश्यकता ९

१. सामान्य निर्देश ९

२. दृष्टान्त स्वरूप भगवान् (तथा उनके अवतार आदि) भी गुरु बनते हैं १०

३. गुरु के माध्यम से भगवान् तक पहुँचा जाता है (भगवान् की सेवा उनके प्रतिनिधि गुरु की सेवा से प्रारम्भ होती है) १३

४. एकमात्र गुरु के माध्यम से भगवान् को समझा जा सकता है २०

५. पूर्णज्ञान प्राप्त करने या सत्य की अनुभूति करने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए २७

६. वैदिक ज्ञान समझने के लिए गुरु से सुनना चाहिए ३५

७. इन्द्रियों तथा मन की परिधि से परे वस्तुओं को समझने के लिए गुरु से सुनना चाहिए ४१

८. केवल गुरु के पास जाकर भौतिक जगत से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है ४३

९. गुरु जीवन की समस्याओं को हल करने वाला है ५६

१०. भक्ति की कला सीखने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए ५९

११. आध्यात्मिक जीवन में सफलता पाने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है ६५

१२. कृष्णभावनामृत तक पहुँचने के लिए गुरुमुख होना चाहिए ६८

१३. प्रामाणिक गुरु बनाने के लिए अन्य महत्वपूर्ण कारण ७२

भाग २ : गुरु महाराज ७७

१. गुरु तथा आचार्य की परिभाषा ७९

२. गुरु की पहचान ८०

३. गुरु की योग्यताएँ तथा गुण ९८

४. गुरु के कर्तव्य तथा सही आचरण १४९

५. गुरु सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण निर्देश २०९

भाग ३ : परम्परा २५१

१. परम्परा-पालन का महत्व २५३
२. वैदिक ज्ञान पूर्ण ज्ञान परम्परा से प्राप्त किया जाना चाहिए २५९
३. ज्ञान का प्रसार करने के लिए मनुष्य को परम्परा से ज्ञान प्राप्त हुआ होना चाहिए २६६
४. अपनी कल्पना से परे ज्ञान पाने के लिए परम्परा से श्रवण करना चाहिए २७०
५. मन्त्रों को परम्परा से प्राप्त करना चाहिए २७३
६. दिव्य साहित्य का लेखन केवल परम्परा के अनुकूल होना चाहिए २७४
७. ब्रह्म-मध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय २७७
८. अप्रामाणिक परम्पराएँ (असम्प्रदाय) २७८
९. परम्परा-सिद्धान्त विषयक अन्य महत्वपूर्ण निर्देश २८१

भाग ४ : शिष्य के गुण, लक्षण तथा कर्तव्य २८७

१. शिष्य को गुरु से पूछना तथा सुनना चाहिए २८९
२. शिष्य को चाहिए कि गुरु के उपदेशों का दृढ़ता से पालन करे ३०८
३. शिष्य को गुरु की सेवा करनी चाहिए ३३८
४. शिष्य को चाहिए कि गुरु को तुष्ट एवं प्रसन्न करे ३४३
५. शिष्य को गुरु में श्रद्धा होनी चाहिए ३५३
६. शिष्य को विनीत तथा दीन होना चाहिए ३५९
७. शिष्य को चाहिए कि गुरु को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में आदर-सम्मान प्रदान करे ३६३
८. ब्रह्मचारी शिष्य के गुण तथा कर्तव्य ३६३
९. गृहस्थ शिष्य अपने गुरु के आदेशानुसार अपने यौन-जीवन को नियमित बनाते हैं ३६५
१०. शिष्य अपने गुरुभाइयों से किस तरह बर्ताव करे ३६७
११. शिष्य को अपने गुरु के गुरुभाइयों का आदर करना चाहिए ३६९
१२. शिष्य का युवती गुरुपत्नी के साथ बर्ताव ३६९

१३. शिष्य अपने गुरु की कृपा तथा आशीर्वाद से ही कृष्णभावनामृत में अग्रसर होता है ३७०

१४. शिष्य को चाहिए कि गुरु के प्रति अपराध करने से बचे ३७७

१५. शिष्य की योग्यताओं, गुणों तथा कर्तव्यों के विषय में अन्य महत्वपूर्ण आदेश ३८९

भाग ५ : दीक्षा ४०७

१. दीक्षा की परिभाषा ४०९

२. दीक्षा की आवश्यकता तथा उद्देश्य ४०९

३. दीक्षा पाने के लिए योग्यताएँ तथा आवश्यकताएँ ४१५

४. गुरु तथा शिष्य बनने वाले में पारस्परिक परीक्षण ४२८

५. गुरु शिष्य को महामन्त्र जप करने के लिए दीक्षा देता है ४३०

६. दीक्षा के समय गुरु शिष्य के पापों के फल का भार सँभालता है (और बाद में उसे शिष्य द्वारा किये गये पापों का फल भोगना पड़ता है) ४३२

७. ब्राह्म दीक्षा (तथा गायत्री मन्त्र) ४३९

८. दीक्षा के माध्यम से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण-पद को प्राप्त कर सकता है ४४४

९. दीक्षा से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण आदेश ४४८

कृष्णभावनामृत प्रचार की महिमा के अमृत सिन्धु की एक बूँद

''कृष्णभावनामृत का प्रसार श्रीचैतन्य महाप्रभु का मिशन है, अतएव उनके निष्ठावान भक्तों को उनकी इच्छा पूरी करनी चाहिए। ...श्रीचैतन्य के भक्तों को कृष्णभावनामृत का प्रचार विश्व के ग्राम ग्राम तथा नगर नगर में करना चाहिए। इससे महाप्रभु सन्तुष्ट होंगे। किसी को अपनी निजी तुष्टि के लिए मनमाने ढंग से कार्य नहीं करना चहिए। यह आदेश परम्परा प्रणाली द्वारा प्राप्त होता है और गुरु इन आदेशों को अपने शिष्य को भेंट करता है जिससे वह श्रीचैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रसार कर सके। प्रत्येक शिष्य का यह कर्तव्य है कि अपने प्रामाणिक गुरु के आदेश का पालन करे और सारे जगत में श्रीचैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रसार करे।''

(*चैतन्यचरितामृत मध्य* १६.६४)

''प्रचार कार्य भगवान् की सर्वोत्तम सेवा है। भगवान् उस व्यक्ति से तुरन्त अत्यधिक तुष्ट होंगे जो कृष्णभावनामृत के इस प्रचार में अपने को प्रवृत्त करता है। इसकी पुष्टि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* में (१८.६९) की है। *न च तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः*—इस जगत में न तो उससे बढ़कर प्रिय मेरा कोई सेवक है, न उससे अधिक प्रिय कोई आगे होगा। यदि कोई व्यक्ति भगवान् की महिमा तथा उनकी सर्वोत्कृष्टता का प्रचार करके कृष्णभावनामृत का प्रसार करने का सच्चे दिल से प्रयत्न करता है तो भले ही वह अपूर्ण रूप से शिक्षित क्यों न हो वह भगवान् का सर्वप्रिय सेवक बन जाता है। यह *भक्ति* है। जब मनुष्य मित्रों तथा शत्रुओं में भेदभाव किये बिना मानवता के लिए यह सेवा करता है तो भगवान् तुष्ट होते हैं और मनुष्य के जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता है।''

(*भागवत* ७.६.२४)

आत्मान्वेषण की यात्रा

"इस संघ (इस्कान) के सदस्यों को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि यदि वे विधि-विधानों पर दृढ़ रहें और आचार्यों के आदेशानुसार निष्ठापूर्वक प्रचार करें तो उन्हें निश्चित रूप से श्रीचैतन्य महाप्रभु से प्रभूत आशीर्वाद प्राप्त होंगे और उनका प्रचारकार्य सारे जगत में सर्वत्र सफल होगा।"

(*चैतन्यचरितामृत आदि* ७.१७१)

—प्रकाशक

भाग १

प्रामाणिक गुरु बनाने की नितान्त आवश्यकता

वैदिक तथा वैष्णव साहित्य से गुरु विषयक मुख्य श्लोक

भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधिस्वरूप गुरु

आचार्यं मां विजानीयान्नावमंन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

अनुवाद: "आचार्य को मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए और किसी भी तरह से उनका अपमान नहीं होना चाहिए। उसे सामान्य व्यक्ति मान कर उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह समस्त देवताओं का प्रतिनिधि होता है।"

—*भागवत* ११.१७.२७
(चैतन्य चरि. आदि १.४६ में उद्धृत)

अनुवाद: "हे राजा! शिष्य को गुरु न केवल गुरु के रूप में, अपितु भगवान् तथा परमात्मा के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करना होता है। दूसरे शब्दों में, शिष्य को चाहिए कि गुरु को ईश्वर रूप में स्वीकार करे, क्योंकि वह कृष्ण की बाह्य अभिव्यक्ति है।"

भागवत-स्कंध-११, अध्याय ११, श्लोक २१
(*भक्तिरसामृत-सिन्धु* में उद्धृत)

गुरु कृष्ण-रूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु-रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्त-गणे॥

अनुवाद: "समस्त शास्त्रों के सुविचरित मत के अनुसार गुरु कृष्ण से अभिन्न होता है। भगवान् कृष्ण गुरु के रूप में भक्तों का उद्धार करते हैं।"

—चैतन्य चरि. आदि १.४५

कृष्ण यदि कृपा करे कोन भाग्यवाने।
गुरु-अन्तर्यामि-रूपे शिखाय आपने॥

अनुवाद: "कृष्ण हर एक के हृदय में *चैत्य गुरु* यानी अन्तर् में गुरु के रूप में स्थित हैं। जब वे किसी भाग्यशाली बद्धात्मा पर कृपा करते हैं तो वे स्वयं उसे भक्ति में उन्नति करने का उपदेश देते हैं-वे उस व्यक्ति को भीतर से परमात्मा

रूप में और बाहर से गुरु रूप में शिक्षा देते हैं।''

—चैतन्य चरि. मध्य २२.४७

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश
ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्
आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥

अनुवाद : ''हे प्रभु! दिव्य कवि तथा आध्यात्मिक तत्त्वविद आपके प्रति अपने ऋण को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाते भले ही उन्हें ब्रह्मा जितनी दीर्घ आयु क्यों न प्रदान की जाय, क्योंकि आप देहधारी जीव को अपने पास आने के लिए निर्देश देकर उसका उद्धार करने के लिए दो रूपों में—बाह्यत: आचार्य रूप में और अन्तरत: परमात्मा रूप में—प्रकट होते हैं।''

—भागवत ११.२९.६
(चैतन्य चरि. मध्य २२.४८ में उद्धृत)

गुरु बनाने की नितान्त आवश्यकता

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

अनुवाद: ''तुम गुरु के पास जाकर सत्य को जानने का प्रयास करो। उनसे विनीत होकर जिज्ञासा करो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध आत्मा तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है, क्योंकि उसने सत्य का दर्शन किया है।''

—*भगवद्गीता ४.३४*

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

अनुवाद: ''सारे जीव अपने कर्म के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भ्रमण कर रहे हैं। उनमें से कुछ ऊपर स्वर्ग लोक जाते हैं और कुछ नीचे निम्न लोकों में जाते हैं। करोड़ों भ्रमण करने वाले जीवों में जो अत्यन्त भाग्यवान् होता है उसे कृष्णकृपा से प्रामाणिक गुरु की संगति करने का सुअवसर प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से भक्ति रूपी लता का बीज प्राप्त करता है।''

—चैतन्य चरि. मध्य १९.१५१

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

अनुवाद: ''दिव्य विज्ञान समझने के लिए मनुष्य को चाहिए कि परम्परागत प्रामाणिक गुरु के पास जाए जो परमसत्य में स्थिर होता है।''

—मुण्डक उपनिषद १.२.१२ (आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान में उद्धृत)

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अनुवाद: ''जिन महात्माओं की भगवान् तथा गुरु में एक ही साथ अव्यक्त श्रद्धा होती है उन्हें ही वैदिक ज्ञान का सारा आशय स्वत: प्रकट होता है।''

—*श्वेताश्तर उपनिषद* ६.२३ (भागवत ७.७.११ में उद्धृत)

ॐ अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

अनुवाद: ''मैं अपने गुरु को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने ज्ञान के प्रखर प्रकाश से मेरी उन आँखों को खोल दिया है जो अज्ञान के अंधकार से अँधी हुई थीं।''

—*गौतमीय तन्त्र*
(भागवत ८.१.११ में उद्धृत)

सर्व-देश-काल-दशाय जनेर कर्तव्य।
गुरु-पाशे सेइ भक्ति प्रष्टव्य, श्रोतव्य॥

अनुवाद: ''अत: प्रत्येक देश, प्रत्येक परिस्थिति तथा सभी कालों में यह प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि प्रमाणिक गुरु बनाए, उससे भक्ति के बारे में प्रश्न करे और वह जो विधि बतलाए उसे सुने।''

—*चैतन्य-चरि.* २५.१२२

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

अनुवाद: ''कृष्ण भावनामृत के रहस्य को समझ पाना बहुत कठिन है किन्तु

जो व्यक्ति पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेश के अनुसार अग्रसर होता है और गुरु परम्परा में अपने पूर्ववर्तियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करता है उसे सफलता प्राप्त होगी।''

—*महाभारत*, वन पर्व ३१३.११७
(चैतन्य चरि. आदि ८.७ में उद्धृत)

अतो गुरुं प्रणम्यैवं सर्वस्वं विनिवेद्य च।
गृहणीयाद् वैष्णवं मन्त्रं दीक्षापूर्वं विधानतः॥

अनुवाद: ''प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करे। उसे अपना तन, मन तथा बुद्धि सब कुछ अर्पित करके उससे वैष्णव दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

—हरि भक्ति विलास २.१०
(चैतन्य चरि. मध्य १५.१०८ में उद्धृत)

एवम् परम्पराप्राप्तम्..

अनुवाद: ''इस प्रकार यह राजविद्या परम्परा शृंखला द्वारा प्राप्त की गई थी...''

—*भगवद्गीता ४.२*

ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
माया-जाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥

अनुवाद: ''यदि बद्धजीव भगवान् की सेवा में लगता है और उसी के साथ अपने गुरु के आदेशों का पालन तथा उसकी सेवा करता है तो वह माया के पाश से छूट सकता है और कृष्ण के चरणकमलों की शरण के लिए पात्र बन जाता है।''

—चैतन्य चरि. मध्य २२.२५

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षा-विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥

अनुवाद: ''जिस तरह रस विधि में पारा मिलाये जाने पर कांसा स्वर्ण में परिणत हो जाता है उसी तरह प्रामाणिक गुरु द्वारा ठीक से प्रशिक्षित एवं दीक्षित व्यक्ति तुरन्त ब्राह्मण बन जाता है।''

—हरि भक्ति विलास
(चैतन्य चरि. आदि ७.४७ में उद्धृत)

प्रामाणिक गुरु की योग्यताएँ

यारे देख तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश॥

अनुवाद: "हर व्यक्ति को भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश को उसी रूप में पालन करने की शिक्षा दी जिस रूप में वे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में दिये हुए हैं। इस तरह गुरु बनो और इस भूमि के हर व्यक्ति का उद्धार करने का प्रयत्न करो।"

—चैतन्य चरि. मध्य ७.१२८

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
येइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

अनुवाद: "चाहे कोई ब्राह्मण हो, संन्यासी या शूद्र, यदि वह कृष्णतत्त्व को जानता है तो वह गुरु बन सकता है।"

—चैतन्य चरि. मध्य ८.१२८

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः सर्वमपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

अनुवाद: "जो धीर व्यक्ति वाणी का वेग, मन की माँगों, क्रोध के कार्यों तथा जीभ के वेग, उदर तथा उपस्थ के वेग को सह सकता है वह सारे विश्व में शिष्य बनाने के लिए योग्य है।"

—उपदेशामृत १

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

अनुवाद: "असली सुख चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु की खोज करे और दीक्षा द्वारा उसकी शरण ग्रहण करे। उसके गुरु की योग्यता यही

है कि वह विचार-विमर्श द्वारा शास्त्रों के निष्कर्ष को अनुभव कर चुका हो और अन्यों को इन निष्कर्षों के प्रति अभ्यस्त करने में समर्थ हो। ऐसे महापुरुष जिन्होंने सारी भौतिकता को त्यागकर भगवान् की शरण ले ली है वे प्रामाणिक गुरु माने जाते हैं।''

—भागवत ११.३.२१ (५.१४.४१ में उद्धृत)

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्
न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्॥

अनुवाद: ''जो अपने आश्रितों को जन्म तथा मृत्यु के चक्र से उबार नहीं सकता वह कभी भी गुरु, पिता, पति, माता या पूज्य देवता नहीं हो सकता।''

—भागवत ५.५.१८

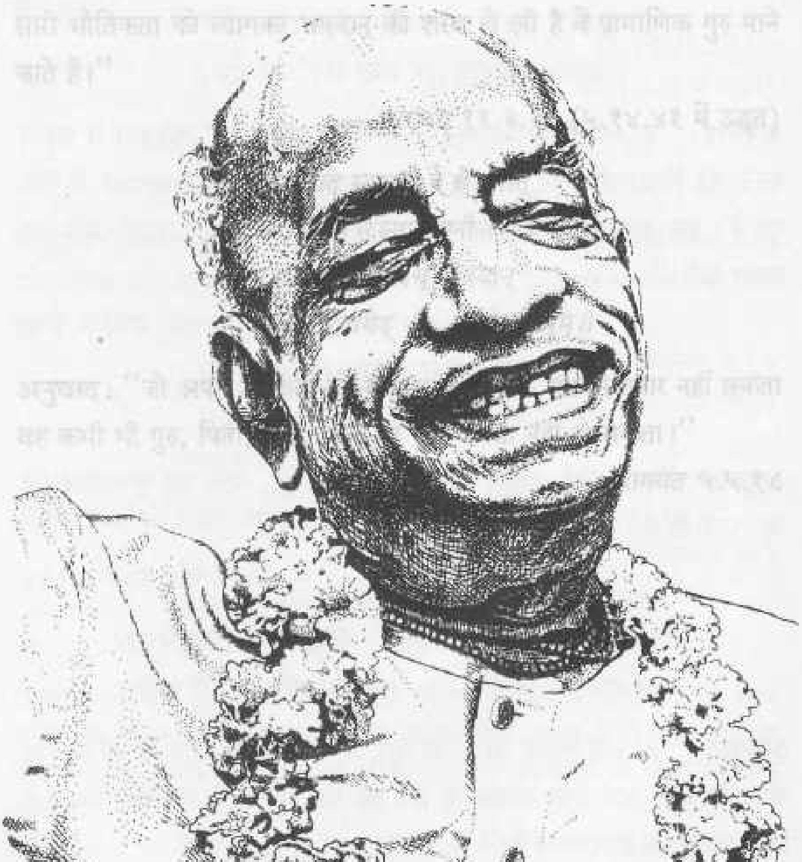

१.सामान्य निर्देश

भक्ति के पाँच मूलभूत सिद्धान्तों में प्रामाणिक गुरु बनाना सम्मिलित है

[श्रील रूपगोस्वामी] ने मूलभूत सिद्धान्तों का उल्लेख इस प्रकार किया है—
(१) प्रामाणिक गुरु के चरणकमलों की शरण ग्रहण करना
(२) गुरु द्वारा दीक्षित होना तथा उनसे भक्ति करना सीखना
(३) श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक गुरु के आदेशों का पालन करना
(४) गुरु के निर्देशानुसार महान् आचार्यों के पदचिह्नों पर चलना
(५) गुरु से यह पूछना कि कृष्णभावनामृत में कैसे प्रगति की जाय

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

भक्ति के प्रथम पांच अभ्यासों में प्रामाणिक गुरु के साथ सम्बन्ध स्थापित करना निहित

"नियमित भक्ति के मार्ग में निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहिए:
(१) प्रामाणिक गुरु बनाना चाहिए।
(२) उससे दीक्षा लेनी चाहिए।
(३) उसकी सेवा करनी चाहिए।
(४) गुरु से उपदेश प्राप्त करना चाहिए और भक्ति सीखने के लिए उससे प्रश्न पूछने चाहिए। (५) पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिह्नों पर चलना चाहिए और गुरु के द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना चाहिए।

—*चैतन्य चरि. मध्य २२.११५*

गुरु की शरण में जाना हर मनुष्य का कर्तव्य है

हरि भक्ति विलास में (२.१०) उद्धरण आया है:

अतो गुरुं प्रणम्यैवं सर्वस्वं विनिवेद्य च।
गृह्णीयाद् वैष्णवं मन्त्रं दीक्षापूर्वं विधानतः॥

"प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करे।

उसे अपना तन, मन तथा बुद्धि सब कुछ अर्पित करके उससे वैष्णव दीक्षा प्राप्त करे।''

—*चैतन्य चरि. मध्य १५.१०८*

भगवद्भक्त की पूजा भगवान् की पूजा से बढ़ कर है

पद्म-पुराण में वैष्णव या भक्तों की सेवा की प्रशंसा में एक सुन्दर कथन है। इस शास्त्र में भगवान् शिव पार्वती से बताते हैं,''हे प्रिये! पूजा की विभिन्न विधियाँ हैं और इन समस्त विधियों में परम पुरुष की पूजा को सर्वोच्च माना जाता है। किन्तु परमेश्वर की पूजा से भी बढ़कर भगवान् के भक्तों की पूजा है।''

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

२.दृष्टान्तस्वरूप भगवान् (तथा उनके अवतार) भी गुरु बनाते हैं

उदाहरणस्वरूप चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण ने भी गुरु बनाये थे

कोई यह पूछ सकता है कि यदि चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं तो फिर उन्हें गुरु की आवश्यकता क्यों हुई? निस्सन्देह, उन्हें गुरु की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु वे आचार्य (उदाहरण देकर शिक्षा देने वाला) की भूमिका निभा रहे थे, अतएव उन्होंने गुरु बनाया। यहाँ तक कि स्वयं कृष्ण ने गुरु बनाया था, क्योंकि यही पद्धति है। इस तरह भगवान् मनुष्यों के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं, किन्तु हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् इसलिए गुरु बनाते हैं क्योंकि उनमें ज्ञान का अभाव है। वे तो मात्र परम्परा को स्वीकार करने की महत्ता पर बल देना चाहते हैं।

—*चैतन्य चरि. आदि* भूमिका

आदर्श प्रस्तुत करने के लिए स्वयं ईश्वर गुरु बनाते हैं

यद्यपि श्रील नारद ऋषि श्रील व्यासदेव के औपचारिक गुरु हैं, किन्तु

वे अपने गुरु पर तनिक भी आश्रित नहीं हैं, क्योंकि असलियत में वे अन्य सबों के गुरु हैं। लेकिन वे आचार्य का कार्य कर रहे हैं इसलिए उन्होंने अपने आचार-व्यवहार से हमें शिक्षा दी है कि मनुष्य को, चाहे वह साक्षात् ईश्वर क्यों न हो, गुरु बनाना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं ईश्वर के सारे अवतारों ने औपचारिक गुरु बनाये यद्यपि अपने दिव्य स्वभाव के कारण वे समस्त ज्ञान से अभिज्ञ थे।

—*भागवत* १.५.२१

सामान्य पुरुषों का दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए कृष्ण तथा बलराम ने गुरु बनाया और ब्रह्मचर्य के नियमों का कठोरता से पालन किया

वसुदेव ने द्विज के चिह्न रूप में अपने पुत्र को यज्ञोपवीत संस्कार कराया, क्योंकि मानव समाज की उच्चतर जातियों के लिए यह अनिवार्य होता है। वसुदेव ने अपने कुलपुरोहित तथा विद्वान ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया और कृष्ण तथा बलराम का यज्ञोपवीत भलीभाँति सम्पन्न हुआ।..उन्होंने गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया। यह गायत्री मन्त्र शिष्यों को यज्ञोपवीत संस्कार के बाद दिया जाता है। बलराम तथा कृष्ण ने इस मन्त्र के जप-कर्तव्य को उचित रीति से पूरा किया। इस मन्त्र का जप करने वाले को कुछ विशेष नियमों तथा व्रतों का पालन करना पड़ता है। यद्यपि श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों ही भगवान् थे तथापि उन्होंने इन विधि-विधानों का कठोरता से पालन किया। दोनों को उनके कुल-पुरोहित गर्गाचार्य ने दीक्षा दी। वैदिक संस्कृति के अनुसार प्रत्येक संस्कृत व्यक्ति का एक आचार्य या गुरु होता है। जब तक कोई गुरु अथवा आचार्य से दीक्षा तथा मन्त्र नहीं लेता है उसे पूर्णरूपेण सुसंस्कृत व्यक्ति नहीं माना जाता है। अतएव यह कहा गया है कि गुरु का आश्रय लेने वाला वास्तव में पूर्णज्ञान में अवस्थित होता है। बलराम तथा कृष्ण भगवान् थे। वे समस्त शिक्षा तथा ज्ञान के स्वामी थे। उन्हें गुरु बनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु जनसाधारण के मार्ग-दर्शन हेतु उन्होंने भी आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति के लिए गुरु बनाया।

आध्यात्मिक जीवन में प्रशिक्षित होने के लिए गायत्री मन्त्र में दीक्षित

होने के उपरान्त शिष्यों को कुछ काल तक घर के बाहर गुरु के निर्देश में रहने की प्रथा है। इस काल में सबको गुरु के अन्तर्गत साधारण सेवक की भाँति कार्य करना पड़ता है। आचार्य के अधीन रहने वाले ब्रह्मचारी के लिए बहुत से विधि-विधान होते हैं और श्रीकृष्ण तथा बलराम ने गुरु के मार्गदर्शन में रहते हुए इन विधि-विधानों का कठोरता से पालन किया। उनके गुरु का नाम सान्दीपनि मुनि था और उनका आश्रम उत्तर भारत में था। शास्त्रीय आदेशों के अनुसार गुरु का आदर भगवान् के समान करना चाहिए और उन्हें भगवान् के ही तुल्य स्तर का समझना चाहिए। श्रीकृष्ण तथा बलराम ने उन नियमों का पालन ठीक-ठाक अति भक्तिपूर्वक किया और ब्रह्मचर्य नियमों को माना। इस प्रकार उन्होंने अपने गुरु को सन्तुष्ट कर दिया और वैदिक ज्ञान की शिक्षा ग्रहण की। इससे अत्यधिक सन्तुष्ट होकर सान्दीपनि मुनि ने उन्हें वैदिक ज्ञान की समस्त जटिलताओं की शिक्षा दी और साथ ही उन्हें उपनिषदों की भी शिक्षा दी जो कि वैदिक साहित्य की ही पूरक हैं।

...नदी के जल का स्रोत सागर होता है। सागर के जल के बाष्पीकरण द्वारा मेघों का निर्माण होता है। वही जल फिर वर्षा के रूप में समस्त पृथ्वी पर वितरित होता है। अन्ततः वही जल नदियों के रूप में पुनः सागर की ओर जाता है। उसी भाँति भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम सभी प्रकार के ज्ञान के स्रोत हैं, किन्तु वे सामान्य बालकों के समान अभिनय कर रहे थे। अतः उन्होंने एक आदर्श प्रस्तुत किया जिससे सब लोग उचित स्रोत से ज्ञान प्राप्त करें। इस प्रकार उन्होंने गुरु से ज्ञान प्राप्त करना स्वीकार किया।

—*लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण*

प्रामाणिक गुरु बनाना अत्यावश्यक

अनुवाद: "ऐसे (विमल) भक्तों की सहायता के बिना कोई भक्ति तथा वैराग्य का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है?"

तात्पर्य : ऐसे अनेक अनुभवी व्यक्ति हैं जो गुरु की सहायता के बिना आत्म-साक्षात्कार का समर्थन करते हैं। वे गुरु की आवश्यकता की निन्दा करते हैं और वे इस सिद्धान्त का प्रचार करके कि गुरु आवश्यक नहीं

है स्वयं उनका स्थान लेने का प्रयास करते हैं। किन्तु *श्रीमद्भागवत* इस दृष्टिकोण का अनुमोदन नहीं करता। व्यासदेव जैसे दिव्य विद्वान को गुरु की आवश्यकता थी और अपने गुरु नारद के आदेशानुसार ही उन्होंने इस उदात्त ग्रन्थ *श्रीमद्भागवत* की रचना की। श्रीचैतन्य महाप्रभु यद्यपि साक्षात् कृष्ण हैं, किन्तु उन्होंने भी गुरु बनाया और कृष्ण ने भी प्रबुद्ध होने के लिए सान्दीपनि मुनि को गुरु बनाया। वे विश्व के सारे आचार्यों तथा सन्तों के गुरु थे। *भगवद्गीता* में अर्जुन ने कृष्ण को अपना गुरु स्वीकार किया यद्यपि उसे गुरु बनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। एकमात्र शर्त यही है कि गुरु प्रामाणिक हो यानी गुरु को *परम्परा* पद्धति में ही होना चाहिए।

—भागवत ३.७.३९

---

३. गुरु के माध्यम से भगवान् तक पहुँचा जाता है

कृष्ण तक सीधे नहीं बल्कि उनके शुद्ध भक्त को गुरु मानकर पहुँचा जा सकता है

आदि पुराण में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार सम्बोधित किया है, "हे पार्थ! जो यह दावा करता है कि वह मेरा भक्त है वह ऐसा नहीं होता। केवल वह व्यक्ति जो मेरे भक्त का भक्त होने का दावा करता है, वही वास्तव में मेरा भक्त है।" भगवान् तक कोई भी सीधे नहीं पहुँच सकता। उसे उनके शुद्ध भक्तों के माध्यम से पहुँचना चाहिए। इसलिए वैष्णव कार्य-पद्धति में पहला कर्तव्य है किसी भक्त को गुरु बनाना और तब उसकी सेवा करना।

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

मनुष्य को सीधे न पहुँचकर किसी पारदर्शी माध्यम से कृष्ण तक पहुँचना चाहिए

दिव्य माधुर्य में अपना सम्बन्ध स्थापित करने का सर्वोत्तम मार्ग कृष्ण के मान्यताप्राप्त भक्तों के माध्यम से उन तक पहुँचना है। सीधे

सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा माध्यम होना चाहिए जो पारदर्शी हो तथा सही मार्ग तक ले जाने में सक्षम हो।

—*भागवत* १.९.२२

गुरु वह पारदर्शी माध्यम है जिससे होकर वह परमेश्वर तक पहुँच सकता है

मेरे गुरु कहा करते थे, ''गुरु पारदर्शी माध्यम होता है''। उदाहरणार्थ, मैं इस पुस्तक के अक्षरों को इस पारदर्शी चश्मे के काँच से बहुत अच्छी तरह देख सकता हूँ। इनकी सहायता के बिना मैं नहीं देख पाता, क्योंकि मेरी आँखें दोषपूर्ण हैं। इसी तरह हमारी इन्द्रियाँ पूरी तरह दोषपूर्ण हैं। हम इन आँखों से ईश्वर को नहीं देख सकते, इन कानों से हरे कृष्ण नहीं सुन सकते, हम गुरु के माध्यम के बिना कुछ नहीं कर सकते। जिस तरह दोषपूर्ण आँख चश्मे के माध्यम के बिना नहीं देख सकतीं उसी तरह मनुष्य गुरु रूपी पारदर्शी माध्यम के बिना परमेश्वर तक नहीं पहुँच सकता। ''पारदर्शी'' का अर्थ है कि माध्यम को कल्मष से मुक्त होना चाहिए। यदि वह पारदर्शी हो तो उसके आरपार देखा जा सकता है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

भगवान् का दास बनने के लिए मनुष्य को परम्परा से प्राप्त गुरु बनाकर भगवान् के दास का दास बनना चाहिए।

[भक्तिमय जीवन के लिए] मनुष्य को सर्वप्रथम भगवान् के दास के दास का दास बनना चाहिए (दासानुदास)। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिया और अपने दृष्टान्त से प्रदर्शित भी किया कि जीव को सदैव गोपियों के पालनकर्ता कृष्ण के दास के दास का दास बनने की इच्छा करनी चाहिए (*गोपीभर्तुःपदकमलयोर्दासानुदासः*)। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को ऐसा गुरु बनाना चाहिए जो गुरु परम्परा का हो और भगवान् के दास का दास हो।

—*भागवत* ६.११.२४

शिष्य सीधे भगवान् की नहीं अपितु पहले गुरु की सेवा करता है

अनुवाद: ''हे भगवान्! मैं एक-एक करके भौतिक इच्छाओं की संगति

में आने से सामान्य लोगों का अनुगमन करते हुए सर्पों के अन्धे कुएँ में गिरता जा रहा था। किन्तु आपके दास नारद मुनि ने कृपा करके मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया और मुझे यह शिक्षा दी कि इस दिव्य पद को किस तरह प्राप्त किया जाय। अतएव मेरा पहला कर्तव्य है कि मैं उनकी सेवा करूँ। भला मैं उनकी यह सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ?"

तात्पर्य: जैसा कि बाद के श्लोकों से पता चलेगा, यद्यपि भगवान् ने प्रह्लाद को मनवांछित वर माँगने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने ऐसे वरों को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने उलट कर भगवान् से यह प्रार्थना की कि अपने दास नारद मुनि की सेवा में मुझे लगा रहने दें। यह शुद्धभक्त का लक्षण है। मनुष्य को चाहिए कि पहले गुरु की सेवा करे। ऐसा नहीं होता कि कोई अपने गुरु को छोड़ कर भगवान् की सेवा करने की इच्छा करे। वैष्णव के लिए यह सिद्धान्त नहीं। नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—

तांदेर चरण सेवि भक्तसने वास।
जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष॥

मनुष्य को सीधे भगवान् की सेवा करने के लिए उत्सुक नहीं होना चाहिए। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उपदेश दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् का दासानुदास बने (*गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः*)। भगवान् तक पहुँचने की यही विधि है। पहले गुरु की सेवा की जानी चाहिए जिससे उनकी कृपा से भगवान् की सेवा के निकट जाया जा सके। रूप गोस्वामी को शिक्षा देते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा था—*गुरु कृष्णप्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज*—गुरु की कृपा से और फिर कृष्ण की कृपा से भक्ति का बीज प्राप्त किया जा सकता है। सफलता का यही रहस्य है। पहले गुरु को प्रसन्न करने का प्रयास होना चाहिए और तब भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयास होना चाहिए। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर भी कहते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*—मनुष्य को ज्ञान द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। पहले उसे गुरु की सेवा करने के लिए तैयार होना होगा और जब वह योग्य बन जाएगा तो उसे भगवान् की प्रत्यक्ष

गुरुकृपा के बिना कृष्ण तक नहीं पहुँचा जा सकता

अनुवाद : यद्यपि ये दोनों युवक अत्यन्त धनी कुबेर के पुत्र हैं और उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु देवर्षि नारद मेरा अत्यन्त प्रिय तथा वत्सल भक्त है, क्योंकि उसने चाहा था कि मैं इनके समक्ष जाऊँ अतएव इनकी मुक्ति के लिए मुझे ऐसा करना चाहिए।

तात्पर्य : चूँकि नारद मुनि की इच्छा थी कि नलकुबेर तथा मणिग्रीव वासुदेव का प्रत्यक्ष दर्शन करें, अतएव भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारद मुनि के वचनों को पूरा करना चाहा। यदि सीधे भगवान् से वर माँगने के बजाय किसी भक्त की कृपा प्राप्त की जाय तो बड़ी आसानी से सफलता प्राप्त हो सकती है। इसलिए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की संस्तुति है—*वैष्णव ठाकुर, तोमार कुकुर, भुलिया जानह मोरे, कृष्ण से तोमार कृष्ण दिते पारो*। मनुष्य को चाहिए कि भक्त के पीछे निरन्तर कुत्ते के समान चलने की कामना करे। अत: भक्त की कृपा के बिना कृष्ण तक सीधे पहुँचा भी नहीं जा सकता, उनकी सेवा करना तो दूर रहा। इसलिए नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—शुद्धभक्त का दास बने बिना भवसागर से उद्धार नहीं हो सकता। हमारे गौड़ीय वैष्णव समाज में, रूपगोस्वामी का अनुसरण करते हुए हमारा पहला कार्य होता है प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाना(*आदौ गुर्वाश्रय:*)।

—*भागवत* १०.१०.२५

कोई व्यक्ति अन्त:करण से भगवान् द्वारा नहीं, अपितु गुरु द्वारा दीक्षित होता है

ब्रह्मा को श्रीभगवान् ने अन्त:करण से ही दीक्षा दी। भगवान् प्रत्येक जीवात्मा के भीतर परमात्मा रूप में स्थित हैं और उन्होंने ब्रह्मा को इसलिए दीक्षित किया क्योंकि वे दीक्षा लेने के लिए राजी थे। इसी प्रकार जो भी दीक्षा लेने का इच्छुक हो उसे भगवान् दीक्षा देते हैं...किन्तु उसे अपने आपको ब्रह्मा के समान समझ कर भगवान् द्वारा दीक्षा दिये जाने की बात नहीं सोचनी चाहिए, क्योंकि इस युग में कोई भी व्यक्ति ब्रह्मा के समान शुद्ध नहीं है। ब्रह्माण्ड की सृष्टि के लिए ब्रह्मा पद का भार सर्वाधिक

शुद्धजीव को सौंपा जाता है और जब तक वह इतना योग्य न हो उसे ब्रह्मा के समान नहीं माना जा सकता। किन्तु उसे वैसी ही सुविधाएँ भगवान् के निश्छल भक्तों द्वारा, शास्त्रों के आदेशों द्वारा (जैसा कि *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में प्रकट है) तथा प्रामाणिक गुरु द्वारा प्राप्त हो सकती हैं।

—*भागवत* २.९.७

कृष्ण की अनुकूल सेवा करने के लिए गुरु से पूछना पड़ता है कि कृष्ण क्या चाहते है

चैतन्य महाप्रभु शुद्ध भक्ति की संस्तुति करते हैं। किसी को अपनी भौतिक इच्छाओं को पूरा करने की चाह नहीं करनी चाहिए, न प्रयोगात्मक दर्शन द्वारा कृष्ण को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए, न ही कृष्ण से लाभ पाने के लिए कोई सकाम कर्म किया जाना चाहिए। एकमात्र चाह उनकी चाह के अनुकूल सेवा करने की होनी चाहिए। यदि कृष्ण कुछ चाहते हैं तो हमें वह करना चाहिए...मनुष्य को यह समझना होगा कि कृष्ण क्या चाहते हैं। जब ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है तो कृष्ण की अत्यन्त अनुकूल सेवा की जा सकती है। जब तक ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नहीं होता तबतक उसे गुरु के पारदर्शी माध्यम से इसकी सूचना ग्रहण करनी चाहिए कि कृष्ण क्या चाहते हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

भक्त के आदेशों का पालन भगवान् के आदेशों का पालन करने से अधिक मूल्यवान

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पायेछे केबा*—भक्तों के भक्त बने बिना कोई भवसागर से छूट नहीं सकता। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको *गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासानुदासः* कहा। इस तरह उन्होंने हमें उपदेश दिया कि हम सीधे कृष्ण के दास न बनें, अपितु कृष्ण के दास का दास बनें। ब्रह्मा, नारद, व्यासदेव तथा शुकदेव गोस्वामी जैसे भक्तगण कृष्ण के साक्षात् दास हैं और जो व्यक्ति नारद, व्यासदेव तथा शुकदेव का दास बनता है जिस तरह कि षड्गोस्वामी

थे, तो वह और भी बड़ा भक्त है। इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*—जो व्यक्ति निष्ठापूर्वक गुरु की सेवा करता है उस भक्त के प्रति कृष्ण अनुकूल रहते हैं। भगवान् के आदेशों का पालन करने की अपेक्षा भक्त के आदेशों का पालन करना अधिक मूल्यवान है।

—*भागवत* ९.४.६३

भक्त गुरु के माध्यम से भगवान् की अन्तरंग सेवा में लगा रहता है

जो अपने गुरु तथा भगवान् में अनन्य श्रद्धा रखता है उसे भगवान् क्रमशः अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराते हैं। इसके पश्चात् भक्त को योग की सिद्धियाँ प्रदर्शित की जाती हैं जिनकी संख्या आठ है। इनसे भी बढ़कर भक्त को भगवान् का पार्षद स्वीकार कर लिया जाता है और उसे गुरु के माध्यम से भगवान् की विशिष्ट सेवा का कार्यभार सौंपा जाता है।

—*भागवत* १.५.३९

४. एकमात्र गुरु के माध्यम से भगवान् को समझा जा सकता है।

गुरु के निर्देशन पर ही कृष्ण को समझा जा सकता है

जिसमें भगवान् के लिए अविचल भक्ति-भाव है और जिसका मार्ग-दर्शन गुरु करता है, जिसमें भी उसकी वैसी ही अविचल श्रद्धा होती है वह भगवान् का दर्शन प्रकट रूप में कर सकता है। मानसिक चिन्तन (मनोधर्म) द्वारा कृष्ण को नहीं समझा जा सकता। जो व्यक्ति प्रामाणिक गुरु से मार्ग-दर्शन प्राप्त नहीं करता, उसके लिए कृष्ण को समझने का शुभारम्भ कर पाना भी कठिन है। यहाँ पर तु शब्द का प्रयोग विशेष रूप से यह सूचित करने के लिए हुआ है कि कोई अन्य विधि न तो बताई जा सकती है, न प्रयुक्त की जा सकती है, न ही कृष्ण को समझने में सफल हो

सकती है।

—*भगवद्गीता* ११.५४

गुरु के माध्यम से कृष्ण को समझा जा सकता है (यद्यपि अनुभव प्रत्यक्ष है)

अनुवाद: व्यास की कृपा से मैंने ये परम गुह्य बातें साक्षात् योगेश्वर कृष्ण के मुख से अर्जुन के प्रति कही जाती हुई सुनीं।

तात्पर्य: व्यास संजय के गुरु थे और संजय स्वीकार करते हैं कि व्यास की कृपा से वे भगवान् को समझ सके। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु के माध्यम से ही कृष्ण को समझना चाहिए, प्रत्यक्ष रूप से नहीं। गुरु स्वच्छ माध्यम है, यद्यपि अनुभव इससे भी अधिक प्रत्यक्ष होता है। शिष्य-परम्परा का यही रहस्य है। जब गुरु प्रामाणिक हो तो *भगवद्गीता* का प्रत्यक्ष श्रवण किया जाय जैसा अर्जुन ने किया।

—*भगवद्गीता* १८.७५

गुरु से प्रबोधित हुए बिना कृष्ण को नहीं देखा जा सकता अथवा वस्तुओं को यथारूप में नहीं देखा जा सकता

मनुष्य को चाहिए कि वस्तुओं को गुरु की कृपा के माध्यम से यथारूप में देखे अन्यथा यदि वह कृष्ण को साक्षात् देखने का प्रयास करेगा तो कृष्ण को यह सामान्य व्यक्ति या सामान्य व्यक्ति को कृष्ण मान सकता है। कृष्ण को स्वरूपसिद्ध व्यक्तियों द्वारा वैदिक ग्रंथों से प्रस्तुत किये जाने वाले निर्णयों के अनुसार कृष्ण का दर्शन करना होता है। निष्ठावान व्यक्ति भी गुरुदेव के स्वच्छ माध्यम से कृष्ण का दर्शन करने में समर्थ होता है। जब तक गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान से कोई प्रबोधित न हो, वह वस्तुओं को यथारूप में नहीं देख सकता भले ही वह गुरु के साथ निरन्तर क्यों न रहता हो।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १८.९९

प्रामाणिक गुरु की कृपा से भगवान् को समझा जा सकता है

अनुवाद: तत्पश्चात् अपने सारे संगियों को छोड़कर, राजा ने शिष्य रूप

में व्यास के पुत्र शुकदेव गोस्वामी की शरण ग्रहण की और इस प्रकार वह भगवान् की वास्तविक स्थिति समझ सका।

तात्पर्य: यहाँ पर *अजित* शब्द महत्त्वपूर्ण है। भगवान् श्रीकृष्ण अजित अर्थात् न जीते जा सकने वाले कहलाते हैं और वे हर प्रकार से अजित हैं। कोई उनकी वास्तविक स्थिति को नहीं जान सकता। वे ज्ञान द्वारा भी अजित हैं। हमने उनके धाम, गोलोक वृन्दावन के बारे में सुना है। लेकिन ऐसे अनेक पंडित हैं जो इस धाम की व्याख्या कई तरह से करते हैं। किन्तु शुकदेव गोस्वामी जैसे गुरु की कृपा से, जिनकी शरण राजा ने शिष्यरूप में ग्रहण की, मनुष्य भगवान् की वास्तविक स्थिति उनके नित्य *धाम* तथा उस धाम की दिव्य साज-सामग्री को समझ सकता है। भगवान् की दिव्य स्थिति को जानते हुए तथा उस दिव्य विधि से जिससे उस दिव्य धाम तक पहुँचा जा सकता है, राजा अपने चरम गन्तव्य के विषय में आश्वस्त था और इसे जान लेने के कारण वह प्रत्येक भौतिक वस्तु को, यहाँ तक कि अपने भौतिक शरीर को भी, किसी आसक्ति के बिना छोड़ सकता था। *भगवद्गीता* में कहा गया है—*परं दृष्ट्वा निवर्तते*—परम अर्थात् वस्तुओं के श्रेष्ठ गुण को देख लेने पर मनुष्य सारी भौतिक आसक्ति छोड़ सकता है। *भगवद्गीता* से हम उस भगवान् की शक्ति के गुण को समझते हैं जो भौतिक शक्ति के गुण से श्रेष्ठ है और शुकदेव जैसे प्रामाणिक गुरु की कृपा से भगवान् की उस पराशक्ति को जाना जा सकता है जिससे भगवान् अपने नित्य नाम, गुण, लीलाओं, साज-सामग्री तथा अनेकरूपता को प्रकट करते हैं। भगवान् की इस पराशक्ति को समझे बिना कोई परम सत्य के वास्तविक स्वभाव के बारे में कितना ही सैद्धान्तिक चिन्तन क्यों न करे, भौतिक शक्ति को छोड़ नहीं पाता। भगवान् कृष्ण की कृपा से महाराज परीक्षित को शुकदेव गोस्वामी जैसे महापुरुष की कृपा प्राप्त थी, अतएव वे अजित भगवान् की वास्तविक स्थिति को समझ सकते थे। वैदिक साहित्य से भगवान् को खोज निकालना कठिन है, किन्तु शुकदेव गोस्वामी जैसे मुक्त भक्त की कृपा से उन्हें जान पाना अत्यन्त सरल है।

—*भागवत* १.१८.३

भगवान् को मानसिक चिन्तन से नहीं, अपितु प्रामाणिक गुरु के स्वच्छ माध्यम से देखा जा सकता है

जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि ज्ञानी अपने पाण्डित्य के बावजूद अनन्त काल तक चिन्तन करने पर भी परम सत्य का स्वप्न तक नहीं देख सकता। भगवान् को अधिकार है कि ऐसे ज्ञानियों के समक्ष प्रकट न हों और चूँकि ऐसे लोग भगवान् के चरणकमलों के डंठलों के जाल में प्रवेश नहीं कर पाते, अतएव सारे ज्ञानी अपना-अपना निष्कर्ष निकालते हैं और अन्त में अपनी अपनी रुचि के अनुसार (*यथारुचम्*) यह कह कर समझौता करते हैं कि "जितने पंथ उतने मत।" लेकिन भगवान् कोई दूकानदार तो हैं नहीं जो ज्ञान के विनिमय में सभी प्रकार के ग्राहकों को प्रसन्न कर सकें। भगवान् तो भगवान् हैं और वे चाहते हैं कि लोग पूर्णरूप से उनके शरणागत हों। लेकिन शुद्धभक्त पूर्ववर्ती आचार्यों के पथ का अनुसरण करते हुए अपने गुरु के पारदर्शी माध्यम से परमेश्वर का दर्शन कर सकता है (*अनुपश्यन्ति*)। शुद्ध भक्त मानसिक चिन्तन (ज्ञान) द्वारा भगवान् का दर्शन करने का प्रयास कभी नहीं करता, अपितु वह आचार्यों के पदचिह्नों पर चलता है (*महाजनो येन गतः स पन्थाः*)।

—*भागवत* २.४.२१

कृष्ण को समझने के लिए प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए

अनुवाद : "जबतक भौतिकवादी जीवन के प्रति झुकाव रखने वाले लोग ऐसे वैष्णवों के चरणकमलों की धूलि अपने शरीर में नहीं लगाते जो भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त हैं, तबतक वे भगवान् के चरण कमलों के प्रति आसक्त नहीं हो सकते जिनका यशोगान उनके अपने असामान्य कार्य-कलापों के लिए किया जाता है। किन्तु कृष्णभावनाभावित बनकर एवं इस प्रकार से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करके ही कोई भौतिक कल्मष से मुक्त हो सकता है।"

तात्पर्य : कोई यह पूछ सकता है कि अत्यधिक शिक्षित लोग कृष्णभावनामृत को क्यों स्वीकार नहीं करते? इसका कारण इस श्लोक में बताया गया है। जब तक कोई पूर्णतया कृष्णभावनाभावित प्रामाणिक गुरु की शरण

भगवान् को मानसिक चिन्तन से नहीं, अपितु प्रामाणिक गुरु के स्वच्छ माध्यम से देखा जा सकता है

जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि ज्ञानी अपने पाण्डित्य के बावजूद अनन्त काल तक चिन्तन करने पर भी परम सत्य का स्वप्न तक नहीं देख सकता। भगवान् को अधिकार है कि ऐसे ज्ञानियों के समक्ष प्रकट न हों और चूँकि ऐसे लोग भगवान् के चरणकमलों के डंठलों के जाल में प्रवेश नहीं कर पाते, अतएव सारे ज्ञानी अपना-अपना निष्कर्ष निकालते हैं और अन्त में अपनी अपनी रुचि के अनुसार (*यथारुचम्*) यह कह कर समझौता करते हैं कि "जितने पंथ उतने मत।" लेकिन भगवान् कोई दूकानदार तो हैं नहीं जो ज्ञान के विनिमय में सभी प्रकार के ग्राहकों को प्रसन्न कर सकें। भगवान् तो भगवान् हैं और वे चाहते हैं कि लोग पूर्णरूप से उनके शरणागत हों। लेकिन शुद्धभक्त पूर्ववर्ती आचार्यों के पथ का अनुसरण करते हुए अपने गुरु के पारदर्शी माध्यम से परमेश्वर का दर्शन कर सकता है (*अनुपश्यन्ति*)। शुद्ध भक्त मानसिक चिन्तन (ज्ञान) द्वारा भगवान् का दर्शन करने का प्रयास कभी नहीं करता, अपितु वह आचार्यों के पदचिह्नों पर चलता है (*महाजनो येन गत: स पन्था:*)।

—*भागवत* २.४.२१

कृष्ण को समझने के लिए प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए

अनुवाद: "जबतक भौतिकवादी जीवन के प्रति झुकाव रखने वाले लोग ऐसे वैष्णवों के चरणकमलों की धूलि अपने शरीर में नहीं लगाते जो भौतिक कलमष से पूर्णतया मुक्त हैं, तबतक वे भगवान् के चरण कमलों के प्रति आसक्त नहीं हो सकते जिनका यशोगान उनके अपने असामान्य कार्य-कलापों के लिए किया जाता है। किन्तु कृष्णभावनाभावित बनकर एवं इस प्रकार से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करके ही कोई भौतिक कलमष से मुक्त हो सकता है।"

तात्पर्य: कोई यह पूछ सकता है कि अत्यधिक शिक्षित लोग कृष्णभावनामृत को क्यों स्वीकार नहीं करते? इसका कारण इस श्लोक में बताया गया है। जब तक कोई पूर्णतया कृष्णभावनाभावित प्रामाणिक गुरु की शरण

ग्रहण नहीं करता तब तक कृष्ण को समझने का प्रश्न ही नहीं उठता। शिक्षक, विद्वान् तथा लाखों व्यक्तियों द्वारा पूजित राजनीतिक नेता जीवन के लक्ष्य को नहीं समझ सकते और न कृष्णभावनामृत को अंगीकार कर सकते हैं, क्योंकि उन्होंने प्रामाणिक गुरु तथा वेदों को स्वीकार नहीं किया है। अतएव *मुण्डक उपनिषद* में (३.२.३) कहा गया है—*नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन*—न तो शिक्षा प्राप्त करने से, न विद्वत्तापूर्ण भाषण करने से (*प्रवचनेन लभ्यः*) अथवा अनेकानेक अद्भुत वस्तुओं की खोज करने वाले बुद्धिमान विज्ञानी बनने से कोई स्वरूपसिद्ध बन सकता है। कृष्ण को कोई तब तक नहीं समझ सकता जब तक उस पर भगवान् की कृपा न हो। जिसने कृष्ण के शुद्धभक्त की शरण ले ली है और उसके चरणकमलों की धूलि धारण की है वही कृष्ण को समझ सकता है। सर्वप्रथम मनुष्य को यह जानना चाहिए कि माया के चंगुल से किस प्रकार बाहर निकले। इसका एकमात्र उपाय है कि वह कृष्णभावनाभावित हो जाय और सरलता से कृष्णभावनाभावित होने के लिए आवश्यक है कि किसी स्वरूपसिद्ध *महत्* या *महात्मा* की शरण ग्रहण की जाय जिसका एकमात्र स्वार्थ परमेश्वर की भक्ति में लगे रहना है।....मनुष्य को चाहिए कि भौतिक शिक्षाप्राप्त विद्वान या राजनीतिज्ञ की शरण ग्रहण न करके स्वरूपसिद्ध गुरु की शरण में जाय। उसे चाहिए कि वह ऐसे व्यक्ति की शरण ले जो भक्ति में संलग्न रहता है तथा भौतिक कल्मष से मुक्त हो (*निष्किञ्चन*)। भगवद्धाम जाने का यही उपाय है

—*भागवत* ७.५.३२

जो व्यक्ति परम्परा गुरु के निर्देशन में भक्ति में संलग्न होता है वह भगवान् को आमने-सामने दर्शन करने का पात्र बन जाता है

अनुवाद : भगवान् अनन्तदेव ने इस प्रकार उत्तर दिया—"हे राजन! तुम परम साधु नारद तथा अंगिरा द्वारा मेरे सम्बन्ध में दिये गये उपदेशों को अंगीकार करने के कारण दिव्य ज्ञान से भलीभाँति अवगत हो चुके हो। आध्यात्मिक ज्ञान में शिक्षित होने के कारण तुमने मेरा साक्षात् दर्शन किया है, अतः तुम अब पूर्णतया सिद्ध हो चुके हो।"

तात्पर्य : जीवन की सिद्धि इसी में है कि आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ईश्वर

के अस्तित्व तथा ईश्वर द्वारा इस विराट् जगत् के सृजन, पालन तथा संहार को समझा जाय। पूर्णज्ञान होने पर नारद तथा अंगिरा एवं उनकी शिष्य-परम्परा के सदस्यों की संगति द्वारा ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है। यद्यपि ईश्वर अनन्त हैं, किन्तु अहैतुकी दयावश वे भक्त को दिखाई पड़ते हैं और वह उन्हें देख सकता है।...यदि कोई नारद मुनि अथवा उनके प्रतिनिधि के निर्देशन में आध्यात्मिक जीवन बिताता है और भगवान् की सेवा करता है तो वह ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। ...मनुष्य को अपने गुरु के उपदेशों का पालन करना चाहिए। इस प्रकार योग्य बनकर वह भगवान् को देख पाता है।

—*भागवत* ६.१६.५०

गुरु के मार्गदर्शन में भक्ति में प्रवृत्त होकर भगवान् का साक्षात् दर्शन किया जा सकता है

नारद तथा अंगिरा ने चित्रकेतु को भक्तियोग का उपदेश दिया। चित्रकेतु को अपनी भक्ति के ही कारण भगवान् के दर्शन हुए। भक्ति के द्वारा क्रमशः अग्रसर होकर मनुष्य जब ईश्वर का प्रेमपात्र बन जाता है (*प्रेमा पुमार्थो महान्*) तो उसे प्रतिक्षण ईश्वर का दर्शन होता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है—जब कोई गुरु की बताई विधि से चौबीसों घंटे भक्ति में लगा रहता है (*तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्*) तो उनकी भक्ति अधिकाधिक प्रीतिकर हो जाती है। तब प्रत्येक के हृदय में स्थित भगवान् भक्त से बातें करते हैं (*ददामि बुद्धियोगं तं येन माम् उपयान्ति ते*)। चित्रकेतु को पहले उसके गुरु द्वारा अंगिरा तथा नारद ने शिक्षा दी और उनके उपदेशों का पालन करते हुए वह इस योग्य बन सका कि ईश्वर के साक्षात् दर्शन कर सके।

—*भागवत* ६.१६.५१

ईश्वर को समझने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

श्री ओ ग्रेडी : क्या अकेले ईश्वर का ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है?

श्रील प्रभुपाद : —नहीं। इसलिए हमने यह श्लोक उद्धृत किया है—*तद्विज्ञानार्थं*

स गुरुम् एवाभिगच्छेत्। *अभिगच्छेत्* शब्द का अर्थ है "चाहिए"। अकेले सम्भव नहीं है। संस्कृत व्याकरण में इसे क्रिया का विधि लिङ्ग रूप कहते हैं और यह रूप तब प्रयुक्त होता है जब चुनाव के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। *अभिगच्छेत्* शब्द का अर्थ है कि गुरु के पास अवश्य जावे। यही वैदिक दृष्टि है। इसलिए *भगवद्गीता* में आप पावेंगे कि अर्जुन कृष्ण से बातें कर रहा था, किन्तु जब उसने देखा कि बातें सुलझ नहीं रहीं तो उसने कृष्ण को आत्मसमर्पण कर दिया और उन्हें गुरु स्वीकार कर लिया।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

कृष्ण को समझने के लिए व्यास की परम्परा वाले गुरु के पास जाना चाहिए

कहा जाता है कि विदुर ने मैत्रेय से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया और यह भी कहा जाता है कि मैत्रेय व्यासदेव के मित्र थे। इसका अर्थ यह होता है कि विदुर तथा मैत्रेय दोनों वही जानते हैं जो व्यास जानते हैं। हमें ऐसे गुरु के पास जाना होगा जो व्यासदेव की परम्परा का हो। हर व्यक्ति यह कह सकता है कि वह व्यासदेव का अनुगमन कर रहा है, किन्तु उसे चाहिए *वास्तव में* उनका अनुगमन करे। व्यासदेव ने कृष्ण को भगवान् के रूप में स्वीकार किया और अर्जुन ने भी कृष्ण को भगवान् के रूप में स्वीकार किया यानी परम पुरुष स्वीकार किया।...व्यासदेव ने कृष्ण को *परं ब्रह्म* के रूप में स्वीकार किया और उन्होंने वेदान्तसूत्र की टीका *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय* शब्दों से प्रारम्भ की। यदि हम वास्तव में जानना चाहते हैं तो हमें मैत्रेय जैसे *व्यासदेव* के प्रतिनिधि के पास पहुँचना चाहिए।

—*देवहूति पुत्र कपिलदेव की शिक्षा*

स्वरूपसिद्ध गुरु के मार्गदर्शन के बिना भगवान् के विषय में किसी का ज्ञान निरी मूर्खता है

छात्र को तभी पूर्ण माना जाना चाहिए जब वह पवित्रनाम तथा परमेश्वर के स्वरूप को समझता हो। जबतक कोई व्यक्ति स्वरूपसिद्ध गुरु की शरण

ग्रहण नहीं करता तब तक ब्रह्मविषयक उसका ज्ञान निरी मूर्खता है। किन्तु सेवा तथा भक्ति द्वारा दिव्य भगवान् को भलीभाँति समझा जा सकता है।

—*चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

५. पूर्णज्ञान प्राप्त करने या सत्य की अनुभूति करने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

पूर्ण ज्ञान के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

तद्विद्धि प्रणिपातेन...

अनुवाद: "गुरु के पास जाकर सत्य सीखने का प्रयास करो।"

तात्पर्य: निस्सन्देह, आत्म-साक्षात्कार का मार्ग कठिन है। अतः भगवान् का उपदेश है कि उन्हीं से प्रारम्भ होने वाली परम्परा के प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण की जाय।...कोई अपनी निजी विधि का निर्माण करके स्वरूपसिद्ध नहीं बन सकता जैसा कि आजकल के मूर्ख पाखंडी करने लगे हैं। भागवत का कथन है—*धर्मं तु साक्षात्भगवत्प्रणीतम्*—धर्मपथ का निर्माण स्वयं भगवान् ने किया है। अतएव मनोधर्म या शुष्क तर्क से आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं की जा सकती। ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे प्रामाणिक गुरु के पास जाना होता है।

—*भगवद्गीता ४.३४*

ज्ञान का प्रकाश गुरु द्वारा दिया जाता है

यह संसार अंधकार तथा अज्ञान से पूर्ण है, किन्तु कृष्णभावनामृत इस भौतिक जगत से परे है। कृष्णभावनामृत में अंधकार नहीं, अपितु केवल प्रकाश ही प्रकाश है। यदि रात में हम किसी वस्तु को ढूँढें तो उसका मिलना अति कठिन होता है, किन्तु दिन में कोई कठिनाई नहीं होती। शास्त्रों का आदेश है कि हम इस अंधकार को छोड़ कर प्रकाश में आएँ। यह प्रकाश गुरु द्वारा दिया जाता है—

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

"मैं गहनतम अंधकार में उत्पन्न हुआ था और मेरे गुरु ने ज्ञान के दीपक (प्रकाश) से मेरी आँखें खोल दीं। मैं उन्हें सादर नमन करता हूँ।"

गुरु का कार्य ज्ञान द्वारा प्रकाश प्रदान करना है। गुरु जीवन के वैदिक सार को पूरी तरह आत्मसात कर चुका होता है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

ज्ञान पाने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

हम अनेक जन्मों तक, अनेक वर्षों तक चिन्तन करते रहने के बाद भी जीवन के चरमलक्ष्य को समझने में असमर्थ हो सकते हैं। इसलिए समस्त शास्त्रों का उपदेश है कि हम गुरु खोजें। गुरु शब्द का अर्थ है "भारी"। जिसे पर्याप्त ज्ञान होता है वह ज्ञान से बोझिल होता है। गुरु को इसी दृष्टि से देखना चाहिए और यह नहीं सोचना चाहिए, "मैं सब जानता हूँ। मुझे कौन शिक्षा दे सकता है?" कोई भी ऐसा नहीं कह सकता, क्योंकि हर एक को उपदेश की आवश्यकता है।

—*कपिलदेव की शिक्षाएँ*

धीर यानी गुरु से ज्ञान (विद्या) प्राप्त किया जाना चाहिए

विद्या की शिक्षाएँ धीर से प्राप्त की जानी चाहिए। *धीर* वह है जो भौतिक मोह से विचलित नहीं होता। पूर्णतया आत्मसिद्ध हुए बिना कोई अविचलित नहीं रह सकता। आत्मसिद्ध होने पर वह न तो किसी वस्तु के लिए लालायित रहता है, न शोक करता है। धीर यह अनुभव करता है कि भौतिक शरीर तथा मन जिन्हें उसने संयोगवश भौतिक संगति के द्वारा प्राप्त किया है मात्र बाह्यतत्त्व हैं। अतएव वह बुरे सौदे का केवल सदुपयोग करता है।...*धीर* वे हैं जिन्होंने अपने गुरुजनों से सुनकर ये सारे तथ्य जाने हैं। वे इस विद्या को विधि-विधान का पालन करते हुए अनुभव करते हैं।

विधि-विधानों का पालन करने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए। दिव्य सन्देश तथा विधि-विधान गुरु से शिष्य को

प्राप्त होते हैं। ऐसी विद्या अज्ञानपूर्ण शिक्षा के संकटग्रस्त मार्ग से होकर नहीं आती। भगवान् के सन्देश को विनीत भाव से सुनने मात्र से मनुष्य धीर बन सकता है। पूर्ण शिष्य को अर्जुन सरीखा होना चाहिए और गुरु को साक्षात् भगवान् तुल्य होना चाहिए। धीर से विद्या (ज्ञान) सीखने की विधि यही है।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र १०

गुरु द्वारा प्रशिक्षित हुए बिना शरीर के भीतर आत्मा के अस्तित्व को समझा नहीं जा सकता

मूर्खलोग, जिनमें तथाकथित ज्ञानी, दार्शनिक तथा विज्ञानी सम्मिलित हैं, शरीर के भीतर आत्मा के अस्तित्व को नहीं समझ सकते, क्योंकि उनमें आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव रहता है। वेदों का आदेश है—*तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—आध्यात्मिक ज्ञान समझने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए। जब तक कोई भूगर्भ विज्ञान में प्रशिक्षित न हुआ हो, वह पत्थर में सोने की पहचान नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब तक कोई मनुष्य गुरु द्वारा प्रशिक्षित नहीं हो जाता वह आत्मा तथा पदार्थ के विषय में कुछ नहीं समझ सकता। यहाँ पर कहा गया है—*योगैस्तद अभिज्ञः*। इससे सूचित होता है कि जिसका सम्बन्ध आध्यात्मिक ज्ञान से रहता है वह समझ सकता है कि शरीर के भीतक आध्यात्मिक आत्मा है। किन्तु जिसमें पशुबुद्धि रहती है और आध्यात्मिक संस्कृति रहती ही नहीं, वह इसे नहीं समझ सकता। एक दक्ष खजिनवेत्ता या भूगर्भशास्त्री यह समझ सकता है कि सोना कहाँ कहाँ है और उसे निकालने के लिए वह धन लगा सकता है एवं खनिज में रासायनिक विधि से सोना निकाल लेता है। उसी तरह दक्ष योगी भी समझ सकता है कि पदार्थ के भीतर आत्मा कहाँ है। जिसे प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ वह सोना और पत्थर में अन्तर नहीं कर सकता। इसी प्रकार जिन मूर्खों तथा धूर्तों ने दक्ष गुरु से यह नहीं सीखा कि आत्मा क्या है और पदार्थ क्या है वह शरीर के भीतर आत्मा के अस्तित्व को नहीं समझ सकता। ऐसे ज्ञान को समझने के लिए उस मनुष्य को योग प्रणालियों या अन्ततः *भक्तियोग* में प्रशिक्षित होना चाहिए। जैसा कि *भगवद्गीता* में (१८.५५) कहा गया है—*भक्त्या*

मामभिजानाति। जबतक कोई *भक्तियोग* की शरण नहीं ग्रहण करता तब तक वह शरीर के भीतर आत्मा के अस्तित्व को नहीं समझ सकता।

—*भागवत* ७.७.२१

भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों एवं अपने अस्तित्व को समझने के लिए बद्धात्मा को प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए और उससे सीखना चाहिए

अनुवाद: अतएव दिव्य ज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह सर्वव्यापी सत्य को जानने के लिए उसके विषय में सदैव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से जिज्ञासा करे।"

तात्पर्य: जो लोग उस दिव्य जगत के ज्ञान के लिए इच्छुक हैं जो भौतिक विराट् सृष्टि से अतिदूर है उन्हें चाहिए कि इस ज्ञान को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से सीखने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जायँ। उन्हें इच्छित गन्तव्य तक पहुँचने के साधनों एवं इस मार्ग में आने वाले व्यवधानों दोनों ही को जानना चाहिए। गुरु जानता है कि नवदीक्षित शिष्य की आदतों को किस तरह नियमित करना चाहिए, अतएव निष्ठावान छात्र को चाहिए कि गुरु से विज्ञान के सारे पहलुओं को सीखे।...मनुष्य को गुरु के पारदर्शी माध्यम से यह समझना चाहिए कि भगवान् सर्वत्र अपने दिव्य स्वभाव में विद्यमान रहते हैं और भगवान् के साथ जीवों के सम्बन्ध इस भौतिक जगत में भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र बने रहते हैं। आध्यात्मिक जगत में भगवान् के साथ पाँच प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य।...ये पाँचों सम्बन्ध मूल शुद्ध जीवों के विकृत प्रतिबिम्ब होते हैं जिन्हें प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में भगवान् से सम्बन्धित करते हुए समझना और पूरा करना चाहिए।...बद्धजीव को प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए और उससे भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों को एवं अपनी स्थिति को ठीक-ठीक समझनी चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.५६

असली ब्राह्मण भौतिक प्रगति के लिए उद्योग न करके प्रामाणिक

गुरु के पास जाता है

वैदिक आदेश है कि आचार्य के मार्गदर्शन के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। *आचार्यवान् पुरुषो वेद*—जिसने आचार्य को स्वीकार किया है वह यह जानता है कि कौन क्या है। परम सत्य को तर्कों द्वारा नहीं समझा जा सकता। जिसने पूर्ण ब्रह्म-अवस्था प्राप्त कर ली है वह स्वभावतः संन्यासी बन जाता है। वह भौतिक लाभ के लिए उद्योग नहीं करता, क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान के फलस्वरूप वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस जगत में अभाव नहीं है। भगवान् ने हर वस्तु की प्रचुरता की है। इसलिए असली ब्राह्मण भौतिक सिद्धि के लिए उद्योग न करके प्रामाणिक गुरु के पास पहुँच कर उससे आदेश ग्रहण करता है।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

प्रबुद्ध गुरु के पास गये बिना मनुष्य अंधकार तथा कष्ट में रहा आता है

मनुष्य का शरीर *जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा* के लिए अर्थात् आध्यात्मिक मूल्यों के ज्ञान का प्रकाश पाने के लिए है। अतः मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाए। *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत*—वह गुरु के पास जावे। गुरु कौन है? *शब्दे परे च निष्णातम्* (भागवत ११.३.२१)—गुरु वह है जिसे पूर्ण दिव्य ज्ञान हो। आध्यात्मिक गुरु के पास गये बिना मनुष्य अज्ञान में रहता है। *आचार्यवान् पुरुषो वेद* (*छान्दोग्य* उपनिषद ६.१४.२)—जब कोई आचार्य द्वारा नियन्त्रित होता है अर्थात् *आचार्यवान* होता है तो उसे जीवन विषयक पूरा पूरा ज्ञान रहता है। किन्तु जब वह रजोगुण तथा तमोगुण द्वारा संचालित होता है तो वह किसी बात की परवाह नहीं करता, उल्टे वह मूर्ख पशु की भाँति अपने जीवन को संकट में डाल कर कर्म करता है (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*)। फलतः वह एक एक कष्ट भोगता रहता है। *न ते विदुःस्वार्थगतिं हि तुच्छम्* (*भागवत* ७.५.३१)। ऐसा मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता कि शरीर को पाकर किस प्रकार अपने आपको ऊपर उठाया जाए। उलटे वह पापकर्मों में लिप्त होकर नीचे ही नीचे नारकीय जीवन में फँसता जाता है।

—*भागवत* १०.१०.१०

प्रामाणिक गुरु की शरण में जाने से मनुष्य दिव्य अनुभूति के मार्ग पर अग्रसर होता है

महान् भक्त के चरणकमलों का स्पर्श किये बिना कोई व्यक्ति पूर्ण भक्त नहीं बन सकता। जिस व्यक्ति को इस भौतिक जगत से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता वह *निष्किंचन* कहलाता है। आत्मसाक्षात्कार तथा भगवद्धाम की विधि का अर्थ है प्रामाणिक गुरु की शरण में जाना और उसके चरणों की धूलि को अपने शिर पर धारण करना। इस तरह वह दिव्य अनुभूति के मार्ग पर अग्रसर होता है।

—*भागवत* ४.३१.२८

अध्यात्म की अनुभूति हेतु मनुष्य की इन्द्रियों को गुरु के निर्देशन में आध्यात्मिकृत होना चाहिए

वैज्ञानिक रीति से प्रशिक्षित होने के लिए जिज्ञासु को प्रामाणिक गुरु बनाना चाहिए। चूँकि इन्द्रियाँ भौतिक होती हैं, अतएव उनके द्वारा आध्यात्म की अनुभूति हो पाना तनिक भी सम्भव नहीं है। अतएव गुरु के निर्देशन में इन्द्रियों को संस्तुत विधि से आध्यात्मीकृत होना चाहिए।

—*अन्य लोकों की सहज यात्रा*

एकमात्र प्रामाणिक गुरु की कृपा से दिव्य ज्ञान समझा जा सकता है

अनुवाद: पहले समस्त जीवों के शुभचिन्तक एवं मित्र भगवान् नारायण ने यह दिव्य ज्ञान परम सन्त नारद को दिया। ऐसा ज्ञान नारद जैसे सन्त पुरुष की कृपा के बिना समझ पाना कठिन है, किन्तु जिसने भी नारद की परम्परा की शरण ले रखी है वह इस गुह्य ज्ञान को समझ सकता है।

तात्पर्य: यहाँ यह बताया गया है कि गुह्यज्ञान को समझ पाना अत्यन्त कठिन है फिर भी यदि शुद्धभक्त की शरण ग्रहण कर ली जाय तो इसे समझना सरल है। इस गुह्यज्ञान का उल्लेख *भगवद्गीता* में भी अन्त में हुआ है जहाँ भगवान् कहते हैं—*सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—तुम

सभी प्रकार के धर्मों को त्याग दो और मेरी शरण ग्रहण करो। यह ज्ञान गुह्यतम है किन्तु यदि कोई नारद की परम्परा में स्थित गुरु के माध्यम से भगवान् तक पहुँचता है तो इसे समझा जा सकता है।...यह समझना उच्च कुलीनता पर निर्भर नहीं है। जीव निश्चय ही आध्यात्मिक पद पर शुद्ध होता है अतएव जो कोई गुरु की कृपा से आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर लेता है वह गुह्यज्ञान को भी समझ लेता है।

—*भागवत* ७.६.२७

शोक तथा मोह से छूटने पर गुरु की शरण मिलती है

यद्यपि कुछ समय तक अर्जुन पारिवारिक स्नेहवश झूठे शोक से अभिभूत था, किन्तु उसने शिष्य रूप में परम गुरु कृष्ण की शरण ग्रहण की। इससे यह सूचित हुआ कि यह पारिवारिक स्नेह से उत्पन्न झूठे शोक से तुरन्त मुक्त हो जावेगा और आत्मसाक्षात्कार के पूर्णज्ञान अथवा कृष्णभावनामृत से प्रकाशित होगा। तब वह निश्चित रूप से शुद्ध होगा।

—*भगवद्गीता* २.९

गुरु से प्राप्त शिक्षाओं की अनुभूति होने पर अनुभूत ज्ञान प्राप्त होता है

मनुष्य को चाहिए कि वह प्रामाणिक गुरु के पास जावे चाहे वह जिस जाति, रंग, देश आदि का हो और उससे भक्ति विषयक सारी बातें सुने। जीवन का असली उद्देश्य ईश्वर के प्रति अपने सुप्त प्रेम को जागृत करना है। निस्सन्देह, यही हमारी चरम आवश्यकता है। यह ईश्वर-प्रेम किस तरह प्राप्त किया जाता है इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में हुई है। एक सैद्धान्तिक ज्ञान है और दूसरा विशिष्ट या अनुभूत ज्ञान। यह पूर्ण अनुभूत ज्ञान तब प्राप्त होता है जब व्यक्ति को गुरु से प्राप्त शिक्षाओं की अनुभूति होती है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

चूँकि सिद्ध गुरु से कुछ भी छिपा नहीं रहता अतः पूर्ण ज्ञान के

लिए उसी के पास जाना चाहिए

वैदिक मन्त्रों का कथन है—*यस्मिन विज्ञाते सर्वम् एवं विज्ञातं भवति।* जब भक्त अपने ध्यान में भगवान् का दर्शन करता है या कि जब वह साक्षात् उनका दर्शन करता है तो वह इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक वस्तु से अवगत हो जाता है। निस्सन्देह, उसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। इस भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु उस भक्त को पूरी तरह प्रकट रहती है जिसने भगवान् के दर्शन कर लिए हैं। अतएव *भगवद्गीता* का (४.३४) उपदेश है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

"गुरु के पास जाकर सत्य जानने का प्रयत्न करो। उनसे विनीत होकर प्रश्न पूछो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है, क्योंकि उसने सत्य के दर्शन किये हैं।" ब्रह्माजी ऐसे ही स्वरूपसिद्ध महात्मा है (*स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः*)। अतएव मनुष्य को चाहिए कि ब्रह्मा से चली आने वाली परम्परा को स्वीकार करे तभी भगवान् को वह पूरी तरह समझ सकेगा।

—*भागवत* ८.६.९.

गुरु के चरणकमलों की सेवा करके मनुष्य दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है

अनुवाद: शुकदेव गोस्वामी ने कहा—"हे राजा! राजकुमार प्रियव्रत महान भक्त थे, क्योंकि उन्होंने अपने गुरु नारद के चरणकमलों को प्राप्त कर दिव्य ज्ञान में उच्चतम सिद्धि पाई।

तात्पर्य: श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—*छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पायेछे केवा*—विशुद्ध वैष्णव या गुरु के चरणकमलों की सेवा किये बिना निस्तार नहीं है। राजकुमार प्रियव्रत नारद के चरणकमलों की नियमित सेवा करते थे और इस प्रकार उन्हें दिव्य तत्त्वों का सही ज्ञान (*स तत्त्वतः*) हो गया था।

—*भागवत* ५.१.६

गुरु से ज्ञान पाकर शिष्य प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है

समुचित महापुरुषों से केवल समझ कर तथा समुचित ढंग से सीख कर मनुष्य प्रकृति के गुणों के सारे कार्यकलापों को लाँघ सकता है। वास्तविक गुरु कृष्ण हैं, तथा वे अर्जुन को यह दिव्य ज्ञान प्रदान कर रहे हैं। इसी प्रकार जो लोग पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हैं उन्हीं से प्रकृति के गुणों के कार्यों के इस ज्ञान को सीखना होता है। अन्यथा मनुष्य का जीवन कुमार्ग में चला जाता है। प्रामाणिक गुरु के उपदेश से जीव अपनी आध्यात्मिक स्थिति, अपने भौतिक शरीर, अपनी इन्द्रियों, अपने पाशबद्ध तथा प्रकृति के गुणों के वशीभूत होने के बारे में जान सकता है। वह इन गुणों की जकड़ में होने से असहाय होता है, लेकिन अपनी वास्तविक स्थिति देख लेने पर वह दिव्यपद को प्राप्त कर सकता है जिसमें आध्यात्मिक जीवन के लिए अवकाश होता है। वस्तुतः जीव विभिन्न कर्मों का कर्ता नहीं होता। उसे बाध्य होकर कर्म करना पड़ता है, क्योंकि वह विशेष प्रकार के शरीर में स्थित रहता है जिसका संचालन प्रकृति का कोई गुण करता है। आध्यात्मिक अधिकारी की सहायता प्राप्त किये बिना वह यह नहीं समझ सकता कि वह कहाँ स्थित है। प्रामाणिक गुरु की संगति से वह अपनी असली स्थिति देख सकता है और पूर्ण कृष्णभावनामृत को प्राप्त हो सकता है।

—*भगवद्गीता* १४.१९

६. वैदिक ज्ञान समझने के लिए गुरु से सुनना चाहिए

कृष्ण ने उदाहरण द्वारा शिक्षा दी कि हर व्यक्ति को अधिकारी शिक्षक से वेद सीखने चाहिए

वैधानिक दृष्टि से भगवान् समस्त वेदों में पारंगत हैं, किन्तु उदाहरण द्वारा यह शिक्षा देने के लिए कि हर व्यक्ति को अधिकारी शिक्षक से वेद सीखना चाहिए और सेवा तथा भेंट द्वारा शिक्षक को सन्तुष्ट करना चाहिए, उन्होंने स्वयं यह प्रणाली ग्रहण की।

—*भागवत* ३.३.२

शिष्य को गुरु की देखरेख में अध्ययन मनन करना चाहिए

अनुवाद: एक द्विज को यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य को गुरु की देखरेख में गुरुकुल में रहना चाहिए। वहाँ उसे समस्त वैदिक ग्रंथों के साथ उनके अनुपूरकों तथा उपनिषदों का अध्ययन अपनी क्षमता तथा सामर्थ्य के अनुसार करना चाहिए।

—*भागवत* ७.१२.१३

गुरु की शरण में गये बिना (कोरे शैक्षिक जीवनसे) वैदिक ज्ञान को समझा नहीं जा सकता

अनुवाद: जब सारे विद्यार्थियों ने श्रीचैतन्य महाप्रभु की निन्दा करते हुए ऐसा निश्चय किया तो उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। यद्यपि वे सभी विद्वान् थे, किन्तु इस अपराध के कारण उनसे ज्ञान का सार प्रकट नहीं हो रहा था।

तात्पर्य: जो व्यक्ति भगवान् विष्णु में दृढ़ विश्वास रखता है और इसी तरह बिना किसी मन्तव्य के गुरु-भक्ति करता है उसे वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त होता है। यह सार भगवान् की शरणागति ही है (वेदैश्च *सर्वैरहमेववेद्य:*)। जो गुरु तथा परमेश्वर की शरण में जाता है उसे वैदिक ज्ञान का सार प्राप्त होता है।...श्रीधर स्वामी अपनी टीका में पुष्टि करते हैं कि सर्वप्रथम गुरु की शरण में जाना चाहिए तभी भक्ति की विधि विकसित होगी। यह तथ्य नहीं है कि जो परिश्रम से अध्ययन करता है वह भक्त बन सकता है। किन्तु यदि गुरु तथा भगवान् पर किसी की पूर्ण श्रद्धा है तो चाहे वह अनपढ़ क्यों न हो, वह वेदों का असली ज्ञान प्राप्त करके आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त होता है। महाराज खट्वांग के उदाहरण से इसकी पुष्टि होती है। जो शरणागत हो जाता है उसे वेदों का ज्ञाता मान लिया जाता है। जो शरणागति की इस वैदिक विधि को अपनाता है वह भक्ति सीख लेता है और निश्चित रूप से सफल होता है। किन्तु जो अत्यन्त गर्वीला होता है वह न तो गुरु की शरण जाने में समर्थ होता , न ही भगवान् की। इस तरह वह वैदिक साहित्य के सार को नहीं समझ सकता।...जो भी व्यक्ति शरणागति का अनुगमन नहीं

करता और केवल शैक्षिक जीवन बिताने में रुचि रखता है, वह कोई उन्नति नहीं कर सकता। उसका लाभ व्यर्थ श्रम जैसा है। यदि कोई वेदों के अध्ययन में पटु है, किन्तु भगवान् विष्णु की शरण में नहीं जाता तो उसका ज्ञान-अनुशीलन समय तथा श्रम का अपव्यय मात्र है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १७.२५७

अनुभूत गुरु के सम्पर्क के बिना शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ है

जब तक कोई व्यक्ति शरीर से परे अपनी आत्मा के विषय में जिज्ञासा नहीं करता, तब तक मानव जीवन के उसके सारे कार्यकलाप पूर्णतया निष्फल होते हैं। इसलिए लाखों पुरुषों में कोई एक व्यक्ति अपनी आत्मा के विषय में जिज्ञासा करता है और *वेदान्त सूत्र*, *भगवद्गीता*, *श्रीमद्भागवत* जैसे शास्त्रों को पढ़ता है। किन्तु ऐसे शास्त्रों के सुनने या पढ़ने के बावजूद, जबतक मनुष्य अनुभूत गुरु के सम्पर्क में नहीं आता वह आत्मा के असली स्वभाव के विषय में अनुभव नहीं कर सकता है।

—*भागवत* २.३.१

शास्त्रों के रहस्य को समझने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए

जिसने प्रामाणिक गुरु से शिक्षा नहीं पाई वह वैदिक साहित्य को समझ ही नहीं सकता। इस बात पर बल देने के लिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते समय स्पष्ट कहा था कि तुम मेरे भक्त तथा अन्तरंग सखा हो इसलिए तुम *भगवद्गीता* के रहस्य को समझ सकते हो। अतएव यह निष्कर्ष निकला कि जो शास्त्रों के रहस्य को जानना चाहता है उसे प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए। उससे विनीत भाव से सुनना चाहिए तथा उसकी सेवा करनी चाहिए। तभी शास्त्रों का आशय समझ में आयेगा। वेदों में कहा गया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
यस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"शास्त्रों का असली तत्त्व उसे प्रकट होता है जो परमात्मा तथा गुरु दोनों

में अविचल श्रद्धा रखता है।''

—*चैतन्यचरितामृत आदि* ७.४८

परम्पराप्राप्त प्रामाणिक गुरु से ही श्रीमद्भागवत को समझा जा सकता है

अनुवाद : ''मनुष्य को चाहिए कि *श्रीमद्भागवत* के अर्थ का शुद्ध भक्त की संगति में रहकर आस्वादन करे...''।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* का वाचन वही कर सकता है जिसकी अविचल श्रद्धा कृष्ण के चरणकमलों तथा उनके भक्त, गुरु, में हो। मनुष्य को चाहिए कि गुरु से *श्रीमद्भागवत* को समझने का प्रयास करे। वैदिक आदेश है—*भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया*। मनुष्य को चाहिए कि वह भक्तियोग द्वारा तथा शुद्ध भक्तों के वाचन को सुनकर *श्रीमद्भागवत* समझे। ये वैदिक साहित्य—श्रुति तथा स्मृति—के आदेश हैं। जो परम्पराप्राप्त नहीं हैं और जो शुद्ध भक्त नहीं हैं वे *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* के असली रहस्यमय उद्देश्य को नहीं समझ सकेंगे

—*चैतन्यचरितामृत मध्य* २२.१३१

गुरु-परम्परा से अवतरित वैदिक ज्ञान को सुने बिना ठीक से दर्शन नहीं हो पाते

छठे मन्त्र में स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि मनुष्य को निरीक्षण करना या देखना चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य को पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुसरण करना चाहिए। इस सन्दर्भ में जो संस्कृत शब्द व्यवहृत हुआ है वह *अनुपश्यति* है। *पश्यति* का अर्थ है निरीक्षण करना। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह वस्तुओं को उस रूप में देखने का प्रयास करे जैसा कि वह नग्न नेत्रों से करता है। भौतिक दोषों के कारण नग्न नेत्र किसी वस्तु को ठीक से देख नहीं सकते। किसी श्रेष्ठ स्रोत से सुने बिना ठीक से देखा नहीं जा सकता और यह सर्वोच्च स्रोत वह वैदिक ज्ञान है जिसका प्रवचन स्वयं भगवान् ने किया। वैदिक सत्य गुरु-परम्परा द्वारा भगवान् से ब्रह्मा, ब्रह्मा से नारद, नारद से व्यास और व्यास से अन्य तमाम शिष्यों को प्राप्त होता है।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र ६

चिन्तन की अपेक्षा मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जाकर उससे असली ज्ञान प्राप्त करना चाहिए

मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु के पास जाए जो परम्परा प्रणाली का पालन करने वाला भगवान् का प्रतिनिधि है। किसी के अपने अधूरे संसारी ज्ञान के आधार पर अपना निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता नहीं है। गुरु शिष्यों को समस्त प्रामाणिक वैदिक साहित्य के आधार पर सही मार्ग की शिक्षा देने में समर्थ होता है। वह अपने शिष्य को शब्द-जाल में नहीं फँसाता। गुरु अपने निजी आचरण से अपने शिष्य को भक्ति-सिद्धान्तों की शिक्षा देता है। मनुष्य सगुण भक्ति के बिना निर्विशेषवादियों तथा शुष्क चिन्तकों (ज्ञानियों) की तरह जन्म-जन्मांतर अन्तिम निष्कर्ष तक नहीं पहुँच पाता।

—*भागवत* २.९.३१

वैदिक ज्ञान समझने (तथा इस प्रकार से ब्राह्मण बनने) के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु से दीक्षा लेनी चाहिए

प्रथम श्रेणी का बुद्धिमान व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है, क्योंकि वह परब्रह्म को जानता है। वैदिक आदेश हैं—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—इस विज्ञान को जानने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए जो शिष्य को जनेऊ पहनाकर दीक्षा देगा जिससे शिष्य वैदिक ज्ञान समझ सके। *जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् भवेद् द्विजः*। प्रामाणिक गुरु के प्रयत्न से ब्राह्मण बनना *संस्कार* कहलाता है। दीक्षा के बाद मनुष्य शास्त्र के अध्ययन में लगता है। शास्त्र विद्यार्थी को शिक्षा देता है कि भौतिकवादी जीवन से किस तरह छुटकारा पाया जाय और भगवद्धाम वापस जाया जाय।

—*भागवत* ६.५.२०

परम गुरु कृष्ण के उपदेशों के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

कभी-कभी यह तर्क किया जाता है कि लोग जब यही नहीं जानते कि गुरु कौन होता है तो यदि गुरु मिल जाय तो जीवन लक्ष्य के विषय में प्रकाश पाना कठिन है। इन सारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए राजा

सत्यव्रत हमें रास्ता दिखाते हैं कि भगवान् को असली गुरु के रूप में स्वीकार किया जाय। भगवान् ने *भगवद्गीता* में सारी बातें बतलाई हैं कि इस संसार में कैसे रहा जाय और किस तरह भगवद्धाम वापस जाय जाया। अतएव तथाकथित गुरुओं से, जो मूढ़ और मूर्ख होते हैं, भ्रमित नहीं होना चाहिए प्रत्युत मनुष्य को चाहिए कि भगवान् को ही साक्षात् गुरु के रूप में देखे। किन्तु बिना गुरु की सहायता के *भगवद्गीता* को समझ पाना कठिन है। अतएव परम्परा प्रणाली में गुरु प्रकट होता है। *भगवद्गीता* में (४.३४) भगवान् संस्तुति करते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

"गुरु के पास जाकर सत्य जानने का प्रयास करो। उससे विनीत भाव से प्रश्न पूछो और उसकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान दे सकता है, क्योंकि उसने सत्य का दर्शन किया है।"....तो फिर गुरु ढूँढने में कठिनाई है कहाँ? यदि कोई निष्ठावान है तो वह गुरु पा सकता है और हर बात सीख सकता है। मनुष्य को चाहिए कि गुरु से शिक्षा ग्रहण करे और जीवन-लक्ष्य की खोज करे।

—*भागवत* ८.२४.५३

मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में वेदाध्यन करे

वर्णाश्रम धर्म के अनुयायियों को अनेक कर्तव्यों का पालन करना होता है। ऐसे कर्तव्यों के अनुसार वेदाध्ययन करने वाले जिज्ञासु को प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए और उससे यह अनुरोध करना चाहिए कि वह उसे शिष्य बना ले। जनेऊ (यज्ञोपवीत) इसका प्रतीक है जो आचार्य से *वेदों* का अध्ययन करने के पात्र हैं।...सामान्यतया मनुष्य साधारण जीव के रूप में उत्पन्न होता है और संस्कारों के द्वारा उसका दुबारा जन्म होता है। जब उसे नया प्रकाश दिखता है और वह आध्यात्मिक उन्नति के लिए दिशा खोजता है तो वेदों के उपदेश हेतु वह गुरु के पास जाता है। गुरु केवल निष्कपट जिज्ञासु को शिष्य रूप में ग्रहण करता है और उसे यज्ञोपवीत प्रदान करता है। इस तरह मनुष्य दो बार जन्मता है या

द्विज बनता है। द्विज बनने के बाद वह वेदों का अध्ययन करता है और वेदों में पटु होने पर वह विप्र बनता है। विप्र या योग्य ब्राह्मण बनने पर ब्रह्म का साक्षात्कार करता है और तब तक आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करता रहता है जब तक वह वैष्णव अवस्था तक नहीं पहुँच जाता। यह वैष्णव अवस्था ब्राह्मण के लिए स्नातकोत्तर अवस्था है। प्रगतिशील ब्राह्मण को निश्चित रूप से वैष्णव बनना चाहिए, क्योंकि वैष्णव ही स्वरूपसिद्ध विद्वान् ब्राह्मण होता है।

—*भागवत* १.२.२

७. इन्द्रियों तथा मन की परिधि से परे वस्तुओं को समझने के लिए गुरु से सुनना चाहिए

परम क्षेत्र का ज्ञान भौतिक निरीक्षण या चिन्तन से नहीं, अपितु गुरु के शरणागत होकर सुनने से पाया जा सकता है

सज्जनो! हमारा ज्ञान इतना क्षीण है, हमारी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं और हमारे साधन इतने सीमित हैं कि जबतक हम श्रीव्यासदेव या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करेंगे तब तक परम क्षेत्र (धाम) का हमें रंचभर भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। हमारे प्रत्यक्ष बोध का ज्ञान प्रतिक्षण हमें धोखा दे रहा है। यह तो मन की सृष्टि या कल्पना है जो सदैव धोखा देती है, बदलती है और क्षणभंगुर है। हम अपने निरीक्षण तथा प्रयोग की सीमित विकृति विधि से कुछ भी नहीं जान सकते। किन्तु श्रीगुरुदेव या श्रीव्यासदेव के शुद्ध माध्यम से हम उस क्षेत्र से प्रसारित होकर इस क्षेत्र तक आने वाली दिव्य ध्वनि का श्रवण अपने उत्सुक कानों से सुन सकते हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

अपनी इन्द्रियों से जो परे है उसे समझने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए

यदि आप अपने निजी प्रयास से अपनी अपूर्ण इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान

प्राप्त करना चाहते हैं तो आप कभी भी सही निर्णय तक नहीं पहुँच सकते। यह सम्भव नहीं है।

ब्रह्म-संहिता में कहा गया है—आप मन के वेग से चलने वाले विमान में सवार हो लें। हमारा भौतिक विमान प्रति घंटे दो हजार मील तक उड़ सकता है, किन्तु मन का वेग क्या है? आप घर पर बैठे हैं और दस हजार मील दूरस्थ भारत के विषय में सोचते हैं तो वह मन तुरन्त आपके घर पर होता है। आपका मन वहाँ चला जाता है। मन की गति इतनी क्षिप्र है। इसीलिए कहा गया है कि "यदि आप लाखों वर्षों तक इस वेग से यात्रा करें तो आप पाएँगे कि आध्यात्मिक आकाश असीम है।" वहाँ तक पहुँच पाना भी सम्भव नहीं है। इसलिए वैदिक आदेश है कि मनुष्य अनिवार्य रूप से गुरु के पास पहुँचे।

—*ईशोपनिषद-भूमिका*

भौतिक बोध से परे वस्तुओं को समझने के लिए प्रामाणिक आचार्य से सुनना चाहिए

अनुवाद: तब श्रीचैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण को आश्वस्त किया "मेरे वचनों पर विश्वास करें और अब और अधिक अपने मन को इस भ्रान्ति से बोझिल न बनाएँ।"

तात्पर्य: यह आध्यात्मिक समझ की विधि है। *अचिन्त्या: खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्*। हमें चाहिए कि तर्क-वितर्क द्वारा अपने भौतिक बोध से परे वस्तुओं को समझने का प्रयास न करें। *महाजनो येन गत: स पन्था:*—हमें परम्परा से चले आ रहे महाजनों के चरणचिह्नों का अनुगमन करना चाहिए। यदि हम प्रामाणिक आचार्य के पास पहुँचें और उसके शब्दों में हमारी श्रद्धा हो तो आध्यात्मिक साक्षात्कार सरल होगा।

—*चैतन्य चरितामृत* मध्य ९.१९५

८. केवल गुरु के पास जाकर भौतिक जगत से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है

बद्धात्मा को अबद्ध (मुक्त) आत्मा-गुरु की आवश्यकता होती है

यह समझ लेना चाहिए कि बद्ध-जीव मोहरूपी रस्सी से जकड़ा हुआ है। यदि मनुष्य के हाथ-पाँव बाँध दिये जाएँ तो वह अपने को छुड़ा नहीं सकता—उसकी सहायता के लिए कोई ऐसा व्यक्ति चाहिए जो बँधा न हो। चूँकि एक बँधा हुआ व्यक्ति दूसरे बँधे हुए व्यक्ति की सहायता नहीं कर सकता, अत: रक्षक को मुक्त होना चाहिए। अत: केवल कृष्ण या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि गुरु ही बद्धजीव को छुड़ा सकते हैं। बिना ऐसी उत्कृष्ट सहायता के भव-बन्धन से छुटकारा नहीं मिल सकता।

—*भगवद्गीता* ७.१४

भौतिक जगत के बन्धन से मुक्त होने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

अनुवाद: मेरे पुत्रो! तुम्हें अत्यन्त बढ़े-चढ़े परमहंस यानी आध्यात्मिक दृष्टि से बढ़े-चढ़े गुरु को स्वीकार करना चाहिए।

तात्पर्य: मनुष्य को प्रामाणिक गुरु स्वीकार करना होता है इसका समर्थन श्रील रूपगोस्वामी ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में किया है—*श्री गुरु पदाश्रय:*। भौतिक जगत के बन्धन से मुक्त होने के लिए मनुष्य को गुरु के पास जाना होता है।

—*भागवत* ५.५.१०

व्यक्तिगत प्रयासों से भौतिक प्रकृति के प्रभाव से कोई अपने को छुटा नहीं सकता, उसे प्राणाणिक गुरु बनाकर उसके निर्देशन में कार्य करना चाहिए

साक्षात् वेदों ने कहा: "हे भगवन्! भले महान् योगीजन मन रूपी

हाथी तथा इन्द्रियरूपी झंझावात पर नियन्त्रण प्राप्त कर लें, किन्तु जब तक वे प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण नहीं करते तब तक वे भवसागर में पड़ते रहते हैं और आत्मसाक्षात्कार के अपने प्रयासों में सफल नहीं होते। ऐसे दिग्भ्रमित व्यक्तियों की तुलना उन व्यापारियों से की जाती है जो बिना कप्तान वाले जहाज में समुद्र की यात्रा करते हैं। इसलिए निजी प्रयासों के बिना कोई भी व्यक्ति प्रकृति के चंगुल से छूट नहीं पाता। उसे प्रामाणिक गुरु स्वीकार करना होता है और उसके निर्देशानुसार कार्य करना पड़ता है। तभी भौतिक जगत की अविद्या को पार किया जा सकता है।"

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

गुरु की शरण में आने से बद्धात्मा भौतिक जगत के निरन्तर चक्कर लगाने से छूट जाता है

अनुवाद: सकाम कर्म रूपी लता की शरण स्वीकार कर लेने पर बद्धजीव अपने पवित्र कार्यों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त हो सकता है और इस तरह नारकीय स्थिति से उसे मुक्ति मिल सकती है। किन्तु दुर्भाग्यवश वह वहाँ रह नहीं पाता। अपने पवित्र कार्यों का फल भोगने के बाद उसे निम्न लोकों में लौटना पड़ता है। इस प्रकार वह निरन्तर ऊपर नीचे आता जाता रहता है।

तात्पर्य: सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त लाखों वर्षों तक भ्रमण करते रहने पर भी किसी को भौतिक अस्तित्व के पथ से तब तक छुटकारा नहीं मिल पाता जब तक उसे किसी विशुद्ध भक्त के चरणारविन्द में शरण प्राप्त नहीं हो जाती। जिस प्रकार एक वानर वटवृक्ष की एक शाखा का आश्रय पाकर आनन्द का अनुभव करता है उसी प्रकार यह बद्धजीव अपने जीवन के असली अर्थ को जाने बिना सकाम कर्म रूपी *कर्मकाण्ड* का आश्रय लेता है। कभी-कभी वह इन कार्यों के द्वारा स्वर्ग तक पहुँच जाता है तो कभी वह फिर से नीचे पृथ्वी पर आ जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसका वर्णन *ब्रह्माण्ड भ्रमिते* कहकर किया है। किन्तु यदि श्रीकृष्ण की कृपा से कोई भाग्यवान व्यक्ति गुरु की शरण प्राप्त करता है तो उसे

श्रीभगवान् की भक्ति करने की विधि का पता चल जाता है। इस प्रकार वह इस भौतिक जगत के आवागमन चक्र से छूटने की युक्ति जान पाता है। इसलिए वेदों का यह आदेश है कि गुरु महाराज की शरण में जाना चाहिए।....यह आवश्यक है कि मनुष्य श्रीकृष्णभावनामृत तक आये अत: वह शुद्ध भक्त की शरण में आये। इस प्रकार से भवबन्धन से छुटकारा पाया जा सकता है।

—*भागवत* ५.१४.४१

गुरु के पास जाना कोई फैशन नहीं अपितु भौतिक कष्टों से छुटकारा चाहने वाले के लिए अनिवार्यता है

जो व्यक्ति भौतिक कष्टों के प्रति गम्भीरतापूर्वक सचेष्ट है और जो उससे छूटना चाहता है उसके लिए गुरु के पास जाना मात्र फैशन नहीं, अपितु अनिवार्यता है। ऐसे व्यक्ति का कर्तव्य है कि गुरु के पास जाय। इस सन्दर्भ में हमें *भगवद्गीता* में व्यक्त इस परिस्थितियों की ओर ध्यान देना होगा। जब अर्जुन अनेकानेक समस्याओं से चिन्तित था कि वह युद्ध करे या न करे तो उसने भगवान् कृष्ण को गुरु रूप में स्वीकार किया।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाएँ*

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह कृष्ण के प्रतिनिधि स्वरूप प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आवे

जीवात्मा प्रकृति के नियमों से बारम्बार प्रताड़ित होकर ब्रह्माण्ड भर में विभिन्न लोकों तथा योनियों में चक्कर लगाता है। यदि संयोगवश वह किसी भक्त के सम्पर्क में आता है तो उसका जीवन सुधर जाता है। तब जीवात्मा परमधाम को वापस आता है। इसलिए कहा गया है—

जनमे जनमे सबे पिता-माता पाय।
कृष्ण गुरु नहिं मिले भज हरि एइ॥

विभिन्न देहों में आत्मा के देहान्तरण से प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक जीवन में चाहे वह मनुष्य का या पशु, वृक्ष अथवा देवता का हो, माता पिता की प्राप्ति करता है। इनका मिलना कठिन नहीं है। कठिन तो है परम

गुरु तथा श्रीकृष्ण को पा लेना। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि कृष्ण के प्रतिनिधि अर्थात् गुरु के सम्पर्क में आने के अवसर को हाथ से न जाने दे। गुरु या आत्म-पिता के पथप्रदर्शन से परमधाम वापस जाना सहज है।

—*भागवत* ६.१६.६

जब बद्धात्मा दक्ष वैद्य रूपी गुरु से मिलता है और उसके आदेशों का पालन करता है तो उसको भौतिक रोग दूर हो जाता है

बद्धात्मा की कृष्ण से सतत वियोग प्रवृत्ति होने से भौतिक शक्ति का जादू उसे दो प्रकार के शरीर प्रदान करता है—पाँच तत्त्वों से युक्त स्थूल शरीर तथा मन, बुद्धि एवं अहंकार से युक्त सूक्ष्म शरीर। इन दोनों शरीर से अविरत होने से बद्धात्मा निरन्तर भव-पीड़ाएँ, जिन्हें त्रयताप कहा जाता है, सहता रहता है। उस पर छह शत्रु (यथा काम, क्रोध, लोभ आदि) भी सवार रहते हैं। बद्धात्मा का रोग कभी न समाप्त होने वाला होता है।

रुग्ण तथा बद्धजीव ब्रह्माण्ड भर में स्थानान्तरण करता रहता है। कभी वह स्वर्गलोक में रहता है तो कभी अधोलोक में। इस प्रकार वह रुग्ण जीवन बिताता है। उसका रोग तभी दूर हो सकता है जब वह किसी दक्ष वैद्य यानी प्रामाणिक गुरु से मिलता है और निर्देशों का पालन करता है। जब बद्धात्मा आज्ञाकारी बन कर प्रामाणिक गुरु के आदेशों का पालन करता है तो उसका भवरोग दूर हो जाता है और मुक्तावस्था को प्राप्त होता है। वह पुनः कृष्णभक्ति प्राप्त कर लेता है और कृष्ण के पास वापस जाता है।

—*श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

भौतिक प्रकृति के चंगुल से छूटने तथा कृष्ण के चरणारविन्द पाने के लिए मनुष्य को गुरु के पास जाना चाहिए और उससे भक्ति का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए

भगवद्गीता में (७.१४) कहा गया है कि भौतिक प्रकृति इतनी प्रबल है कि सामान्य जीव इससे पार नहीं पा सकता। केवल वे ही भवसागर

को पार कर पाते हैं जिन्होंने कृष्ण के चरणारविन्दों की शरण ग्रहण कर ली है। जीव यह भूल जाता है कि कृष्ण का शाश्वत दास है। उसकी इस विस्मृति से ही जीवन का बन्धन तथा भौतिक शक्ति के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। निस्सन्देह, यही आकर्षण भौतिक आकर्षण शक्ति (माया) का बन्धन है। चूँकि मनुष्य के लिए तब तक मुक्त हो पाना अत्यन्त कठिन है जब तक वह भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व जताना चाहता है इसलिए यह संस्तुति की जाती है कि वह गुरु के पास जाए जो उसे भक्ति में प्रशिक्षित कर सकता है और भौतिक प्रकृति के चँगुल से छुड़ाकर कृष्ण के चरणारविन्द प्राप्त कराने में सक्षम बना सकता है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

अपने असली स्वार्थ की खोज करने के तथा भवसागर पार करने के लिए मनुष्य को गुरु के पास जाना चाहिए

सनातन गोस्वामी महान् विद्वान थे और *पंडित* कहलाते थे जिससे सूचित होता है कि वे विद्वान ब्राह्मण थे। जब सनातन गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा, "मेरे पड़ोस के लोग मुझे पंडित कहते हैं जिसके कारण मैं अत्यन्त अप्रसन्न हूँ।" श्रीचैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "तुम क्यों असंतुष्ट हो?" सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, "मैं ऐसा निकृष्ट पंडित हूँ कि मैं अपने जीवन के लक्ष्य को भी नहीं जानता। मैं यह भी नहीं जानता कि मेरे लिए क्या लाभप्रद है। मैं इन्द्रियतृप्ति के प्रवाह में बहा जा रहा हूँ।" सनातन गोस्वामी इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे—वे सोना या कोई दवा लेने उनके पास नहीं पहुँचे। वे अपना असली स्वार्थ खोजने गये। गुरु के पास पहुँचने का यही असली प्रयोजन है।

देवहूति इसी तरह से भगवान् कपिल के पास पहुँचीं। उन्होंने कहा, "हे कपिल! आप मेरे पुत्र रूप में आये हो, किन्तु आप मेरे गुरु हो, क्योंकि आप मुझे बता सकते हो कि मैं इस भवसागर को किस तरह पार कर सकती हूँ।" इस तरह जो व्यक्ति संसार रूपी अज्ञान के अंधकारपूर्ण सागर को पार करना चाहता है उसे गुरु की आवश्यकता पड़ती है। गुरु का कार्य सोना तथा दवा देना नहीं है। अब तो गुरु बनाने का फैशन

चल पड़ा है जैसे वह कोई कुत्ता या बिल्ली हो। यह व्यर्थ है। हमें ईश्वर की सृष्टि के उस अंश के विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए जो इस अंधकार के परे है।

—*श्री कपिलदेव की शिक्षाएँ*

अविद्या के सागर को पार करने के लिए गुरु मनुष्य रूपी नौका का नाविक है

अनुवाद: ब्रह्मा ने कहा—प्रिय देवताओ! मनुष्य-जीवन इतना महत्त्वपूर्ण है कि हमलोग भी ऐसा जीवन प्राप्त करने की कामना करते हैं। क्योंकि मनुष्य-जीवन में ही हम पूर्ण धार्मिक सत्य तथा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यदि इस मानव जीवन में कोई मनुष्य भगवान् तथा उनके धाम को नहीं समझ लेता तो यह मानना चाहिए कि वह बहिरंगा प्रकृति के प्रभाव से अत्यधिक अभिभूत है।

तात्पर्य: ब्रह्माजी उस मनुष्य की स्थिति की डट कर निन्दा करते हैं जो भगवान् तथा उनके दिव्य धाम वैकुण्ठ में रुचि नहीं लेता। ब्रह्माजी भी मानव-जीवन की कामना करते हैं। ब्रह्मा तथा अन्य देवता मनुष्यों की अपेक्षा श्रेष्ठतर शरीर धारण करते हैं फिर भी ब्रह्मा सहित सारे देवता मानव जीवन प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, क्योंकि यह विशेष रूप से उस जीव के लिए है जो दिव्य ज्ञान तथा धार्मिक सिद्धि प्राप्त कर सकता है। एक जीवन में भगवद्धाम लौट पाना सम्भव नहीं है, किन्तु मनुष्य-जीवन पाकर व्यक्ति को जीवन का उद्देश्य तो समझ ही लेना चाहिए और श्रीकृष्णभावनामृत का अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिए। यह कहा गया है कि मनुष्य-जीवन एक महान् वरदान है, क्योंकि अविद्या का सागर पार करने के लिए यह सर्वोपयुक्त नौका है। गुरु को इस नौका का सबसे समर्थ नाविक समझा जाता है और शास्त्रों से प्राप्त निर्देश अविद्या सागर पर तैरते रहने के लिए अनुकूल वायु है। वह मनुष्य जो जीवन की इन सुविधाओं का लाभ नहीं उठाता, वह आत्मघात करता है। इसलिए जो व्यक्ति मनुष्य-जीवन में कृष्णभावनामृत प्रारम्भ नहीं कर देता वह माया के प्रभाव में आकर अपना जीवन गँवा देता है। ब्रह्माजी ऐसे मनुष्य की

स्थिति पर खेद व्यक्त कर रहे हैं।

—*भागवत* ३.१५.२४

जो व्यक्ति गुरु से शिक्षा ग्रहण करने का लाभ उठाता है वही अपने मनुष्य-जीवन का सही उपयोग करता है

"यदि मनुष्य जीवन में उपयुक्त शिक्षक के मार्गदर्शन में पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करता है तो उसका भावी जीवन सफल हो जाता है। वह सफलतापूर्वक अविद्या-सागर को पार कर सकता है और उस पर माया अपना प्रभाव नहीं दिखा पाती।...जो गुरु शिष्यों को आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा देता है वह *शिक्षा गुरु* कहलाता है और जो गुरु शिष्यों को दीक्षा देता है वह दीक्षा-गुरु कहलाता है। दोनों ही मेरे प्रतिनिधि होते हैं। शिक्षा देने वाले अनेक गुरु हो सकते हैं, किन्तु दीक्षा गुरु एक ही होता है। जो मनुष्य इन गुरुओं का लाभ उठाता है और उनसे उचित ज्ञान प्राप्त करके भवसागर को पार कर लेता है, उसे भी मनुष्य-जीवन का सही उपयोग किया हुआ माना जाता है। उसे यह व्यावहारिक ज्ञान हो जाता है कि जीवन का चरम स्वार्थ, जिसे मनुष्य जीवन में ही प्राप्त किया जा सकता है, आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करना और इस तरह भगवद्धाम वापस जाना है।"

—*लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण*

जीवन संघर्ष से छुटकारा पाने के लिए प्रामाणिक गुरु खोजना चाहिए और उसके चरणकमलों पर शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिए

इस भौतिक जगत में बद्धजीव स्वकर्मवश भटकते रहते हैं और कभी-कभी अत्यन्त कठिनाई से इससे छूट पाते हैं। तात्पर्य यह कि जीव कभी भी सुखी नहीं रहता। वह अपने अस्तित्व के लिए निरन्तर संघर्ष करता है। वास्तव में उसका एकमात्र प्रयोजन गुरु की शरण में जाकर उन्हीं के माध्यम से श्रीकृष्ण के चरणारविन्द को स्वीकार करना है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—*गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज।* इस भौतिक जगत रूपी वनों या नगरों में जीवन-संघर्ष करने वाले प्राणी वास्तव में सुखी नहीं है। वे मात्र विविध पीड़ाओं तथा इच्छाओं का

भोग कर रहे हैं। सामान्यतः ऐसी पीड़ाएँ जो अशुभ हैं। वे इन दुखों से मुक्ति पाना चाहते हैं, किन्तु अज्ञानवश ऐसा नहीं कर पाते। उनके लिए तो वेदों में कहा गया है—*तद् विज्ञानार्थं स गुरुम् एवाभिगच्छेत्।* जब जीव जीवन-संघर्ष में इस भौतिक जगत रूपी वन में खो जाता है तो उसका प्रथम कार्य होता है ऐसा प्रामाणिक गुरु खोज निकालना जो श्री भगवान् के चरणकमलों में निरन्तर अनुरक्त रहता हो। तात्पर्य यह कि यदि कोई जीवन-संघर्ष से छुटकारा पाने का इच्छुक है तो उसे चाहिए कि वह प्रामाणिक गुरु खोजे और उसके चरणकमल में बैठ कर शिक्षा प्राप्त करे। इस तरह वह इस संघर्ष से बाहर निकल सकता है।...कोई भी प्राणी इस जीवन-संघर्ष से, जो कष्टों से परिपूर्ण है, तब तक छुटकारा नहीं पा सकता जब तक वह श्रीभगवान् के शुद्धभक्त की शरण न ले ले। भौतिक प्रयास तो एक स्थिति से दूसरी स्थिति में बदलते रहते हैं किन्तु वास्तव में इस जीवन-संघर्ष से किसी को छुटकारा नहीं मिल पाता। इसका एकमात्र उपाय प्रामाणिक गुरु के चरणकमल तथा उनके द्वारा श्रीभगवान् के चरणकमलों की प्राप्ति है।

—*भागवत* ५.१४.१

जो व्यक्ति गुरु की संगति करता है और उसकी शरण ग्रहण करता है वह कृष्ण द्वारा शिक्षित होता है

कृष्ण सामान्य मनुष्य के रूप में आते हैं, वे चैतन्य महाप्रभु के भक्त-रूप में आते हैं या फिर अपना प्रतिनिधि गुरु या शुद्ध भक्त भेजते हैं। वे प्रचार करने तथा शिक्षा देने आते हैं अतः परमेश्वर के मायावश पुरुष को उनके साथ मिलने, बोलने तथा उनसे शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है और यदि किसी प्रकार से बद्धजीव ऐसे महापुरुषों की शरण में जाता है तो वह भौतिक जीवन की परिस्थिति से बचा सकता है...जो व्यक्ति शुद्धभक्त, गुरु या पृथु महाराज जैसे भगवान् के प्रामाणिक अवतार की संगति का लाभ उठाकर ईश्वर की शरण में जाता है उसकी रक्षा कृष्ण करते हैं। तब उसका जीवन सफल हो जाता है।

—*भागवत* ४.२१.२७

गुरु की संगति के बिना जन्म तथा मृत्यु से मुक्त नहीं हुआ जा

सकता

जब जीव शरीर के भीतर बन्दी रहता है तो वह *जीवभूत* कहलाता है और जब वह शरीर से मुक्त रहता है तो *ब्रह्मभूत* कहलाता है। एक जन्म के बाद दूसरे जन्म में शरीर बदलता हुआ जीव न केवल विभिन्न योनियों में घूमता रहता है, अपितु एक लोक से दूसरे लोक में भी जाता रहता है। भगवान् चैतन्य कहते हैं कि सकाम कर्मों से बँधकर जीवात्माएँ सारे ब्रह्माण्ड में घूमती रहती हैं और यदि सौभाग्यवश या किसी पुण्य कर्म के कारण वे प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आती हैं तो कृष्ण की कृपा से उन्हें भक्ति-बीज प्राप्त होता है। यदि जीव इस बीज को पाकर उसे अपने हृदय में बो देता है और श्रवण-कीर्तन रूपी जल से इसे सींचता है तो यह बीज उग कर एक वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। इसमें जो फूल-फल लगते हैं उन्हें जीव इसी जगत में भोग सकता है। यह *ब्रह्मभूत* अवस्था कहलाती है।....जब तक भगवान् की कृपा से प्रामाणिक गुरु की संगति नहीं प्राप्त होती तब तक विभिन्न योनियों में जन्म तथा मृत्यु के चक्र तथा विभिन्न प्रकार के लोकों में घूमने से छुटकारे की कोई सम्भावना नहीं रहती।

—*भागवत* ३.३१.४३

गुरु इस भौतिक जगत की प्रज्ज्वलीत अग्नि को बुझाता है

भौतिक जगत में एक शरीर से दूसरे शरीर में आत्मा का निरन्तर देहान्तरण ही दुख का कारण है। भौतिक जगत में यह बद्धजीव *संसार* कहलाता है। कोई अच्छा कार्य करके अत्यन्त सुन्दर भौतिक परिस्थिति में जन्म ले सकता है, किन्तु जिस प्रकर्म के अनुसार जन्म-मृत्यु होते हैं वह भीषण अग्नि के समान है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अपने गुरु की प्रार्थना में इसका वर्णन किया है। संसार अर्थात् जन्म-मरण का चक्र वन की अग्नि के समान है, वन की अग्नि लकड़ियों के घर्षण से स्वत: लगती है, किसी को प्रयास नहीं करना पड़ता और उसे न तो कोई दयावान पुरुष, न ही अग्नि-विभाग बुझा सकता है। वह तो तभी बुझती है जब बादलों से मूसलधार वर्षा हो। बादल की उपमा गुरु की कृपा से दी

गई है। गुरु की कृपा से भगवान् का अनुग्रह रूपी बादल लाया जाता है तभी कृष्णभक्ति की वर्षा होने पर संसार की अग्नि बुझाई जा सकती है।

—*भागवत* ३.२१.१७

जब तक गुरु (तथा सन्तों एवं कृष्ण) की कृपा प्राप्त नहीं होती भौतिक जगत से मोक्ष सम्भव नहीं है

एकबार भौतिक जगत के चक्र में प्रवेश कर लेने पर इससे बाहर निकल पाना अति कठिन है। इसलिए भगवान् स्वयं आते हैं या अपने प्रामाणिक प्रतिनिधि को भेजते हैं और वे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे शास्त्र छोड़ जाते हैं जिससे अविद्या के अन्धकार में मँडराने वाले जीव इन उपदेशों, सन्त पुरुषों तथा गुरु का लाभ उठा सकें और इस तरह मुक्त हो सकें। जबतक जीव को सन्त पुरुषों, गुरु या कृष्ण की कृपा प्राप्त नहीं होती, उसका भौतिक जगत के अंधकार से बाहर निकल पाना सम्भव नहीं होता और उसके अपने प्रयत्न से यह सर्वथा असम्भव है।

—*भागवत* ३.३२.२८

प्रामाणिक गुरु से समुचित रीति से दीक्षा प्राप्त व्यक्ति क्रमशः भौतिक धारणाओं से मुक्त होता है और भक्ति में अनुरक्त होता है

भगवान् की सेवा एकमात्र साधन है जिसके द्वारा मनुष्य भौतिक कार्यकलापों से विरक्त हो सकता है। प्रामाणिक गुरु से समुचित रीति से दीक्षाप्राप्त तथा हरे कृष्ण कीर्तन में संलग्न व्यक्ति क्रमशः "मैं" तथा "मेरी" धारणा से मुक्त होता है और भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में अनुरक्त होता है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु की श्रद्धामयी तथा भक्तिमयी सेवा से मनुष्य भौतिक प्रकृति के गुणों को पार कर सकता है

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥

अनुवाद: मनुष्य को सतोगुण विकसित करके रजो तथा तमो गुणों को

जीतना चाहिए और तब शुद्ध सत्त्व पद तक पहुँच कर सतोगुण से विरक्त हो लेना चाहिए। यदि कोई श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा में लगा रहे तो यह सब कुछ स्वतः हो सकता है। इस प्रकार प्रकृति के गुणों पर विजय पाई जा सकती है।

तात्पर्य : किसी रोग के मूल कारण का उपचार करके शारीरिक वेदनाओं एवं क्लेशों को जीता जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई गुरु के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति करे तो वह सतो, रजो तथा तमो गुणों के प्रभाव पर सरलता से विजय पा सकता है। योगी तथा ज्ञानी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के अभ्यास करते हैं, किन्तु गुरु की कृपा से भक्त को तुरन्त ही भगवत्कृपा प्राप्त हो जाती है। *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो*। यदि गुरु अनुकूल हो तो मनुष्य को सहज ही भगवत्कृपा प्राप्त हो सकती है और भगवत्कृपा होने पर वह इस संसार में सतो, रजो तथा तमो गुणों के प्रभावों को जीतकर तुरन्त दिव्य बन जाता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में की गई है (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। यदि कोई गुरु के आदेशों के अनुसार चलने वाला शुद्ध भक्त हो तो उसे सरलता से भगवत्कृपा प्राप्त हो जाती है और वह तुरन्त ही दिव्य पद पर आरूढ़ होता है।

—*भागवत* ७.१५.२५

सन्त स्वभाव वाले गुरु को स्वीकार करने से आध्यात्मिक ज्ञान मिलता है, विराग उत्पन्न होता है और मूल कृष्णभावनामृत में फिर से पहुँचना होता है

जब मनुष्य में उत्तम चेतना जागती है और वह साधु पुरुष को अपना गुरु बनाता है तो वह वैदिक उपदेश सुनता है, जो दर्शन, कथा, भक्तों के आख्यान तथा ईश्वर एवं भक्तों के मध्य आदान-प्रदान के रूप में होता है। इस प्रकार वह मन में ताजगी का अनुभव करता है जिस प्रकार सारे शरीर में चन्दन लेप करने तथा आभूषण पहनने से अनुभव होता है। इन अलंकरणों की तुलना धार्मिक तथा आत्मिक ज्ञान से की जा सकती है और वह अपने आपको *श्रीमद्भागवत*, *भगवद्गीता* तथा अन्य

वैदिक साहित्य सुनने में लगाता है। इस श्लोक में प्रयुक्त *साध्व अलंकृत* शब्द बताता है कि मनुष्य को चाहिए कि साधु पुरुषों के उपदेशों के संचित ज्ञान में लीन रहे।...साधु पुरुषों से प्राप्त ज्ञान से अलंकृत मनुष्य को अपनी मूल चेतना, कृष्णभावनामृत, को ढूँढने का यत्न करना चाहिए। जब तक साधु पुरुष अपने उपदेशों से कृपा नहीं दिखाते तबतक कृष्ण-चेतना प्राप्त करना कठिन है। अत: श्रीनरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं—*साधु शास्त्र गुरुवाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य*। यदि हम साधु पुरुष बनना चाहते हैं या अपनी मूल कृष्ण-चेतना को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें साधु, शास्त्र तथा गुरु की संगति करनी चाहिए। यही इसकी विधि है।

—*भागवत* ४.२६.१२

श्रद्धा तथा आज्ञाकारितापूर्वक गुरु के निर्देशन में भक्ति में लगने से माया से मुक्त हुआ जा सकता है

अनुवाद: भगवान् ने कहा: हे माता! मैंने आपको जिस आत्म-साक्षात्कार के मार्ग का उपदेश दिया है वह अत्यन्त सुगम है। आप इसी शरीर (जन्म) में शीघ्र ही मुक्त हो सकती हैं।

तात्पर्य: भक्ति इतनी पूर्ण है कि विधि-विधानों का पालन करने तथा गुरु के निर्देशन में उनको सम्पन्न करने से इसी शरीर में माया के चंगुल से मुक्त हुआ जा सकता है। अन्य योग विधियों या ज्ञानयोग में मनुष्य को यह कभी निश्चय नहीं हो पाता कि उसे सिद्धि अवस्था प्राप्त होगी या नहीं। किन्तु भक्ति करने में यदि कोई प्रामाणिक गुरु के आदेशों में अविचल श्रद्धा रखता है और विधि-विधानों का पालन करता है तो उसकी मुक्ति इसी शरीर में सम्भव है। श्रील रूपगोस्वामी ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में इसकी पुष्टि की है—*ईहा यस्य हरेर्दास्ये*—चाहे वह जहाँ भी स्थित हो, यदि उसका लक्ष्य गुरु के निर्देशानुसार परमेश्वर की सेवा करना हो तो वह जीवन्मुक्त कहलाता है या जो अपने भौतिक शरीर सहित मुक्त हो जाता है।

—*भागवत* ३.३२.१०

भौतिक प्रकृति के प्रभाव से विमल बनने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक

गुरु के निर्देशन में भगवान् की पूजा करनी चाहिए

सारी बद्धात्माएँ प्रकृति के तीन गुणों में भौतिक शक्ति के सम्पर्क के कारण अशुद्ध हैं। अतएव यह आवश्यक है कि वे प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में अपने को शुद्ध बनाएँ, क्योंकि गुरु न केवल योग्यता के कारण ब्राह्मण होता है, अपितु उसे वैष्णव भी होना होता है। यहाँ पर जिस एकमात्र शुद्धिकरण विधि का उल्लेख हुआ है वह किसी मान्य विधि के अन्तर्गत—प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में—भगवान् की पूजा करना है। यह शुद्धिकरण की प्राकृतिक विधि है। अन्य किसी विधि को प्रामाणिक नहीं बताया गया। शुद्धिकरण की अन्य विधियाँ जीवन की इस अवस्था तक पहुँचने में भले ही सहायक हो सकती हों किन्तु मनुष्य को वास्तविक सिद्धि प्राप्त करने के पूर्व इसे अन्तिम बिन्दु को प्राप्त होना होता है।

—*भागवत* ३.६.३४

प्रामाणिक गुरु के आदेशों का पालन करने से शिष्य को ज्ञान तथा वैराग्य प्राप्त होता है

शास्त्रों के सिद्धान्तों के साथ ही साथ प्रामाणिक गुरु के आदेशों का पालन करने से छात्र पूर्णज्ञान के स्तर तक उठ सकेगा जिसका प्राकट्य इन्द्रियतृप्ति के जगत से वैराग्य लेने से होगा।

—*भागवत* २.९.३७

९.गुरु जीवन की समस्याओं को हल करने वाला है

जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

अनुवाद: अब मैं अपनी कृपण-दुर्बलता के कारण अपना कर्तव्य भूल

गया हूँ और सारा धैर्य खो चुका हूँ। ऐसी अवस्था में मैं आपसे पूछ रहा हूँ कि जो मेरे लिए श्रेयस्कर हो उसे निश्चित रूप से बताएँ। अब मैं आपका शिष्य हूँ और आपका शरणागत हूँ। कृपया मुझे उपदेश दें।

तात्पर्य : यह प्राकृतिक नियम है कि भौतिक कार्यकलाप की प्रणाली ही हर एक के लिए चिन्ता का कारण है। पग-पग पर उलझनें आती हैं, अतः प्रामाणिक गुरु के पास जाना आवश्यक है जो जीवन के उद्देश्य को पूरा करने के लिए समुचित पथ-निर्देश कर सके। समग्र वैदिक ग्रंथ हमें यह उपदेश देते हैं कि अनचाही जीवन की उलझनों से मुक्त होने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए। ये उलझनें उस दावाग्नि के समान हैं जो किसी के द्वारा लगाये बिना ही भभक उठती है। इसी प्रकार विश्व की स्थिति ऐसी है कि बिना चाहे जीवन की उलझनें स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं। कोई नहीं चाहता कि आग लगे, किन्तु फिर भी वह लगती है और हम अत्यधिक व्याकुल हो उठते हैं। अतः वैदिक वाङ्मय उपदेश देता है कि जीवन की उलझनों को समझने तथा उनका समाधान करने के लिए हमें परम्परा-प्राप्त गुरु के पास जाना चाहिए। जिस व्यक्ति के प्रामाणिक गुरु होता है वह सब कुछ जानता है। अतः मनुष्य को भौतिक उलझनों में न रह कर गुरु के पास जाना चाहिए।

—*भगवद्गीता* २.७

केवल गुरु ही जीवन की समस्याओं को हल कर सकता है

अनुवाद : मुझे कोई ऐसा साधन नहीं दिखता जो मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले इस शोक को दूर कर सके। स्वर्ग पर देवताओं के अधिपत्य की तरह इस धनधान्य-सम्पन्न सारी पृथ्वी पर निष्कंटक राज्य प्राप्त करके भी मैं इस शोक को दूर नहीं कर सकता।

तात्पर्य : यद्यपि अर्जुन धर्म तथा सदाचार के नियमों पर आधारित अनेक तर्क प्रस्तुत करता है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने गुरु भगवान् कृष्ण की सहायता के बिना अपनी असली समस्या हल नहीं कर पा रहा। वह समझ गया था कि उसका तथाकथित ज्ञान उसकी उन समस्याओं को दूर करने में व्यर्थ है जो उसके सारे शरीर को सुखाये दे रही थीं।

उसे इन उलझनों को भगवान् कृष्ण जैसे गुरु की सहायता के बिना हल कर पाना असम्भव लग रहा था। शैक्षिक ज्ञान, विद्वत्ता, उच्च पद—ये सब जीवन की समस्याओं को हल करने में व्यर्थ हैं। यदि कोई इसमें सहायता कर सकता है तो वह है एकमात्र गुरु। अतः निष्कर्ष यह निकला कि गुरु जो शतप्रतिशत कृष्णभावनाभावित होता है, वही एकमात्र प्रामाणिक गुरु है और वही जीवन की समस्याओं को हल कर सकता है।...संसार की समस्याओं—जन्म, जरा, व्याधि तथा मृत्यु—की निवृत्ति धनसंचय तथा आर्थिक विकास से सम्भव नहीं है। विश्व के विभिन्न भागों में ऐसे राज्य हैं जो जीवन की सारी सुविधाओं से तथा सम्पत्ति एवं आर्थिक विकास से पूरित हैं, किन्तु तो भी उनके सांसारिक जीवन की समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। वे विभिन्न साधनों से शान्ति खोजते हैं, किन्तु वास्तविक सुख उन्हें तभी मिल पाता है जब वे कृष्णभावना से युक्त कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि के माध्यम से कृष्ण अथवा कृष्णतत्व पूरक *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के परामर्श को ग्रहण करते हैं।

—*भगवद्गीता* २.८

भौतिक जगत की समस्याओं को हल करने के लिए बुद्धिमान पुरुष को प्रामाणिक गुरु स्वीकार करना चाहिए और उससे पूछताछ करनी चाहिए

विभिन्न शरीरों से होकर जीव का विकास प्रकृति के नियमों द्वारा स्वतः चलता रहता है, किन्तु मनुष्यों में ऐसा नहीं होता। दूसरे शब्दों में, जीव प्रकृति के नियमों द्वारा (*प्रकृतेः क्रियमाणानि*) निम्न योनियों से विकसित होकर मनुष्य योनि प्राप्त करता है। किन्तु अपनी विकसित चेतना के कारण मनुष्य को जीव की स्वाभाविक स्थिति समझनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि वह भौतिक शरीर क्यों स्वीकार करे। उसे यह प्रकृति द्वारा प्रदान किया जाता है, किन्तु यदि इतने पर भी वह पशु की ही तरह कार्य करता है तो उसके मनुष्य-जीवन से क्या लाभ? इस जीवन में मनुष्य को जीवन-लक्ष्य चुन कर उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। उसे गुरु तथा शास्त्रों से उपदेश ग्रहण करके काफी बुद्धिमान बन जाना चाहिए। मनुष्य-जीवन में उसे मूर्ख तथा अज्ञानी नहीं बने रहना चाहिए, अपितु

उसे अपनी स्वाभाविक स्थिति के विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए। यह *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा* है। मानव मनोविज्ञान से अनेक प्रश्न उठते हैं जिन पर विविध विचारकों ने मनन किया है और ज्ञान के आधार पर अनेक प्रकार के उत्तर दिये हैं। वैदिक आदेश है—*तद्‌विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—जीवन की समस्याओं का हल निकालने के लिए गुरु बनाना चाहिए। *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्*—यदि कोई जीवन की गुत्थी के विषय में जानने के लिए सचमुच उत्सुक है तो उसे प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए।...मनुष्य को चाहिए कि *प्रणिपातेन* अर्थात् शरण लेकर तथा सेवा करके गुरु के निकट जावे। बुद्धिमान मनुष्य को गुरु से जीवन-लक्ष्य के विषय में प्रश्न पूछना चाहिए। एक प्रामाणिक गुरु ऐसे समस्त प्रश्नों का उत्तर दे सकता है, क्योंकि उसने असली सत्य देखा है। हम अपने सामान कार्यकलापों तक में हानि-लाभ पर विचार करके ही सब कर्म करते हैं। इसी तरह बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि भौतिक जीवन की सम्पूर्ण क्रिया पर विचार करे और तब प्रामाणिक गुरु के आदेशानुसार बुद्धिमत्तापूर्वक कर्म करे।

—*भागवत* ७.७.४७

जीवन समस्याओं के समाधान हेतु गुरु के पास विनीत भाव से पहुँच कर उससे पूछताछ की जाय

अनुवाद: तब प्रखर शुकदेव गोस्वामी पूर्ण शान्त भाव से बैठ गये। वे किसी भी प्रश्न का निःसंकोच होकर उत्तर देने के लिए सन्नद्ध थे। तब परम भक्त परीक्षित महाराज उनके पास पहुँचे, उनके समक्ष शिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर मधुर वाणी से विनीत होकर पूछा।

तात्पर्य: महाराज परीक्षित द्वारा गुरु से प्रश्न पूछने की जो मुद्रा अपनाई गई वह शास्त्र के आदेशों के सर्वथा उपयुक्त है। शास्त्रीय आदेश हैं कि दिव्य विज्ञान समझने के लिए मनुष्य गुरु के पास विनीत भाव से पहुँचे। महाराज परीक्षित अब मृत्यु से मिलने के लिए उद्यत थे और सात दिनों की अल्प अवधि के पश्चात् वे भगवद्धाम में प्रवेश करने की विधि जानने ही वाले थे। ऐसे महत्त्वपूर्ण मामलों में मनुष्य को गुरु के समीप

पहुँचना पड़ता है। जब तक जीवन की समस्याओं का हल खोजने की आवश्यकता न हो तब तक गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। जिसे गुरु के समक्ष प्रश्न पूछने की तमीज न हो उसे गुरु के पास जाने की आवश्यकता है भी नहीं।

—*भागवत* ११.१९.३१

१०. भक्ति की कला सीखने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए

हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि गुरु के पास पहुँचे और उससे भक्ति की विधि सीखे

सर्व-देश-काल-दशाय जनेर कर्तव्य।
गुरु-पाशे सेइ भक्ति प्रष्टव्य श्रोतव्य॥

अनुवाद: "इसलिए हर व्यक्ति का-हर देश, हर स्थिति तथा सभी कालों में यह कर्तव्य है कि प्रामाणिक गुरु के पास जाए, उससे भक्तिविषयक प्रश्न करे तथा वह जो विधि बताए उसे वह सुने।"

—*चैतन्य चरितामृत मध्य* २५.१२२

मनुष्य को गुरु से भक्ति का प्रशिक्षण लेना चाहिए

भगवद्गीता में (७.१) भगवान् की संस्तुति है—*मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः*। इससे सूचित होता है कि मनुष्य को भक्त के निर्देशन में या सीधे भगवान् के निर्देशन में भक्ति करनी चाहिए। किन्तु गुरु के निर्देशन के बिना अपने आपको प्रशिक्षित कर पाना सम्भव नहीं है। अतएव श्रील रूप गोस्वामी के आदेशानुसार भक्त का प्रथम कर्तव्य है कि वह प्रामाणिक गुरु स्वीकार करे जो उसकी इन्द्रियों को भगवान् की दिव्य सेवा करने में लगा सके।

—*भागवत* ९.४.१८-२०

भक्ति के आदेशों को सीखने के लिए नवदीक्षित भक्त को उत्तम

कोटि के भागवत यानी भक्त के पास जाना चाहिए

तृतीय श्रेणी के भक्त को भक्ति सम्बन्धी आदेश *भागवत* के प्रामाणिक स्रोतों से प्राप्त करने होते हैं। पहला *भागवत* सुस्थापित भक्त है, दूसरा है *भागवतम्* जो कि ईश्वर का सन्देश है। अत: तृतीय श्रेणी के भक्त को भक्ति के आदेश प्राप्त करने के लिए चरित्रवान भक्त के पास जाना होता है। वह ऐसा कोई व्यवसायी व्यक्ति नहीं होता जो भागवत बाँच कर अपनी जीविका चलाता है। ऐसे भक्त को सत् गोस्वामी जैसा शुकदेव गोस्वामी का प्रतिनिधि होना चाहिए और उसे समस्त जनता के चतुर्दिक कल्याण के लिए भक्ति सम्प्रदाय का उपदेश देना चाहिए।

—*भागवत* १.२.१२

भक्ति समझने के लिए वैष्णव गुरु बनाकर उससे पूछना चाहिए

यदि कोई *श्रीमद्भागवत* का अर्थ जानना चाहता है तो उसे किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। किसी को गर्वित होकर यह नहीं सोचना चाहिए कि केवल पुस्तकें पढ़कर वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति को समझ लेगा। उसे किसी वैष्णव का सेवक बनना चाहिए। जैसा कि नरोत्तमदास ठाकुर ने पुष्ट किया है—*छाड़िया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—शुद्ध वैष्णव की श्रद्धापूर्वक सेवा किये बिना दिव्य पद को प्राप्त नहीं हुआ जाता। मनुष्य को वैष्णव गुरु बनाना चाहिए (*आदौ गुर्वाश्रयम्*) और तब प्रश्नोत्तर द्वारा क्रमश: सीखना चाहिए कि कृष्ण की शुद्धभक्ति क्या है। यह परम्परा प्रणाली कहलाती है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ७.५३

शुद्धभक्त की संगति करके तथा उसे गुरु बना करके किस तरह भक्ति की चरम सिद्धि तक पहुँचा जाता है

शुद्धभक्त का प्रभाव ऐसा होता है कि यदि कोई थोड़ी सी भी श्रद्धा से युक्त होकर उसकी संगति करता है तो उसे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* जैसे प्रामाणिक शास्त्रों से भगवान् के विषय में सुनने का अवसर प्राप्त

होता है। इस तरह जन-जन के हृदय में स्थित भगवान् की कृपा से मनुष्य को क्रमश: ऐसे प्रामाणिक शास्त्रों के वर्णनों में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। शुद्ध भक्तों के साथ संगति की यह पहली अवस्था है। कुछ प्रगत तथा परिपक्व होने पर दूसरी अवस्था में वह शुद्धभक्त के निर्देशन में भक्ति के सिद्धान्तों का पालन करने को स्वत: तैयार हो जाता है और उसे अपना गुरु मान लेता है। अगली अवस्था में गुरु के निर्देशन में भक्त साधन भक्ति करता है और ऐसे कार्यों के फलस्वरूप वह समस्त अवांछित वृत्तियों से मुक्त हो जाता है, उसकी श्रद्धा सुदृढ़ हो जाती है और उसमें भक्ति के लिए दिव्य रुचि उत्पन्न हो जाती है। तत्पश्चात् राग, फिर भाव और अन्त में विशुद्ध भगवत्प्रेम का विकास ये विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

चिन्तनपरक तर्क त्यागकर भक्त को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार विशिष्ट प्रकार की भक्ति में दक्ष गुरु का निर्देशन प्राप्त करना चाहिए

यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनाभावित कार्यों से कृष्ण के प्रति प्रेम उत्पन्न कर लेता है तो वह सत्य को जान सकता है, किन्तु जो व्यक्ति मात्र तर्कों के द्वारा ईश्वर को जानना चाहता है वह कभी सफल नहीं हो सकता, न ही उसे अनन्य भक्ति का स्वाद ही मिल सकता है। इसका रहस्य यह है कि उसे उन व्यक्तियों से विनीत भाव से श्रवण करना चाहिए जो ईशविज्ञान को भलीभाँति जानते हों और तब उसे शिक्षक द्वारा निर्देशित सेवाविधि चालू कर देनी चाहिए। ऐसा भक्त जो भगवान् के नाम, रूप, गुण आदि से पहले से ही आकृष्ट रहता है उसे चाहिए कि वह उसकी विशिष्ट भक्ति का दिशानिर्देशन कर दे। उसे चाहिए कि तर्क द्वारा भगवान् के पास पहुँचने में अपना समय न गवाँये। दक्ष गुरु भलीभाँति जानता है कि वह किस तरह अपने शिष्य की शक्ति को भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगाए। इस तरह वह अपने भक्त को उसकी विशिष्ट प्रवृत्ति के अनुसार विशिष्ट भक्ति में प्रवृत्त करता है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.३५

गुरु के निर्देशन में भक्तियोग का अभ्यास करने से ईश-प्रेम प्राप्त

किया जाता है

भक्तियोग के विधि-विधानों का अभ्यास करने के लिए मनुष्य को किसी पटु गुरु के मार्गदर्शन में कतिपय नियमों का यथा ब्राह्म मुहूर्त में जगना, स्नान करना, मन्दिर में जाना तथा प्रार्थना करना एवं हरे कृष्ण कीर्तन करना, फिर फूल चुनकर अर्चाविग्रह पर चढ़ाना, अर्चाविग्रह पर भोग चढ़ाने के लिए भोजन बनाना, प्रसाद ग्रहण करना आदि का पालन करना होता है। ऐसे अनेक विधि-विधान हैं जिनका पालन अत्यावश्यक है। मनुष्य को शुद्धभक्तों से नियमित रूप से *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* सुननी चाहिए। इस अभ्यास से कोई भी ईश्वर-प्रेम प्राप्त कर सकता है और तब भगवद्धाम उसका पहुँचना ध्रुव है। विधि-विधानों के अन्तर्गत गुरु के आदेशानुसार भक्तियोग का अभ्यास करके मनुष्य निश्चय ही भगवत्प्रेम की अवस्था को प्राप्त हो सकेगा।

—*भगवद्गीता* १२.९

कृष्ण को प्रसन्न करने के उद्देश्य से गुरु के निर्देशानुसार कार्य करना शुद्ध भक्ति है

बद्ध अवस्था में रह कर जब कोई भक्ति में प्रवृत्त होता है तो उसे पूर्णतया समर्पित होकर प्रामाणिक गुरु का आदेश मानना चाहिए। गुरु परमेश्वर का प्रकट प्रतिनिधि होता है, क्योंकि वह ईश्वर से आदेश प्राप्त करता है और उन्हें यथारूप में प्रस्तुत करता है क्योंकि वे गुरु-परम्परा में हैं। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि उसमें निहित उपदेशों को गुरु-परम्परा से प्राप्त किया जाय अन्यथा उसमें मिलावट रहती है। श्रीभगवान् को प्रसन्न रखने के ध्येय से प्रामाणिक गुरु के निर्देशन के अनुसार कर्म करना ही शुद्ध भक्ति है।

—*भागवत* ३.२९.८

नवदीक्षित को जीवन के चरम लक्ष्य को पाने के लिए गुरु के निर्देशानुसार

भक्ति में प्रशिक्षित होना चाहिए

अनुवाद: कुछ दिनों तक ही परम सत्य की सेवा से भक्त दृढ़ हो जाता है और उसकी बुद्धि मुझमें स्थिर हो जाती है। फलस्वरूप वह इस शोचनीय भौतिक जगत के त्यागने के बाद दिव्य लोक में मेरा पार्षद बनता है।

तात्पर्य: परम सत्य की सेवा करने का अर्थ है प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में भगवान् की सेवा करना, जो भगवान् तथा नवदीक्षित भक्त के बीच मध्यस्थ का काम करता है। नवदीक्षित भक्त में अपनी अपूर्ण भौतिक इन्द्रियों के बल पर भगवान् के पास तक जाने की शक्ति नहीं होती, अतएव प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में भगवान् की दिव्य सेवा का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस तरह के प्रशिक्षण से, भले ही वह कुछ दिनों का ही क्यों न हो, नवदीक्षित भक्त को ऐसी दिव्य सेवा की बुद्धि प्राप्त हो जाती है जिससे वह भौतिक लोक में निरन्तर वास करने से मुक्त हो जाता है और भगवद्धाम में भगवान् के मुक्त पार्षदों की संगति का लाभ उठा पाता है।

—*भागवत* १.६.२३

भक्ति की उन्नत अवस्था में मनुष्य विधि-विधानों को पार कर जाता है और अपने गुरु के माध्यम से कृष्ण की रागानुगा भक्ति में लगता है

बाहर से भक्त नवधा भक्ति के सभी अंगों श्रवण, कीर्तन आदि को सम्पन्न करता है और वह अपने मन में सदा कृष्ण के साथ अपने नित्य सम्बन्धों के विषय में सोचता है तथा वृन्दावन के भक्तों के पदचिह्नों का अनुसरण करता है। यदि कोई इस तरह से राधाकृष्ण की सेवा में अपने को लगाता है तो वह शास्त्रों द्वारा आदिष्ट कर्मकाण्ड को पार करके गुरु के माध्यम से कृष्ण की रागानुगा भक्ति में पूरी तरह से संलग्न होता है। इस तरह कृष्ण वस्तुत: ऐसे स्वत: स्फूर्त भावों के वशीभूत होते हैं और मनुष्य अन्तत: भगवान् की संगति प्राप्त कर सकता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २२.१६५

गुरु की शरण ग्रहण करने से शिष्य किस तरह आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करता है

मनुष्य का पहला काम है कि वह भगवान् की सेवा प्रारम्भ करने के लिए उनके प्रतिनिधि, गुरु, के पास पहुँचे। प्रह्लाद महाराज ने प्रस्ताव रखा कि छोटे बालक को (*कौमारं आचरेत प्राज्ञः*) प्रारम्भ से ही गुरुकुल में रहकर गुरु की सेवा करने की शिक्षा दी जाय। *ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो गुरोर्हितम्* (भागवत ७.१२.१)। यह आध्यात्मिक जीवन का सूत्रपात है। *गुरुपदाश्रयः साधुवर्त्मानुभवर्तनम् सद्धर्म पृच्छा*। गुरु तथा शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हुए शिष्य भक्ति प्राप्त करता है और सम्पत्ति से अनासक्त हो जाता है। उसके पास जो कुछ होता है, उसे वह अपने गुरु को अर्पित कर देता है जो उसे *श्रवणं कीर्तन विष्णोः* में प्रवृत्त करता है और शिष्य दृढ़तापूर्वक आज्ञापालन करके अपनी इन्द्रियों को वश में करना सीखता है। फिर शुद्ध बुद्धि का प्रयोग करके वह धीरे-धीरे भगवान् का प्रेमी बन जाता है जैसा कि श्रील रूपगोस्वामी ने पुष्ट किया है (*आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गः*)। इस प्रकार मनुष्य का जीवन पूर्ण बन जाता है और कृष्ण के प्रति उसकी आसक्ति प्रकट हो जाती है। इस अवस्था में वह आनन्द को प्राप्त होता है और *भाव* तथा *अनुभाव* की अनुभूति करता है।

—*भागवत* ७.७.३३

११. आध्यात्मिक जीवन में सफलता पाने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है

आध्यात्मिक जीवन में सफलता के लिए प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए

महाराज परीक्षित जैसे राजा को मार्गदर्शन के लिए गुरु की आवश्यकता थी। ऐसे गुरु के बिना आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर पाना सम्भव नहीं है। गुरु को प्रामाणिक होना चाहिए। जो आत्म-साक्षात्कार के लिए इच्छुक रहते हैं उन्हें वास्तविक सफलता प्राप्त करने के लिए प्रामाणिक

गुरु के पास पहुँचना चाहिए।

—*भागवत* १.१९.३

आध्यात्मिक जीवन के लिए गुरु अनिवार्य है

गुरु बनाने का सिद्धान्त नितान्त आवश्यक है। यहाँ तक कि जो भक्ति अंगीकार करता है उसके लिए भी अत्यावश्यक है। प्रामाणिक गुरु बनाने के बाद ही दिव्य जीवन की शुरुआत होती है। यहाँ पर भगवान् कृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि ज्ञान की यह विधि वास्तविक मार्ग है। इसके परे कोई भी चिन्तन कूड़ा है....प्रामाणिक गुरु के उपदेश के बिना कोई आध्यात्मिक विज्ञान में प्रगति नहीं कर सकता।

—*भगवद्गीता* १३.८

दिव्य ज्ञान में प्रगति करने के लिए मनुष्य को गुरु के पास पहुँचना चाहिए जो भगवान् का स्वरूपसिद्ध भक्त होता है

जिज्ञासु भक्त को सर्वप्रथम ऐसे गुरु के पास जाना चाहिए जो न केवल वैदिक वाङ्मय में दक्ष हो अपितु भगवान् तथा उनकी विभिन्न शक्तियों की वास्तविक अनुभूति से युक्त महान् भक्त भी हो। ऐसे भक्त गुरु की सहायता के बिना भगवान् के दिव्य विज्ञान में प्रगति नहीं की जा सकती।

—*भागवत* २.४.१०

सिद्धि प्राप्त होने के लिए मन तथा इन्द्रियों को वश में न कर सकने वाले सामान्य व्यक्ति को प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए

चूँकि सामान्य व्यक्ति अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में नहीं रख पाता इसलिए उसे महापुरुष या भगवान् के परम भक्त की शरण ढूँढनी चाहिए और उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे उसका जीवन पूर्ण हो सकेगा। मात्र अनुष्ठानों तथा धर्म के पालन से सामान्य व्यक्ति आत्मिक सिद्धि की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। उसे प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करनी होगी और उसके निर्देश में श्रद्धा तथा निष्ठा के साथ कार्य करना होगा। तभी वह सिद्धि प्राप्त कर सकेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

—*भागवत* ३.२२.६

आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए गुरु के पास जाए

अनुवाद: हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! कृपा करके मुझे भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा की पूर्ण विधि का उपदेश दें जिससे भगवान् मुझ पर तुरन्त ही प्रसन्न हो जायँ और मेरे पुत्रों सहित मुझे इस संकटपूर्ण स्थिति से उबार लें।

तात्पर्य: कभी-कभी अल्पज्ञ यह पूछते हैं कि क्या आध्यात्मिक उन्नति के लिए उन्हें गुरु के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए? इसका यहाँ उत्तर दिया गया है—यही क्यों *भगवद्गीता* में भी अर्जुन कृष्ण को अपना गुरु मानते हैं (*शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्*)। वेदों का भी यह उपदेश है—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—यदि कोई सचमुच आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का इच्छुक है तो उसे समुचित मार्गदर्शन के लिए गुरु बनाना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि मनुष्य को आचार्य की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वह भगवान् का प्रतिनिधि होता है (*आचार्यं मां विजानीयात्*)। मनुष्य को यह अवश्य समझ लेना चाहिए। *चैतन्य चरितामृत* में कहा गया है कि गुरु भगवान् की अभिव्यक्ति होता है। अतएव शास्त्रों में प्राप्य प्रमाणों तथा भक्तों के आचरण के आधार पर मनुष्य को गुरु बनाना चाहिए। अदिति ने अपने पति को अपना गुरु मान लिया जिससे वे उसका मार्गदर्शन कर सकें कि किस तरह भगवान् की पूजा करके आध्यात्मिक चेतना या भक्ति में प्रगति करनी चाहिए।

—*भागवत ८.१६.२३*

मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन में आने वाले सभी अपराधों से तभी छुटकारा मिल सकता है और वह आनन्दमय जीवन को प्राप्त कर सकता है जब उसका मन पूरी तरह गुरु के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ले

श्रीपाद श्रीधर स्वामी ने एक सुन्दर श्लोक रचा है जिसमें वे कहते हैं "सर्वदयामय गुरु, हे भगवान् के प्रतिनिधि! कब मेरा मन आपके चरणों में पूरी तरह समर्पित हो सकेगा? तब आपकी कृपा से मैं आध्यात्मिक

जीवन के सारे अवरोधों से छुटकारा पा सकूँगा और आनन्दमय जीवन को प्राप्त कर सकूँगा।''

—*लीला पुरुषोत्तम कृष्ण*

जो व्यक्ति गर्व वश गुरु नहीं बनाता वह कभी भी ईश्वर के पास वापस नहीं जा सकता

यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जो व्यक्ति गुरु बनाने तथा दीक्षित होने में आनाकानी करता है वह भगवद्धाम वापस जाने में अवश्य ही भरमा जाएगा। समुचित ढंग से दीक्षा न पाने वाला व्यक्ति भले ही अपने को महान भक्त के रूप में प्रस्तुत करता फिरे किन्तु वास्तव में उसे आध्यात्मिक साक्षात्कार के मार्ग में प्रगति करने में अनेक बाधाएँ आएँगी जिसके कारण उसे इस संसार से छुटकारा नहीं मिल सकता। ऐसे असहाय व्यक्ति की तुलना पतवाररहित जहाज से की जाती है, क्योंकि ऐसा जहाज कभी अपने गन्तव्य तक नहीं पहुँच पाता। अतएव यह आवश्यक है कि यदि कोई भगवान् की सेवा करने का आकांक्षी है तो उसे गुरुमुख होना चाहिए। गुरु की सेवा अनिवार्य है। यदि भक्त को अपने गुरु की प्रत्यक्ष सेवा करने का अवसर मिल पाये तो उसे चाहिए कि वह गुरु के उपदेशों का स्मरण करके उसकी सेवा करें। गुरु के उपदेशों तथा साक्षात् गुरु में कोई अन्तर नहीं है। अतएव उसकी अनुपस्थिति में उनके निर्देश-वचन ही शिष्य के लिए गर्व का विषय होना चाहिए। यदि कोई यह सोचता है कि उसे किसी तरह से, यहाँ तक कि गुरु से सलाह लेने की आवश्यकता नहीं है तो वह भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराधी है। ऐसा अपराधी कभी भी भगवान् के पास वापस नहीं जा सकता।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.३५

आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य समझने के लिए साधु, शास्त्र तथा गुरु के सन्दर्भ से कर्म करना चाहिए

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर की सलाह है—*साधु शास्त्र गुरु वाक्य, हृदये करिया ऐक्य*—अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि आध्यात्मिक जीवन के असली उद्देश्य

को समझने के लिए साधु, शास्त्र तथा गुरु के उपदेशों को माने। न तो साधु (या वैष्णव) न प्रामाणिक गुरु ऐसी कोई बात कहता है जो शास्त्रों की परिधि में न हो। इस तरह शास्त्रों के वचन प्रामाणिक गुरु तथा साधुओं के वचनों के ही अनुरूप होते हैं। अतएव ज्ञान के इन तीन महत्त्वपूर्ण स्रोतों के अनुसार ही आचरण करे।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.४८

१२. कृष्ण भावनामृत तक पहुँचने के लिए गुरुमुख होना चाहिए

कृष्णभावनामृत प्राप्त करने के लिए गुरु बनाना आवश्यक

मनुष्य को अपने पूर्वकर्मों के लिए पश्चात्ताप करके अपनी कृष्ण-भक्ति जागृत करनी होती है। ऐसा करने के लिए गुरु के पादपद्मों का स्पर्श करना चाहिए। स्वतः प्रयास से कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतः मनुष्य को चाहिए कि स्वरूपसिद्ध कृष्णभक्त के पास पहुँच कर उसके चरणकमलों का स्पर्श करे।...जब तक मनुष्य ऐसे व्यक्ति के चरणकमल की धूल को अपने मस्तक पर धारण नहीं करता जो महात्मा या भक्त है तब तक उसका कृष्ण-भक्ति के द्वार तक प्रवेश नहीं होता। यह आत्मसमर्पण का शुभारम्भ है। भगवान् कृष्ण चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उनकी शरण में आए और आत्मसमर्पण का कार्य तब शुरू होता है जब मनुष्य प्रामाणिक गुरु के चरण स्पर्श करता है। निष्ठापूर्वक गुरु की सेवा करने से ही कृष्ण-भक्तिमय जीवन का शुभारम्भ होता है। गुरु के चरणस्पर्श करने का अर्थ है गर्व का त्याग और संसार में अपने पद पर न फूलना। जो लोग अपने उच्च स्थान के कारण वृथा ही गर्वित रहते हैं—यथा वैज्ञानिक विचारक—वे वास्तव में नास्तिक हैं। वे प्रत्येक वस्तु के चरम कारण को नहीं जानते। यद्यपि वे मोहग्रस्त रहते हैं, किन्तु वे ऐसे व्यक्ति के चरणकमलों में आत्मसमर्पण करने में हिचकते हैं जो वस्तुओं को उनके सही सही रूप में जानता है। दूसरे शब्दों में, केवल ज्ञान से कृष्णभक्ति जागरित नहीं की जा सकती। मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण में जाना ही होगा। इसी विधि से

उसे सहायता मिल सकती है।

—*भागवत* ४.२६.२०

गुरु की संगति के अनुपात में ही कृष्णभावनामृत विकसित किया जाता है

मनुष्य जीवन में चेतना विकसित होने से मनुष्य अपने कर्मों से (*क्रियाफलत्वेन*) तमो तथा रजो गुणों को लाँघ कर सतो गुण को प्राप्त कर सकता है। वेदोंका (*मुण्डकोपनिषद* १.२.१२) आदेश है—*तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्*—जीवन की पूर्णता प्राप्त करने या जीवात्मा की वास्तविक स्वाभाविक स्थिति समझने के लिए मनुष्य को गुरु के पास जाना चाहिए—*गुरुमेवाभिगच्छेत्*। यह तो अनिवार्य है। इसमें किसी प्रकार की छूट नहीं है। इसका भाव यही है कि मनुष्य को गुरु के पास जाना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की संगति से भगवान् के प्रति चेतना जागरित होती रहती है।

—*भागवत* ४.२९.३५

पाप से मुक्त होना तथा अपनी आदि कृष्णचेतना को पुनर्जीवित करने के लिए मनुष्य को महात्मा गुरु की सेवा करनी चाहिए

अनुवाद: हे राजन! यदि कोई पापी प्राणी प्रभु के किसी प्रामाणिक भक्त की सेवा में लग जाता है और इस प्रकार अपना जीवन भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में निछावर कर देता है तो वह तुरन्त शुचिता-सम्पन्न हो सकता है। केवल तपश्चर्या, कठोर साधना, ब्रह्मचर्य तथा प्रायश्चित्त के अन्य साधनों द्वारा जिनका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ, कोई पापी पवित्र नहीं बन सकता।

तात्पर्य: *तत्पुरुष* से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जो कृष्ण भक्ति का प्रचार करता है जैसे कि गुरु। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने कहा है—*छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पायेछे केबा*—बिना किसी प्रामाणिक गुरु या आदर्श वैष्णव की सेवा किये, माया के पंजे से किसका छुटकारा हो सकता है? *श्रीमद्भागवत* में (५.५.२.) कहा गया है—*महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः*—यदि कोई प्राणि माया के पंजे से मुक्त होना चाहता है तो उसे किसी शुद्ध

भक्त महात्मा का संग करना चाहिए। महात्मा वह है जो चौबीसों घण्टे प्रभु की प्रेमाभक्ति में लीन रहता है।...इस प्रकार महात्मा का लक्षण यह है कि उसके पास कृष्ण सेवा के अतिरिक्त और कोई काम नहीं रहता। पापपूर्ण कर्मों से छुटकारा पाने के लिए तथा किस प्रकार कृष्ण से भक्ति जागरित करने के लिए किस प्रकार कृष्ण से प्रेम करना चाहिए इसका प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए प्राणि को किसी वैष्णव की सेवा करनी चाहिए। यह महात्मा सेवा का फल है। सचमुच यदि कोई किसी विमल भक्त की सेवा में लग जाता है तो उसके सारे पाप स्वतः समाप्त हो जाते हैं। भक्तियोग हमारे महत्त्वहीन पापपुंज को भगाने के लिए उतना आवश्यक नहीं है जितना यह हमारे भीतर प्रसुप्त कृष्णभक्ति को जगाने के लिए आवश्यक है। जैसे कुहरा सूर्यप्रकाश की प्रथम झलक से ही विनष्ट हो जाता है उसी प्रकार प्राणि के पापपुंज जैसे ही वह किसी शुद्ध भक्त की सेवा में लीन होता है, वैसे ही तत्काल तिरोहित हो जाते हैं। उसे अलग से किसी अन्य प्रयत्न की आवश्यकता नहीं रह जाती।

—*भागवत* ६.१.१६

भगवान् से आसक्ति बढ़ाने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास पहुँच कर भक्तियोग के विषय में उससे पूछताछ करनी चाहिए

भक्तिकार्य में पहली बात है—*आदौ गुर्वाश्रयम्*—मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु बनावे और उससे दिव्य धर्मों के विषय में पूछताछ करे (*सद्धर्म-पृच्छा*)। फिर साधु पुरुषों तथा भक्तों के पदचिह्नों का अनुगमन करे (*साधु-मार्ग-अनुगमन*)। रूपगोस्वामी कृत *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में ये आदेश दिये गये हैं।

निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् के प्रति अनुरक्ति बढ़ाने के लिए पहले प्रामाणिक गुरु बनाना होता है और उससे भक्ति की विधियाँ सीखनी होती हैं तथा भगवान् के दिव्य सन्देश एवं महिमा के विषय में सुनना होता है। इस प्रकार मनुष्य को भक्ति के विषय में अपना निश्चय करना होता है। तभी भगवान् के प्रति अनुरक्ति बढ़ सकती है।

—*भागवत* ४.२२.२२

भगवद्भक्तों की सेवा मनुष्य को दुखमय संसार से छुड़ाती है और भगवत्प्रेम प्रदान करती है

श्रीमद्भागवत में (३.७.१९) कहा गया है "मुझे भक्तों का निष्ठावान् दास बनने दें, क्योंकि उनकी सेवा करने से मनुष्य भगवान् के चरणकमलों की विशुद्ध भक्ति प्राप्त करता है। भक्तों की सेवा समस्त दुखमय भौतिक दशाओं को कम करती है और मनुष्य के भीतर भगवान् के प्रति गहन भक्तिमय प्रेम उत्पन्न करती है।"

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

गुरु के आदेशों का पालन करने से शिष्य किस तरह कृष्णभावनामृत को प्राप्त होता है

ज्यों ज्यों कोई भक्तिकार्यों में प्रगति करता जाता है त्यो-त्यों यह विधि अधिकाधिक स्पष्ट एवं प्रेरणादायी होती जाती है। जब तक मनुष्य को गुरु के उपदेशों के पालन से यह आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त नहीं हो पाती, तब तक प्रगति कर पाना सम्भव नहीं होता। अतएव इन उपदेशों के पालन के लिए रुचि का विकास ही किसी की भक्ति की परीक्षा है। प्रारम्भ में योग्य गुरु से भक्ति विज्ञान के श्रवण द्वारा आत्मविश्वास उत्पन्न करना चाहिए। तत्पश्चात् ज्योंही वह भक्तों की संगति करता है और गुरु द्वारा बताये गये साधनों को ग्रहण करने की चेष्टा करता है त्योंही भक्ति करने के उसके सारे सन्देह तथा अन्य अवरोध दूर हो जाते हैं। ज्यों ज्यों वह भगवान् के सन्देशों का श्रवण करता है त्यों त्यों भगवान् की दिव्य सेवा के प्रति प्रबल अनुरक्ति उत्पन्न होती है और यदि वह इस प्रकार से दृढ़भाव से आगे बढता है तो उसे निश्चित रूप से रागानुग (स्वत:स्फूर्त) प्रेम प्राप्त होता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.६०

जो व्यक्ति भगवान् के दास गुरु के निर्देशानुसार भगवान् की शरण

लेता है वह तुरन्त ही शुद्ध होकर भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है

यदि कोई निष्ठापूर्वक भगवान् के चरणकमलों को स्वीकार करता है तो वह भगवान् तथा भगवान् के दास की कृपा से शुद्ध हो जाता है...जो भगवान् के दास अर्थात् गुरु के प्रयास से भगवान् के चरणों का आश्रय लेता है वह भले ही निम्न कुल में क्यों न जन्मा हो तुरन्त शुद्ध हो जाता है। वह स्वर्ग जाने का पात्र बन जाता है।

—*भागवत* ४.३०.४१

१३. प्रामाणिक गुरु बनाने के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण कारण

असली सुख चाहने वाले व्यक्ति को प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में महाराज निमि से प्रबुद्ध कहते हैं "हे राजन! आप इसे निश्चित समझें कि भौतिक जगत में सुख नहीं है। यह सोचना भूल होगी कि यहाँ सुख है, क्योंकि यह स्थान केवल दुख से परिपूर्ण है। जो भी व्यक्ति असली सुख पाने का इच्छुक हो उसे प्रामाणिक गुरु खोजना चाहिए और दीक्षा द्वारा उसकी शरण लेनी चाहिए।"

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

लाखों जीवों में से एक को प्रामाणिक गुरु का संग प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

अनुवाद: "सारे जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में घूम रहे हैं। इनमें से कुछ उच्चलोकों को जाते हैं और कुछ निम्नलोकों

को। घूम रहे करोड़ों जीवों में से कोई एक भाग्यशाली होता है जिसे कृष्ण-कृपा से गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसा व्यक्ति भक्तिरूपीलता के बीज को प्राप्त करता है।''

तात्पर्य : जब हम ब्रह्माण्ड कहते हैं तो हमारा आशय समूचे ब्रह्माण्ड या करोड़ों ब्रह्माण्डों के पुंज से होता है। सारे ब्रह्माण्डों में असंख्य लोक होते हैं और इन लोकों में जल तथा वायु में असंख्य लोग रहते हैं। करोड़ों तथा अरबों लोग सभी जगह हैं और ये सभी माया के द्वारा जन्म-जन्मान्तर अपने कर्मफलों को भोगते रहते हैं। यह तो भौतिक रूप से बद्धजीवों की स्थिति है। यदि इन असंख्य जीवों में से कोई भाग्यवान होता है तो वह कृष्ण की कृपा से गुरु के सम्पर्क में आता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १९.१५१

योग में स्थित होकर कर्म करने के लिए कृष्ण के दास की शरण जाना होता है

अनुवाद : हे अर्जुन! योग में समभाव बनो। अपना कर्म करो और सफलता या असफलता की समस्त आसक्ति त्याग दो। मन की ऐसी समता योग कहलाती है।

तात्पर्य : कृष्ण के निर्देश का पालन ही वास्तविक योग है और इसका अभ्यास कृष्णभावनामृत नामक विधि द्वारा किया जाता है। एकमात्र कृष्णभावनामृत के द्वारा स्वामित्व का भाव त्यागा जा सकता है। इसके लिए उसे कृष्ण का दास या उनके दासों का दास बनना होता है। कृष्णभावनामृत में कर्म करने की यही एक विधि है जिससे योग में स्थित होकर कर्म किया जा सकता है।

—*भगवद्गीता* २.४८

गुरु वह है जो सारे भ्रम को दूर कर दे

श्रील प्रभुपाद :—जीव की भ्रमित अवस्था में मनुष्य को अन्य व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो पदार्थ से पूर्ण अवगत हो। आप कानूनी समस्याओं

को हल करने के लिए वकील के पास जाते हैं और स्वास्थ्य विषयक समस्याओं के लिए वैद्य के पास जाते हैं। भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक पहचान के विषय में भ्रमित है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि प्रामाणिक गुरु के पास पहुँचें जो हमें असली ज्ञान प्रदान कर सकता है।

श्री ओ ग्रैडी : मैं भ्रमित हूँ।

श्रील प्रभुपाद : अतएव आप गुरु के पास पहुँचें।

श्री ओ ग्रैडी : और मुझे इस भ्रम को रोकने में वे मेरी किस तरह सहायता करें, इसका निर्णय करते हैं?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, गुरु वह है जो सारे भ्रम को दूर करता है। यदि गुरु अपने शिष्य को भ्रम से नहीं बचा सकता तो वह गुरु नहीं। यही परीक्षा है।

संसार दावानललीढलोकत्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याणगुणार्णवस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

यह सारा भ्रमित जगत प्रचण्ड दावाग्नि के तुल्य है। दावाग्नि में सारे पशु भ्रमित हैं। वे नहीं जानते कि जीवन की रक्षा करने के लिए किधर जायँ। भौतिक जगत् की प्रज्ज्वलित अग्नि में सभी लोग भ्रमित हैं। तो प्रचण्ड दावाग्नि को कैसे बुझाया जा सकता है? न तो मनुष्यनिर्मित अग्निशामक का प्रयोग करना सम्भव है, न ही बाल्टी भर भर कर जल से ही बुझाना सम्भव है। इसका हल तब मिलता है जब बादल से दावाग्नि पर वर्षा होती है। तभी अग्नि बुझाई जा सकती है। वह शक्ति आपके हाथों में नहीं अपितु ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। अतः मानव-समाज भ्रमित अवस्था में है और वह कोई हल नहीं खोज पाता। गुरु ऐसा व्यक्ति है जिसे ईश्वर कृपा प्राप्त है और वह भ्रमित मनुष्य को हल प्रदान कर सकता है। जिसे ईश्वर कृपा मिल चुकी है वह गुरु बन सकता है और अन्यों को वह कृपा प्रदान कर सकता है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

भगवान् की प्रेमाभक्ति करते हैं। श्रीनारद मुनि ने प्रामाणिक गुरुओं से सम्पर्क किया था, उनकी निष्ठापूर्वक सेवा की थी और उनसे समुचित आलोक प्राप्त किया था। अत: वे ध्यान करने बैठ गये।

—*भागवत* १.६.१५

भाग २

गुरु महाराज

१.गुरु तथा आचार्य की परिभाषा

गुरु का अर्थ

गुरु उसका द्योतक है जो वैदिक आदेशों के प्रमाण के अन्तर्गत तथा महापुरुषों के जीवनों के दृष्टान्तों के अनुसार उचित निर्देशन करता है।

—*भागवत ४.२१.२८-२९*

गुरु महाराज की परिभाषा

य़ाँहा हइते कृष्ण-भक्ति सेइ गुरु हय

अनुवाद: "जो व्यक्ति कृष्ण भक्ति जागृत कर लेता है वह निश्चय ही गुरु होता है।"

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य १६.६५*

गुरु की परिभाषा

कहा गया है—

ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

"मैं अज्ञान के गहन अन्धकार में उत्पन्न हुआ और मेरे गुरु ने ज्ञान के प्रकाश से मेरी आँखें खोलीं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।" इससे गुरु की परिभाषा प्राप्त होती है। प्रत्येक व्यक्ति अविद्या के अंधकार में है अतः हर एक को दिव्य ज्ञान से प्रकाशित होने की आवश्यकता है। सच्चा गुरु वही है जो अपने शिष्य को प्रकाश प्रदान करके इस संसार के अविद्या-जनित गहन अन्धकार से उबार लेता है।

—*भागवत ६.१५.१६*

गुरु का अर्थ है "ज्ञान से भारी"

शरीर रूपी मशीन के लिए विविध योग प्रणालियाँ दी गई हैं, किन्तु

भक्तियोग यान्त्रिक प्रबन्धों से परे है। इसीलिए यह *तद्विज्ञान*—भौतिक ज्ञान से परे कहलाता है। यदि कोई सचमुच ही आध्यात्मिक जीवन तथा आध्यात्मिक ज्ञान को समझना चाहता है तो उसे गुरु के पास जाना होता है। गुरु शब्द का अर्थ है "भारी" यानी "ज्ञान से भारी"। और वह ज्ञान क्या है? *तद्विज्ञान*। वह गुरुता *ब्रह्मनिष्ठा*—ब्रह्म तथा परब्रह्म भगवान् के प्रति आसक्ति है। यही गुरु की योग्यता है।

—*श्री कपिलदेव की शिक्षाएँ* ३२-३३

आचार्य की परिभाषा

वायु पुराण में आचार्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है "वह जो समस्त वैदिक साहित्य के सार को जाने, वेदों के अभिप्राय की व्याख्या करे, उनके विधि-विधानों का पालन करे और अपने शिष्यों को उसी तरह से कर्म करने की शिक्षा दे।"

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.४६

२.गुरु की पहचान

गुरु कृष्ण का स्वरूप है (अतएव उसे सामान्य व्यक्ति नहीं मानना चाहिए)

भगवान् का प्रतिनिधि गुरु से अभिन्न होता है

अनुवाद: ..जो वस्तुतः प्रामाणिक गुरु है अर्थात् कृष्ण का प्रतिनिधि है वह कृष्ण से अभिन्न होता है।

तात्पर्य: श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*साक्षाद् धरित्वेन समस्त शास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः*। हर शास्त्र में गुरु को परमेश्वर का प्रतिनिधि कहा गया है। गुरु को भगवान् से अभिन्न समझा जाता है, क्योंकि वह भगवान् का परम विश्वास-पात्र दास होता है (*किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य*)।...(शुद्धभक्त गुरु) को समझना चाहिए कि साक्षात् भगवान्

उपस्थित हैं।...प्रामाणिक गुरु से परामर्श करने का अर्थ है साक्षात् भगवान् से परामर्श करना। अतः मनुष्य को ऐसे गुरु की शरण लेनी चाहिए। जीवन की सफलता का अर्थ है ऐसा गुरु बनाना जो कृष्ण को एकमात्र परम प्रिय मानता है। मनुष्य को भगवान् के ऐसे विश्वस्त भक्त की पूजा करनी चाहिए।

—*भागवत ४.२९.५१*

शिष्य को चाहिए कि अपने गुरु को कृष्ण का व्यक्त प्रतिनिधि माने

गुरु कृष्ण-कृपा हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्त-गणे।

अनुवाद: समस्त शास्त्रों के सुविचारित मत के अनुसार गुरु कृष्ण से अभिन्न होता है। भगवान् कृष्ण गुरु के रूप में भक्तों का उद्धार करते हैं।

तात्पर्य: शिष्य और गुरु का सम्बन्ध वैसा ही होता है जैसा कि भगवान् के साथ उसका सम्बन्ध। गुरु अपने को सदैव भगवान् का सबसे विनीत दास कह कर प्रस्तुत करता है, किन्तु शिष्य को चाहिए कि वह उसे भगवान् के व्यक्त प्रतिनिधि के रूप में देखे।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि १.४५*

भगवान् तथा दीक्षा एवं शिक्षा गुरुओं में कोई अन्तर नहीं होता

शिक्षा गुरु के त' जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्त-श्रेष्ठ—एइ दुइ रूप॥

अनुवाद: शिक्षा गुरु को परमात्मा रूप में सर्वश्रेष्ठ भगवद्भक्त के रूप में प्रकट करते हैं।

तात्पर्य: श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि शिक्षा गुरु कृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। श्रीकृष्ण स्वयं हम सबों को भीतर से और बाहर से गुरु रूप में शिक्षा देते रहते हैं। भीतर से वे हमारे नित्य संगी परमात्मा के रूप में शिक्षा देते हैं।...परमेश्वर ही हमारे एकमात्र आश्रय हैं और जो व्यक्ति यह शिक्षा देता है कि कृष्ण तक किस प्रकार पहुँचा जाय वह भगवान् का कार्यकारी रूप होता है। आश्रयदाता (शरणदाता)

भगवान् तथा दीक्षा और शिक्षा गुरुओं में कोई भेद नहीं होता। यदि कोई मूर्खतावश उनमें अन्तर करता है तो वह भक्ति-साधना में अपराध करता है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.४७

शिष्य को चाहिए कि गुरु को भगवान् तथा परमात्मा के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करे

[*श्रीमद्भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध में] प्रबुद्ध मुनि राजा निमि से इस प्रकार कहते रहे, "हे राजन! शिष्य द्वारा गुरु को न केवल गुरु रूप में अपितु भगवान् तथा परमात्मा के प्रतिनिधि रूप में भी स्वीकार करना होता है। दूसरे शब्दों में, शिष्य को चाहिए कि गुरु को ईश्वर रूप माने, क्योंकि वह कृष्ण की बाह्य अभिव्यक्ति होता है।" इसकी पुष्टि प्रत्येक शास्त्र द्वारा होती है और शिष्य को चाहिए कि गुरु को इसी रूप में स्वीकार करे।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

कृष्ण उपदेश देते हैं कि गुरु को साक्षात् उन्हें ही माना जाय और उससे ईर्ष्या न की जाय

श्रीमद्भागवत में (११.१७.२९) भगवान् कृष्ण ने कहा है "हे उद्धव! गुरु को न केवल मेरा प्रतिनिधि अपितु साक्षात् मुझे ही स्वीकार करना चाहिए। उसे कभी सामान्य मानव के समान-स्तर पर नहीं माना जाना चाहिए। गुरु से किसी को ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए जैसा कि कोई सामान्य व्यक्ति से करता है। गुरु को सदा ही भगवान् के प्रतिनिधि के रूप में देखना चाहिए और गुरु की सेवा करके वह सारे देवताओं की सेवा करने में सक्षम होता है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

गुरु भगवान् की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होता है इसलिए वह कृष्ण से अभिन्न होता है

अनुवाद: यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे गुरु श्रीचैतन्य के सेवक हैं, किन्तु मैं उन्हें भगवान् के स्वांश के रूप में भी जानता हूँ।

तात्पर्य: हर जीव अनिवार्यतः भगवान् का दास है और गुरु भी उनके दास हैं तो भी गुरु भगवान् की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होता है। इस संकल्प से शिष्य कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ सकता है। गुरु कृष्ण से अभिन्न होता है, क्योंकि वह कृष्ण की अभिव्यक्ति होता है।

—*चैतन्य चरितामृत* आदि १.४४

गुरून् (गुरु जन) परम सत्य के छह तत्त्वों में से एक

अनुवाद: मैं गुरुओं, भगवद्भक्तों, ईश्वर के अवतारों, उनके स्वांशों, उनकी शक्तियों तथा साक्षात् आदि भगवान् श्री कृष्ण चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य: [कृष्ण दास कविराज गोस्वामी] परम सत्य के छः तत्त्वों को सादर नमस्कार करते हैं...*तत्प्रकाशान्* भगवान् के प्रत्यक्ष स्वरूप नित्यानन्द प्रभु तथा दीक्षा गुरु का सूचक है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.४४

भगवान् एक ही समय गुरु में प्रविष्ट हुए रहते हैं और नहीं भी

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम्।
भूतैः स्वधामभिः पश्येद् अप्रविष्टं प्रविष्टवत्॥

अनुवाद: मनुष्य को इसकी अनुभूति करनी चाहिए कि भगवान् विष्णु एक ही साथ अग्नि, गुरु, आत्मा तथा समस्त जीवों में सभी परिस्थितियों में प्रविष्ट हैं और नहीं भी हैं। वे प्रत्येक वस्तु में पूर्ण नियामक के रूप में बाह्य तथा आन्तरिक रूप से स्थित हैं।

—*भागवत* ७.१२.१५

गुरु की शरण जाने तथा उसे नमस्कार करने से मनुष्य ईश्वर की शरण जाता है और उन्हें नमस्कार करता है

गुरु कृष्ण का प्रतिनिधि है, पूर्व आचार्यों का प्रतिनिधि है। कृष्ण कहते हैं कि सभी आचार्य उनके प्रतिनिधि हैं। इसलिए गुरु को वही सम्मान दिया जाना चाहिए जो ईश्वर को दिया जाता है। जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अपनी गुरु-स्तुति में कहते हैं—*यस्य प्रसादाद्*

भगवत्प्रसाद:—गुरु की कृपा से मनुष्य कृष्ण का आशीर्वाद प्राप्त करता है। इस प्रकार यदि हम प्रामाणिक गुरु की शरण लेते हैं तो हम ईश्वर की शरण लेते हैं। ईश्वर हमारी गुरु-शरणागति को स्वीकार करते हैं।

भगवद्गीता में (१८.६६) कृष्ण उपदेश देते हैं..."सारे धर्मों को त्याग दो और मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापकर्मों से उबार लूँगा। डरो मत।" कोई तर्क कर सकता है "कृष्ण हैं कहाँ? मैं उनकी शरण लूँगा।" किन्तु ऐसा नहीं है। इसकी विधि है कि हम पहले कृष्ण के प्रतिनिधि की शरण लें; तब हम कृष्ण की शरण लें। इसलिए कहा गया है—*साक्षाद्-धरित्वेन समस्त शास्त्रै:*—गुरु ईश्वर तुल्य है। जब हम गुरु को नमस्कार करते हैं तो हम ईश्वर को नमस्कार करते हैं। चूँकि हम ईशभावनाभावित होना चाहते हैं अतएव आवश्यक है कि हम ईश्वर के प्रतिनिधि के माध्यम से ईश्वर को नमस्कार करना सीखें। सारे शास्त्रों में गुरु को ईश्वर तुल्य बताया गया है, किन्तु गुरु कभी यह नहीं कहता "मैं ईश्वर हूँ।" शिष्य का धर्म है कि यह गुरु को उसी तरह नमस्कार करे जिस प्रकार वह ईश्वर को नमस्कार करता है, किन्तु गुरु कभी यह नहीं सोचता "मेरे शिष्य गण मुझे उसी तरह नमस्कार करते हैं जिस तरह वे ईश्वर को नमस्कार करते हैं इसलिए मैं ईश्वर बन गया हूँ।" ज्योंही वह ऐसा सोचता है वह ईश्वर न रहकर कुत्ता बन जाता है। इसलिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*किन्तु प्रभोर्य: प्रिय एव तस्य*। चूँकि वह ईश्वर का अत्यन्त विश्वस्त सेवक होता है अतएव गुरु को वही सम्मान दिया जाता है जो हम ईश्वर को देते हैं। ईश्वर ईश्वर होता है और गुरु गुरु होता है। शिष्टाचार के नाते ईश्वर पूज्य ईश्वर है और गुरु पूजक ईश्वर (*सेवक भगवान्*) होता है। अतएव गुरु को *प्रभुपाद* कहकर सम्बोधित किया जाता है। *प्रभु* का अर्थ है "स्वामी" तथा *पाद* का अर्थ है "पद"। इसतरह प्रभुपाद का अर्थ है "जिसने स्वामी का पद पा लिया है।"

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु जो ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ होता है भगवान् के तुल्य है

अनुवाद: हे राजा! सभी पुरुषों में योग्य ब्राह्मण को इस संसार में सर्वोत्तम

मानना चाहिए, क्योंकि वह तपस्या, वैदिक अध्ययन तथा संतोष द्वारा भगवान् का प्रतिरूप बन जाता है।

तात्पर्य: हमें वेदों से पता चलता है कि भगवान् परम पुरुष हैं। प्रत्येक जीव भी पुरुष है और भगवान् कृष्ण परम पुरुष हैं। वैदिक ज्ञान में पटु तथा दिव्य विषयों में पारंगत ब्राह्मण भगवान् का प्रतिनिधि होता है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह ब्राह्मण या वैष्णव की पूजा करे। वैष्णव ब्राह्मण से श्रेष्ठ होता है, क्योंकि ब्राह्मण इतना ही जानता है कि वह ब्रह्म है पदार्थ नहीं, किन्तु वैष्णव यह जानता है कि वह न केवल ब्रह्म है, अपितु परब्रह्म का नित्य दास भी है। अतएव वैष्णव की पूजा मन्दिर में की जाने वाली अर्चाविग्रह की पूजा से श्रेष्ठ होती है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*साक्षात् धरित्वेन समस्तशास्त्रै:*—सारे शास्त्रों में गुरु को भगवान् के समान माना जाता है जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ या श्रेष्ठ वैष्णव होता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णव अपने को ईश्वर मानता है, क्योंकि यह अपराध है। यद्यपि ब्राह्मण या वैष्णव को भगवान् के ही समान प्राणी माना जाता है, किन्तु ऐसा भक्त भगवान् का आज्ञाकारी दास बना रहता है और कभी भी उस प्रतिष्ठा का भोग नहीं करना चाहता जो उसे भगवान् का प्रतिनिधि होने के कारण प्राप्त रहती है।

—*भागवत* ७.१४.४१

गुरु आश्रय विग्रह कहलाता है

महती कृपावश ही भगवान् गुरु के रूप में प्रकट होते हैं। अतएव आचार्य के आचरण में भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के कार्यकलाप आते हैं। वह सेवक रूप में भगवान् होता है। ऐसा स्थायी भक्त जो *आश्रय-विग्रह* कहलाता है, अर्थात् शरण लेने योग्य ईश्वर का स्वरूप होता है उसकी शरण ग्रहण करनी श्रेयस्कर है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.४६

मनुष्य को चाहिए कि ईश्वर के दासों का आदर ईश्वर के ही समान करे और उनकी सेवा करे

जो भक्त भगवद्धाम जाने के इच्छुक हैं उन्हें चाहिए कि भगवान् के

दासों को भगवान् के रूप में मानें। भगवान् के ऐसे भक्त *महात्मा* या *तीर्थ* कहलाते हैं और वे देश-काल के अनुसार उपदेश देते है। वे लोगों को भगवद्भक्त बनने के लिए प्रेरित करते हैं।...ईश्वर के दास ईश्वर चेतना का प्रसार करने आते हैं। बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि उनके साथ सब तरह से सहयोग करें। भगवान् अपनी सेवा से उतना प्रसन्न नहीं होते जितना कि अपने दास की सेवा किए जाने से। वे तब अत्यधिक प्रसन्न होते हैं जब यह देखते हैं कि उनके भक्तों का समुचित आदर हो रहा है, क्योंकि उनकी सेवा के लिए सभी प्रकार के कष्ट उठाते हैं, अतः उन्हें प्रिय हैं।

—*भागवत* १.२.१६

भगवान् से गुरु की एकात्मता होती है, क्योंकि वह भगवान् को अत्यन्त प्रिय होता है

प्रामाणिक गुरु अपने को सदैव भगवान् की अनन्य भक्ति में प्रवृत्त करता है। इसी परीक्षा के द्वारा यह भगवान् का प्रत्यक्ष स्वरूप तथा श्री नित्यानन्द प्रभु का असली प्रतिनिधि माना जाता है।...असली वैदिक दर्शन तो *अचिन्त्य भेदाभेदतत्त्व* है जो यह स्थापित करता है कि हर वस्तु भगवान् से एक होकर भी भिन्न होती है। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी पुष्टि करते हैं कि प्रामाणिक गुरु का असली पद यही है। वे कहते हैं कि मनुष्यों को चाहिए कि गुरु को मुकुन्द (श्रीकृष्ण) के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित मानें। श्रील जीव गोस्वामी ने *भक्तिसन्दर्भ* में (२१३) स्पष्ट बतलाया है कि भक्त द्वारा गुरु तथा भगवान् शिव को भगवान् जैसा ही मानना यह सूचित करता है कि पदचिह्नों पर चलते हुए परवर्ती आचार्यों ने, यथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने, इसी सत्य की पुष्टि की है। श्रील विश्वनाथ ठाकुर ने गुरु की प्रार्थनाओं में इसकी पुष्टि की है कि सारे शास्त्र गुरु को भगवान् से अभिन्न मानते हैं, क्योंकि वह भगवान् का अत्यन्त प्रिय तथा विश्वासपात्र दास होता है। इसलिए गौड़ीय वैष्णवजन श्रील गुरुदेव की पूजा भगवान् के दास के रूप में करते हैं। भक्ति सम्बन्धी सारे प्राचीन साहित्य में तथा श्रील नरोत्तम दास ठाकुर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं अन्य अनन्य वैष्णवों के अर्वाचीन गीतों में गुरु को या तो श्रीमती राधारानी के विश्वासपात्र

संगियों के रूप में या श्रील नित्यानन्द प्रभु के प्रकट प्रतिनिधि के रूप में माना गया है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.४६

भगवान् का प्रतिनिधि गुरु साक्षात् भगवान् के तुल्य होता है, क्योंकि वह वही बोलता है जो भगवान् द्वारा बोला जाता है

मनुष्य को भगवान् की शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिए जिन्हें *गुरोर्गुरुः* अर्थात् गुरुओं का गुरु कहा गया है।

भले ही हमें भगवान् से प्रत्यक्ष सम्पर्क करने का सौभाग्य प्राप्त न हो, किन्तु भगवान् का प्रतिनिधि साक्षात् भगवान् होता है, क्योंकि ऐसा प्रतिनिधि ऐसा कुछ भी नहीं कहता जो भगवान् द्वारा न कहा गया हो। इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने गुरु की यह परिभाषा की है—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'—उपदेश*—प्रामाणिक गुरु वह है जो अपने शिष्यों को कृष्ण द्वारा कहे गये सिद्धान्तों के अनुसार उपदेश देता है। प्रामाणिक गुरु वह है जिसने कृष्ण को गुरु स्वीकार किया हो। यह गुरु-परम्परा प्रणाली है।

—*भागवत* ८.२४.४८

चूँकि गुरु कृष्ण के उपदेशों को बिना किसी परिवर्तन के सम्बोधित करता है अतः वह ईश्वर ही है

भगवान् के उपदेशों से युक्त *भगवद्गीता* को गुरु यथारूप में, बिना किसी हेरफेर के प्रस्तुत करता है। अतः गुरु में परम सत्य विद्यमान रहता है। जैसा कि श्लोक २६ में स्पष्ट कथन है—*ज्ञानदीपप्रदे*। भगवान् पूरे जगत को असली ज्ञान प्रदान करते हैं और भगवान् का प्रतिनिधि स्वरूप गुरु उस सन्देश को सारे विश्व में ले जाता है। अतएव परम पद पर गुरु तथा भगवान् में कोई अन्तर नहीं होता।

—*भागवत* ७.१५.२७

गुरु भगवान् के ही तुल्य है, क्योंकि अन्यों को ज्ञान प्रदान करके वह भगवान् का प्रतिनिधित्व करता है

अनुवाद : मैं आपको योगशक्ति का परम स्वामी मानता हूँ। आप आत्मज्ञान

से पूर्णतया परिचित हैं। आप साधुओं में परम पूज्य और समस्त मानव समाज के कल्याण हेतु अवतरित हुए हैं। आप आत्म-ज्ञान प्रदान करने आये हैं और ईश्वर के अवतार तथा ज्ञान के अंश कपिलदेव के साक्षात् प्रतिनिधि हैं। अत: मैं आपसे पूछ रहा हूँ, "हे गुरु! इस संसार में सर्वाधिक सुरक्षित शरण कौन सी है?"

तात्पर्य: यद्यपि जड़ भरत सामान्य जीव थे, किन्तु श्रीभगवान् कपिलदेव से सारा ज्ञान उन्हें विरासत में मिला था। अत: उन्हें साक्षात् श्रीभगवान् माना जा सकता है। इसकी पुष्टि श्रील विश्वनाथ ठाकुर ने गुरु की प्रार्थना में लिखे इस पद्य में की है—*साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रै:*। जड़ भरत जैसा महापुरुष श्रीभगवान् के ही तुल्य है, क्योंकि अन्यों को ज्ञान प्रदान करने के कारण वह ईश्वर का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ पर जड़ भरत को श्रीभगवान् का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि माना गया है, क्योंकि वे परमेश्वर की ओर से ज्ञान प्रदान कर रहे थे। इसलिए महाराज रहूगण ने यह निश्चय किया कि उन्हीं से आत्मतत्त्व से सम्बन्ध में क्यों न पूछा जाय—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुम् एवाभिगच्छेत्*—यहाँ इस वैदिक आदेश की भी पुष्टि हो जाती है। यदि कोई ब्रह्म जिज्ञासा में रुचि रखता है तो उसे जड़ भरत जैसे गुरु के पास जाना चाहिए।

—*भागवत* ५.१०.१९

परमेश्वर की ओर से कार्य करने वाला गुरु परमेश्वर के ही तुल्य है

भगवान् का जो प्रतिनिधि कृष्णभावनामृत का प्रसार कार्य करता है वह भी भगवान् के आदेश को पूरा करने के लिए भगवान् द्वारा मार्गदर्शन पाता है। ऐसा व्यक्ति भले ही सामान्य मनुष्य लगे, किन्तु परम गुरु रूप भगवान् के लिए काम करने के कारण उसे सामान्य व्यक्ति की तरह उपेक्षित नहीं होना चाहिए। इसलिए कहा गया है—*आचार्यं मां विजनीयात्*—आचार्य भगवान् के लिए कार्य करता है, अतएव उसे साक्षात् भगवान् मानना चाहिए।...विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने सलाह दी है कि गुरु भगवान् के लिए कार्य करता है अतएव उसकी पूजा भगवान् ही की तरह की जानी चाहिए, क्योंकि इस संसार में बद्धजीवों को लाभ पहुँचाने के लिए भगवान्

के सन्देश के प्रचार हेतु वह भगवान् का सर्वाधिक विश्वसनीय दास होता है।

—*भागवत* ८.२४.४६

गुरु कृष्ण के प्रतिनिधि की तरह कार्य करता है

मानव-जीवन हमारी स्थिति को समझने के लिए है और हमें *भगवद्गीता* से शिक्षाएँ लेनी चाहिए। अर्जुन कृष्ण को गुरु मान कर हमें स्वयं शिक्षा दे रहे हैं। वे कृष्ण से उसका गुरु बनने और शिक्षा देने के लिए कहते हैं। कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेश एकमात्र अर्जुन के लिए ही न होकर हर एक के लिए हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण हमें बताते हैं कि हमें गुरु की खोज करनी चाहिए। प्रथम गुरु तो स्वयं कृष्ण हैं और जो भी कृष्ण का प्रतिनिधित्व करे वह भी गुरु है। यदि मैं व्यापारी हूँ और कोई व्यक्ति मेरे व्यापार के लिए प्रचार करने जाता है तथा मेरे लिए आर्डर लाता है तो वह मेरा प्रतिनिधि है। यदि वह केवल इतना ही कहे कि वह मेरा प्रतिनिधि है और कुछ आर्डर भी ले, किन्तु यदि वह उस धन को किसी अन्य काम में लाएँ तो वह मेरा वास्तविक प्रतिनिधि नहीं है।

कृष्ण का प्रतिनिधि यह नहीं कहता "मैं कृष्ण बन गया हूँ।" ऐसा व्यक्ति न तो प्रतिनिधि है न गुरु। वह मात्र ठग है। कृष्ण का प्रतिनिधि वह है जो कृष्ण के हेतु प्रचार करता है। कृष्ण कहते हैं "तुम हर वस्तु त्याग कर मेरी शरण में आओ।" कृष्ण का प्रतिनिधि कहता है, "हर वस्तु को त्यागकर एकमात्र कृष्ण की शरण में जाओ।" इसे समझना बहुत कठिन नहीं है। कोई भी व्यक्ति कृष्ण का प्रतिनिधि बन सकता है।

—*भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ*

शुद्ध भक्त गुरु भगवान् का प्रतिनिधि होता है और भगवान् के समान ही समादरित होता है

भगवान् के चरणकमलों में शरण ग्रहण करने का अर्थ है शुद्धभक्तों की शरण ग्रहण करना। जिन शुद्धभक्तों का एकमात्र कार्य भगवान् की सेवा करना है वे प्रभुपाद तथा विष्णुपाद कहलाते हैं। अतः जो भी व्यक्ति शुद्ध भक्त को अपना गुरु मानकर उसके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता

है वह तुरन्त शुद्ध हो जाता है। भगवान् के ऐसे भक्त भगवान् के ही समान समादरित होते हैं, क्योंकि वे भगवान् की गुह्यतम् सेवा में लगे रहते हैं और उन पतितात्माओं का इस भवसागर से उद्धार कराते हैं जिन्हें भगवान् अपने धाम में वापस बुलाना चाहते हैं। शास्त्रों के अनुसार ऐसे शुद्धभक्तों को तो उपप्रभु (उपभगवान्) कहा जाना चाहिए। शुद्ध भक्त का निष्कपट शिष्य अपने गुरु को भगवान् के तुल्य मानता है, किन्तु अपने आपको भगवान् के दासों का भी दास समझता है। यही शुद्धभक्तिमार्ग है।

—*भागवत* १.१.१५

गुरु का आदर भगवान् के ही समान किया जाना चाहिए; दिखने पर उसको नमस्कार करना चाहिए

जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है—*साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रैः*—गुरु या *परम्परा-आचार्य* का आदर वैसे ही होना चाहिए जैसे भगवान् का। जब भी आचार्य दिखें तो मनुष्य को चाहिए कि तुरन्त उनके समक्ष नतशिर हो।

—*भागवत* ४.२२.४

शिष्य को चाहिए कि गुरु को भगवान् माने

शिष्य गुरु को भगवान् मानता है...चूँकि गुरु भगवान् का सर्वाधिक विश्वस्त सेवक होता है, अत: उसको भगवान् के ही समान मानना चाहिए। कभी भी सामान्य पुरुष की भाँति गुरु की उपेक्षा या अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।

—*भागवत* ४.२८.४३

शिष्य का कर्तव्य है कि वह ईश्वर जितना ही गुरु का आदर करे

श्रीमती निवासन: आपने कहा कि आप ईश्वर नहीं हैं फिर भी एक बाहरी के रूप में मुझे लगता है कि आपके भक्तगण आपको ईश्वर मानते हैं।

श्रील प्रभुपाद: हाँ, यह तो उनका कर्तव्य है। चूँकि गुरु ईश्वर के आदेशों

को पूरा करता है अतः उसका आदर ईश्वर जितना ही होना चाहिए जिस प्रकार सरकारी अफसर का आदर सरकार के ही तुल्य किया जाना चाहिए, क्योंकि वह सरकार के आदेश को सम्पन्न करता है। चाहे एक सामान्य पुलिस कर्मचारी क्यों न आए, आपको उसका आदर करना चाहिए, क्योंकि वह सरकारी आदमी होता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह सरकार है। *साक्षाद् धरित्वेन समस्त शास्त्रैः उक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः*—गुरु का आदर ईश्वर के ही समान किया जाना चाहिए, क्योंकि वह भगवान् का सबसे विश्वस्त सेवक है। इसे सारे शास्त्रों में स्वीकार किया गया है और सारे महाजन इसका पालन करते हैं।''

श्रीमती निवासन: मैं भी उन तमाम सुन्दर भौतिक वस्तुओं के विषय में आश्चर्य करती हूँ जो भक्तगण आपके लिए लाते हैं। उदाहरणार्थ, आप हवाई अड्डे से एक सुन्दर मोटरकार में आये। मैं इसके बारे में आश्चर्य करती हूँ, क्योंकि..

श्रील प्रभुपाद: इससे शिष्यों को शिक्षा मिलती है कि गुरु को किस तरह ईश्वर के समान आदर दिया जाय। यदि आप सरकारी प्रतिनिधि का आदर सरकार की ही तरह करते हैं तो आपको चाहिए कि उसके साथ ऐश्वर्यपूर्वक व्यवहार करें। यदि आप गुरु को ईश्वर के ही समान आदर देते हैं तो आपको चाहिए कि उसे वे सारी सुविधाएँ प्रदान करें जो आप ईश्वर के लिए करते। ईश्वर सुनहरे रथ पर यात्रा करते हैं। यदि शिष्यगण गुरु को सामान्य मोटरकार की सुविधा जुटाते हैं तो यह पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि गुरु के साथ ईश्वर जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। यदि ईश्वर आपके घर आएँ तो क्या आप उन्हें सामान्य मोटरकार में लाएँगे या कि आप सुनहरे रथ का प्रबन्ध करेंगे?

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

मनुष्य को चाहिए कि गुरु को वह सामान्य मानव न समझे

भगवान् हमें निर्देश प्रदान करके भक्ति करने में और इस तरह भगवद्धाम वापस जाने के मार्ग में आगे बढ़ने में सहायता पहुँचाते हैं। वे गुरु के रूप में बाहर से हमें शिक्षा देते हैं। अतः गुरु को सामान्य मानव नहीं समझना चाहिए। भगवान् कहते हैं—*आचार्य मां विजानीयान् नावमन्येत*

कर्हिचित्—गुरु को सामान्य व्यक्ति नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह भगवान् का स्थानापन्न होता है (*भागवत* ११.१७.२७)। गुरु को भगवान् के रूप में मानना चाहिए और उससे कभी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए या उसे सामान्य मानव नहीं मानना चाहिए।

—*भागवत* ४.२०.१३

कृष्ण की बाह्य अभिव्यक्ति के रूप में गुरु की पूजा भगवान् के ही समान स्तर पर की जानी चाहिए

उद्धव ने गोपियों को यह उपदेश दिया कि वे अपनी आँखें मूँदकर तथा कृष्ण के साथ प्रारम्भ से लेकर अपने कार्यकलापों का ध्यान करके विरहाग्नि से बच सकती हैं। बाहर से गोपियाँ उद्धव द्वारा दिये गये विवरणों को सुनकर कृष्ण की लीलाओं की कल्पना कर सकती थीं और भीतर से वे उन लीलाओं का स्मरण कर सकती हैं। उद्धव के उपदेश से गोपियाँ यह समझ सकीं कि कृष्ण उनसे विलग नहीं हैं। जिस तरह वे निरन्तर कृष्ण का चिन्तन कर रही थीं उसी तरह मथुरा में रहते हुए कृष्ण भी निरन्तर उनका चिन्तन कर रहे थे।

उद्धव के सन्देश तथा उपदेश ने गोपियों को तुरन्त मृत्यु से बचा लिया और गोपियों ने उद्धव के इस आशीर्वाद के लिए कृतज्ञता प्रकट की। उद्धव ने एक तरह से गोपियों के उपदेशक गुरु का कार्य किया और बदले में उन्होंने उनकी वैसी ही पूजा की जैसी वे कृष्ण की करतीं। प्रामाणिक शास्त्रों में यह संस्तुति की गई है कि गुरु की पूजा भगवान् के स्तर पर की जाय, क्योंकि वह उनका अत्यन्त विश्वस्त सेवक होता है और महाजनों ने यह स्वीकार किया है कि गुरु कृष्ण की बाह्य अभिव्यक्ति है। गोपियाँ यह अनुभव करके कि कृष्ण उनके साथ हैं दिव्य ज्वलित दशा से छुटकारा पा सकीं। उन्होंने अपने हृदय में उनकी संगति का स्मरण किया और बाहर से उद्धव ने अपने निर्णायक उपदेश से कृष्ण की प्रशंसा करने के लिए सहायता पहुँचाई।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

यदि शिष्य भगवान् तुल्य गुरु को सामान्य व्यक्ति मानता है तो उसका

वैदिक अध्ययन तथा तप निष्फल हो जाते हैं

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥

अनुवादः गुरु को साक्षात् भगवान् मानना चाहिए, क्योंकि वह प्रकाश के लिए दिव्य ज्ञान प्रदान करता है। फलस्वरूप जो यह भौतिक धारणा रखता है कि गुरु सामान्य मनुष्य होता है उसके लिए हर वस्तु अस्त-व्यस्त रहती है। उसका प्रकाश, उसका वैदिक अध्ययन तथा ज्ञान झील में स्नान करने के समान होता है।

तात्पर्यः यह संस्तुति की गई है कि मनुष्य गुरु को भगवान् के ही समान पद पर माने। *साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रैः*। समस्त शास्त्रों का यही आदेश है। *आचार्यं मां विजानीयात्*—आचार्य को भगवान् के ही समान मानना चाहिए। इतने उपदेशों के बाद भी यदि कोई गुरु को सामान्य व्यक्ति समझता है तो उसका विनाश निश्चित है। उसका वेदाध्ययन तथा ज्ञान के लिए उसकी तपस्या सभी व्यर्थ हैं जिस प्रकार कि हाथी का स्नान। हाथी झील में अच्छी तरह स्नान करता है, किन्तु किनारे पर आते ही धूल उठाकर पूरे शरीर पर छिड़क लेता है। इस तरह हाथी के स्नान का कोई अर्थ नहीं रह जाता। कोई यह तर्क कर सकता है कि जब गुरु के सम्बन्धी तथा उसके पड़ोसी उसे सामान्य व्यक्ति मानते हैं तो इसमें शिष्य का कौन सा दोष है यदि वह भी गुरु को सामान्य पुरुष माने?...यदि भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधि गुरु को उसके परिवार के लोग सामान्य मनुष्य मानते हैं तो इसका अर्थ यह तो नहीं होता कि वह सामान्य मनुष्य बन गया है। गुरु भगवान् के तुल्य है अतएव जो आध्यात्मिक प्रगति करने के इच्छुक हों उन्हें गुरु को इसी तरह मानना चाहिए। इस समझ में थोड़ा भी हेर-फेर होने से शिष्य के वैदिक अध्ययन तथा तप पर वज्रपात हो सकता है।

—*भागवत* ७.१५.२६-२७

जो परम्परा आचार्य को सामान्य मनुष्य सोचता है उसे नरक वासी

मानना चाहिए

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिर्विष्णोर्वा
वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।
श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धिर्विष्णो
सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः॥

अनुवादः जो मन्दिर के अर्चाविग्रह को काष्ठ या पत्थर का बना सोचता है, जो परम्परागत गुरु को सामान्य व्यक्ति मानता है, जो अच्युत गोत्र वाले वैष्णव को किसी जाति-पाँति से सम्बद्ध मानता है या जो चरणामृत या गंगाजल को सामान्य जल सोचता है उसे नरकवासी मानना होगा।

—*पद्म-पुराण (भागवत ४.२१.१२ में उद्धृत)*

आचार्य को सामान्य मनुष्य सोचना वर्जित है

कहा गया है *ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा विज्ञेह ना बुझय*। बड़ा से बड़ा विद्वान भी वैष्णव के आचरण को नहीं समझ सकता। कोई भी बिना भय के किसी वैष्णव की शरण में जा सकता है...नारद मुनि, हरिदास ठाकुर तथा ऐसे ही आचार्य जिन्हें भगवान् के यश का प्रचार करने की शक्ति प्राप्त है कभी भौतिक पदतक नीचे नहीं उतर सकते। अतएव यह सर्वथा वर्जित है कि आचार्य को सामान्य मनुष्य माना जाय (*गुरुषु नरमतिः*)।

—*भागवत ७.७.१४*

शक्त्याविष्ट गुरु, जिसमें कृष्ण द्वारा प्रदत्त शक्ति निहित होती है, स्वतन्त्र रीति से कार्य कर सकता है

अनुवादः यह सुनकर सार्वभौम ने श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा "ईश्वरपुरी ने शूद्र को सेवक क्यों रखा?" श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा "भगवान् तथा गुरु ईश्वरपुरी दोनों ही पूर्ण स्वतन्त्र हैं। अतएव भगवान् तथा ईश्वरपुरी की कृपा किसी वैदिक नियम के अधीन नहीं है।"

तात्पर्यः यहाँ पर सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीचैतन्य महाप्रभु से पूछा कि ईश्वरपुरी ने शूद्र परिवार का सेवक क्यों रखा। *स्मृतिशास्त्र* के अनुसार ब्राह्मण निम्न जातियों से शिष्य नहीं बना सकता। दूसरे शब्दों में, एक

क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को सेवक नहीं बनाया जा सकता। यदि गुरु ऐसे व्यक्ति को स्वीकार करता है तो वह दूषित हो जाता है। इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य ने पूछा कि ईश्वरपुरी ने शूद्रजाति का सेवक या शिष्य क्यों स्वीकार किया। इसके उत्तर में श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा कि उनके गुरु ईश्वरपुरी इतने शक्त्याविष्ट थे कि वे भगवान् जैसे थे। इस तरह ईश्वरपुरी समस्त जगत के गुरु थे। ईश्वरपुरी जैसा शक्त्याविष्ट गुरु जातिपाँति का विचार किये बिना किसी को भी अपनी कृपा प्रदान कर सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि शक्त्याविष्ट गुरु कृष्ण द्वारा अधिकृत होता है। उसे साक्षात् भगवान् समझा जाना चाहिए। विश्वनाथ चक्रवर्ती का यही मत है—*साक्षात् धरित्वेन समस्तशास्त्रै:*। अधिकृत गुरु हरि अर्थात् भगवान् तुल्य होता है। यदि हरि इच्छानुसार कार्य कर सकता है तो गुरु भी स्वतन्त्र होता है। जिस तरह हरि की आलोचना नहीं की जा सकती उसी प्रकार हरि द्वारा शक्त्याविष्ट गुरु की आलोचना नहीं की जा सकती। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (अन्त्य लीला ७.११) के अनुसार —*कृष्णशक्ति विना नहे तार प्रवर्तन*। कृष्ण द्वारा शक्त्याविष्ट गुरु भगवान् के नाम की महिमा का प्रसार कर सकता है। इसी प्रकार अपने गुरु के माध्यम से शक्त्याविष्ट गुरु को साक्षात् भगवान् तुल्य मानना चाहिए। *साक्षात् धरित्वेन* का यही अर्थ है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु भगवान् तथा प्रामाणिक गुरु के कार्यों का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य १०.१३६-३१*

गुरु की नित्य पहचान

गुरु की नित्य पहचान तथा वृत्ति

हर जीव श्रीकृष्ण चैतन्य का नित्य दास है, अतएव गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु के दास के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। गुरु की नित्य वृत्ति शिष्यों को सेवाभाव में प्रशिक्षित करके भगवत्सेवा का विस्तार करना है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि १.४४*

गुरु को या तो श्रीराधारानी का विश्वस्त पार्षद या नित्यानन्द का

प्रकट स्वरूप माना जाता है

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु की प्रार्थनाओं में इसकी पुष्टि की है कि सारे शास्त्र गुरु को भगवान् से अभिन्न मानते हैं, क्योंकि वह भगवान् का अत्यन्त प्रिय तथा विश्वस्त दास होता है। इसलिए गौड़ीय वैष्णव जन श्रील गुरुदेव की पूजा भगवान् के दास के रूप में करते हैं। भक्ति सम्बन्धी सारे प्राचीन साहित्य में तथा श्रील नरोत्तमदास ठाकुर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं अन्य अनन्य वैष्णवों के अर्वाचीन गीतों में गुरु को या तो श्रीमती राधारानी के विश्वासपात्र संगियों के रूप में या श्रील नित्यानन्द प्रभु का प्रकट स्वरूप माना गया है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.४६

गुरु गोपियों के संगी के रूप में

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्ध्यै
या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्ष्याद् अतिवल्लभस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

अनुवाद: गुरु अत्यन्त प्रिय होता है, क्योंकि वह उन गोपियों की सहायता करने में दक्ष होता है जो विभिन्न कालों में वृन्दावन के कुंजों के भीतर राधा तथा कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम की पूर्णता के लिए विभिन्न आस्वाद्य व्यवस्थाएँ करती हैं। मैं ऐसे गुरु के चरणकमलों पर सादर विनयपूर्ण नमस्कार करता हूँ।

—*श्री श्री गुर्वष्टक* श्लोक ६
श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर

गुरु तथा भगवान् के बीच अन्तर

गुरु *सेवक भगवान्* कहलाता है और कृष्ण *सेव्य भगवान्* कहलाते हैं। गुरु पूजक ईश हैं और भगवान् कृष्ण पूज्य ईश हैं। गुरु तथा भगवान् में यही अन्तर है।

—*भागवत* ७.१५.२७

गुरु भगवान् का जीवतत्त्व सेवक है

श्रीचैतन्य-चरितामृत में (आदि ५.१४२) कहा गया है—*एकला ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—कृष्ण एकमात्र ईश्वर हैं और अन्य सभी अर्थात् विष्णुतत्त्व तथा जीव तत्त्व भगवान् की सेवा में रत रहते हैं। विष्णुतत्त्व (यथा नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत) और जीव तत्त्व (यथा श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द) भगवान् की सेवा करते हैं, किन्तु विष्णु तत्त्व सेवकों तथा जीव तत्त्व सेवकों में अन्तर होता है। जीवतत्त्व सेवक अर्थात् गुरु वास्तव में ईश्वर का सेवक होता है। जैसा कि पिछले श्लोक में कहा जा चुका है आध्यात्मिक जगत में ऐसा अन्तर नहीं होता फिर भी परमेश्वर तथा उनके आश्रितों में भेद करने के लिए अन्तरों पर ध्यान देना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.१४

३. गुरु की योग्यताएँ तथा गुण

गुरु परम्परा सिद्धान्त तथा शास्त्र का कड़ाई से पालन करता है गुरु से प्राप्तज्ञान से होकर साक्षात् भगवान् से अवतरित होता है

वेदों का दिव्य ज्ञान सर्वप्रथम, ईश्वर द्वारा इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा से कहा गया। ब्रह्मा से यह ज्ञान नारद को मिला, नारद से व्यासदेव को, व्यासदेव से मध्व को मिला। परम्परा की इस विधि में दिव्य ज्ञान एक शिष्य से दूसरे तक सम्प्रेषित होता गया जबतक कि गौरांग महाप्रभु यानी श्रीकृष्ण चैतन्य तक नहीं पहुँचा जो अपने को श्री ईश्वर पुरी का शिष्य तथा अधिकारी बताते थे। वर्तमान आचार्यदेव श्रीरूप गोस्वामी के दसवें शिष्य प्रतिनिधि हैं जो श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदि प्रतिनिधि थे जिन्होंने इस दिव्य परम्परा का पूर्णरूपेण प्रचार किया। हम अपने गुरुदेव से जो ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं साक्षात् ईश्वर तथा ब्रह्मा की उपदेश पंक्ति में आचार्यों के अनुक्रम द्वारा प्रदत्त ज्ञान से भिन्न नहीं है। हम इस शुभ दिन को श्रीव्यास पूजा तिथि के रूप में मनाते हैं, क्योंकि आचार्य तो व्यासदेव के जीवित प्रतिनिधि हैं जो वेदों, पुराणों, *भगवद्गीता*, *महाभारत*

तथा *श्रीमद्भागवत* के रचयिता हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान* पृष्ठ ७२

यदि कोई परम्परा पद्धति का अनुगमन करता है तो वह सारे जगत का गुरु बन सकता है

यदि हम सामान्य व्यक्ति से ज्ञान प्राप्त करें तो उसमें तमाम दोष होंगे। सामान्य व्यक्ति मोहग्रस्त हो सकता है और उसमें ठगने की भी प्रवृत्ति होती है। यद्यपि सामान्य व्यक्ति अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा विद्वान हो सकता है, किन्तु उसमें पूर्ण ज्ञान नहीं होता। पूर्णता भौतिक जगत में जो कुछ हमें मिलता है उससे सर्वथा भिन्न है। पूर्णता का अर्थ है कि न तो कोई त्रुटि, न मोह, न ठगी, न अपूर्णता रहती है। इसलिए कहा गया है *भगवान् उवाच* क्योंकि भगवान् सर्व-पूर्ण है। अतएव हमें भगवान् से, उससे जो भगवान् के कथन के अनुसार बोलता है, ज्ञान ग्रहण करना चाहिए।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हम कोई ऐसी वस्तु प्रस्तुत नहीं करते जिसे हम स्वयं गढ़ सकें। हम जो भी गढ़ते हैं वह त्रुटिपूर्ण या न्यून होनी निश्चित है। मेरे दर्शन का क्या मूल्य है? मेरे विचार का क्या मूल्य है? सामान्यतया लोग यह सोचते हुए कि मेरे मत का वास्तव में कोई मूल्य है, कहते हैं "मेरे मत से।" लोग यह नहीं सोचते कि मैं केवल धूर्त हूँ।" लोग अपने मत को यह सोचकर महत्त्व देते है कि यह कोई बड़ी बात है। इस संसार के हर व्यक्ति की इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं। अतएव इन इन्द्रियों के द्वारा जो भी ज्ञान संचित किया गया है वह अनिवार्यतः अपूर्ण है। जैसा कि हम बारम्बार बल देकर कहते आये हैं, हमें परम्परा से ज्ञान ग्रहण करना है। ज्ञान को भगवान् से प्राप्त करना है जो कि पूर्ण हैं। यदि हम इस पद्धति का केवल पालन करें तो हम सारे जगत के लिए गुरु बन जाते हैं।...गुरु बनना कठिन नहीं है बशर्ते कि हम वही कहें जो कृष्ण कहते हैं।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

गुरु एक है, क्योंकि वह परम्परा में अपने पूर्ववर्तियों से भिन्न नहीं

बोलता

वेद हमें यह आदेश देते हैं कि हम गुरु खोजें। वस्तुत: वे चलताऊ गुरु नहीं अपितु गुरुदेव खोजने के लिए कहते हैं। गुरु एक होता है, क्योंकि वह परम्परा से आता है। व्यासदेव तथा कृष्ण ने आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व जो शिक्षा दी वही अब भी दी जा रही है। दोनों शिक्षाओं में कोई अन्तर नहीं है। यद्यपि सैकड़ों-हजारों आचार्य आये और गये किन्तु सन्देश एक है। असली गुरु दो नहीं हो सकते क्योंकि असली गुरु अपने पूर्ववर्तियों से भिन्न नहीं बोलता। कुछ गुरु कहते हैं "मेरे मत से तुम्हें यह करना चाहिए" किन्तु यह गुरु नहीं है। ऐसे तथाकथित गुरु मात्र धूर्त हैं। असली गुरु का केवल एक मत होता है और यह मत कृष्ण, व्यासदेव, नारद, अर्जुन, श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा षड्गोस्वामियों द्वारा व्यक्त होता है। श्रीकृष्ण ने पाँच हजार वर्ष पूर्व *भगवद्गीता* का प्रवचन किया था और व्यासदेव ने इसे लिखित रूप प्रदान किया। श्रील व्यासदेव ने यह नहीं कहा, "यह मेरा मत है" प्रत्युत उन्होंने लिखा "श्रीभगवान् उवाच" अर्थात, "भगवान् कहते हैं।" व्यासदेव ने जो भी लिखा वह भगवान् द्वारा पहले कहा जा चुका था। श्रील व्यासदेव ने अपना मत नहीं दिया।

फलस्वरूप व्यासदेव गुरु हैं। वे कृष्ण के वचनों की गलत व्याख्या नहीं करते, अपितु वे जिस रूप में उच्चारित हुए थे उसी रूप में उन्हें सम्प्रेषित करते हैं। यदि हम कोई तार भेजते हैं तो तार बाँटने वाला उसमें संशोधन, संवर्धन नहीं करता। वह उसे लाकर देता भर है। यही गुरु का कार्य है। गुरु चाहे कोई भी व्यक्ति क्यों न हो किन्तु संदेश वही रहता है। इसलिए कहा गया है कि गुरु एक है।

—*आत्म साक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु एक है किन्तु अनन्त रूपों में प्रकट होता है; गुरु का सिद्धान्त सार्वभौम तथा असाम्प्रदायिक होता है

सज्जनो! आज संध्या समय आचार्य के लिए जैसी श्रद्धा भेंट का आयोजन हुआ है वह किसी साम्प्रदायिक भाव से नहीं हुआ है, क्योंकि जब हम गुरुदेव या आचार्यदेव के मूल सिद्धान्त की बात चलाते हैं तो हम ऐसी बात कहते हैं जिसका सार्वभौम व्यवहार होता है। उसमें कोई ऐसा प्रश्न

नहीं उठता कि मैं अपने गुरु तथा आपके या अन्य किसी गुरु में भेदभाव बरत रहा हूँ। गुरु तो केवल एक होता है जो आपको मुझे या अन्यों को शिक्षा देने के लिए अनन्त रूपों में प्रकट होता है।

जैसा कि प्रामाणिक शास्त्रों से हमें पता चलता है, *गुरु* या *आचार्यदेव* तो परम पुरुष के दिव्य धाम यानी परम जगत का सन्देश देता है जहाँ हर वस्तु बिना भेदभाव के परम सत्य की सेवा करती है। हमने अनेक बार सुना है *महाजनो येन गतः स पन्थाः* (उस पथ पर चलो जिससे होकर आपके आचार्य चल चुके हैं) किन्तु हमने शायद ही इस श्लोक का अर्थ समझने का प्रयास किया हो। यदि हम इस मत की छानबीन करें तो समझेंगे कि *महाजन* एक है और दिव्य जगत को जाने वाला राजमार्ग भी एक है। *मुण्डक-उपनिषद* में (१.२.१२) कहा गया है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

''दिव्य विज्ञान सीखने के हेतु मनुष्य को परम्परा-आचार्य के पास जाना चाहिए जो परम सत्य को प्राप्त हुआ रहता है।''

इस प्रकार यह आदेश है कि उस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को गुरु के पास जाना चाहिए। अतः यदि परम सत्य एक है, जिसके विषय में मतभेद नहीं है, तो गुरु भी दो नहीं हो सकते। आज रात में हम जिन आचार्यदेव को श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्रित हुए हैं वह किसी सम्प्रदाय के गुरु नहीं, न ही सत्य की भिन्न-भिन्न व्याख्या करने वालों में से एक है। उल्टे, वे जगद्गुरु हैं अथवा हम सबों के गुरु हैं। अन्तर केवल इतना है कि कुछ लोग प्राणपण से उनकी आज्ञा का पालन करते हैं जबकि अन्य लोग प्रत्यक्षतः उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते।

—*आत्म साक्षात्कार का विज्ञान*

श्रीकृष्ण से चली आ रही परम्परा का अनुगमन करने तथा कृष्ण को परम सत्ता स्वीकार करने से मनुष्य गुरु बन सकता है

यह कृष्णभावनामृत दर्शन अत्यन्त सुगम है क्योंकि हम विचारों को

गढ़ते नहीं। हम परम पुरुष कृष्ण या उनके अवतार या प्रतिनिधि द्वारा कहे गये शब्दों तथा विचारों को ग्रहण करते हैं। कृष्ण का प्रतिनिधि कोई ऐसी बात नहीं कहता जो कृष्ण ने न कही हो। प्रतिनिधि बनना बहुत आसान है, किन्तु यदि वह कृष्ण के शब्दों की मनमाने ढंग से व्याख्या करता है तो वह कृष्ण का प्रतिनिधि नहीं हो सकता।

श्री कृष्ण से बढ़कर श्रेष्ठ कोई सत्ता नहीं है और यदि हम इस सिद्धान्त पर अटल रहें तो हम गुरु बन सकते हैं। गुरु बनने के लिए हमें अपने पद को बदलने की आवश्यकता नहीं होगी। बस, हमें श्रीकृष्ण से शुरु होने वाली परम्परा का अनुगमन करना होगा। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सलाह दी है *आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश* (*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ७.१२८)। चैतन्य महाप्रभु ने लोगों को उपदेश दिया कि वे उनसे सीखें और तब अपने अपने गाँवों में लोगों को शिक्षा देने जाएँ। कोई यह सोच सकता है "मैं अनपढ़ हूँ और मुझमें शिक्षा नहीं है। मैं उच्च कुल में उत्पन्न नहीं हुआ। मैं किस तरह गुरु बन सकता हूँ?" चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि यह अधिक कठिन नहीं है। *यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश*—जो कुछ कृष्ण कहते हैं केवल वही बोले। तब तुम गुरु बनते हो।" कृष्ण ने जो कुछ नहीं कहा उसे कहने वाला चाहे कोई भी हो वह गुरु नहीं अपितु धूर्त है। गुरु तो केवल वही बोलता है जो कृष्ण कह चुके हैं।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ* पृष्ठ ८७

गुरु व्यासदेव का प्रतिनिधि होता है और वह गोस्वामी है

अनुवाद: एक दिन यज्ञ की अग्नि जलाकर अपने प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त होकर तथा श्रील सूत गोस्वामी को आदरपूर्वक आसन प्रदान करके ऋषियों ने सम्मानपूर्वक निम्नलिखित विषयों पर प्रश्न पूछे।

तात्पर्य: ऋषियों ने *भागवत* के वक्ता के लिए ससम्मान एक ऊँचा आसन प्रदान किया जिसे *व्यासासन* कहते हैं। श्रीव्यासदेव समस्त मनुष्यों के आदि आध्यात्मिक उपदेष्टा हैं। अन्य सारे उपदेशक उनके प्रतिनिधि माने जाते हैं। प्रतिनिधि वही है जो श्रीव्यासदेव के दृष्टिकोण को सही-सही प्रस्तुत कर सके। श्रीव्यासदेव ने *भागवत* का सन्देश शुकदेव गोस्वामी को प्रदान किया और उनसे इसे श्रीसूत गोस्वामी ने सुना। श्रीव्यासदेव के सारे प्रामाणिक

प्रतिनिधियों की परम्परा को गोस्वामी समझना चाहिए। ये गोस्वामी अपनी सारी इन्द्रियों को वश में करके पूर्ववर्ती आचार्यों के पथ में दृढ़ रहते हैं। ये *भागवत* पर मनमाने व्याख्यान नहीं देते प्रत्युत अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अनुगमन करते हुए अत्यन्त सावधानी से सेवा करते हैं।

—*भागवत* १.१.५

भक्तियोग को परम्परा की प्रामाणिक वैदिक प्रणाली से ग्रहण करना चाहिए

अनुवाद: श्रीकश्यप मुनि ने कहा: जब मुझे सन्तान की इच्छा हुई तो मैंने कमलपुष्प से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी के समक्ष जिज्ञासा की। अब मैं तुम्हें वही विधि बतलाऊँगा जिसका उपदेश ब्रह्माजी ने मुझे दिया था और जिससे भगवान् केशव तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य: कश्यप मुनि अदिति को उसी विधि का उपदेश करना चाहते थे जिसकी संस्तुति ब्रह्माजी ने उन्हें भगवान् को तुष्ट करने के लिए की थी। यह महत्त्वपूर्ण है। गुरु अपने शिष्य को उपदेश देने के लिए कोई नई विधि नहीं गढ़ता। शिष्य अपने गुरु से ऐसी प्रामाणिक विधि प्राप्त करता है जो गुरु को उनके गुरु से प्राप्त हुई रहती है। यह शिष्य परम्परा कहलाती हैं (*एवं परम्परा प्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः*)। भक्ति योग प्राप्त करने की प्रामाणिक वैदिक विधि है जिससे भगवान् प्रसन्न किये जाते हैं। अतएव प्रामाणिक गुरु के पास जाना अनिवार्य है। प्रामाणिक गुरु वह है जिसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त रहती है। यह गुरु इसलिए प्रामाणिक होता है, क्योंकि उसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त हुई रहती है। यह *परम्परा* प्रणाली कहलाती है।

—*भागवत* ८.१६.२४

गुरु के वचन परम्परा में भगवान् के वचन हैं

अनुवाद: मैं रामानन्द राय की बातों का सही-सही वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वे सामान्य मानव नहीं हैं। वे भगवद्भक्ति में पूर्णतया लीन रहते हैं। रामानन्द राय ने एक अन्य बात भी मुझसे कही थी "कृष्ण विषयक

इन वार्ताओं का वक्ता मुझे नहीं मानें। मैं जो कुछ बोलता हूँ वह स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा बोला जाता है। सितार की तरह मैं वही उच्चारण करता हूँ जो वे मुझसे बोलवाते हैं। इस प्रकार से कृष्णभावनामृत पन्थ का प्रचार करने के लिए महाप्रभु मेरे मुख से बोलते हैं। इस संसार में महाप्रभु की इस लीला को कौन समझेगा?''

तात्पर्य: यह मना किया जाता है कि गुरु को सामान्य मानव न समझा जाय (*गुरुषु नरमतिः*)...आध्यात्मिक रूप से बढ़ा-चढ़ा व्यक्ति जो साधिकार गुरु के रूप में कार्य करता है वह वही बोलता है जैसा कि भगवान् उसके भीतर से बोलते हैं। अतः वह स्वयं नहीं बोलता होता। जब कोई शुद्धभक्त या गुरु बोलता है तो वह जो कहता है उसे परम्परा प्रणाली में सीधे भगवान् द्वारा बोला हुआ मानना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ५.७१-७४

गुरु भगवान् के उपदेशों से कभी विपथ नहीं होता

प्रामाणिक गुरु अनन्त समय से परम्परा में होता है और वह भगवान् के उन उपदेशों से कभी विपथ नहीं होता जो सूर्यदेव को करोड़ों वर्ष पूर्व दिये गये थे।

—*भगवद्गीता* ४.४२

परम्परा से दिव्य ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई प्रामाणिक गुरु नहीं हो सकता

वैदिक दिव्य ज्ञान साक्षात् भगवान् से अवतरित होता है, उनकी कृपा से ब्रह्माण्ड के प्रथम सजीव प्राणी ब्रह्मा को प्रकाश प्राप्त हुआ था और ब्रह्माजी से नारद को प्रकाश मिला था। नारद से व्यास को प्रकाश मिला था। शुकदेव गोस्वामी ने ऐसा दिव्य ज्ञान सीधे अपने पिता व्यासदेव से ग्रहण किया था। इस तरह परम्परा-श्रेणी से प्राप्त ज्ञान पूर्ण होता है। कोई व्यक्ति तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जबतक वह इस ज्ञान को परम्परा से प्राप्त नहीं करता। दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का यही रहस्य है।

—*भागवत* २.८.२५

प्रामाणिक गुरु की दो योग्यताएँ: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्

उपनिषदों से यह सूचना मिलती है कि गुरु वह है जिसने वेदों का श्रवण करके ज्ञान प्राप्त किया हो। *श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्*। वेद *श्रुति* कहलाते हैं और प्रामाणिक गुरु परम्परा की श्रवण पंक्ति में होता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (४.२) कहा गया है *एवं परम्पराप्राप्तम्*। प्रामाणिक गुरु अपने अनुरूप मनगढंत ज्ञान प्रदान नहीं करता। उसका ज्ञान मानक होता है और वह परम्परा पद्धति से प्राप्त किया हुआ होता है। वह भगवान् की सेवा में दृढ़तापूर्वक स्थित होता है (*ब्रह्मनिष्ठम्*)। ये उसकी दो योग्यताएँ हैं—परम्परा से वैदिक ज्ञान का श्रवण करना चाहिए और उसे भगवान् की सेवा में स्थापित होना चाहिए। उसे बहुत बड़ा विद्वान् होना आवश्यक नहीं है, किन्तु उसे सही अधिकारी से सुना हुआ होना चाहिए।

—भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ

प्रामाणिक गुरु उसी को दुहराता है जो उसने परम्परा से सुन रखा है

प्रामाणिक गुरुओं के लिए एक मानक होता है।...गुरु कौन है? यही अगली पंक्ति है—*श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्*। *श्रोत्रियम्* शब्द सूचक है उसका जिसने अन्य प्रामाणिक स्रोत से सुना हो। गुरु वह है जिसने अन्य योग्य गुरु से सन्देश प्राप्त किया हो। यह उस वैद्य के समान है जिसने दूसरे वैद्य से औषधि विज्ञान प्राप्त किये है। इसी तरह प्रामाणिक गुरु को गुरु-परम्परा से आना चाहिए। आदि गुरु ईश्वर है...जो ईश्वर से सुना होता है वह अपने शिष्यों को वही सन्देश बतलाता है। यदि शिष्य उस सन्देश को बदलता नहीं तो वह प्रामाणिक गुरु है।

—आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान

प्रामाणिक गुरु वंशानुगत नहीं अपितु परम्परा सिद्धान्त का पालन करने से होता है

हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रुद्ध था और अपने पुत्र को अध्यापक या गुरु का उपहास करने के लिए डाँटना चाहता था, क्योंकि उसके अध्यापक महान आचार्य शुक्राचार्य के ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। शुक्र शब्द

का अर्थ है "वीर्य" और *आचार्य* गुरु का सूचक है। अनन्त काल से वंशानुगत गुरुओं को मान्यता प्राप्त होती रही है, किन्तु प्रह्लाद महाराज ने ऐसे जन्मजात गुरु को या उसके उपदेश को ग्रहण करने से इनकार कर दिया था। वास्तविक गुरु *श्रोत्रिय* होता है और वह परम्परा से पूर्ण ज्ञान सुनता है या प्राप्त किये होता है। अतएव प्रह्लाद महाराज ने जन्मजात गुरु को मान्यता नहीं दी।

—*भागवत* ७.५.३१

नेता के रूप में गुरु को शास्त्र के सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए

शिक्षक को चाहिए कि सामान्य जन तक पहुँचने के लिए वह शास्त्र के सिद्धान्तों का पालन करे। कोई शिक्षक आर्ष ग्रन्थों के नियमों के विपरीत कोई नियम नहीं बना सकता। *मनुसंहिता* जैसे आर्ष ग्रन्थ मानव समाज के लिए अनुसरणीय आदर्श ग्रन्थ हैं, अत: नेता का उपदेश ऐसे आदर्श नियमों के सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए जिस रूप में शिक्षक उनका अभ्यास करते हैं। *श्रीमद्भागवत* भी इसकी पुष्टि करता है कि मनुष्य को महान भक्तों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और आत्म-साक्षात्कार के पथ में प्रगति का यही साधन है। चाहे राजा हो या राज्य का प्रशासन अधिकारी, चाहे पिता हो या शिक्षक—ये सब अबोध जनता के स्वाभाविक नेता माने जाते हैं। इन सबका अपने आश्रितों के प्रति महान् उत्तरदायित्व रहता है अत: इन्हें भौतिक तथा आध्यात्मिक संहिता सम्बन्धित आदर्श ग्रन्थों से सुपरिचित होना चाहिए।

—*भगवद्गीता* ३.२१

परम्परा से आने वाला गुरु वैदिक शास्त्रों के प्रमाणों का पालन बिना तोड़-मरोड़ के करता है

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु ने गूढ़ निर्देशों को प्रकट करने वाले *श्रीमद्भागवत* जैसे शास्त्रों के आधार पर सनातन गोस्वामी को भक्त के नियमित कार्यों के विषय में शिक्षा दी।

तात्पर्य: परम्परा पद्धति में प्रामाणिक गुरु से प्राप्त उपदेशों को वैदिक शास्त्रों पर भी आधारित होना चाहिए। परम्पराबद्ध व्यक्ति अपने मन के अनुसार

आचरण नहीं कर सकता। चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव सम्प्रदाय के अनेक तथाकथित अनुयायी जो शास्त्रों के प्रमाणों का पालन नहीं करते, वे *असम्प्रदाय* माने जाते हैं जिसका अर्थ है सम्प्रदाय से विलग।...न तो साधु (या वैष्णव), न ही प्रामाणिक गुरु ऐसी कोई बात कहता है जो शास्त्रों की परिधि में न हो। इसतरह शास्त्रों के वचन प्रामाणिक गुरु तथा साधुओं के वचनों के ही अनुरूप होते हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.४८

गुरु जो कहे उसकी पुष्टि साधुओं तथा शास्त्रों द्वारा होनी चाहिए

साधु-शास्त्र गुरु—मनुष्य को समस्त आध्यात्मिक मामलों की परीक्षा साधुओं, शास्त्रों तथा गुरु के आदेशानुसार करनी होती है। गुरु वह है जो अपने पूर्ववर्तियों अर्थात् साधुओं के आदेशों का पालन करता है। प्रामाणिक गुरु कभी भी ऐसी बात नहीं बताता जिसका उल्लेख शास्त्रों में न हो। सामान्य मनुष्यों को साधु, शास्त्र तथा गुरु का अनुसरण करना चाहिए। शास्त्रों के कथन तथा प्रामाणिक गुरु या साधु के वचनों में कभी अन्तर नहीं होता।

—*भागवत* ४.१६.१

कृष्ण तत्त्व का ज्ञान (जन्म या सामाजिक स्थिति नहीं) गुरु बनने के लिए आवश्यक है

किसी भी वर्ण या आश्रम का व्यक्ति गुरु बन सकता है यदि वह कृष्ण के लिए आवश्यक है

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

अनुवाद: कोई चाहे ब्राह्मण हो, अथवा संन्यासी या शूद्र—यदि वह कृष्ण-तत्त्व जानता है तो गुरु बन सकता है।

तात्पर्य: यह श्लोक कृष्णभावनामृत आन्दोलन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत प्रवाह* में बतलाया है कि किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होते हुए तथा

संन्यासी के उच्चपद पर रहते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभु के लिए अनुचित था कि वे शूद्र जाति में उत्पन्न रामानन्द राय से उपदेश ग्रहण करते। इस बात को स्पष्ट करने के लिए महाप्रभु ने रामानन्द राय को बतलाया कि कृष्णभावनामृत का ज्ञान होना जाति से अधिक महत्वपूर्ण है। वर्णाश्रम प्रणाली में ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा शूद्रों के विविध कर्तव्य होते हैं। इसमें ब्राह्मण को अन्य वर्णों अर्थात् जातियों का गुरु माना जाता है, किन्तु जहाँ तक कृष्णभावनामृत का सम्बन्ध है, कोई भी व्यक्ति गुरु बन सकता है, क्योंकि कृष्णभावनामृत का ज्ञान आत्मा के स्तर पर होता है। कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए आत्म-ज्ञान से अवगत होने की ही आवश्यकता होती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र अथवा संन्यासी या गृहस्थ। यदि वह इस विज्ञान को समझता है तो वह गुरु बन सकता है।...यदि कोई कृष्णभावनामृत की सच्चाइयों को समझता है और जीवन की पूर्णता के लिए दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक है तो वह किसी भी जाति के गुरु को स्वीकार कर सकता है, बशर्ते वह गुरु कृष्ण-विज्ञान (कृष्णतत्व) से पूरी तरह अवगत हो। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर यह भी कहते हैं कि यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी कृष्ण-विज्ञान से अवगत है तो वह *वर्त्म प्रदर्शक गुरु*, *दीक्षा-गुरु* अथवा *शिक्षा-गुरु* बन सकता है।...श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया यह आदेश शास्त्रों के आदेश के विरुद्ध नहीं है। *पद्म-पुराण* में कहा गया है—

न शूद्रा भगवद्भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमा:।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने॥

जो आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है, वह शूद्रकुल में उत्पन्न होने पर भी शूद्र नहीं होता। किन्तु एक विप्र या ब्राह्मण अपने षड्ब्राह्मण कर्मों (पठन, पाठन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह) तथा वैदिक स्तोत्रों में भी पटु क्यों न हो, किन्तु यदि वह वैष्णव नहीं है तो वह गुरु नहीं बन सकता। किन्तु यदि चाण्डालकुल में जन्म लेकर वह कृष्णभावनामृत में दक्ष हो तो वह गुरु बन सकता है।...जब तक हम श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा संस्थापित नियम को स्वीकार नहीं करते, तब तक यह कृष्णभावनामृत

आन्दोलन सारे विश्व में नहीं फैल सकता। श्रीचैतन्य महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा थी—*पृथिवीते आछे यत नगरादिग्राम। सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम।* श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में किया जाना चाहिए। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि लोग उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करके शूद्र या चाण्डाल बने रहें। ज्योंही कोई शुद्ध वैष्णव के रूप में प्रशिक्षित हो ले उसे प्रामाणिक ब्राह्मण मान लिया जाय। इस श्लोक में महाप्रभु के उपदेशों का यही सार है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ८.१२८

जन्म नहीं बल्कि कृष्ण-ज्ञान से मनुष्य गुरु बनने का पात्र बनता है

सूत गोस्वामी का जन्म ब्राह्मण कुल में नहीं हुआ था। वे एक मिश्रजाति के परिवार (विलोमज) में या असंस्कृत निम्नकुल में जन्मे थे। किन्तु महापुरुषों की संगति से, यथा श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा नैमिषारण्य के मुनियों की संगति से उनके निम्नकुल के सारे अवगुण धुल चुके थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु वैदिक प्रथाओं का पालन करने में इस सिद्धान्त का पालन करते थे और अपनी दिव्य संगति से उन्होंने अनेक निम्नकुल में जन्मे या जन्म अथवा कर्म से अयोग्य ठहराये गये व्यक्तियों को भक्ति का पद दिलाया और उन्हें आचार्य पद पर स्थापित किया। वे स्पष्ट कहते थे कि कोई भी मनुष्य चाहे वह जन्म से ब्राह्मण हो या शूद्र, गृहस्थ हो या संन्यासी यदि वह कृष्णतत्व में पारंगत है तो वह आचार्य या गुरु के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

—*भागवत* १.१८.१८

जन्म नहीं अपितु दिव्य ज्ञान मनुष्य को गुरु बनाता है

विदुर शूद्र स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अपने भाइयों—धृतराष्ट्र तथा पाण्डु—के समान राज्य के उत्तराधिकार से भी वंचित थे तो भला वे धृतराष्ट्र तथा महाराज युधिष्ठिर जैसे विद्वान राजाओं एवं क्षत्रियों के शिक्षक पद पर कैसे रह सकते थे? इसका पहला उत्तर यह है कि यद्यपि वे जन्मना शूद्र माने जाते थे, किन्तु ऋषि मैत्रेय के कहने पर उन्होंने आध्यामिक

प्रकाश के लिए संसार का परित्याग कर दिया था और विधिवत् आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की थी, अतएव वे आचार्य पद को ग्रहण करने के लिए पूर्णतया सक्षम थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो दिव्य ज्ञान या ईशतत्व से भिज्ञ है वह चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, गृहस्थ हो या संन्यासी, गुरु होने के योग्य है। यहाँ तक कि सामान्य आचारसंहिता में (परम राजनीतिज्ञ तथा नीतिविद चाणक्य पंडित के अनुसार) शूद्र से भी निम्न व्यक्ति से शिक्षा ग्रहण करने में कोई हानि नहीं मानी गई।

—*भागवत* १.१३.१५

यदि कोई कृष्णभावनामृत में बढ़ा-चढ़ा है तो उसकी सामाजिक स्थिति चाहे कुछ भी हो, वह गुरु बन सकता है

चाणक्य पण्डित की सलाह है *नीचादप्युत्तमं ज्ञानम्*—निम्न वर्ण के व्यक्ति से शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। सर्वोच्च वर्ण के सदस्य ब्राह्मण गुरु होते हैं, किन्तु निम्नकुल को यथा क्षत्रियों, वैश्यों या शूद्रों के भी कुल के व्यक्ति को गुरु बनाया जा सकता है यदि वह ज्ञानी है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसकी हामी भर दी जब वे रामानन्द राय के समक्ष अपना मत व्यक्त कर रहे थे (*श्रीचैतन्य-चरितामृत* ८.१२८)—*किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय। येइ कृष्णतत्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय*। फिर कोई चाहे ब्राह्मण हो, शूद्र हो या गृहस्थ हो या संन्यासी। ये सब भौतिक उपाधियाँ हैं। आध्यात्मिक रूप से बढ़े-चढ़े व्यक्ति का ऐसी उपाधियों से कोई सरोकार नहीं होता। अतएव यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत के विज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है तो मानव-समाज में उसका पद चाहे जो हो वह गुरु बन सकता है।

—*भागवत* ६.७.३३

कृष्णविज्ञान का ज्ञान गुरु बनने के लिए योग्यता है, न कि भौतिक पहचान

महान योगी की पत्नी होने से देवहूति अपनी स्वाभाविक स्थिति समझ गईं, अतएव वे अपनी समस्या को ईश्वर के अवतार अपने पुत्र कपिलदेव के समक्ष रख रही हैं। यद्यपि कपिलदेव उनके पुत्र हैं, किन्तु देवहूति उनसे शिक्षा ग्रहण करने में तनिक भी नहीं हिचकतीं। वे यह नहीं कहतीं "अरे!

यह तो मेरा पुत्र है। वह मुझे क्या बता सकता है? मैं उसकी माँ हूँ और मैं उसे शिक्षा दूँगी।'' शिक्षा उससे लेनी चाहिए जो ज्ञानी होता है। फिर चाहे उसका पद जो भी हो, चाहे वह बेटा हो, लड़का हो, शूद्र हो, ब्राह्मण हो, संन्यासी हो या गृहस्थ। मनुष्य को चाहिए कि ज्ञानी से ही सीखे।...यही चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है। कृष्णभावनामृत में दक्ष कोई भी व्यक्ति गुरु बन सकता है। उसका कुल या भौतिक पहचान आड़े नहीं आते। बस, उसे विज्ञान आना चाहिए। जब हम किसी इंजीनियर, डाक्टर या वकील की सलाह लेते हैं तो हम यह नहीं पूछते कि वह ब्राह्मण है या शूद्र। यदि वह योग्य है तो विशिष्ट विषय के द्वारा सहायता कर सकता है। इसी तरह यदि कोई कृष्ण-विज्ञान जानता है तो वह गुरु हो सकता है। देवहूति अपने पुत्र से शिक्षा ग्रहण कर रही थीं, क्योंकि वह कृष्ण-विज्ञान का जानकार था।...अत: जन्म का उतना महत्त्व नहीं है जितना योग्यता का। चैतन्य महाप्रभु चाहते थे कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण-विज्ञान जाने और कृष्णभावनामृत का प्रसार करे। यह अति सुगम है। हमें केवल कृष्ण द्वारा कहे गये वचनों को या वैदिक साहित्य में कृष्ण के विषय में जो कहा गया है उसे दोहराना है।

—भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ

प्रामाणिक गुरु होने के लिए यदि कोई योग्यता चाहिए तो वह कृष्णतत्त्व का ज्ञान है, जन्म या सामाजिक पद नहीं

कोई चाहे जिस पद पर हो, यदि वह कृष्णतत्त्व से पूर्णतया भिज्ञ है तो वह प्रामाणिक गुरु, शिक्षक या विज्ञान शिक्षक बन सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी में कृष्ण-विज्ञान या कृष्णभावनामृत का पर्याप्त ज्ञान है तो वह प्रामाणिक गुरु बन सकता है। समाज में किसी पद विशेष या जन्म पर यह गुरुत्व निर्भर नहीं करता। यह श्रीचैतन्य महाप्रभु का निर्णय है और यह वैदिक आदेशों के अनुरूप है। इसी निर्णय के बल पर चैतन्य महाप्रभु ने, जो पहले विश्वंभर नाम से जाने जाते थे, ईश्वरपुरी को गुरु स्वीकार किया जो एक संन्यासी थे। इसी तरह नित्यानन्द प्रभु तथा श्रीअद्वैत आचार्य ने एक संन्यासी माधवेन्द्र पुरी को अपना गुरु स्वीकार किया...इसी तरह एक अन्य आचार्य श्री रसिकानन्द ने श्रीश्यामानन्द को

अपना गुरु स्वीकार किया, यद्यपि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न नहीं हुए थे। इसी तरह गंगानारायण चक्रवर्ती ने भी नरोत्तमदास ठाकुर को अपना गुरु बनाया। प्राचीन काल में धर्म नामक एक शिकारी कई लोगों का गुरु था।...सारे शास्त्रीय आदेश तथा महामुनियों एवं महाजनों के कथन भी यह स्थापित करते हैं कि गुरु को ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं। एकमात्र योग्यता इतनी ही है कि वह कृष्णविज्ञान यानी कृष्णभावनामृत से भिज्ञ हो। केवल इतने से वह गुरु बनने का पात्र हो जाता है। रामानन्द राय के साथ हुई बातचीत से श्रीचैतन्य महाप्रभु का यही निष्कर्ष है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

प्रामाणिक शूद्र गुरु की अपेक्षा प्रामाणिक ब्राह्मण गुरु को स्वीकार करने का हरिभक्ति विलास का आदेश उन पर लागू होता है जो सामाजिक स्थिति को आध्यात्मिक स्थिति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं

हरिभक्ति विलास में कहा गया है कि यदि एक प्रामाणिक गुरु ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो और दूसरा योग्य गुरु शूद्र कुल में उत्पन्न हो तो मनुष्य को चाहिए कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न गुरु को ही स्वीकार करे। यह कथन एकतरह से सामाजिक समझौता का कार्य करता है, किन्तु इसका आध्यात्मिक ज्ञान से कोई सरोकार नहीं है। यह कथन केवल उन पर लागू होता है जो सामाजिक स्थिति को आध्यात्मिक स्थिति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। यह उन लोगों के लिए नहीं है जो आध्यात्मिक रूप से गम्भीर हैं। गम्भीर व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभु के इस आदेश को स्वीकार करेगा कि कृष्ण विज्ञान से भिज्ञ कोई भी व्यक्ति चाहे उसका पद जैसा भी हो गुरु के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु को वेदों का प्रमाण—कृष्ण विज्ञान—जानना चाहिए

ब्राह्मण की मुख्य योग्यता है कि वैदिक ज्ञान के प्रति उन्मुख हो।..असली ब्राह्मण ही स्वाभाविक शिक्षक या गुरु होता है। जबतक कोई व्यक्ति वैदिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता तबतक वह गुरु नहीं बन सकता। वेदों का

पूर्णज्ञान है भगवान् श्रीकृष्ण को जान लेना और यही वैदिक ज्ञान का चरम लक्ष्य यानी वेदान्त है। जो निर्विशेष ब्रह्म को प्राप्त है और भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखता वह गुरु नहीं हो सकता। *पद्मपुराण* में यह कहा गया है—

षट्कर्मनिपुणो विप्रो मंत्रतंत्रविशारदः।
अवैष्णवो गुरुर्नस्याद् वैष्णवः श्वपचो गुरुः॥

निर्विशेषवादी योग्य ब्राह्मण हो सकता है किन्तु वह तब तक गुरु नहीं हो सकता जब तक वह वैष्णव तत्व अथवा भगवान् के भक्तपद तक समुन्नत नहीं हो जाता। आधुनिक युग में वैदिक ज्ञान के महाजन श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है—

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
जेइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

व्यक्ति ब्राह्मण या शूद्र या संन्यासी हो सकता है किन्तु जब वह कृष्ण-विज्ञान में निष्णात होता है तभी वह गुरु बनने के योग्य होता है। (*चैतन्य चरितामृत मध्य* ८.१२८)। इसलिए गुरु की योग्यता योग्य ब्राह्मण होना नहीं, अपितु कृष्णविज्ञान में निष्णात होना है।

जो वैदिक ज्ञान में भिज्ञ है वह ब्राह्मण है और केवल वह ब्राह्मण जो शुद्ध वैष्णव है तथा कृष्णविज्ञान के सूक्ष्म रहस्यों को जानता है वही गुरु बन सकता है।

—*भागवत* ३.६.३०

गुरु को वैदिक वाङ्मय का विद्वान होना चाहिए

गुरु को वैदिक वाङ्मय में निष्णात होना चाहिए

अनुवाद: मुनियों ने कहा...आप धार्मिक जीवन के लिए विख्यात समस्त शास्त्रों तथा पुराणों के साथ ही इतिहासों में निपुण हैं। क्योंकि आपने समुचित निर्देशन में उन्हें पढ़ा है और उनकी व्याख्या भी की है।

तात्पर्य: गुरु को समस्त शास्त्रों या वेदों में पारंगत होना चाहिए। पुराण

भी वेदों के अंग है एवं महाभारत या रामायण जैसे इतिहास भी वेदों के ही अंग हैं। आचार्य या गोस्वामी को इन ग्रन्थों से पूर्णतया अवगत होना चाहिए।

—*भागवत* १.१.६

गुरु को प्रामाणिक शास्त्रों में निष्णात होना चाहिए (जिससे वह शिष्य की सारी जिज्ञासाओं का उत्तर दे सके)

भक्तियोग में प्रथम सोपान गुरु की शरण ग्रहण करना और फिर भक्ति के विषय में गुरु से जिज्ञासा करना है। ऐसी जिज्ञासा अनिवार्य है जिससे भक्तिमार्ग में आनेवाले समस्त प्रकार के अपराधों के प्रति निश्चेष्टता बनी रहे। महाराज परीक्षित की भाँति भक्ति में स्थित होते हुए भी भक्त को गुरु से इसके विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, गुरु को भी अत्यन्त सक्षम एवं पारंगत होना चाहिए जिससे वह भक्तों की सारी जिज्ञासाओं को शमित कर सके। अत: जो प्रामाणिक शास्त्रों में दक्ष न हो और संगत जिज्ञासाओं का उत्तर देने में समर्थ न हो उसे भौतिक लाभ के लिए गुरु बनने का स्वाँग नहीं करना चाहिए। जो शिष्य का उद्धार करने में असमर्थ हो उसका गुरु बनना विधिसम्मत नहीं है।

—*भागवत* २.८.७

आचार्य बनने के लिए मनुष्य को चाहिए वह वेदान्त सूत्र समझे

वैदिक पद्धति के अनुसार इसके पूर्व कि कोई व्यक्ति आचार्य माना जाय उसे ब्रह्मसूत्र समझना चाहिए। मायावाद सम्प्रदाय तथा वैष्णव सम्प्रदाय दोनों ने ही वेदान्त सूत्र की व्याख्या की है। वेदान्त सूत्र को समझे बिना कोई व्यक्ति ब्रह्म को नहीं समझ सकता।

—*श्रीचैतन्य-महाप्रभु की शिक्षाएँ*

व्यासासन पर बैठने के लिए मनुष्य को सभी दर्शन प्रणालियों से भिज्ञ होना चाहिए

अनुवाद: हे सूतगोस्वामी! आप वरिष्ठ विद्वान तथा वेदान्ती होने के कारण ईश्वर के अवतार व्यासदेव के ज्ञान से अवगत हैं और आप अन्य मुनियों

को भी जानते हैं जो सभी प्रकार के भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान में निष्णात है।

तात्पर्य : व्यासदेव के अतिरिक्त अन्य ऋषिगण छह विभिन्न दार्शनिक प्रणालियों के ग्रन्थकार हैं—यथा गौतम, कण्व, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि तथा अष्टावक्र। आस्तिकता की विशेष व्याख्या *वेदान्त-सूत्र* में है जबकि अन्य दार्शनिक व चिन्तन प्रणालियों में कारणों के परम कारण के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। कोई व्यक्ति व्यासासन पर तभी बैठ सकता है जब वह अन्य समस्त प्रणालियों से अवगत हो जिससे वह अन्य समस्त प्रणालियों के विपक्ष में *भागवत* के आस्तिकवाद को प्रस्तुत कर सके। श्रील सूतगोस्वामी उपयुक्त शिक्षक थे इसलिए नैमिषारण्य के मुनियों ने उन्हें व्यासासन पर बैठाया।

—*भागवत* १.१.७

आचार्य को वेदान्त दर्शन जानना चाहिए

मनुष्य को यह भलीभाँति जान लेना चाहिए कि वैष्णव दार्शनिक न तो भावुक हैं, न ही सहजियों जैसे ऐसे वैसे भक्त हैं। सारे वैष्णव आचार्य-प्रकाण्ड पंडित थे जिन्हें वेदान्त दर्शन का पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि वेदान्त दर्शन जाने बिना कोई आचार्य नहीं बन सकता। भारतीय अध्यात्मवादियों में आचार्य के रूप में मान्य होने के लिए वेदान्त दर्शन का प्रकाण्ड पण्डित होना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.१०२

गुरु साक्षात् वेद है

आचार्यो ब्रह्मणोमूर्तिः

अनुवाद : आचार्य यानी गुरु जो समस्त वैदिक ज्ञान की शिक्षा देता है और यज्ञोपवीत प्रदान करके दीक्षा देता है वह समस्त वेदों का साकार रूप है।

—*भागवत* ६.७.२९

गुरु बनने के लिए मनुष्य को भगवान् से तथा अपने

गुरु से शक्त्याविष्ट होना चाहिए

एकमात्र भगवान् के आदेश से मनुष्य गुरु बने; वह भौतिक मन्तव्यों के लिए ऐसा न करे

पतितात्माओं को सुधारने के लिए मनुष्य को भगवान् के बाहरी कार्यों में मनुष्य को उनका सहयोग देना चाहिए। किसी को निजी लाभ के लिए गुरु नहीं बनना चाहिए। ऐसे प्रामाणिक गुरु जो भगवान् को सहयोग देने के लिए भगवान् की ओर दृष्टि लगाते हैं वे गुणात्मक रूप से भगवान् से एकाकार होते हैं।

—*भागवत* १.१३.४८

परम्परा में जब तक कोई श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिष्य-परम्परा में उनकी कृपा प्राप्त नहीं करता वह गुरु के रूप में कार्य नहीं कर सकता

अनुवाद: तब महाप्रभु ने उन बौद्ध शिष्यों से कहा, "तुम सभी मिलकर अपने गुरु के कान में जोर से कृष्ण और हरि के नामों का उच्चारण करो। इस तरह से तुम्हारे गुरु को होश आ जाएगा।" श्रीचैतन्य महाप्रभु की सलाह मानकर वे बौद्ध शिष्य कृष्णनाम का सामूहिक संकीर्तन करने लगे तो बौद्ध आचार्य की चेतना वापस आ गई और वह तुरन्त हरिनाम का कीर्तन करने लगा।

तात्पर्य: श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सारे बौद्ध शिष्यों को कृष्णनाम कीर्तन करने के लिए दीक्षित कर लिया और जब वे कीर्तन करने लगे तो वे वास्तव में भिन्न व्यक्ति बन गये। तब वे बौद्ध या नास्तिक नहीं रहे, अपितु वैष्णव बन गये। फलस्वरूप उन्होंने तुरन्त महाप्रभु की आज्ञा मान ली। उनकी मूल कृष्णभावना जागृत हो उठी और वे तुरन्त हरे कृष्ण कीर्तन करने तथा भगवान् विष्णु की पूजा करने लगे।...यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि बौद्धों के गुरु ने अपने शिष्यों को दीक्षा नहीं दी प्रत्युत वे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु द्वारा दीक्षित हुए और तब उन्होंने अपने तथाकथित गुरु को दीक्षा दी। यह परम्परा पद्धति है। वास्तव में वह बौद्ध आचार्य शिष्य के पद पर था

और जब उसके शिष्यों ने श्रीचैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ले ली तो वे उसके गुरु बन गये। यह इसलिए सम्भव हो सका, क्योंकि बौद्धाचार्य के शिष्यों को श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई। जब तक परम्परा द्वारा श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त न हो ले तब तक कोई गुरु नहीं बन सकता। हमें यह जानने के लिए कि गुरु तथा शिष्य कैसे बना जाय, समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदेशों को मानना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ९.५९-६१

श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से निम्नजन्मा व्यक्ति तक जगद्गुरु बन सकता है

श्रीचैतन्य महाप्रभु के दर्शन के अनुसार *येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय*—जो भी कृष्ण विज्ञान जानता है वह गुरु बन सकता है चाहे वह ब्राह्मण या संन्यासी हो या न हो। सामान्य लोग शास्त्र के सार को नहीं समझ पाते, न ही वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों के कट्टर अनुयायियों के शुद्ध चरित्र, आचरण तथा क्षमताओं को समझ सकते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन शूद्रों से भी निम्न माने जाने वाले कुलों में उत्पन्न लोगों में से शुद्ध गण्यमान वैष्णवों का सृजन कर रहा है।...भगवान् विष्णु की कृपा से मनुष्य पूर्णतया शुद्ध बन सकता है, कृष्णभावनामृत का प्रचारक हो सकता है तथा सम्पूर्ण जगत का गुरु बन सकता है। यह सिद्धान्त समस्त वैदिक वाङ्मय में स्वीकार किया गया है। प्रामाणिक शास्त्रों से प्रमाण उद्धृत किया जा सकता है कि किस तरह निम्नजन्मा व्यक्ति सम्पूर्ण जगत का गुरु बन सकता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु को सर्वाधिक वदान्य व्यक्ति मानना होगा, क्योंकि वे वैदिक शास्त्रों का असली सार उस-उस को वितरित करते हैं जो उनका निष्ठावान सेवक बनकर योग्य बन लेता है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ५.८४

जो कोई भी श्रीचैतन्य महाप्रभु को एक बार भी देख लेता है वह

सारे जगत का उद्धार करने में समर्थ गुरु बन जाता है

स्त्री-बाल-वृद्ध, आर 'चण्डाल' यवन।
ग्रेइ तोमार एक-बार पाय दरशन॥
कृष्ण-नाम लय, नाचे हञा उन्मत्त।
आचार्य हइल सेइ, तारिल जगत॥

"यहाँ तक कि स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, मांसाहारी या अधम जाति के व्यक्ति भी आपका एकबार दर्शन करने से तुरन्त कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगते हैं, पागलों की भाँति नाचते हैं और सारे संसार के उद्धार हेतु समर्थ गुरु बन सकते हैं।"

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १८.१२१-२२

कृष्ण द्वारा शक्त्याविष्ट हुए तथा कृपा पाये बिना कोई गुरु नहीं बन सकता

श्रील भक्तिसिद्धांत ठाकुर टीका करते हैं, "भगवान् कृष्ण की इच्छा पूरी करने के लिए उनकी प्रत्यक्ष शक्ति तथा उनकी कृपा प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति जगद्गुरु नहीं बन सकता। वह मानसिक चिन्तन द्वारा तो सफल हो ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसा चिन्तन भक्तों या धार्मिक लोगों के लिए नहीं है।"

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २५.९

शक्त्याविष्ट गुरु के गुण

श्रील भक्तिसिद्धांत ठाकुर टीका करते हैं "भगवान् कृष्ण की इच्छा पूरी करने के लिए उनकी प्रत्यक्ष शक्ति पाये बिना तथा महाप्रभु के द्वारा विशेष रूप से अनुग्रह किये गये बिना कोई भी व्यक्ति जगद्गुरु नहीं बन सकता। वह मानसिक चिन्तन द्वारा तो सफल हो ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसा चिन्तन भक्तों या धार्मिक लोगों के लिए नहीं है। केवल शक्त्याविष्ट पुरुष ही भगवन्नाम का वितरण कर सकता है और समस्त पतितात्माओं को कृष्ण की पूजा करने का आदेश दे सकता है। भगवन्नाम वितरण द्वारा वह अधम से अधम लोगों के हृदयों के मैल को दूर कर सकता

है और भौतिक जगत की प्रज्ज्वलित अग्नि को बुझा सकता है। यही नहीं, वह पूरे विश्व में कृष्ण के तेज की प्रखरता का प्रसार कर सकता है। ऐसे आचार्य को कृष्ण से अभिन्न मानना चाहिए—अर्थात् उसे कृष्ण का शक्त्यावतार मानना चाहिए। ऐसा व्यक्ति *कृष्णालिङ्गित विग्रह* कहलाता है—अर्थात् वह कृष्ण द्वारा आलिंगित होता है। ऐसा व्यक्ति वर्णाश्रम व्यवस्था से ऊपर होता है। वह सारे जगत का गुरु महाभागवत होता है। वह *परमहंस ठाकुर* अर्थात् *परमहंस* या *ठाकुर* कहलाने के योग्य होता है।"

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २५.९

गुरु की कट्टर स्वामिभक्ति के बिना मनुष्य अपने से प्रामाणिक गुरु नहीं बन सकता

जो आज शिष्य है वही अगला गुरु है। कोई व्यक्ति प्रामाणिक तथा अधिकृत गुरु तब तक नहीं हो सकता जब तक वह अपने गुरु का कट्टर स्वामिभक्त न हो।

—*भागवत* २.९.४३

प्रामाणिक गुरु वह है जिसने गुरु कृपा प्राप्त कर ली है

प्रामाणिक गुरु वह है जिसने अपने गुरु की कृपा प्राप्त कर ली हो और वह स्वयं प्रामाणिक है, क्योंकि उसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त हो चुकी है।

—*भागवत* ८.१६.२४

गुरु को कृष्ण का प्रतिनिधि होना चाहिए

गुरु को आदि गुरु कृष्ण का प्रतिनिधि होना चाहिए

कृष्ण गुरु हैं, क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्मा को वेदों का उपदेश दिया और इस समय वे अर्जुन को भी *भगवद्गीता* का उपदेश दे रहे हैं, अतः वे आदि गुरु हैं और इस समय किसी भी प्रामाणिक गुरु को कृष्ण से प्रारम्भ होने वाली परम्परा का वंशज होना चाहिए। कृष्ण का प्रतिनिधि हुए बिना कोई न तो शिक्षक, न ही आध्यात्मिक विषयों का गुरु हो सकता है।

—*भगवद्गीता* ११.४३

गुरु को कृष्ण का प्रतिनिधि होना चाहिए

ब्रह्माण्ड भर में चक्कर लगाने वाली समस्त जीवात्माओं में जो सर्वाधिक भाग्यवान् है वही श्रीभगवान् के प्रतिनिधि के सम्पर्क में आता है और सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करता है। जो निष्ठा से श्रीकृष्ण की कृपा के लिए लालायित रहते हैं उन्हें ऐसा गुरु प्राप्त होता है जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। मनोकल्पना करने वाले मायावादी तथा कर्मों के फल की इच्छा रखने वाले कर्मी गुरु नहीं बन सकते। गुरु को कृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होना चाहिए जो उनके निर्देशों को बिना किसी परिवर्तन के फैलाए। इस प्रकार केवल भाग्यवान व्यक्ति ही गुरु के सम्पर्क में आते हैं। जैसी कि वैदिक शास्त्रों से पुष्टि होती है—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुं एवाभिगच्छेत्*—आध्यात्मिक जगत के व्यापारों को समझने के लिए गुरु की खोज करनी होती है। *श्रीमद्भागवत* में भी इसकी पुष्टि की गई है—*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्*—आध्यात्मिक जगत् में कार्यों को जानने के इच्छुक व्यक्ति को गुरु की खोज अवश्य करनी चाहिए—ऐसा गुरु जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि हो। अतः सभी दृष्टियों से गुरु शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि ही है, अन्य कुछ नहीं। *पद्म पुराण* में कहा गया है कि—*अवैष्णवो गुरुर्न स्यात्*—जो वैष्णव नहीं है अर्थात् जो कृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि नहीं है वह गुरु नहीं हो सकता। यहाँ तक कि योग्य ब्राह्मण भी, यदि वह श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि नहीं है तो गुरु नहीं हो सकता।...*वैष्णवः श्वपचो गुरुः*—श्वपच अर्थात् कुत्ताभक्षी परिवार का होकर भी भगवान् विष्णु का प्रामाणिक प्रतिनिधि वैष्णव गुरु बन सकता है।

—*श्रीमद्भागवत* ५.१७.११

कृष्ण तथा उनके प्रतिनिधि यानी गुरु के निर्देशक एक हैं और वे भौतिक फल से मुक्त हैं

कृष्ण के निर्देशन में किया गया कोई भी कार्य दिव्य है। यह शुभ या अशुभफलों से दूषित नहीं होता।...अतः यदि हम तनिक भी चाहते हैं कि हमारे कर्म शुभ हों तो हमें परमेश्वर की आज्ञा से कर्म करना होगा। ऐसी आज्ञा गुरु से प्राप्त की जा सकती है। चूँकि गुरु भगवान् का प्रतिनिधि होता है, अतः उसकी आज्ञा प्रत्यक्षतः परमेश्वर की आज्ञा होती है। गुरु, शास्त्र तथा साधु एक ही प्रकार से आज्ञा देते हैं। इन तीनों स्रोतों में कोई विरोध नहीं होता। इस प्रकार से किये गये सारे कार्य

इस जगत के शुभाशुभ कर्मफलों से मुक्त होते हैं।

—*भगवद्गीता १०.३*

गुरु को कृष्ण भक्त होना चाहिए

गुरु की योग्यता है ब्रह्मनिष्ठम्

गुरु की योग्यता है कि वह *ब्रह्मनिष्ठम्* होता है जिसका अर्थ है कि उसने अन्य सारे कर्मों को त्याग दिया है और उसने अपना जीवन भगवान् कृष्ण के लिए ही कार्य करने हेतु अर्पित कर दिया है।

—*लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण*

ऐसा व्यक्ति जिसमें भगवान् के लिए सेवा-भाव नहीं है यदि वह आचार्य होने का ढोंग करता है तो वह अपराधी है और आचार्य होने के अयोग्य है

यदि कोई आचार्य होने का ढोंग करता है, किन्तु उसमें भगवान् के प्रति सेवाभाव नहीं होता तो उसे अपराधी मानना चाहिए। उसका यह अपराधी भाव उसे आचार्य होने के अयोग्य बनाता है। प्रामाणिक गुरु सदैव भगवान् की शुद्ध भक्ति में अपने को लगाता है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि १.४६*

प्रामाणिक गुरु वह है जो भक्ति योग के विज्ञान को जानता है और उसी में स्थिर रहता है

प्रामाणिक गुरु वह है जो परम्परा से चले आ रहे भक्ति-विज्ञान को जानता है। यह परम्परा *श्रोत्रियम्* कहलाती है। परम्परा में बने हुए गुरु का मुख्य लक्षण है कि वह शतप्रतिशत भक्तियोग में स्थिर रहता है।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

केवल वैष्णव ही गुरु हो सकता है: वैष्णव गुरु स्वत: ब्राह्मण होता है

यदि कोई अत्यन्त योग्य है, किन्तु वैष्णव नहीं है तो वह गुरु नहीं बन सकता। इसी तरह जबतक कोई वैष्णव न हो तब तक ब्राह्मण नहीं

हो सकता। यदि कोई वैष्णव है तो वह पहले से ब्राह्मण है। यदि गुरु वैष्णव होने के लिए पूर्णरूपेण योग्य है तो उसे ब्राह्मण मान लेना चाहिए, भले ही उसका जन्म ब्राह्मण कुल में न हुआ हो। प्रामाणिक गुरु पर जन्मना ब्राह्मण होने की जाति प्रथा लागू नहीं होती। गुरु योग्य ब्राह्मण तथा आचार्य होता है। यदि कोई योग्य ब्राह्मण नहीं है तो वह वैदिक साहित्य का अध्ययन करने में दक्ष नहीं होगा।...प्रत्येक वैष्णव गुरु होता है और प्रत्येक गुरु स्वतः ब्राह्मण आचरण में दक्ष होता है।

—*चैतन्यचरितामृत मध्य* २४.३३०

गुरु को शुद्ध भक्त, महाभागवत उत्तम अधिकारी होना चाहिए

शुद्ध भगवद्भक्त हुए बिना कोई गुरु नहीं बन सकता

अनुवाद: जो भक्ति में लगा हुआ है वह इस संसार से रंचमात्र भी नहीं डरता। इसका कारण यह है कि भगवान् परमात्मा हैं और सबके सखा हैं। जो इस रहस्य को जानता है वही वास्तव में शिक्षित है और ऐसा शिक्षित व्यक्ति ही संसार का गुरु हो सकता है।...

तात्पर्य: भक्त सदैव भगवान् की प्रेमाभक्ति में संलग्न रहता है। ऐसा व्यक्ति वास्तविक गुरु है। *पद्मपुराण* में कहा गया है—

षटकर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्रविशारदः।
अवैष्णवो गुरुर्न स्याद् वैष्णवः श्वपचो गुरुः॥

"भले ही ब्राह्मण समस्त शास्त्रों में निपुण हो और ब्राह्मण के षड्कर्मों को जानता हो किन्तु वह तब तक गुरु नहीं हो सकता जब तक भगवान् का भक्त न हो। किन्तु यदि वह चाण्डाल के परिवार में उत्पन्न होकर भगवान् का शुद्ध भक्त है तो वह गुरु बन सकता है।" निष्कर्ष यह निकलता है कि जब तक कोई भगवान् का शुद्ध भक्त नहीं होता, वह गुरु नहीं बन सकता।...अतः मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए। जीवन की सफलता का अर्थ है ऐसा गुरु बनाना जो कृष्ण को एकमात्र परम प्रिय व्यक्ति मानता हो।

—*भागवत* ४.२९.५१

गुरु को भक्त के सर्वोच्च पद पर आसीन होना चाहिए

गुरु को सर्वोच्च पद पर स्थित होना चाहिए। भक्तों की तीन कोटियाँ होती हैं और गुरु की सर्वोच्च कोटि होनी चाहिए।...*महाभागवत* वह है जो अपने शरीर पर तिलक लगाता है और जिसके नाम के साथ कृष्ण का दास लगा होता है। वह प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त किये होता है, देव-अर्चन करना, मन्त्रों को शुद्ध उच्चारण करना, यज्ञ करना, भगवान् की स्तुति करना तथा वैष्णव का सम्मान करना जानता है। जिसने महाभागवत का पद प्राप्त किया हो, उसे गुरु मान कर उसकी पूजा हरि के ही समान करनी चाहिए। ऐसा ही व्यक्ति गुरु का स्थान ग्रहण करने के योग्य होता है।

—*चैतन्य चरितामृत मध्य* २४.३३०

केवल उत्तम अधिकारी ही गुरु बन सकता है: उत्तम अधिकारी के लक्षण

मनुष्य को तब तक गुरु नहीं बनना चाहिए जब तक उसने उत्तम अधिकारी का पद प्राप्त न कर लिया हो।...उत्तम अधिकारी यानी सर्वोच्च भक्त वह है जो भक्ति में बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है। उत्तम अधिकारी अन्यों की निन्दा करने में रुचि नहीं लेता, उसका हृदय पूर्णतया निर्मल होता है और वह शुद्ध कृष्णभावनामृत की स्वरूपसिद्ध अवस्था प्राप्त कर चुका होता है। श्रील रूपगोस्वामी के अनुसार, ऐसे महाभागवत की संगति तथा सेवा अत्यन्त वांछनीय हैं।...अनेक प्रामाणिक वैष्णवों में कोई एक भगवद्भक्ति में गम्भीरतापूर्वक लगा हो सकता है और समस्त विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करता है, जितनी बार जपमाला का आदेश है उसका जप करता है और सदैव सोचता रहता है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार किस तरह किया जाय। ऐसे वैष्णव को उत्तम अधिकारी मानना चाहिए और उसकी संगति करनी चाहिए।...जब कोई व्यक्ति अपने को कृष्ण का नित्य सेवक मानता है तो वह कृष्ण सेवा के अतिरिक्त अन्य सारी वस्तुओं में रुचि नहीं लेता। सदैव कृष्ण का चिन्तन करते, कृष्ण के पवित्र नाम का विस्तार करने के साधन जुटाते हुए वह यह समझता है कि उसका एकमात्र कार्य सारे जगत् में कृष्णभावनामृत का विस्तार करना है। ऐसे

व्यक्ति को उत्तम अधिकारी मानना होगा और उसकी संगति को छः विधियों के अनुसार (*ददाति प्रतिगृहणाति*) तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए। निस्सन्देह, बढ़ा-चढ़ा उत्तम अधिकारी वैष्णव भक्त को गुरु मानना चाहिए।...श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस सम्बन्ध में कुछ व्यावहारिक हिदायतें दी हैं कि उत्तम अधिकारी वैष्णव को अनेक पतितात्माओं को वैष्णव बनाने की उसकी शक्ति से पहचाना जाना चाहिए।

—*उपदेशामृत श्लोक ५*

शिष्य के लिए श्रेयस्कर होगा कि वह कनिष्ठ या मध्यम अधिकारी की अपेक्षा उत्तम अधिकारी को गुरु माने

जब तक मनुष्य उत्तम अधिकारी पद को प्राप्त न कर ले, उसे गुरु नहीं बनना चाहिए। नवदीक्षित वैष्णव (कनिष्ठ अधिकारी) या आध्यात्मिक पद पर स्थित वैष्णव (मध्यम अधिकारी) भी शिष्य बना सकता है। किन्तु ऐसे शिष्य उसी स्तर के होने चाहिए और यह समझ लेना चाहिए कि उनके अपर्याप्त निर्देशन में वे जीवन के चरम लक्ष्य की ओर ठीक से अग्रसर नहीं हो सकते। अतएव गुरु के रूप में उत्तम अधिकारी को स्वीकार करते समय शिष्य को सावधान रहना चाहिए।

—*उपदेशामृत श्लोक ५*

गुरु कृष्ण का विश्वस्त सेवक होता है

गुरु समस्त बद्धात्माओं का उद्धार करने की भगवान् की अत्यन्त विश्वस्त सेवा में लगा रहता है

ईश्वर का दास गुरु भगवान् की सबसे विश्वस्त सेवा में अर्थात् समस्त बद्धात्माओं का उद्धार करने में लगा रहता है।

—*भागवत* ७.५.११

गुरु कृष्ण का विश्वस्त सेवक है क्योंकि वह लोगों से कृष्ण की शरण में आने के लिए कहता रहता है

कृष्ण का सर्वाधिक विश्वस्त दास होने से गुरु कृष्ण को अतिप्रिय होता है अतएव यदि वह किसी की संस्तुति कृष्ण के पास जाने की

करता है तो कृष्ण उस व्यक्ति को स्वीकार करते हैं। गुरु कृष्ण का विश्वस्त दास होता है, क्योंकि वह द्वार-द्वार जाकर यह कहकर प्रचार करता है "आप कृष्णभावनाभावित बनें तथा कृष्ण की शरण में आवें।" कृष्ण अर्जुन से बतलाते हैं कि ऐसा व्यक्ति उन्हें अति प्रिय है।

—भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ

गुरु कृष्ण को अत्यन्त प्रिय होता है, क्योंकि वह कृष्णभावनामृत का प्रचार करने की विश्वस्त सेवा करने के लिए कहीं भी जाने को तैयार रहता है

गुरु इस बात में दयालु है कि वह द्वार द्वार, देश देश, नगर नगर जाकर भिक्षा माँगता है "देवियो तथा सज्जनो! बालको तथा बालिकाओ! आपलोग कृष्णभावनामृत स्वीकार करें।" इस तरह वह कृष्ण की अति विश्वस्त सेवा करता है। कृष्ण आदेश देने वाले परम प्रभु हैं और गुरु इन आदेशों को पूरा करता है इसलिए गुरु कृष्ण को अति प्रिय होता है। कृष्ण उसे स्वर्ग भेजें या नरक, इसका उस पर कोई असर नहीं पड़ता। गुरु यानी शुद्ध भक्त के लिए स्वर्ग तथा नरक दोनों एक से हैं यदि कृष्णभावनामृत न हो। नरक में लोग नाना प्रकार से इन्द्रियभोग कर रहे हैं, किन्तु भगवद्भक्त किसी भी स्थान में रह सकता है जहाँ कृष्णभावनामृत हो। चूँकि वह इस भावना को अपने साथ ले जाता है, अतएव वह सदैव आत्मतुष्ट रहता है। यदि उसे नरक भेजा जाता है तो वह मात्र हरे कृष्ण कीर्तन करके सन्तुष्ट रहेगा। वस्तुतः वह नरक पर नहीं अपितु कृष्ण पर विश्वास करता है। इसी तरह यदि उसे स्वर्ग में रखा जाय, जहाँ इन्द्रियतृप्ति के अनेकानेक साधन हैं तो भी वह उनसे विलग रहेगा, क्योंकि उसकी इन्द्रियों की तुष्टि स्वयं कृष्ण द्वारा होती है। इसी तरह भगवान् की सेवा के लिए भक्त कहीं भी जाने को तैयार रहता है। इसी कारण से वह कृष्ण को अति प्रिय होता है।

—आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान पृष्ठ २९८-९९

गुरु को समर्थ होना चाहिए कि वह अपने शिष्यों को

जन्म-मृत्यु से छुटकारा दिलाकर उन्हें भगवद्धाम ले जा सके

अपने अधीन शिष्यों को जन्म-मृत्यु से बचाने में गुरु को सक्षम होना चाहिए

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥

अनुवाद: जो अपने आश्रित को बारम्बार जन्म-मृत्यु के पथ से न उबार सके उसे कभी भी गुरु, पिता, पति, माँ या आराध्य देव नहीं बनना चाहिए।

तात्पर्य: गुरु कई प्रकार के होते हैं, किन्तु ऋषभदेव का उपदेश है कि जो गुरु अपने शिष्य को जन्म-मरण के पथ से उबार सकने में असमर्थ हो उसे गुरु नहीं बनना चाहिए। श्रीकृष्ण का शुद्धभक्त हुए बिना कोई व्यक्ति बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के पथ से अपने को बचा नहीं पाता। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*। केवल भगवान् के धाम पहुँच कर ही मनुष्य जन्म-मृत्यु के बन्धन से छूट सकता है। लेकिन जब तक वह सचमुच ही परमेश्वर को नहीं समझता तब तक वह परम धाम कैसे जा सकता है? *जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।*

इतिहास में ऋषभदेव के उपदेशों का दृष्टान्त प्रस्तुत करने वाली कई घटनाएँ हैं। बलि महाराज ने शुक्राचार्य का इसलिए परित्याग किया क्योंकि वे उन्हें जन्म-मरण के मार्ग से बचाने में असमर्थ रहे। शुक्राचार्य शुद्ध भक्त नहीं थे, वे सकाम कर्म में प्रवृत्त थे और जब बलि महाराज ने भगवान् विष्णु को अपना सर्वस्व देना चाहा तो शुक्राचार्य ने उन्हें रोका।...

सामान्यतः गुरु, पति, पिता, माता या गुरु-परिजन अपने से कनिष्ठ परिजन की आराधना स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु यहाँ पर ऋषभदेव इसके लिए मना करते हैं। पहले तो पिता, गुरु या पति को इतना सक्षम होना चाहिए कि अपने आश्रित को बारम्बार जन्म तथा मृत्यु से उबार सके।

यदि ऐसा नहीं कर पाते तो वे भर्त्सना के सागर में डूबते हैं। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपने आश्रित का वैसा ही ध्यान रखे जैसा कि गुरु अपने शिष्य का या कि पिता अपने पुत्र का रखता है। ये सारे उत्तरदायित्व एकसाथ तब तक नहीं निभाये जा सकते जब तक अपने आश्रित को जन्म-मृत्यु के चक्कर से उबार न लिया जाय।

—*भागवत* ५.५.१८

यदि गुरु अपने शिष्य को भगवद्धाम वापस न ले जा सके तो वह गुरु नहीं बने

शास्त्र के अनुसार, गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य को भगवद्धाम वापस ले जाय। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता बल्कि उल्टे शिष्य को भगवद्धाम वापस जाने में बाधक होता है तो उसे गुरु नहीं होना चाहिए। *गुरुर्न स स्यात्* (भागवत ५.५.१८)। यदि कोई व्यक्ति अपने शिष्य को कृष्णभावनामृत की ओर अग्रसर नहीं करा सकता तो उसे गुरु नहीं बनना है। जीवन का उद्देश्य कृष्णभक्त बनना है जिससे वह भव-बन्धन से मुक्त किया जा सके (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। गुरु कृष्णभावनामृत उत्पन्न करके शिष्य को इस अवस्था को प्राप्त कराने में सहायता करता है।

—*भागवत* ८.२०.१

गुरु को इतना समर्थ होना चाहिए कि अपने शिष्य को भगवद्धाम ले जा सके

नवदीक्षित भक्त के लिए भक्ति का प्रशिक्षण पूर्णतया उस दक्ष गुरु पर निर्भर करता है जो यह जानता है कि भगवद्धाम के मार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए क्रमिक प्रगति हेतु किस प्रकार मार्गदर्शन कराया जाय। मनुष्य को अपने परिवार का खर्च चलाने के लिए व्यापार के रूप में छद्म गुरु नहीं बनना चाहिए। उसे शिष्य को आसन्न मृत्यु के पाश से उबारने के लिए दक्ष गुरु होना चाहिए।

—*भागवत* २.३.२२

प्रामाणिक गुरु वह है जो अपने शिष्य को वासुदेव की पूजा करने

के लिए प्रशिक्षित करता है

कश्यप मुनि ने अपनी पत्नी को सलाह दी कि वह वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ले जिससे उसकी सारी समस्याएँ आसानी से हल हो जायँ। इस तरह कश्यप मुनि आदर्श गुरु हैं। वे इतने मूर्ख न थे कि अपने को ईश्वर के तुल्य प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते। वे वास्तव में एक प्रामाणिक गुरु थे, क्योंकि उन्होंने अपनी पत्नी को वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने की सलाह दी। जो व्यक्ति अपने आश्रित या शिष्य को वासुदेव की पूजा करने का प्रशिक्षण देता है वह सचमुच प्रामाणिक गुरु है।

—*भागवत ८.१६.२०*

गुरु को अन्ततोगत्वा अपने शिष्य को भगवान् कृष्ण की सेवा में लगाने में समर्थ होना चाहिए

ऐसा व्यक्ति, जो अन्यों का गुरु हो, उसे चाहिए कि यदि वह अपने शिष्य को अन्ततोगत्वा श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेमा भक्ति में लगा पाने में असमर्थ हो तो ऐसा दिखावा नहीं करे।

—*भागवत १.१३.२*

गुरु को दृष्टान्त द्वारा शिक्षा देनी चाहिए

गुरु को चाहिए कि दृष्टान्त द्वारा शिक्षा दे

अनुवाद: महापुरुष जो जो आचरण करता है, सामान्य व्यक्ति उसी का अनुसरण करते हैं। वह अपने अनुसरणीय कार्यों से जो आदर्श प्रस्तुत करता है, सम्पूर्ण विश्व उसका अनुसरण करता है।

तात्पर्य: सामान्य लोगों को सदैव एक ऐसे नेता की आवश्यकता होती है जो व्यावहारिक आचरण द्वारा जनता को शिक्षा दे सके। यदि नेता स्वयं धूम्रपान करता है तो वह जनता को धूम्रपान बन्द करने की शिक्षा नहीं दे सकता। भगवान् चैतन्य ने कहा है कि शिक्षा देने के पूर्व शिक्षक को ठीक-ठीक आचरण करना चाहिए। जो इस प्रकार शिक्षा देता है वह

आचार्य या आदर्श शिक्षक कहलाता है।

—*भगवद्गीता* ३.२१

आदर्श गुरु को दृष्टान्त द्वारा शिक्षा देनी चाहिए अन्यथा कोई नहीं समझ पाएगा

यद्यपि भगवान् के लिए कुछ भी करना अनिवार्य नहीं है किन्तु वे सब कुछ करते हैं जिससे अन्य लोग उनका अनुगमन कर सकें। वास्तविक शिक्षण की विधि यही है। मनुष्य को चाहिए कि स्वयं उचित कर्म करे और अन्यों को भी यही शिक्षा दे, अन्यथा उसका अनुगमन कोई नहीं करेगा।

—*भागवत* १.१०.३६

गुरु स्वयं तदनुसार कार्य किये बिना अपने शिष्यों को आदेश नहीं देता

अनुवाद: एक बार जीवों के पूर्वज तथा धर्म के पिता ब्रह्माजी ने समस्त जीवों के कल्याण में ही अपना हित समझते हुए विधिपूर्वक यम-नियमों को धारण किया।

तात्पर्य: यम-नियमों को धारण किये बिना कोई उच्च पद पर आसीन नहीं हो सकता। इन्द्रियतृप्ति का असंयमित जीवन पशु-जीवन है और ब्रह्माजी ने अपनी संततियों को उच्चतर कर्तव्यों के निर्वाह हेतु इन्द्रियों पर संयम रखने की शिक्षा दी। वे भगवान् के दास रूप में सबों का कल्याण चाह रहे थे और जो भी अपने कुल तथा पीढ़ियों के कल्याण की कामना करता है उसे शिष्य-परम्परा के अनेक व्यक्ति जो भगवान् के शुद्ध भक्त हैं जब तक स्वयं वैसा आचरण नहीं करते तब तक अपने आश्रितों को किसी भी प्रकार का आदेश नहीं दे सकते।

—*भागवत* २.९.४०

गुरु को आत्मसंयमी होना चाहिए

ऐसा धीर व्यक्ति जो छह वेगों को नियन्त्रित कर सके वह सारे विश्व

में शिष्य बना सकता है

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगम् उदरोपस्थवेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः
सर्वाम् अपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

अनुवाद: ऐसा धीर व्यक्ति जो वाणी, मन की इच्छाओं, क्रोध के कार्यों तथा जीभ, उदर एवं उपस्थ के वेगों को सह सके वह सारे विश्व में शिष्य बनाने के लिए योग्य है।

—*श्रीउपदेशामृत श्लोक १*

जो अपनी इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं रखता वह गुरु नहीं बन सकता

जो व्यक्ति इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है वह गोस्वामी या गोसाईं कहलाता है। जो ऐसा नियन्त्रण नहीं रख पाता वह *गोदास* यानी इन्द्रियों का दास कहलाता है और वह गुरु नहीं बन सकता। ऐसा गुरु जो वास्तव में अपने मन तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है *गोस्वामी* कहलाता है।

—*चैतन्य चरितामृत आदि ७.१३*

गुरु तथा शिष्य दोनों ही आत्मसंयमी हों

जो आत्मसंयमी नहीं है, विशेषतया यौन जीवन में, वह न तो शिष्य बन सकता है न गुरु। मनुष्य को वाणी, क्रोध, जीभ, मन, उदर तथा कर्मेन्द्रियों पर संयम रखने की शिक्षा मिलनी चाहिए। जो विशिष्ट इन्द्रियों पर संयम प्राप्त कर लेता है वह *गोस्वामी* कहलाता है। गोस्वामी हुए बिना न तो कोई शिष्य बन सकता है और न गुरु। इन्द्रिय-संयम के बिना तथाकथित गुरु निश्चय ही वंचक (ठग) है और उसका शिष्य वंचित।

—*भागवत २.९.४३*

गुरु का शरीर आध्यात्मिक होता है

गुरु का शरीर आध्यात्मिक होता है

भौतिक शरीर निश्चय ही भौतिक तत्वों से बना हुआ है, किन्तु जब कृष्णभावनामृत का ज्ञान हो जाता है तो यह शरीर भौतिक न रहकर आध्यात्मिक बन जाता है। भौतिक शरीर इन्द्रियभोग के लिए है, किन्तु आध्यात्मिक शरीर भगवान् की प्रेमा-भक्ति में लगा रहता है। अतएव जो भक्त भगवान् की सेवा में लगकर उन्हीं का चिन्तन करता है उसके शरीर को कभी भी भौतिक नहीं मानना चाहिए। इसलिए आदेश दिया गया है *गुरुषु नरमतिः*—गुरु को कभी भी भौतिक शरीरधारी सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिए। *अर्च्ये विष्णौ शिलाधीः*—प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मन्दिर का अर्चाविग्रह पत्थर का बना होता है, किन्तु यह सोचना अपराध है कि अर्चाविग्रह मात्र पत्थर है। इसी प्रकार गुरु के शरीर को भौतिक अवयवों से बना सोचना अपराध है। नास्तिक लोग सोचते हैं कि भक्तगण मूर्खतावश पत्थर की मूर्ति की पूजा ईश्वर के रूप में करते हैं और एक सामान्य पुरुष को गुरु मानते हैं। किन्तु तथ्य यह है कि कृष्ण की कृपा से अर्चाविग्रह की तथाकथित पत्थर-मूर्ति प्रत्यक्ष भगवान् की होती है और गुरु का शरीर प्रत्यक्ष आध्यात्मिक होता है। ऐसा शुद्ध भक्त, जो अनन्य भक्ति में लगा रहता है, उसे दिव्य पद पर स्थित मानना चाहिए (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। अतएव हमें चाहिए कि भगवान् को सादर नमस्कार करें जिनकी कृपा से तथाकथित भौतिक वस्तुएँ भी आध्यात्मिक कार्य में लगी रहने पर आध्यात्मिक बन जाती हैं।

—*भागवत ८.३.२*

गुरु का शरीर आध्यात्मिक होता है अतएव भौतिक दशाओं से अप्रभावित रहता है

जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में (*यतो भक्तिरधोक्षजे*) अविराम तथा निरवरोध लगा रहता है वह अपनी मूल आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त समझा जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर वह सदैव दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। अन्यथा देहात्म बुद्धि के कारण उसे भौतिक कष्ट भोगने पड़ते हैं (*जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्*)। शरीर में जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग लगे ही रहते हैं, किन्तु जिसका जीवन आध्यात्मिक

है (*यतो भक्तिरधोक्षजे*) उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग नहीं सताते। कोई यह तर्क कर सकता है कि चौबीसों घण्टे अध्यात्म में लगा रहने वाला व्यक्ति भी रोग से पीड़ित देखा जा सकता है। तथ्य तो यह है कि वह न तो कष्ट भोग रहा होता है, न रोगी होता है, अन्यथा वह चौबीसों घण्टे आध्यात्मिक कार्यों में कैसे लगा रह सकता है? उदाहरणार्थ, कभी-कभी गंगा के जल के ऊपर गन्दा फेन या कूड़ा-करकट तैरता दिखता है। यह *नीरधर्म* कहलाता है। किन्तु जो गंगा में स्नान करने जाता है वह जल में तैरते फेन तथा गंदगी की परवाह नहीं करता। वह इन गंदगियों को हाथ से हटा कर गंगा में स्नान करके स्नान का लाभ उठाता है। अतः आध्यात्मिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति फेन तथा कूड़ा-करकट या अन्य ऊपरी गन्दी बातों से अप्रभावित रहता है। इसकी पुष्टि श्रील रूपगोस्वामी ने की है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

"मनसा, वाचा, कर्मणा कृष्ण की सेवा में लगा हुआ व्यक्ति इस जगत् में रहते हुए भी मुक्त होता है।" (*भक्तिरसामृत-सिन्धु* १.२.१८७)। अतः गुरु को कभी भी सामान्य मनुष्य नहीं मानना चाहिए (*गुरुषु नरमतिः..नारकी सः*)। आध्यात्मिक गुरु या आचार्य जीवन में सदैव आध्यात्मिक पद पर रहता है। उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि नहीं सताते। अतएव *हरिभक्ति विलास* के अनुसार आचार्यों के तिरोधान होने पर उसके शरीर को भस्मीभूत नहीं किया जाता, क्योंकि वह आध्यात्मिक होता है। आध्यात्मिक शरीर भौतिक दशाओं से सदैव अप्रभावित रहता है।

—*भागवत* १०.४.२०

गुरु का आनन्द भाव

शुद्ध भक्ति रस का आस्वादन करते समय गुरु आनन्द का अनुभव

करता है

महाप्रभो: कीर्तन नृत्यगीतवादित्रमाद्यन्मनसो रसेन।
रोमाञ्चकम्पाश्रुतरंगभाजो वन्दे गुरो: श्रीचरणारविन्दम्॥

अनुवाद : पवित्र नाम का कीर्तन करते आनन्दमग्न हो कर नाचते, गाते तथा वाद्ययंत्र बजाते हुए गुरु सदैव श्रीचैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन से प्रमुदित होता है। चूँकि वह अपने मन में शुद्ध भक्ति रस का आस्वाद करता है, अतएव कभी-कभी उसे रोमांच हो आता है, उसके शरीर में कम्पन होता है और उसकी आँखों से तरंगों के समान अश्रु बहते हैं। मैं ऐसे गुरु के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ।''

—*श्री श्री गुर्वष्टक श्लोक२*
श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर

कीर्तन तथा नृत्य करके गुरु दिव्य आनन्द को प्राप्त होता है

महाप्रभो: कीर्तननृत्यगीतवादित्रमाद्यन्मनसो रसेन। गुरु का द्वितीय लक्षण है कि वह सदैव कीर्तन करने में, चैतन्य महाप्रभु के महिमागायन में, लगा रहता है—यही उसका कार्य है...कीर्तन करके तथा नाच करके अपने मन में दिव्य आनन्द का आस्वाद करता है...*रोमाञ्चकम्पाश्रुतरंगभाज:*। कभी-कभी शरीर में आध्यात्मिक लक्षणों से युक्त विकार उत्पन्न होता है—कभी रोना तो कभी रोमांच हो आना। ऐसे अनेक लक्षण हैं। ये प्राकृतिक हैं। इन लक्षणों का अनुकरण नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु जब कोई आध्यात्मिक दृष्टि से बढ़ा-चढ़ा होता है तो ये लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

—*बैक टु गाडहेड,* भाग १३ अंक १-२ (गुरु की योग्यताएँ)

गुरु की अन्य महत्वपूर्ण योग्यताएँ तथा गुण

जो शास्त्र के अनुसार कर्म करने के साथ ही प्रचार कार्य करता है वह प्रामाणिक गुरु है

अनुवाद : ''कुछ लोग बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं, किन्तु कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार नहीं करते जब कि अन्य लोग प्रचार करते हैं किन्तु उचित रीति से व्यवहार नहीं करते। तुम अपने निजी आचरण और अपने प्रचार द्वारा नाम से सम्बद्ध दोनों कार्यों को एक ही साथ करते हो। इसलिए

तुम सारे जगत् के गुरु हो, क्योंकि तुम जगत् में सबसे बड़े भक्त हो।''

तात्पर्य : यहाँ पर सनातन गोस्वामी प्रामाणिक जगद्गुरु की परिभाषा देते हैं। इस सम्बन्ध में जो योग्यताएँ बताई गई हैं वे हैं: मनुष्य शास्त्रीय आदेशों के अनुसार कार्य करे और उसी के साथ-साथ प्रचार करे। जो ऐसा करता है वही प्रामाणिक गुरु है। हरिदास ठाकुर आदर्श गुरु थे, क्योंकि वे नियत संख्या में नाम जप करते थे। वे प्रतिदिन तीन लाख नाम जप करते थे। इसी तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य प्रतिदिन कम से कम सोलह माला जप करते हैं जिसे बिना कठिनाई के किया जा सकता है और उसी के साथ साथ उन्हें *भगवद्गीता* यथारूप की शिक्षा के अनुसार चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। जो ऐसा करता है वह जगद्गुरु बनने के उपयुक्त है।

—*चैतन्य चरितामृत अन्त्य* ४.१०२-१०३

असली गुरु वह है जो केवल ईश्वर के विषय में प्रवचन करता है और अन्यों को भगवद्भक्त बनाने के लिए प्रयास करता है

संवाददाता : कोई व्यक्ति यह कैसे कह सकता है कि उसका गुरु असली है?

श्रील प्रभुपाद : क्या मेरा कोई शिष्य इसका उत्तर दे सकता है?

शिष्य : मुझे स्मरण है एक बार जान लेनान ने आपसे पूछा था ''मैं कैसे जानूँगा कि कौन असली गुरु है?'' और आपने उत्तर दिया था, ''बस यही खोजो कि कौन कृष्ण के प्रति सर्वाधिक लिप्त है। वही असली है।''

श्रील प्रभुपाद : हाँ। असली गुरु ईश्वर का प्रतिनिधि है और वह ईश्वर के सिवाय और किसी के बारे में कुछ नहीं बोलता। वह केवल ईश्वर के पीछे दीवाना रहता है। यही असली गुरु की परीक्षाओं में एक है—*ब्रह्म-निष्ठम्*। वह परम सत्य में लीन रहता है। *मुण्डक-उपनिषद्* में कहा गया है—*श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्*—असली गुरु शास्त्रों तथा वैदिक विद्या में निष्णात होता है और ब्रह्म पर पूर्णतया आश्रित होता है। उसे जानना चाहिए कि ब्रह्म (आत्मा) क्या है और ब्रह्म किस प्रकार प्राप्त किया जाय। ये लक्षण वैदिक वाङ्मय में दिये हुए हैं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ असली गुरु

ईश्वर का प्रतिनिधि है। वह परमेश्वर का प्रतिनिधित्व करता है जिस तरह वाइसराय राजा का प्रतिनिधित्व करता है। असली गुरु कुछ भी गढ़ता नहीं। जो भी कहता है वह शास्त्रों तथा पूर्ववर्ती आचार्यों के अनुसार होता है। वह आपको मन्त्र देकर यह नहीं कहेगा कि आप छह मास में ईश्वर बन जायेंगे। यह गुरु का कार्य नहीं है। गुरु का कार्य हर एक से ईश्वरभक्त बनने के लिए प्रचार करना है। असली गुरु के कार्य का यही सार समाहार है। निस्सन्देह, उसके पास कोई अन्य कार्य नहीं रहता। वह जिस किसी को देखता है उससे कहता है "आप कृष्णभावनाभावित बनिये।" यदि वह येन-केन-प्रकारेण ईश्वर की ओर से प्रचार करता है और हर एक को ईश्वरभक्त बन जाने का प्रयास करता है तो वह असली गुरु है।

संवाददाता: आप ईसाई पादरी के बारे में क्या कहते हैं?

श्रील प्रभुपाद: ईसाई, मुसलमान, हिन्दू—इससे कोई अन्तर नहीं आता। यदि वह ईश्वर की ओर से बोलता है तो वह गुरु है। उदाहरणार्थ, जीजस क्राइस्ट। उन्होंने लोगों के बीच प्रचार किया "ईश्वर से प्रेम करने का प्रयत्न करो।" चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या ईसाई, वह गुरु है यदि वह लोगों को ईश्वर से प्रेम करने के लिए आश्वस्त कर सके। यही परीक्षा है। गुरु कभी नहीं कहता, "मैं ईश्वर हूँ" या "मैं तुम्हें ईश्वर बना दूँगा।" असली गुरु कहता है "मैं ईश्वर का दास हूँ और तुम्हें भी ईश्वर का दास बना दूँगा।" गुरु कैसे भी वस्त्र पहनता हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। जैसा चैतन्य महाप्रभु ने कहा है "जो कोई भी कृष्ण विषयक ज्ञान दे सके वह गुरु है। असली गुरु लोगों को कृष्ण या ईश्वर-भक्त बनाने के लिए प्रयास करता है। उसके पास कोई अन्य कार्य नहीं रहता।"

संवाददाता: किन्तु बुरे गुरु...

श्रील प्रभुपाद: और बुरा गुरु क्या है?

संवाददाता: बुरा गुरु कुछ धन या कुछ यश चाहता है।

श्रील प्रभुपाद: यदि वह बुरा है तो फिर वह गुरु कैसे बन सकता है? (हँसी)। लोहा सोना कैसे हो सकता है? वस्तुतः गुरु बुरा नहीं हो सकता, क्योंकि यदि कोई बुरा है तो वह गुरु नहीं हो सकता। आप यह नहीं

कह सकते "बुरा गुरु"। यह विरोधाभास है। आपको केवल यही समझने का प्रयास करना है कि असली गुरु क्या है। असली गुरु की परिभाषा है कि वह एकमात्र ईश्वर के विषय में बोलता है। यदि वह अंट-शंट बकता है तो वह गुरु नहीं है। गुरु कभी बुरा नहीं हो सकता। बुरे गुरु का प्रश्न ही नहीं उठता—उसी तरह जिस तरह लाल गुरु या सफेद गुरु का। गुरु का अर्थ है "असली गुरु।" हमें इतना ही जानना है कि असली गुरु केवल ईश्वर की बात करता है और लोगों को ईश्वर भक्त बनने के लिए प्रयत्नशील रहता है। यदि वह यह करता है तो वह असली है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

जो भी यह शिक्षा देता है कि ईश्वर को किस तरह जाना और प्यार किया जाय वह गुरु है

श्रीमती निक्सन: आप कैसे कह सकते हैं कि यह प्रामाणिक गुरु है और यह नकली है?

श्रील प्रभुपाद: जो कोई भी यह शिक्षा देता है कि ईश्वर को किस तरह जाना तथा प्रेम किया जाय वह गुरु है। कभी कभी लोगों को बेहूदे धूर्त गुमराह करते हैं। वे दावा करते हैं "मैं ईश्वर हूँ" और जो लोग यह नहीं जानते कि ईश्वर क्या है वे विश्वास कर लेते हैं। यह समझने के लिए कि ईश्वर कौन है और उससे कैसे प्रेम किया जाय उसके लिए आपको गम्भीर छात्र बनना होगा। अन्यथा आप अपने समय का अपव्यय करेंगे। अतः अन्यों तथा हममें अन्तर यह है कि हम एकमात्र ऐसे आन्दोलन में हैं जो यह सिखा सकता है कि ईश्वर को कैसे जाना जाय और उससे कैसे प्रेम किया जाय। हम वह विज्ञान प्रस्तुत करते रहे हैं कि *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाओं के अभ्यास द्वारा कृष्ण को कोई कैसे जान सकता है। वे हमें यह शिक्षा देते हैं कि हमारा एकमात्र व्यापार ईश्वर से प्रेम करना है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान* पृष्ठ ११

पवित्र नाम का कीर्तन करने में पूर्णरूपेण योग्य भक्त गुरु होने तथा

संसार के सारे लोगों का उद्धार करने में समर्थ है

प्रामाणिक गुरु हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करता है और यह दिव्य ध्वनि शिष्य के कानों में प्रवेश करती है। यदि शिष्य अपने गुरु का अनुगमन करता है और उसी आदर के साथ पवित्र नाम का कीर्तन करता है तो वह दिव्य नाम की पूजा करने लगता है। जब भक्त द्वारा दिव्य नाम की पूजा की जाती है तो यह नाम भक्त के हृदय में स्वयं ही उसकी महिमा का विस्तार करता है। जब भक्त पवित्र नाम की दिव्य ध्वनि का कीर्तन करने के लिए पूर्ण योग्य बन जाता है तो वह गुरु बनने के लिए और संसार के सारे लोगों का उद्धार करने के लिए सक्षम होता है।

—*श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु को अपने पद पर गर्वित नहीं होना चाहिए, उसे विनीत बनकर हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने का प्रचार करना चाहिए

अनुवाद: "जो अपने को घास से भी अधिक नीच मानता है, जो वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है और जो किसी से सम्मान की अपेक्षा नहीं रखता फिर भी अन्यों को सम्मान देने के लिए प्रस्तुत रहता है वह सरलता से भगवन्नाम का कीर्तन कर सकता है।"

तात्पर्य: यहाँ घास का विशेष उल्लेख हुआ है, क्योंकि सभी लोग उसे रौंदते हैं, किन्तु बेचारी प्रतिरोध नहीं करती। यह उदाहरण सूचित करता है कि गुरु या नेता को अपने पद का गर्व नहीं होना चाहिए। उसे सामान्य व्यक्ति से भी अधिक विनीत होना चाहिए और हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते हुए चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करते रहना चाहिए।

—*चैतन्य चरितामृत आदि १७.३१*

गुरु को निष्कलंक चरित्र वाला होना चाहिए

अनुवाद: मुनियों ने कहा: हे पूज्य सूत गोस्वामी! आप समस्त प्रकार के पापों से पूर्णतया मुक्त हैं...

तात्पर्य: गोस्वामी या श्रीव्यासदेव के प्रामाणिक प्रतिनिधि को समस्त पापों

से मुक्त होना चाहिए। कलियुग के चार प्रमुख पाप हैं (१) स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध (२) पशु वध (३) मादकद्रव्य सेवन तथा (४) सभी प्रकार की द्यूत क्रीडा। किसी गोस्वामी को व्यासासन पर बैठने का तभी साहस करना चाहिए जब वह इन पापों से मुक्त हो। जो निष्कलंक चरित्र वाला न हो और उपर्युक्त पापों से रहित न हो उसे व्यासासन पर न बैठाया जाय।

—*भागवत* १.१.६

गुरु को माया से मुक्त होना चाहिए

यदि अर्जुन कृष्ण के समान स्तर पर हो और कृष्ण अर्जुन से श्रेष्ठतर न हों तो उनमें उपदेश तथा उपदिष्ट का सम्बन्ध अर्थहीन होगा। यदि ये दोनों माया द्वारा मोहित होते हैं तो एक को उपदेशक तथा दूसरे को उपदिष्ट होने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसा उपदेश व्यर्थ होगा क्योंकि माया के पाश में रहते हुए कोई भी प्रामाणिक उपदेशक (गुरु) नहीं बन सकता।

—*भगवद्गीता* २.१३

चार मूल दोषों से परे व्यक्ति यानी गुरु से ही उपदेश ग्रहण करना चाहिए

जब तक चार मूल दोषों से परे व्यक्ति न मिले तो मनुष्य को उपदेश ग्रहण नहीं करना चाहिए और भौतिक दशा का शिकार नहीं बनना चाहिए। सबसे उत्तम विधि होगी कि श्रीकृष्ण या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि से उपदेश और शिक्षाएँ ग्रहण की जायँ। इस तरह मनुष्य इस जीवन में तथा अगले जीवन में सुखी हो सकता है।

—*भागवत* ५.१४.२६

प्रामाणिक गुरु की योग्यता—उसे शास्त्रों के निष्कर्ष अनुभूत होने चाहिए

और उसे अन्यों को इन निष्कर्षों के प्रति आश्वस्त करने में सक्षम होना चाहिए

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

अनुवादः "अतएव जो व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक असली सुख की इच्छा रखता हो, उसे प्रामाणिक गुरु की खोज करनी चाहिए और दीक्षा लेकर उसकी शरण ग्रहण करनी चाहिए। प्रामाणिक गुरु की योग्यता यह होती है कि वह विचार-विमर्श द्वारा शास्त्रों के निष्कर्षों से अवगत हो चुका होता है और इन निष्कर्षों के विषय में अन्यों को आश्वस्त करने में सक्षम होता है। ऐसे महापुरुष जिन्होंने समस्त भौतिक बातों को त्याग कर भगवान् की शरण ग्रहण कर ली है उन्हें प्रामाणिक गुरु मानना चाहिए।"

—*भागवत* ११.३.२१ (भागवत ५.१४.४१ में उद्धृत)

गुरु को पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और शिष्य के सारे प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम होना चाहिए

हमें प्रत्येक अपरिचित वस्तु को किसी विद्वान से जानना और पूछना होता है...अतएव गुरु को ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो *सर्वज्ञ* हो...इस तरह ईश्वर सम्बन्धी सारे प्रश्न, जो शिष्य को ज्ञात न हों, वे योग्य गुरु से पूछे जाने चाहिए।

—*भागवत* २.४.६

कृष्ण के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा होने तथा उनके आदेशों का पालन करने से मुक्त न होते हुए भी मनुष्य गुरु बन सकता है

बद्धात्मा चार दोषों से बाधित है—वह त्रुटि करता है, वह मोहित होता है, उसमें अन्यों को ठगने की प्रवृत्ति होती है तथा उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। अतएव हमें मुक्त पुरुषों से आदेश ग्रहण करना होता है। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन सीधे भगवान् से उन व्यक्तियों द्वारा आदेश प्राप्त करता है जो इन आदेशों का दृढ़ता से पालन करते रहते हैं। कोई अनुयायी भले ही मुक्त पुरुष न हो, किन्तु यदि वह मुक्त रूप भगवान्

का अनुसरण करता है तो स्वाभाविक रूप से उसके कर्म भौतिक प्रकृति के कल्मषों से मुक्त हो जाते हैं। अतः भगवान् चैतन्य कहते हैं "मेरे आदेश से तुम गुरु बन सकते हो।" श्रीभगवान् के दिव्य आदेशों में पूर्ण श्रद्धा रखकर तथा इन आदेशों का पालन करके मनुष्य तुरन्त गुरु बन सकता है।

—*भागवत* ४.१८.५

गुरु तथा परमात्मा से सम्पर्क किये बिना मनुष्य गुरु नहीं बन सकता

ब्रह्मा को ज्ञान का प्रकाश उनके हृदय में भगवान् के आसीन होने के कारण था। उत्पन्न किये जाने के बाद ब्रह्मा अपनी उत्पत्ति का स्रोत निश्चित नहीं कर पाये किन्तु तपस्या तथा मन की एकाग्रता से वे अपने जन्म के स्रोत को देख सके और इस तरह हृदय के मार्ग से वे प्रबुद्ध हुए। बाह्य गुरु तथा आन्तरिक गुरु दोनों ही भगवान् के प्रतिनिधि हैं। जब तक मनुष्य का सम्पर्क ऐसे प्रामाणिक प्रतिनिधि से नहीं होता, वह अपने को गुरु होने का दावा नहीं कर सकता।

—*भागवत* ३.९.२६

जो यह जानता है कि भगवान् परमात्मा तथा हर एक के सखा हैं वह जगद्गुरु बन सकता है

अनुवाद: "जो भक्ति में लगा हुआ है वह इस संसार से रंचमात्र भी नहीं डरता। इसका कारण यह है कि भगवान् परमात्मा हैं और सबके सखा हैं। जो इस रहस्य को जानता है वही वास्तव में शिक्षित है और ऐसा शिक्षित व्यक्ति ही संसार का गुरु हो सकता है...।"

—*भागवत* ४.२९.५१

गुरु को शिष्य से ज्येष्ठ होना आवश्यक नहीं

अनुवाद: देवताओं ने कहा: हमसे छोटे होने के कारण अपनी आलोचना से मत डरो। ऐसा शिष्टाचार वैदिक मन्त्रों पर लागू नहीं होता। वैदिक मन्त्रों को छोड़ कर सर्वत्र गुरुता आयु से निर्धारित होती है, किन्तु यदि कोई वैदिक मन्त्रों के जप में सिद्ध हो तो ऐसे कम आयुवाले व्यक्ति

को भी नमस्कार किया जा सकता है। अत: तुम भले ही सम्बन्ध में हमसे छोटे हो किन्तु तुम बिना किसी हिचक के हमारे पुरोहित हो सकते हो।

तात्पर्य: कहा गया है *वृद्धत्वं वयसा बिना*—आयु में बड़ा न होकर भी मनुष्य वृद्ध (ज्येष्ठ) हो सकता है। यदि कोई ज्ञान में वरिष्ठ है तो वृद्ध न होते हुए भी वह ज्येष्ठ हो जाता है। विश्वरूप देवताओं का भतीजा होने के कारण उनसे छोटा था, किन्तु वे उसे अपना पुरोहित बनाना चाहते थे, अत: उसे उनका नमस्कार स्वीकार करना पड़ा। देवताओं ने स्पष्ट किया कि इसमें उसे हिचकना नहीं चाहिए: वह उनका पुरोहित बन सकता है, क्योंकि वह वैदिक ज्ञान में आगे है।

—*भागवत* ६.७.३३

वंशानुगति या सामाजिक तथा धार्मिक प्रथा के आधार पर नहीं अपितु मौलिक योग्यता के आधार पर गुरु बनना चाहिए

इसका अर्थ यह हुआ कि गम्भीर व्यक्ति को चाहिए कि शास्त्रीय आदेशों के अनुसार प्रामाणिक गुरु चुने। श्री जीव गोस्वामी की सलाह है कि मनुष्य को चाहिए कि वंश परम्परा या सामाजिक तथा धार्मिक प्रथा से चले आने वाले गुरु को स्वीकार न करे। आध्यात्मिक ज्ञान में वास्तविक प्रगति के लिए योग्य गुरु की तलाश की जानी चाहिए।

—*चैतन्य चरितामृत आदि* १.३५

गुरु होने के लिए अयोग्यताएँ तथा योग्यताएँ

मनुष्य को चाहिए कि जो पक्का मूर्ख हो, जिसे शास्त्रीय आदेशों के अनुसार निर्देशन नहीं प्राप्त हो, जिसका चरित्र संदेहास्पद हो, जो भक्ति के सिद्धान्तों का पालन न करता हो या जिसने षड् इन्द्रियों को तृप्त करने वालों के प्रभाव को जीता न हो, उसे गुरु नहीं बनाए। इन्द्रियतृप्ति के छह कारक हैं—जीभ, उपस्थ, उदर, क्रोध, मन तथा शब्द। जिसने इन छह इन्द्रियों को वश में करने का अभ्यास कर लिया है उसे सारे जगत में शिष्य बनाने की अनुमति है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

हरे कृष्ण कीर्तन करके तथा परिजनों एवं मित्रों को *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* के सिद्धान्तों का उपदेश देकर मनुष्य घर पर गुरु बन सकता है

अनुवाद: उस ब्राह्मण ने महाप्रभु से प्रार्थना की, "हे प्रभु! आप मुझ पर कृपादृष्टि करें और मुझे अपने साथ चलने दें। मैं अब और अधिक समय तक भौतिक जीवन से उत्पन्न चिन्ता की लहरों को सहन नहीं कर सकता।" श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब फिर से ऐसा मत कहना। अच्छा यही होगा कि तुम घर पर रहो और सदैव कृष्णनाम का कीर्तन करो। हर एक को उपदेश दो कि वे *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में दिये गये भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशों का पालन करें। इस तरह गुरु बनो और इस देश के हर प्राणी का उद्धार करने का प्रयास करो। यदि तुम इस उपदेश का पालन करोगे तो तुम्हारा गृहस्थ जीवन तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं बनेगा। यदि तुम इन नियमों का पालन करोगे तो हम पुन: यहीं मिलेंगे या यह कि तुम मेरा साथ कभी नहीं छोड़ोगे।" श्रीचैतन्य महाप्रभु जिस किसी के घर में प्रसाद ग्रहण करके भिक्षा लेते वे उस घर के रहने वालों को अपने संकीर्तन आन्दोलन में लेते और उन्हें वैसी ही शिक्षा देते जैसी कि कूर्म नामक ब्राह्मण को दी थी।

तात्पर्य: यहाँ पर श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। जो व्यक्ति उनकी शरण ग्रहण करता है और मन से उनका पालन करता है, उसे स्थान बदलने की आवश्यकता नहीं है। न ही उसे अपना पद बदलने की आवश्यकता है। वह गृहस्थ, डाक्टर, इंजीनियर या कुछ भी बना रह सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसे केवल श्रीचैतन्य महाप्रभु के उपदेश का पालन, हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन और सम्बन्धियों तथा मित्रों को *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाओं का उपदेश देना होता है। उसे चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करते हुए दीनता तथा विनयशीलता सीखनी पड़ती है। इस तरह उसका जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से सफल हो जाता है। उसे चाहिए कि वह कभी यह सोचकर कि "मैं महाभागवत हूँ।" कृत्रिम ढंग से उच्च बनने की कोशिश न करे। इस तरह के विचार से बचना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि

वह शिष्य न बनाये। मनुष्य को घर पर ही हरे कृष्ण कीर्तन करने को कहे तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिष्ठित नियमों का प्रचार करके शुद्ध बने। इस तरह वह गुरु बन सकता है और भौतिक जीवन के कल्मष से मुक्त हो सकता है।

—*श्रीचैतन्य चरितामृत मध्य* ७.१२६-३०

गुरु को कृष्णकथा कहने तथा शिष्य को उसे सुनने के लिए दोनों ही को भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥

अनुवाद: भगवान् की महिमा का वर्णन परम्परा पद्धति से किया जाता है अर्थात् यह गुरु से शिष्य तक पहुँचाया जाता है। ऐसे वर्णन का आनन्द उन लोगों को मिलता है जो इस जगत के मिथ्या, क्षणिक वर्णन में रुचि नहीं रखते।

तात्पर्य: कृष्ण कथा यानी कृष्णभावनामृत विषयक कथाओं के लिए वक्ता तथा श्रोता होना चाहिए और ये दोनों कृष्णभावनाभावित में तभी रुचि ले सकेंगे जब उन्हें भौतिक कथाओं में रुचि न हो।... गुरु उत्तमश्लोक अर्थात् भगवान् विषयक कथाओं को कहता है और शिष्य उन्हें ध्यान से सुनता है। जब तक दोनों भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं हो लेते तब तक उन्हें कृष्णभावनामृत की कथाओं में रुचि नहीं हो सकती। गुरु तथा शिष्य को कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ समझने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि कृष्ण को समझने तथा कृष्ण के विषय में बातें करने मात्र से ही व्यक्ति पूर्णतया विद्वान बन सकता है (*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति*)।

—*भागवत* १०.१.४

जगद्गुरु के रूप में प्रामाणिक गुरु

गुरु को भक्ति के सर्वोच्च पद पर स्थित होना चाहिए। भक्तों की तीन कोटियाँ होती हैं और गुरु को सर्वोच्च कोटि का होना चाहिए। उच्च कोटि

का भक्त सभी तरह के लोगों का गुरु होता है। कहा गया है—*गुरुर्नृणाम्*। *नृणाम्* का अर्थ है "सारे मनुष्यों का।" गुरु किसी समूह विशेष तक ही सीमित नहीं होता। रूप गोस्वामी कृत *उपदेशामृत* में कहा गया है कि गुरु गोस्वामी होता है अर्थात् वह इन्द्रियों तथा मन का नियन्त्रक होता है। ऐसा गुरु विश्व भर में शिष्य बना सकता है। *पृथिवीं स शिष्यात्*। यही गुरु की परीक्षा है।

भारत में ऐसे तथाकथित गुरु हैं जो किसी जनपद या प्रान्त तक ही सीमित हैं। वे भारत का भ्रमण नहीं करते फिर भी वे अपने को जगद्गुरु घोषित करते हैं। ऐसे वंचक गुरुओं को स्वीकार नहीं करना चाहिए। प्रामाणिक गुरु जिस तरह विश्व भर में शिष्य बनाता है इसे कोई भी देख सकता है।

—*चैतन्य चरितामृत मध्य* २४.३३०

गुरु शिष्य के साथ तर्क करने पर स्वभावत: विजयी होता है

अनुवाद: यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपना फैसला यह कहते हुए सुनाया "ब्रह्मानन्द भारती! मैं देख रहा हूँ कि तुम विजयी हुए।" इस पर चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त उत्तर दिया, "ब्रह्मानन्द भारती ने जो कुछ कहा है उसे मैं स्वीकार करता हूँ। यह मेरे लिए सर्वथा उचित है।" इस तरह महाप्रभु ने अपने को शिष्य और ब्रह्मानन्द भारती को अपना गुरु स्वीकार किया। तब उन्होंने कहा, "यह शिष्य अपने गुरु से तर्क में निश्चय ही हार गया है।"

तात्पर्य: ब्रह्मानन्द भारती ने स्वीकार किया कि जब भी गुरु तथा शिष्य में कोई तर्क होता है तो गुरु विजयी होता है भले ही शिष्य प्रबल तर्क क्यों न प्रस्तुत करे। दूसरे शब्दों में, गुरु के वचन शिष्य के वचनों की अपेक्षा अधिक पूजनीय हैं।

—*चैतन्य चरितामृत मध्य* १०.१७२-७५

यदि गुरु अपने शिष्यों को पापकर्मों से मुक्त होने के लिए निर्देश नहीं दे सकता तो वह उनके पापकर्मों के लिए उत्तरदायी होता है

यदि माता-पिता कुत्ते-बिल्लियों की तरह सन्तान को केवल जन्म देते

हैं, किन्तु अपनी सन्तानों को आसन्न मृत्यु से नहीं बचा सकते तो वे अपने पाशविक सन्तानों के कार्यों के लिए उत्तरदायी बनते हैं....इसी तरह यदि गुरु अपने शिष्यों को पापकर्मों से मुक्त होने के लिए निर्देश नहीं दे सकता तो वह उनके पापकर्मों का उत्तरदायी बनता है।

—*भागवत* ४.२०.१४

गुरु मुक्तात्मा होता है

कभी-कभी नवदीक्षितों के मन में सन्देह उत्पन्न होता है कि उनका गुरु मुक्त है या नहीं और कभी-कभी वे उसके शारीरिक मामलों के प्रति भी शंकालु रहते हैं। किन्तु मुक्ति के लिए गुरु के शारीरिक लक्षण नहीं देखे जाते। देखना है तो गुरु के आध्यात्मिक लक्षण देखिये। *जीवन्मुक्त* का अर्थ है कि इसी देह में (कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होते हुए भी) भगवान् की सेवा में पूर्णत: लगे होने के कारण वह मुक्त माना जाता है।

मुक्ति में अपने पद पर स्थित रहना सम्मिलित है। *श्रीमद्भागवत* में यही इसकी परिभाषा है—*मुक्तिर्..स्वरूपेण व्यवस्थिति:*। स्वरूप या जीवन वास्तविक पहचान का वर्णन चैतन्य महाप्रभु ने किया है। जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्य-दास'—जीव की वास्तविक पहचान (स्वरूप) यह है भगवान् की सेवा में व्यस्त रहता है तो उसे मुक्त समझना चाहिए। किसी के मुक्त होने या न होने की पहचान उसके भक्ति कार्य हैं, अन्य कोई लक्षण नहीं।

—*भागवत* ३.३३.१०

गुरु में शिष्य का मार्ग-निर्देश करने की असीम बुद्धि होती है

अगाधधिषणं द्विजम्—आचार्य पूर्ण ब्राह्मण होता है और उसमें अपने शिष्य के कार्यकलापों का मार्ग-निर्देश करने की असीम बुद्धि होती है।

—*भागवत* ६.७.१५

गुरु सदैव कृष्ण लीलाओं चिन्तन करता रहता है

श्रीराधिकामाधवयोरपारमाधुर्यलीला गुणरूपनाम्नाम्।
प्रतिक्षणास्वादनलोलुपस्य वन्दे गुरोःश्रीचरणारविन्दम्॥

गुरु सदैव कृष्ण की प्रेयसी श्रीमतीराधारानी एवं गोपियों के साथ कृष्णलीलाओं का चिन्तन करता रहता है। कभी-कभी वह ग्वालबालों के साथ कृष्ण की लीलाओं का चिन्तन करता है। इसका अर्थ हुआ कि वह किसी न किसी लीला में लगे हुए कृष्ण का चिन्तन करता रहता है। *प्रतिक्षणास्वादनलोलुपस्य*। *प्रतिक्षण* का अर्थ है कि वह चौबीसों घण्टे उसी प्रकार चिन्तन करता है। यही कृष्णभावनामृत है।

—*बैक टु गाडहेड अंक १३ भाग १-२*

जब देखा जाता है कि गुरु ने अपने शिष्यों के चरित्र को बदल दिया है तो उसे मान्यता मिल जाती है

अनुवादः वेश्या का उदात्त चरित्र देख कर सारे लोग चकित थे। सारे लोगों ने हरिदास ठाकुर के प्रभाव की बड़ाई की और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्यः कहा गया है कि *फलेन परिचीयते*—मनुष्य अपने कर्म-फलों से पहचाना जाता है। वैष्णव समाज में कई प्रकार के वैष्णव हैं। उनमें से कुछ *गोस्वामी* कहलाते हैं, कुछ *स्वामी*, कुछ *प्रभु* और कुछ *प्रभुपाद*। किन्तु मात्र ऐसे नाम से कोई भी नहीं पहचाना जाता। जब कोई अपने शिष्यों के चरित्र को बदल देता है तो वह असली गुरु माना जाता है। हरिदास ठाकुर ने सचमुच ही पेशेवर वेश्या के चरित्र को बदल दिया। लोगों ने सामान्य रूप से इसको अच्छा समझा और इसलिए उन्होंने हरिदास ठाकुर को नमस्कार किया और उनकी महिमा का बखान किया।

—*चैतन्य चरितामृत अन्त्य ३.१४३*

गुरु का चरम लक्ष्य पाँच रसों में से किसी एक में भगवान् की सेवा करने के लिए कृष्णलोक को जाना है

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्ध्यै
या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।

तत्रैतिदाक्ष्याद् अतिवल्लभस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

गुरु का चरम लक्ष्य यह होता है कि वह कृष्णलोक जाना चाहता है जहाँ वह गोपियों के साथ होकर कृष्ण की सेवा करने में उनकी सहायता कर सके। कुछ गुरु गोपियों के सहायक बनने, कुछ ग्वालों के सहायक बनने, कुछ नन्द तथा यशोदा के सहायक बनने की और कुछ ईश्वर के सेवक बनने की बात सोचते हैं। कुछ वृन्दावन में फूलवृक्ष, फलवृक्ष, बछड़े या गौवें बनने की सोचते हैं।

—*बैक टु गाडहेड भाग १३ अंक १-२*

आचार्य की योग्यता है परमेश्वर के रूप में अपने को प्रस्तुत करना तथा ईश्वर बनने वाले नास्तिक वञ्चकों का पर्दाफाश करना

आचार्य की असली योग्यता यही है कि वह अपने को भगवान् के दास रूप में प्रस्तुत करे। ऐसे प्रामाणिक आचार्य उन नास्तिक व्यक्तियों के आसुरी कार्यों का समर्थन कभी नहीं करते जो अपने को ईश्वर कहते हैं। आचार्य का प्रमुख कार्य है कि वह अबोध जनता के समक्ष अपने को ईश्वर कहलाने वाले ऐसे वञ्चकों का पर्दाफाश करे।

—*चैतन्य चरितामृत आदि ६.२८*

गुरु तथा शिष्य का सम्बन्ध आध्यात्मिक होता है

इस भौतिक जगत में सेवक अपने स्वामी की तब तक सेवा करता है जब तक सेवक प्रसन्न रहता है और जब तक स्वामी प्रसन्न रहता है। तब तक सेवक प्रसन्न रहता है जब तक स्वामी उसे धन देता रहता है और स्वामी तब तक प्रसन्न रहता है जब तक सेवक अच्छी सेवा करता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत में यदि सेवक किन्हीं शर्तों के अन्तर्गत सेवा नहीं करता तब भी स्वामी प्रसन्न रहता है। यदि स्वामी धन न भी दे तो सेवक भी प्रसन्न रहता है। यह एकात्म या परम कहलाता है। गुरु के पास सैकड़ों शिष्य, सैकड़ों सेवक क्यों न हों, किन्तु वह उन्हें धन नहीं देता। वे आध्यात्मिक प्रेमवश सेवा करते रहते हैं और गुरु बिना

वेतन पाये शिक्षा देता है। यह आध्यात्मिक सम्बन्ध है। ऐसे सम्बन्ध में न तो वञ्चक होते हैं, न वञ्चित।

—भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ

४. गुरु के कर्तव्य तथा सही आचरण

गुरु अपने शिष्य को प्रबुद्ध करता है और शिक्षा देता है (सामान्य शिक्षाएँ)

गुरु का कार्य है शिष्यों को अंधकार से प्रकाश में लाना

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अनुवाद: "मैं गहन अज्ञान में उत्पन्न हुआ था और मेरे गुरु ने ज्ञान रूपी प्रकाश से मेरी आँखें खोलीं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।"

तात्पर्य: *अज्ञान* का अर्थ है "अंधकार।" यदि इस कमरे की सारी बत्तियाँ एक साथ बुझ हो जायँ तो हम यह नहीं बता पाएँगे कि हम या अन्य लोग कहाँ बैठे हैं। हर वस्तु अस्तव्यस्त हो जाएगी। इसी तरह हम सभी इस जगत् में, जो कि *तमस्* का जगत् है, अंधकार में रह रहे हैं। *तमस्* या *तिमिर* का अर्थ है "अंधकार"। यह भौतिक जगत अंधकारमय है, अतः प्रकाश के लिए इसे सूर्यप्रकाश या चन्द्रमा के प्रकाश की आवश्यकता होती है। किन्तु एक दूसरा जगत यानी आध्यात्मिक जगत है जो इस अंधकार के परे है। इस जगत का वर्णन *भगवद्गीता* में (१५.६) श्रीकृष्ण द्वारा हुआ है।..."मेरा धाम न तो सूर्य या चन्द्रमा से प्रकाशित है, न बिजली से। जो यहाँ पहुँच चुका है वह इस भौतिक जगत में कभी नहीं लौटता।"

गुरु का कार्य अपने शिष्यों को अंधकार से प्रकाश में लाना है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु का कार्य मानवजाति को उसके अज्ञान से रक्षा करके कष्ट से मुक्त करना है

गुरु का कार्य यह देखना है कि इस भौतिक जगत में कोई भी

मनुष्य कष्ट न पाए। कोई यह दावा नहीं करता कि उसे कष्ट नहीं है। ऐसा सम्भव नहीं। इस भौतिक जगत में तीन प्रकार के कष्ट (ताप) हैं—आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक। ये कष्ट भौतिक शरीर तथा मन से, दूसरे जीवों से तथा प्राकृतिक शक्तियों से उत्पन्न होते हैं। हम मानसिक कष्ट से पीड़ित हो सकते हैं या अन्य जीवों से यथा चींटियों या मच्छरों या मक्खियों से कष्ट पा सकते है या किसी श्रेष्ठ शक्ति के कारण कष्ट उठा सकते हैं। हो सकता है कि वर्षा न हो या बाढ़ आ जाए। अत्यधिक गर्मी या अत्यधिक सर्दी पड़े। प्रकृति द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट ढाये जाते हैं। इस प्रकार भौतिक जगत में तीन प्रकार के कष्ट हैं और हर व्यक्ति एक दो, या तीनों से पीड़ित है। कोई यह नहीं कह सकता कि वह कष्ट से मुक्त है।

तब तो हम यह पूछ सकते हैं कि जीव क्यों कष्ट पा रहे हैं। उत्तर है: अज्ञानवश। वह यह नहीं सोचता "मैं गलतियाँ कर रहा हूँ और पापमय जीवन बिता रहा हूँ इसलिए मैं कष्ट पा रहा हूँ।" अतएव गुरु का पहला कार्य है कि वह अपने शिष्य को इस अज्ञान से बचाए। हम अपने बच्चों को स्कूल इसलिए भेजते हैं कि उन्हें कष्ट से बचा सकें। यदि हमारे बच्चे शिक्षा नहीं प्राप्त करते तो हमें भय है कि भविष्य में वे कष्ट उठायें। गुरु देखता है कि कष्ट अज्ञान के कारण है जिसकी तुलना अंधकार से की जाती है। तो अंधकार में रहने वाली व्यक्ति को कैसे बचाया जा सकता है? प्रकाश द्वारा। गुरु ज्ञान का प्रकाश ग्रहण करता है और उसे अंधकार से घिरे जीव के समक्ष लाता है। यह ज्ञान उसे अज्ञान रूपी अंधकार के कष्ट से छुटकारा दिलाता है।

—*आत्म साक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु शिष्य को सारा ज्ञान बताता है

अनुवाद: किन्तु जब कोई उस ज्ञान से प्रबुद्ध होता है जिससे अविद्या का विनाश होता है तो उसके ज्ञान से सब कुछ उसी तरह प्रकट होता है जैसे दिन में सूर्य से सारी वस्तुएँ प्रकाशित हो जाती हैं।

तात्पर्य: वास्तविक ज्ञान उसी से प्राप्त हो सकता है जो पूर्णतया

कृष्णभावनाभावित है। अतः ऐसे प्रामाणिक गुरु की खोज करनी होती है और उसी से सीखना होता है कि कृष्णभावनामृत क्या है, क्योंकि कृष्णभावनामृत से सारी अविद्या उसी तरह दूर हो जाती है जिस तरह सूर्य से अंधकार दूर हो जाता है। भले ही किसी व्यक्ति को पूरा-पूरा ज्ञान हो कि वह शरीर नहीं अपितु इससे परे है तो भी वह आत्मा तथा परमात्मा में अन्तर नहीं कर पाता। किन्तु यदि वह पूर्ण प्रामाणिक कृष्णभावनाभावित गुरु की शरण ग्रहण करता है तो वह सब कुछ जान लेता है। ईश्वर के प्रतिनिधि से भेंट होने पर ही ईश्वर तथा ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को सही-सही जाना जा सकता है।

—*भगवद्गीता* ५.१६

निष्ठावान शिष्य को गुरु से आत्म-साक्षात्कार का आशीर्वाद मिलता है

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः

अनुवाद: ...स्वरूपसिद्ध व्यक्ति ही तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है, क्योंकि उसने सत्य का दर्शन किया है।

तात्पर्य: शिष्य को गुरु-परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए और जब वह शिष्य में वास्तविक इच्छा देखता है तो वह स्वतः ही शिष्य को असली आध्यात्मिक ज्ञान का आशीर्वाद देता है...प्रामाणिक गुरु स्वभावतः शिष्य के प्रति दयालु होता हैं अतः यदि शिष्य विनीत हो और सेवा करने के लिए सदैव तैयार रहे तो ज्ञान तथा जिज्ञासाओं का विनिमय पूर्ण हो जाता है।

—*भगवद्गीता* ४.३४

शिष्य के मन को भौतिक आसक्तियों से विलग करने के लिए गुरु तीक्ष्ण शब्दों का प्रयोग करता है

यदि कोई बुद्धिमान होता है तो वह उन लोगों की संगति करेगा जो योग के विविध रूपों में से किसी एक के द्वारा आत्म-साक्षात्कार के पद तक ऊपर उठने का प्रयास कर रहे हों। फल यह होगा कि

जो लोग साधु या स्वरूपसिद्ध हैं वे इस भौतिक स्नेह के प्रति अपनी आसक्ति से सम्बन्ध-विच्छेद कर सकेंगे। चूँकि अर्जुन ऐसी वस्तुओं के प्रति आकृष्ट है जो उसके कर्तव्य में बाधक हैं, अतएव कृष्ण इन वस्तुओं को छिन्न कर देते हैं। किसी वस्तु को काटने के लिए किसी तेज औजार की आवश्यकता होती है और मन को उसकी आसक्तियों से छिन्न करने के लिए प्राय: तीक्ष्ण शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। साधु या शिक्षक विद्यार्थी के मन को भौतिक आकर्षणों से छिन्न करने के लिए तीक्ष्ण शब्द कहने में कोई दया नहीं दिखाता। बिना समझौता किये सच बोलकर वह बन्ध को छिन्न करने में सक्षम होता है। उदाहरणार्थ, *भगवद्गीता* के प्रारम्भ में कृष्ण अर्जुन से कड़ाई से बोलते हुए कहते हैं कि यद्यपि वह विद्वान पुरुष की तरह बोलता है, किन्तु वस्तुत: वह निपट मूर्ख है। यदि हम सचमुच ही इस भौतिक जगत से विरक्ति चाहते हैं तो हमें गुरु के ऐसे चुभने वाले शब्द सुनने के लिए तैयार रहना चाहिए। जहाँ कठोर शब्दों की आवश्यकता हो वहाँ समझौता तथा चापलूसी से काम नहीं होता।

गुरु का कार्य शिष्य की ज्ञान की आँखें खोलना है

भगवद्गीता में कहा गया है कि ज्ञान-चक्षुओं के द्वारा भगवान् को देखा जा सकता है। गुरु ही इन ज्ञान-चक्षुओं को खोलने वाला होता है। अतएव हम गुरु की प्रार्थना निम्नलिखित श्लोक से करते हैं।

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम:॥

"मैं उन गुरु को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने ज्ञान के दीप से मेरी उन आँखों को खोल दिया जो अज्ञान के अंधकार से अँधराई थीं।" (गौतमीय तन्त्र)। गुरु का कार्य शिष्य की ज्ञान रूपी आँखों को खोलना है। जब शिष्य अज्ञान से जगकर ज्ञान प्राप्त करता है तो वह भगवान् को सर्वत्र देख सकता है, क्योंकि भगवान् वास्तव में सर्वत्र हैं।

—*भागवत* ८.१.११

गुरु शिष्य को अज्ञान से उबार कर ज्ञान तथा स्वतन्त्रता प्रदान करता है

अनुवाद: आप ही अज्ञान के इस घनान्धकार से बाहर निकलने के एकमात्र साधन है, क्योंकि आप ही मेरे दिव्य नेत्र हैं जिसे मैंने आपके अनुग्रह से अनेकानेक जन्मों के पश्चात् प्राप्त किया है।

तात्पर्य: यह श्लोक अत्यन्त शिक्षाप्रद है, क्योंकि यह गुरु तथा शिष्य के सम्बन्ध को बताने वाला है। शिष्य या बद्धजीव को इस अज्ञान के महानतम क्षेत्र में रखा जाता है फलत: वह इन्द्रियतृप्ति के संसार में फँस जाता है। इस बन्धन से निकल कर स्वतन्त्रता प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु यदि कोई इतना भाग्यवान होता है कि उसे कपिलमुनि जैसे गुरु या उनके प्रतिनिधि की संगति प्राप्त हो जाती है तो उनकी कृपा से अज्ञान के *कीचड़* से उसका उद्धार हो सकता है। अत: गुरु की पूजा उस व्यक्ति के रूप में की जाती है जो ज्ञान के प्रकाशपुंज से शिष्य को अज्ञान के *कीचड़* से उबार लेता है। *पारगम* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *पारगम* उसके लिए आया है जो शिष्य को उस पार ले जा सकता है। इस ओर बद्धजीव है और उस ओर (पार) स्वतन्त्र जीवन है। गुरु ज्ञान के द्वारा शिष्य की आँखें खोल कर उस पार ले जाता है। हम सभी अज्ञान के कारण कष्ट भोगते हैं। गुरु के उपदेश से अज्ञान का अन्धकार हटता है और शिष्य स्वतन्त्रता की ओर जाने में समर्थ होता है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि मनुष्य अनेक जन्मों के बाद श्रीभगवान् की शरण ग्रहण करता है। इसी प्रकार यदि अनेक जन्मों के बाद किसी को प्रामाणिक गुरु मिल जाता है और वह कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि की शरण लेता है तो वह प्रकाश का किनारा प्राप्त कर सकता है।

—*भागवत* ३.२५.८

गुरु शिष्य को देहात्मबुद्धि से मुक्त करता है

मनुष्य को शरीर के स्वामी तथा परमात्मा के अन्तर को समझना चाहिए। श्रद्धालु को चाहिए कि सर्वप्रथम वह ईश्वर का श्रवण करने

के लिए सत्संगति करे और धीरे-धीरे प्रबुद्ध बने। यदि गुरु बना लिया जाय तो पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर को समझा जा सकता है और वही अग्रिम आत्म-साक्षात्कार के लिए शुभारम्भ बन जाता है। गुरु अनेक प्रकार के उपदेशों से अपने शिष्यों को देहात्मबुद्धि से मुक्त होने की शिक्षा देता है। उदाहणार्थ, *भगवद्गीता* में कृष्ण अर्जुन को भौतिक बातों से मुक्त होने के लिए शिक्षा देते हैं।

—*भगवद्गीता* १३.३५

आचार्य या प्रामाणिक गुरु का कर्तव्य है कि शिष्यों को दीक्षा दे और उन्हें वैदिक विद्या की शिक्षा दे

गुरु को *आचार्य* यानी आध्यात्मिक विज्ञान का दिव्य प्राचार्य भी कहते हैं। *मनुसंहिता* (२.१४०) में आचार्य के कर्तव्य बतलाये गये हैं जिसमें यह वर्णन हुआ है कि प्रामाणिक गुरु शिष्यों का भार स्वीकार करता है, उन्हें सारी बारीकियों सहित वैदिक ज्ञान की शिक्षा देता है और उन्हें दूसरा जन्म देता है...गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को यज्ञोपवीत के द्वारा दीक्षा दे और इस *संस्कार* के बाद ही गुरु अपने शिष्यों को वेद का अध्ययन शुरू कराता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.४६

गुरु ज्ञान के अंधकार को दूर करता है

सज्जनो! यद्यपि हम लोग अध्यात्म ज्ञान के विषय में अज्ञानी बालकों की भाँति हैं फिर भी मेरे गुरुदेव ने हमारे भीतर छोटी सी अग्नि पैदा की है जिससे शुष्क ज्ञान के अमेध अंधकार को दूर किया जा सके। अब हम इतने सुरक्षित हैं कि शुष्क विचारधारा के कितने ही दार्शनिक तर्क-वितर्क क्यों न किये जायँ हम अपने गुरुदेव के चरणकमलों पर अपनी आश्रिता से रंच भर भी विचलित नहीं हो सकते।

—*आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु कृपावश ही अपने शिष्यों से दिव्य विषयों पर बोलता है

अनुव्रतानां शिष्यानां पुत्राणां च द्विजोत्तम।
अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सला:॥

अनुवाद: हे द्विजों में श्रेष्ठ! जो गुरु होते हैं वे दीनों पर अत्यन्त कृपालु होते हैं। वे अपने अनुयायियों, शिष्यों और पुत्रों के प्रति सदैव दयालु होते हैं। गुरु उनके द्वारा पूछे बिना ही उनको सारा ज्ञान प्रदान करता है।

तात्पर्य: ऐसे अनेक विषय हैं जो प्रामाणिक गुरु से ही जाने जा सकते हैं। अनुयायी, शिष्य तथा पुत्र प्रामाणिक गुरु की दृष्टि में एकसमान होते हैं और उनके द्वारा पूछे बिना ही सदैव उन्हें दिव्य विषयों का रहस्य समझाते हैं। प्रामाणिक गुरु का यह स्वभाव है। विदुर ने मैत्रेय मुनि से उन विषयों का वर्णन करने का अनुरोध किया जिनके विषय में वे प्रश्न न कर पाये हों।

—*भागवत* ३.७.३६

शिष्य का अधिकार है कि किसी गोपनीय विषय के बारे पूछे और गुरु का कर्तव्य है कि उसे बताए

छात्र तथा शिष्य को अधिकार है कि गुरु से किसी भी गोपनीय कार्य के बारे में पूछे और गुरु का कर्तव्य है कि इन गोपनीय बातों को अपने शिष्य को बताए।

—*भागवत* १०.१२.४३

दिव्य ज्ञान के वक्ता तथा श्रोता अत्यन्त घनिष्ठतापूर्वक जुड़े होते हैं अत: गुरु समझदार श्रोता के समक्ष भलीभाँति बोल सकता है

श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों पर दण्ड के समान गिरते हुए सनातन गोस्वामी ने उनसे विनती की कि वे *आत्माराम* श्लोक की व्याख्या उसी रूप में करें जिस तरह उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य से की थी। सनातन ने वही व्याख्या सुनने की उत्कण्ठा प्रकट की जिससे वे प्रबुद्ध हो सकें। इस प्रकार विनती किये जाने पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, ''मैं नहीं जानता कि सार्वभौम भट्टाचार्य ने मेरी व्याख्या को इतना क्यों पसन्द किया। जहाँ तक मेरी बात है, मुझे तो यह भी स्मरण नहीं कि मैंने उनसे क्या कहा था। लेकिन तुम मुझसे उसे पूछ रहे हो अत: तुम्हारी संगति से मैं जो कुछ स्मरण कर सकता हूँ बताने

का प्रयास करूँगा।'' इस तरह वक्ता तथा श्रोता अति घनिष्ठतापूर्वक जुड़े होते हैं। वक्ता श्रोता की उपस्थिति से प्रबुद्ध होता है। वक्ता या गुरु समझदार श्रोता के समक्ष दिव्य विषयों पर भलीभाँति बोल सकता है इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि उनकी समझ में नहीं आ रहा कि संस्कृत श्लोक की कैसे व्याख्या करें, किन्तु सनातन की संगति में होने से वे इसे समझाने का प्रयास करेंगे।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु को देखना चाहिए कि शिष्य उसके उपदेशों को समझे

अनुवाद: हे धनञ्जय अर्जुन! क्या तुमने इसे (शास्त्र को) एकाग्रचित्त होकर सुना? और क्या अब तुम्हारा अज्ञान तथा मोह दूर हो गया है?

तात्पर्य: भगवान् अर्जुन के गुरु का काम कर रहे थे, अतएव यह उनका कर्तव्य था कि अर्जुन से पूछते कि उसने पूरी *भगवद्गीता* सही ढंग से समझ ली है या नहीं। यदि नहीं समझा है तो भगवान् उसे फिर से किसी अंश विशेष या पूरी *भगवद्गीता* बताने को तैयार हैं।

—*भगवद्गीता* १८.७२

यदि गुरु तथा शिष्य निष्ठावान तथा प्रामाणिक हों तो आध्यात्मिक ज्ञान के सम्प्रेषण तथा ग्रहण से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं

यदि मनुष्य शक्तिमान है और यदि स्त्री रुग्ण नहीं है तो उनके संभोग से गर्भधारण होगा। इसी तरह यदि आध्यात्मिक ज्ञान का ग्राही तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रदाता दोनों निष्ठावान् तथा प्रामाणिक हैं तो उत्तम परिणाम प्राप्त होंगे।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

गुरु को चाहिए कि अपने शिष्यों को श्रीमद्भागवत का प्रवचन करना सिखाये

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत के प्रयोजन का प्रसारण किया। कभी उन्होंने अपने भक्तों के लाभ के लिए प्रवचन किया और

कभी अपने किसी भक्त को बोलने के लिए शक्ति प्रदान करके स्वयं सुना।

तात्पर्य: श्रीचैतन्य महाप्रभु ने आदर्श शिक्षक या आचार्य की तरह श्रीमद्भागवत की विस्तृत व्याख्या की। कभी-कभी वे अपने भक्तों को भी बोलने के लिए शक्ति प्रदान करते और स्वयं सुना करते। आचार्य को अपने शिष्यों को इसी विधि से शिक्षा देनी चाहिए। उसे स्वयं न केवल भागवत सम्प्रदाय का वर्णन करना चाहिए, अपितु इस दिव्य विषय पर बोलने के लिए अपने शिष्यों को प्रशिक्षित भी करना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २५.२६७

गुरु को चाहिए कि अपने शिष्यों को शिक्षा दे (जिस तरह ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को दी थी) और क्रुद्ध हुए बिना ऐसा करता चले भले ही शिष्य कभी-कभी उसके आदेश का पालन न कर पाए

अनुवाद: जिसे ईश्वर के धाम जाने की अभिलाषा हो उसे चाहिए कि भगवान् के अनुग्रह को जीवन का परम लक्ष्य माने। यदि वह पिता है तो अपने पुत्रों को, यदि गुरु है तो अपने शिष्यों को और यदि राजा है तो अपनी प्रजा को उसी प्रकार शिक्षा दे जैसा कि मैंने उपदेश दिया है। उन्हें चाहिए कि क्रोधरहित होकर उन्हें शिक्षा देते रहें, भले ही वे उनकी आज्ञा का पालन करने में कभी-कभी असमर्थ क्यों न रहें।...

—*भागवत* ५.५.१५

मध्व-गौडीय सम्प्रदाय के गुरुओं को चाहिए कि वे अपने शिष्यों को भगवान् से वियोग भाव की सर्वोच्च भक्तिमयी सिद्धि से समृद्ध बनाएँ

वृन्दावन की गोपियाँ कृष्ण से इतनी अनुरक्त थीं कि वे केवल रात में रास नृत्य से सन्तुष्ट नहीं थीं। वे उनका सान्निध्य चाहती थीं और दिन के समय भी उनके सान्निध्य का आनन्द चाहती थीं। जब कृष्ण अपने ग्वालबाल मित्रों तथा गौवों के साथ वन चले जाते तो गोपियाँ शरीर से उनके साथ नहीं होती थीं, किन्तु उनके हृदय उन्हीं

के साथ चले जाते थे। चूँकि उनके हृदय चले जाते थे, अतएव वे वियोग की प्रबल भावनाओं के कारण उनके सान्निध्य का आनन्द उठाती थीं। इस प्रबल वियोग भाव को प्राप्त करना ही श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनकी प्रत्यक्ष शिष्य परम्परा के गोस्वामियों की शिक्षा है। जब हम शरीर से कृष्ण के सम्पर्क में नहीं होते तो वियोग की भावनाओं के माध्यम से हम गोपियों की तरह उनका सान्निध्य पा सकते हैं। कृष्ण का दिव्यरूप, गुण, लीलाएँ तथा साज-सामग्री सभी उनसे अभिन्न हैं। भक्ति के नौ विभिन्न प्रकार हैं। वियोग भाव में कृष्ण की भक्ति भक्त को सर्वोच्च सिद्धि स्तर तक उठाती है, जो गोपियों का स्तर था...जो मध्व गौड़ीय सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा में हैं उन्हे भी कृष्ण वियोग का अनुभव करना चाहिए, उनकी दिव्य शिक्षाओं, उनकी लीलाओं, उनके गुणों, उनकी साज-सामग्री तथा उनकी संगतियों के बारे में विचार-विमर्श करना चाहिए। गुरु को चाहिए कि भक्तों को सर्वोच्च भक्ति की सिद्धि तक पहुँचा दे। भगवान् की सेवा में लगे रह कर निरन्तर वियोग का अनुभव करना कृष्णभावनामृत की सिद्धि है।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण* भाग १

गुरु अपने शिष्य को प्रबुद्ध बनाता है और शिक्षा देता है (गुरु अपने शिष्यों को क्या शिक्षा देता है)

शिष्य को चाहिए कि गुरु से यह समझे कि आत्मा, ब्रह्माण्ड, ईश्वर तथा ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध क्या है

आचार्यदेव के चरणों पर बैठकर हम इस ज्ञान के दिव्य स्रोत से यह समझने का प्रयास करें कि हम क्या हैं, यह ब्रह्माण्ड क्या है, ईश्वर क्या है और उनके साथ हमारा सम्बन्ध क्या है?

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु अपने शिष्य को ईश्वर तथा जीव के बीच के सम्बन्ध की

तथा भक्ति की विधि की शिक्षा देता है

अनुवाद: जीवों के तथा भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध के वास्तविक सत्य क्या हैं? उनके स्वरूप क्या हैं? वैदिक ज्ञान में अनुस्यूत विशिष्ट इष्टत्व अथवा अर्हताएँ क्या हैं?

तात्पर्य: जीव को ज्ञान के स्तर तक समुन्नत करने के लिए आध्यात्मिक साहचर्य या संगति की आवश्यकता होती है। प्रामाणिक गुरु की यह इच्छा होती है कि उसके शिष्य भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति दिव्य सेवा अर्पित करने की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करें और शिष्यगण भी यह जानते हैं कि स्वरूपसिद्ध महापुरुष से उन्हें भगवान् तथा जीव के नित्य सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

—*भागवत* ३.७.३८

प्रामाणिक गुरु भगवान् के बाह्य कार्यकलापों (सृष्टि) तथा उनके आन्तरिक कार्यकलापों के भी विषय में बताता है

शुकदेव गोस्वामी जैसा प्रामाणिक गुरु न केवल भगवान् की अन्तरंगा शक्तियों के विषय में बताता है, अपितु वह यह भी बताता है कि वे किस तरह अपनी बहिरंगा शक्ति के साथ रहते हैं। अन्तरंगा शक्ति में भगवान् की लीलाएँ उनके वृन्दावन के कार्यकलापों के रूप में प्रदर्शित होती हैं, किन्तु उनकी बहिरंगा शक्ति के कार्यकलाप उनके कारणार्णवशायी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु के रूपों में प्रकट होते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती वैष्णवों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि उन्हें केवल भगवान् के कार्यकलापों (यथा रासलीला) के सुनने में ही रुचि नहीं लेनी चाहिए, अपितु उनके पुरुषावतारों के रूप में की गई *सृष्टितत्व* लीलाओं में भी रुचि लेनी चाहिए।

—*भागवत* २.४.१०

गुरु से ज्ञान प्राप्त करने का फल

अनुवाद: और इस प्रकार जब तुम सत्य जान लोगों तो तुम जान सकोगे कि सारे जीव मेरे ही अंश हैं और वे मुझमें हैं तथा मेरे हैं।

तात्पर्य: स्वरूपसिद्ध आत्मा से ज्ञान प्राप्त करने का फल यह होता है कि यह पता चल जाता है कि सारे जीव भगवान् श्रीकृष्ण के

भिन्नांश हैं।

—*भगवद्गीता* ४.३५

शिष्य को अपने गुरु से शुद्धभक्तों के दिव्य गुणों के विषय में सुनना चाहिए

अनुवाद: जो लोग श्रमपूर्वक दीर्घकाल तक गुरु से श्रवण करते हैं उनको शुद्ध भक्तों के मुख से शुद्ध भक्तों के चरित्र तथा कार्यकलापों के विषय में सुनना चाहिए। शुद्धभक्त अपने हृदयों में भगवान् के उन चरणारविन्दों का चिन्तन करते रहते हैं जो उनको मुक्ति प्रदान करते हैं।

तात्पर्य: दिव्य विद्यार्थी वे हैं जो प्रामाणिक गुरु से वेदों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करते समय महान् तपस्या करते हैं। उन्हें न केवल भगवान् के कार्यकलापों के विषय में सुनना चाहिए अपितु उन्हें उन भक्तों के दिव्य गुणों के विषय में सुनना चाहिए जो निरन्तर अपने हृदय में भगवान् के चरणारविन्दों का चिन्तन करते रहते हैं। भगवान् का शुद्ध भक्त क्षण भर भी भगवान् के चरणकमलों से विलग नहीं हो सकता। निस्सन्देह, भगवान् समस्त जीवधारियों के हृदयों में सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे शायद ही इसके विषय में जानें, क्योंकि वे मायावी भौतिक शक्ति द्वारा मोहग्रस्त रहते हैं। किन्तु भक्तगण भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करते हैं, अतएव वे अपने हृदयों में भगवान् के चरणकमलों को निरन्तर देख सकते हैं। भगवान् के ऐसे शुद्धभक्त भगवान् की ही तरह महिमावान् होते हैं। वस्तुत: उन्हें भगवान् की पूजा से अधिक पूजनीय बताते हैं। भक्त की पूजा भगवान् की पूजा से अधिक शक्तिशाली है। अतएव दिव्य छात्रों का कर्तव्य है कि वे शुद्धभक्तों के विषय में सुनें जैसा कि उन्हीं के समान भगवद्भक्तों ने बतलाया है, क्योंकि कोई व्यक्ति भगवान् या उनके भक्त के विषय में तब तक कुछ नहीं कह सकता जब तक वह स्वयं शुद्ध भक्त न हो।

—*भागवत* ३.१३.४

गुरु अपने शिष्य को प्रबुद्ध करता है और शिक्षा देता है (गुरु किस तरह शिष्य को ज्ञान देता है)

शिष्य गुरु से श्रद्धायुक्त श्रवण करके दिव्य ज्ञान लाभ करता है,

बिजली के झटके से नहीं

शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को उनके जीवन के अन्तिम सात दिनों में दिव्य ज्ञान प्रदान किया, जिसे महाराज परीक्षित ने श्रद्धालु शिष्य की भाँति ठीक से सुना। *श्रीमद्भागवत* के इस प्रकार प्रामाणिक श्रवण तथा कीर्तन का आस्वाद श्रोता तथा वक्ता समान रूप से करते थे। इससे दोनों को लाभ होता था।...दिव्य अनुभूति ऐसे ही गम्भीर श्रवण तथा कीर्तन से होती है, अन्यथा नहीं। इस कलियुग में गुरु तथा शिष्य सम्बन्धी एक विशेष प्रकार का विज्ञापन हो रहा है। कहा जाता है कि गुरु द्वारा उत्पन्न बिजली के द्वारा शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति प्रविष्ट हो जाती है जिससे शिष्य को उसके झटके का अनुभव होता है। इससे वह अचेत हो जाता है और गुरु तथाकथित आध्यात्मिक निधि के क्षय होने पर रोता है। इस युग में इस तरह का विज्ञापन चल रहा है और निरीह जनता ऐसे विज्ञापन का शिकार बन रही है। किन्तु शुकदेव गोस्वामी तथा उनके परम शिष्य महाराज परीक्षित के आचरण के विषय में हमें ऐसी लोककथाएँ प्राप्त नहीं होतीं। मुनि ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक *श्रीमद्भागवत* सुनाई थी और राजा ने उसे अत्यन्त विधिपूर्वक सुना था। राजा ने न तो अपने गुरु से किसी प्रकार की बिजली का झटका अनुभव किया था, न ही वह अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त करते समय अचेत हुआ था। अतएव लोगों को चाहिए कि वे वैदिक ज्ञान के इन निठल्ले प्रतिनिधियों द्वारा किये जाने वाले इस प्रकार के अप्रामाणिक विज्ञापन के बहकावे में न आएँ।...दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र साधन है कि उसे प्रामाणिक गुरु से गम्भीर श्रवण द्वारा ग्रहण किया जाय। उसके लिए न तो किसी चिकित्सीय करतब की, न ही तांत्रिक योग की आवश्यकता है। यह विधि सरल है लेकिन एकनिष्ठ होने पर ही मनवांछित फल मिल सकता है।

—*भागवत* १.१२.३

गुरु किस तरह दिव्य ज्ञान को सम्प्रेषित करता है और उसे शिष्य

ग्रहण करता है

वैदिक ज्ञान को प्राप्त करने की प्रणाली *अवरोहपन्था* यानी प्रामाणिक शिष्य-परम्परा द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त करने की विधि कहलाती है। भौतिक ज्ञान की उन्नति के लिए वैयक्तिक सामर्थ्य तथा शोध प्रवृत्ति की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान में सारी प्रगति बहुत कुछ गुरु की कृपा पर निर्भर करती है। गुरु को शिष्य से सन्तुष्ट होना चाहिए तभी आध्यात्मिक विज्ञान के विद्यार्थी के समक्ष वह ज्ञान स्वतः प्रकट होगा। किन्तु इस विधि को किसी तरह की जादूगरी मानने की भूल नहीं करनी चाहिए जिसमें गुरु जादूगर की तरह शिष्य के भीतर आध्यात्मिक ज्ञान पहुँचा देगा मानो वह उसे बिजली से आवेशित कर रहा हो। प्रामाणिक गुरु अपने शिष्य को प्रत्येक बात वैदिक वाङ्मय के प्रमाणों के आधार पर ही बताता है। शिष्य ऐसी शिक्षा को बौद्धिक न मानकर विनीत भाव से जिज्ञासा करके तथा सेवा-भाव से ग्रहण कर सकता है। भाव यह है कि शिष्य तथा गुरु दोनों को प्रामाणिक होना चाहिए।

—*भागवत* २.१.१०

गुरु से शिष्य तक ज्ञान का सम्प्रेषण विवेक तथा तर्क पर आश्रित है, जादू पर नहीं

भगवान् की सेवा इन्द्रियों का नितान्त शुद्ध उपयोग है जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है। भगवान् ने पूर्ण इन्द्रियों से उपदेश दिया और अर्जुन ने पूर्ण इन्द्रियों से उसे ग्रहण किया। इस प्रकार यह गुरु तथा शिष्य के मध्य ज्ञेय तथा तार्किक ज्ञान (समझ) का पूर्ण विनिमय है। आध्यात्मिक ज्ञान कोई विद्युत आवेश नहीं है जो गुरु से शिष्य में प्रवेश करता है जैसा कि कुछ प्रचारक मूर्खतावश दावा करते हैं। प्रत्येक वस्तु ज्ञान तथा तर्क से पूर्ण है और गुरु तथा शिष्य के मध्य विचारों का आदान-प्रदान तभी सम्भव है जब उसे विनीत भाव तथा सच्चाई से ग्रहण किया जाय। *चैतन्य-चरितामृत* में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि बुद्धि तथा चेतना से युक्त होकर भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ ग्रहण करे जिससे वह महान् सन्देश को तार्किक रूप से समझ सके।

—*भागवत* २.३.२०

गुरु अपने शिष्य को प्रबुद्ध करता तथा शिक्षा देता है (गुरु मूर्ख या मन्दबुद्धि शिष्य को भी प्रबुद्ध कर सकता है)

कोई कितना मूर्ख क्यों न हो, गुरु कृपा से वह परमसत्य के ज्ञान को समझ सकता है

अनुवाद: हे पुत्र कपिल! आखिर मैं स्त्री हूँ। मेरे लिए परम सत्य को समझ पाना अति कठिन है, क्योंकि मेरी बुद्धि बहुत बड़ी नहीं है। किन्तु यदि आप कृपा करके मुझे बतला दें, यद्यपि मैं बहुत बुद्धिमान् नहीं हूँ, तो मैं इसे समझ सकती हूँ और इससे दिव्य सुख का अनुभव कर सकती हूँ।

तात्पर्य: परमसत्य का ज्ञान सामान्य अल्प बुद्धि वाले लोगों की समझ में आसानी से नहीं आता, किन्तु यदि गुरु शिष्य पर काफी दयालु हो तो वह कितना ही मूर्ख क्यों न हो, गुरु की दैवी कृपा से उसे सब कुछ प्रकट हो जाता है।

—*भागवत* ३.२५.३०

शुद्धभक्त-गुरु मूढ से मूढ बुद्धि शिष्य को प्रबुद्ध कर सकता है

अनुवाद: यह कोई विचित्र बात नहीं है कि केवल आपके चरणकमलों की धूलि से धूसरित होने से मनुष्य तुरन्त शुद्धभक्ति के अधोक्षज पद को प्राप्त होता है जो ब्रह्मा जैसे देवता के लिए भी दुर्लभ है। आपके क्षणमात्र के समागम से अब मैं समस्त तर्कों, अहंकार तथा अविवेक से मुक्त हो गया हूँ जो इस भौतिक जगत में बन्धन के मूल कारण हैं। मैं अब इन समस्त झंझटों से मुक्त हूँ।

तात्पर्य: शुद्धभक्तों के समागम से भौतिक बन्धनों से मुक्ति निश्चित है। यह जड़ भरत की संगति से राजा रहूगण के प्रसंग में और भी सत्य है। राजा रहूगण तुरन्त ही भौतिक संगति के दुष्परिणामों से मुक्त हो गया। शुद्ध भक्त द्वारा अपने शिष्य को दिये गये तर्क इतने विश्वसनीय होते हैं कि मूढ से मूढ शिष्य भी तुरन्त प्रबुद्ध हो सकता है।

—*भागवत* ५.१३.२२

गुरु अपने शिष्य को भक्ति में लगाता है

गुरु की चिन्ता—उसकी शरण में आया भक्त किस तरह भक्ति में प्रगति करे

भगवान् पूर्ण एवं उन्मुक्त होने के कारण अपने भक्तों की प्राणपण से रक्षा करते हैं। उनकी एकमात्र चिन्ता यही रहती है कि अपने चरणों में शरण लेने वालों को कैसे ऊपर उठावें तथा उनकी रक्षा करें। यही दायित्व गुरु को भी सौंपा जाता है। प्रामाणिक गुरु की चिन्ता यही रहती है कि जिन भक्तों ने उन्हें भगवान् का प्रतिनिधि मान कर उनकी शरण ग्रहण की है, वे भक्ति में किस तरह अग्रसर हों। भगवान् को अपने उन भक्तों का सदैव ध्यान रहता है जो उनके चरणकमलों की शरण में आकर ज्ञान के अनुशीलन में पूरी तरह व्यस्त रहते हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.६२

भक्ति में सफल होने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु का मार्ग-निर्देशन चाहिए

भक्त को यह जानना चाहिए कि कृष्ण उससे क्या चाहते हैं। इसे कृष्ण के प्रतिनिधिस्वरूप गुरु के माध्यम से जाना जा सकता है। श्रील रूपगोस्वामी का उपदेश है—*आदौ गुर्वाश्रयम्*—जो सचमुच भक्ति करना चाहता है उसे चाहिए कि कृष्ण-परम्परा के गुरु की शरण में जाय। *एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*—परम्परागत गुरु को स्वीकार किये बिना भक्ति का प्रयोजन नहीं जाना जा सकता। अतएव मनुष्य को चाहिए कि गुरु बना कर उसके निर्देशन में चलने के लिए राजी हो। शुद्धभक्त का पहला कार्य है कि वह अपने गुरु को तुष्ट करे जिसका एकमात्र कार्य कृष्णभावनामृत का प्रसार करना है। *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*—यदि गुरु को तुष्ट कर लिया जाय तो कृष्ण स्वतः तुष्ट हो जाते हैं। यही भक्ति की सफलता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १९.१६७

गुरु शिष्य को उसकी क्षमता के अनुसार प्रशिक्षण देता है और

व्यस्त रखता है

अनुवाद: सौभाग्यवश मुझे आपके द्वारा उपदेश मिला है और इस प्रकार आपने मेरे ऊपर महती कृपा की है। मैं भगवान् को धन्यवाद देता हूँ कि मैं अपने कान खोलकर आपके विमल शब्दों को सुन रहा हूँ।

तात्पर्य: श्रील रूपगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में निर्देश दिये हैं कि किस तरह प्रामाणिक गुरु बनाया जाय और उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। सर्वप्रथम इच्छुक व्यक्ति को प्रामाणिक गुरु की खोज करनी चाहिए और तब अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उपदेश प्राप्त करना चाहिए और उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। यह दोतरफी (अन्योन्य) सेवा है।...प्रामाणिक गुरु जानता रहता है कि मनुष्य किस तरह का है और कृष्णभक्ति में वह कैसे कार्य कर सकता है अतः वह उसी प्रकार से उपदेश देता है। वह उसे कान में चुपके से नहीं, वरन् सबों के समक्ष उपदेश देता है "तुम कृष्णभक्ति में अमुक-अमुक कार्य के लिए उपयुक्त हो। तुम इस प्रकार का कार्य कर सकते हो।" एक व्यक्ति को श्रीविग्रह के कमरे में कृष्ण भक्ति करने को कहा जा सकता है तो दूसरे को साहित्य-सम्पादन करने को, तो तीसरे को उपदेश देने को और अन्य किसी को रसोईघर का प्रबन्ध करने को कहा जा सकता है। कृष्णभक्ति में कार्य करने के लिए भिन्न-भिन्न विभाग हैं और गुरु व्यक्ति विशेष की क्षमता को जानते हुए उसे इस प्रकार शिक्षा देता है कि वह पूर्ण बन सके। *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार सेवा करके आध्यात्मिक जीवन की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करता है जिस प्रकार अर्जुन ने अपनी सैन्य चतुराई से कृष्ण की सेवा की। अर्जुन एक सैनिक की भाँति अपनी सेवाएँ अर्पित करके पूर्ण बन सका। इसी प्रकार कोई कलाकार अपने गुरु के निर्देशन में कलात्मक कार्य में सिद्धि पा सकता है। मनुष्य को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करने के सम्बन्ध में अपने गुरु से सन्देश ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि गुरु ऐसा उपदेश देने में पटु होता है।

—*भागवत* ३.२२.७

गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य को उसके मनोवैज्ञानिक स्वभाव

के अनुसार विशेष वृत्तिपरक कार्य का प्रशिक्षण दे

जब तक बालक को उसकी प्रवृत्ति के अनुसार प्रशिक्षित नहीं किया जाता है तब तक वह अपना विशिष्ट मनोभाव विकसित नहीं कर सकता। यह तो गुरु या अध्यापक का कर्तव्य है कि किसी बालक विशेष की मनोवैज्ञानिक गतिविधि का अवलोकन करे और इस तरह उसे विशेष वृत्तिपरक कार्य का प्रशिक्षण दे।

—*भागवत* ४.८.३६

गुरु को चाहिए कि शिष्य को कृष्ण से प्रेम करना सिखाए

गुरु को अपने शिष्य को इस तरह प्रशिक्षित करना चाहिए जिससे कि भविष्य में एकमात्र भगवान् ही उसके जीवन का सर्वप्रिय लक्ष्य हो।

—*भागवत* ३.३२.४२

गुरु का कर्तव्य होता है कि अपने शिष्य के मन को कृष्ण में स्थिर करने के उपाय खोजे

जिस तरह मनुष्य का मनोरोग मनोविज्ञानी के निर्देशों के द्वारा ठीक होता है उसी तरह *साधन भक्ति* द्वारा माया के पाश में फँसे बद्धात्मा का पागलपन दूर हो जाता है।

नारद ने इस *साधन भक्ति* का उल्लेख *श्रीमद्भागवत* में (७.१.३०) किया है। वे महाराज युधिष्ठिर से कहते हैं, "हे राजन! मनुष्य को येन केन प्रकारेण अपना मन कृष्ण पर स्थिर करना होता है।" यही कृष्णभावनामृत कहलाता है। आचार्य का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य के मन को कृष्ण पर स्थिर करने के उपाय खोज निकाले। *साधन भक्ति* की यही शुरुआत है।

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

गुरु शिष्य को साधन भक्ति में लगा कर उसे भगवान् के आनन्दमय प्रेम तक ऊपर उठाता है

प्रारम्भ में भक्त अपने गुरु की आज्ञा से साधन भक्ति में लगा

रहता है। किन्तु जब वह इसके द्वारा समस्त भौतिक कल्मष से पूर्णतया शुद्ध हो जाता है तो भक्ति के लिए आसक्ति तथा रुचि विकसित होती है। यही रुचि तथा आसक्ति क्रमशः कालानुक्रम में प्रेम बन जाती है...प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में शास्त्रों में बतलाई गई साधन भक्ति का अनुगमन करने मात्र से भगवान् के आनन्दमय प्रेम का आह्वान किया जा सकता है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

मन तथा शरीर से सम्पन्न भक्ति का निर्देशन गुरु द्वारा किया जाना चाहिए

जो लोग आध्यात्मिक जीवन का अनुशीलन कर रहे हैं तथा भक्ति को सम्पन्न करते हैं वे सदैव कार्य में लगे रहते हैं। यह कार्य शरीर से या मन से किया जा सकता है। सोचना, अनुभव करना तथा इच्छा करना ये सभी मन के कार्य हैं और जब हम कोई कार्य करते हैं तो यह हमारी स्थूल इन्द्रियों द्वारा प्रकट होता है। इस तरह हमें महान् आचार्यों तथा अपने गुरु के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए अपने मानसिक कार्यों में कृष्ण के विषय में सोचना तथा उन्हें प्रसन्न करने के उपाय करने का प्रयास करना चाहिए...यह कृष्णभावनामृत की मानसिक संस्कृति है।

इसी तरह हम अपने शीरीरिक कार्यों से अनेक सेवाएँ भेंट कर सकते हैं। किन्तु ऐसे कार्यों को कृष्ण से सम्बन्धित होना चाहिए। यह सम्बन्ध किसी प्रामाणिक गुरु के साथ अपने को जोड़कर स्थापित किया जाता है जो गुरु परम्परा में कृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है। इसलिए शरीर के द्वारा कृष्णभावनाभावित कार्यों को गुरु के निर्देशन में श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु* (भूमिका)

गुरु भक्त को बताता है कि भक्ति करने में क्या स्वीकार किया जाय क्या न किया जाय

मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसी किसी भी वस्तु को न छोड़े जिसका

उपयोग भगवान् की सेवा में किया जा सके। भक्ति का यही रहस्य है। कृष्णभावनामृत तथा भक्ति को अग्रसर करने में जिस भी वस्तु का उपयोग हो सके उसे स्वीकार करना चाहिए।...हमारी दृष्टि है कि कृष्ण सब कुछ हैं, कृष्ण कार्य-कारण हैं और कोई भी वस्तु हमारी नहीं है। कृष्ण की वस्तुओं का उपयोग कृष्ण की सेवा में किया जाना चाहिए। यही हमारी दृष्टि है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम भक्ति करने के सिद्धान्तों को त्याग दें या उनमें संस्तुत विधि-विधानों का पालन करने की उपेक्षा करें। भक्ति की नवदीक्षित अवस्था में सारे सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए जिनका नियमन गुरु के अधिकार से होता है। वस्तुओं को स्वीकारने तथा उनको त्यागने में भक्ति के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। ऐसा नहीं है कि कोई मनमाने ढंग से यह विचार बना ले कि क्या स्वीकारना है या त्यागना है। इसलिए भगवान् की ओर से भक्त का निर्देशन करने के लिए कृष्ण के दृश्य स्वरूप गुरु की आवश्यकता है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

यद्यपि गुरु शिष्य को तुरन्त आशीर्वाद दे सकता है किन्तु उसका कर्तव्य है कि शिष्य को भक्ति में लगाए

अनुवाद: नारदमुनि ने ध्रुव महाराज से कहा: तुम्हारी माता सुनीति ने भगवान् की भक्ति के पथ का अनुसरण करने के लिए जो उपदेश दिया है वह तुम्हारे लिए सर्वथा अनुकूल है। अत: तुम्हें भगवान् की भक्ति में पूर्णतया निमग्न हो जाना चाहिए।

तात्पर्य: यहाँ पर नारदमुनि को *भगवान्* कहा गया है, क्योंकि वे भी भगवान् के ही समान किसी भी व्यक्ति को आशीर्वाद दे सकते हैं। वे ध्रुव महाराज से परम प्रसन्न थे और वे चाहते तो तुरन्त ही मनवांछित वर दे सकते थे, किन्तु यह गुरु का कर्तव्य नहीं है। उसका कर्तव्य तो शास्त्रानुमोदित रीति से शिष्य को भक्ति में लगाना है। इसी प्रकार कृष्ण अर्जुन के समक्ष उपस्थित थे और वे चाहते तो बिना युद्ध के विपक्षी पर विजय करा देते, किन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया, अपितु

उन्होंने उससे युद्ध करने के लिए कहा।

—*भागवत* ४.८.४०

किस तरह गुरु तथा कृष्ण मिलकर गम्भीर भक्त को भगवद्धाम लौटने में सहायता पहुँचाते हैं

अनुवाद: हे द्युतिपूर्ण प्रभु! आप अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए सदा तैयार रहते हैं इसलिए आप वांछा-कल्पतरु कहलाते हैं। जब आचार्यगण अज्ञान के भयावह भवसागर को तरने के लिए आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं तो वे अपने पीछे अपनी वह विधि छोड़े जाते हैं जिससे वे पार करते हैं। चूँकि आप अपने अन्य भक्तों पर अत्यन्त कृपालु रहते हैं, अतएव उनकी सहायता करने के लिए आप इस विधि को स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य: इस कथन से पता चलता है कि किस तरह दयालु आचार्यगण तथा दयालु भगवान् मिलकर उस गंभीर भक्त की सहायता करते हैं जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है।...गुरु तथा कृष्ण की कृपा से ही मनुष्य को *भक्ति-लता-बीज* प्राप्त हो सकता है। गुरु का कर्तव्य है कि काल, परिस्थिति तथा पात्र के अनुसार साधनों की खोज करे जिससे मनुष्य को भक्ति करने के लिए प्रेरित किया जा सके, क्योंकि भगवद्धाम वापस जाने वाले व्यक्ति से कृष्ण यह भक्ति स्वीकार करते हैं। भाग्यवान व्यक्ति सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण करने के बाद इस भौतिक जगत में ऐसे गुरु या आचार्य की शरण खोजता है जो भक्त को परिस्थिति के अनुसार सेवा करने की उपयुक्त विधियों का प्रशिक्षण दे सके जिससे भगवान् उसकी सेवा स्वीकार कर सकें। इससे पात्र को अपने चरम गन्तव्य तक पहुँचने में सुविधा होती है। अतः आचार्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे साधन खोजे जिससे भक्त शास्त्रानुमोदित भक्ति कर सके।...अज्ञान के सागर को पार करने के लिए भगवान् के चरणकमलों की नौका बनाने की उपयुक्त विधि आचार्य द्वारा बतलाई जाती है और यदि पालनकर्ता इस विधि का दृढ़ता से पालन करता है तो वह भगवत्कृपा से गन्तव्य तक अवश्य पहुँच जाता है।

—*भागवत* १०.२.३१

गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्यों को वैष्णव आचार के सिद्धान्तों का उल्लंघन करने से रोके

वैष्णव आचार्य का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्यों तथा अनुयायियों को वैष्णव आचार सिद्धांतों का उल्लंघन करने से रोके। उसे चाहिए कि वह उन्हें विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करने की सलाह दे। इससे वे पतित नहीं हो सकेंगे।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* १३.१३३

गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को कर्म से भक्ति तक ऊपर उठाए

अनुवाद: शुभ तथा अशुभ कर्मों में लगे रहने वाले अज्ञानी व्यक्तियों को सभी प्रकार से भक्ति में लगाया जाना चाहिए। उन्हें सकाम कर्मों से बचना चाहिए। यदि कोई शिष्य, पुत्र या नागरिक को, जो दिव्य दृष्टि से रहित हैं, कर्म के बन्धन में डालता है तो भला वह कैसे लाभान्वित होगा? यह अंधे व्यक्ति को गड्ढे में ढकेलने जैसा है।

—*भागवत* ५.५.१५

शिष्य को चाहिए कि गुरु के निर्देशन में मनसा वाचा कर्मणा भगवान् की सेवा में लगे

मनुष्य को चाहिए कि ऐसा गुरु स्वीकार करे जो गुरु-परम्परा से सम्बद्ध हो तथा भगवान् के दास का भी दास हो। उसी के निर्देश में वह अपने मन, वाणी तथा शरीर को लगाए। गुरु की आज्ञा से वह शरीर को भौतिक कार्यों में, मन को अहर्निश कृष्ण के चिन्तन में और वाणी को भगवान् के यश के प्रचार में लगाए।

यदि मनुष्य इस प्रकार से भगवान् की प्रेमाभक्ति करता है तो उसका जीवन सार्थक हो जाता है।

—*भागवत* ६.११.२४

गुरु के मार्गदर्शन से शिष्य कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध के बारे में विश्वस्त हो जाता है (सम्बन्ध); तदनुसार कार्य करता है (अभिधेय)

तथा जीवन का चरम गन्तव्य प्राप्त करता है (प्रयोजन-सिद्धि)

अनुवादः "श्रवणादि भक्ति के द्वारा ही भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। उनके पास पहुँचने का यही एकमात्र उपाय है। गुरु के निर्देशानुसार इस नियमित भक्ति का अभ्यास करने पर मनुष्य का सुप्त भगवत्प्रेम निश्चित रूप से जागृत हो उठता है। यह विधि अभिधेय कहलाती है।

तात्पर्यः श्रवण तथा कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति के अभ्यास से बद्धजीव का अशुद्ध हृदय शुद्ध हो जाता है और वह भगवान् के साथ अपने नित्य सम्बन्ध को समझ सकता है। इस नित्य सम्बन्ध का वर्णन श्रीचैतन्य महाप्रभु के द्वारा किया गया है। *जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर नित्यदास*—जीव भगवान् का नित्य दास होता है। इस सम्बन्ध के प्रति आश्वस्त हो जाने पर वह तदनुसार कार्य करता है। यह *अभिधेय* कहलाता है। इसके बाद आती है *प्रयोजन-सिद्धि* अर्थात् जीवन के चरम लक्ष्य की पूर्ति। यदि कोई भगवान् के साथ अपने इस सम्बन्ध को समझ कर तदनुसार कार्य करता है तो उसका जीवन स्वतः पूर्ण हो जाता है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.१४१-४२

गुरु शिष्य को भौतिक जगत् से छुड़ाता है

गुरु भगवान् से कृपा लाकर संसार की प्रज्ज्वलित अग्नि को शमित करता है

यह संसार की दावाग्नि निरन्तर जलती रहती है और वह अधिकारी व्यक्ति जो आपको इस अग्नि से उबार सकता है गुरु कहलाता है।

वह आपको किस तरह उबारता है? इसके क्या साधन हैं? उसी उदाहरण पर विचार कीजिये। जब जंगल में आग लगती है तब न तो आप अग्नि-शामक (दमकल) बुला सकते हैं, न ही उसे बुझाने के लिए जल की आवश्यकता होती है, किन्तु यह जल कहाँ से आएगा—क्या आपकी बाल्टी से या दमकल से? नहीं इसे आकाश से आना चाहिए। जब आकाश से मूसलधार वर्षा होती है तभी जंगल

की आग बुझ सकेगी। आकाश से होने वाली यह वर्षा न तो आपके वैज्ञानिक प्रचार से या साँठ-गाँठ से होती है। यह परमेश्वर की कृपा पर निर्भर करती है। अत: गुरु की उपमा बादल से दी जाती है। जिस तरह बादल से वर्षा की झड़ी लगती है उसी तरह गुरु भगवान् की दया लाता है। बादल समुद्र से जल लेता है। उसके पास अपना जल नहीं होता, किन्तु वह समुद्र से जल लेता है। इसी तरह गुरु भगवान् से दया लाता है। जरा उपमा देखें। उसके पास निजी दया नहीं, अपितु वह भगवान् की दया वहन करता है। यही गुरु की योग्यता है।

गुरु यह कभी नहीं कहेगा, "मैं ईश्वर हूँ—मैं आपको दया दान कर सकता हूँ।" वह गुरु नहीं, वह धोखेबाज, वंचक है। गुरु तो कहेगा, "मैं ईश्वर का दास हूँ। मैं उनकी दया लाया हूँ। इसे ग्रहण कीजिये और तुष्ट हो जाइए।"। यह गुरु का कार्य है। वह डाकिये के समान है। जब डाकिया काफी रुपये लाता है तो यह उसके नहीं होते। यह रुपया किसी अन्य के द्वारा भेजा जाता है, किन्तु वह ईमानदारी से लाकर देता है, "महाशय! ये रहे आपके रुपये। इन्हें ले लें।" इस तरह आप उससे अतीव तुष्ट होते हैं, यद्यपि जो रुपये वह आपको दे रहा है उसके नहीं होते। जब आपको आवश्यकता होती है और आपको अपने पिता से या अन्य किसी से रुपये मिलते हैं जिसे डाकिया लाता है तो आपको अत्यधिक तुष्टि होती है।

इसी तरह हम सभी संसार की इस प्रज्ज्वलित अग्नि से कष्ट पा रहे हैं। लेकिन गुरु परमेश्वर के यहाँ से सन्देश लाता है और हमें देता है और यदि आप इसे स्वीकार करते हैं तो आप तुष्ट हो जाएँगे। यही गुरु का कार्य है।

संसार दावानललीढलोकत्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याणगुणार्णवस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

गुरु की वन्दना इस प्रकार की जाती है "महोदय! आप भगवान् के यहाँ से दया लाये हैं इसलिए हम आपके अत्यधिक आभारी हैं। आप हमारा उद्धार करने आये हैं अतएव हम आपको सादर नमस्कार करते

हैं।'' यही इस श्लोक का अर्थ है: गुरु की पहली योग्यता है कि वह आपके हृदय में धधकती अग्नि को शमित करने के लिए सन्देश लाता है। यही परीक्षा है।

—*बैक टु गाडहेड भाग १३ अंक १-२*

गुरु संसार की प्रज्ज्वलित अग्नि को (दिव्य ज्ञान प्रविष्ट करके) शमित करता है

यह भौतिक जगत जंगल में प्रज्ज्वलित अग्नि के समान है जिसका शमन भगवान् कृष्ण की कृपा से ही सम्भव है। गुरु भगवान् की कृपा का प्रतिनिधि होता है। अतएव संसार की ज्वालाओं में जलता हुआ व्यक्ति स्वरूपसिद्ध गुरु के माध्यम से ही भगवान् की कृपा रूपी वर्षा प्राप्त कर सकता है। गुरु अपनी वाणी के द्वारा पीड़ित व्यक्ति के हृदय में प्रवेश करके दिव्य ज्ञान प्रदान कर सकता है जिससे संसार की अग्नि बुझ जाती है।

—*भागवत १.७.२२*

गुरु का अवतरण सांसारिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए नहीं, अपितु पतित बद्धात्माओं का उद्धार करने के लिए होता है

आचार्य की पहचान साक्षात् ईश्वर से की गई है। उसे इस संसारी जगत के मामलों से कोई प्रयोजन नहीं होता। वह यहाँ पर क्षणिक आवश्यकताओं के मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए अवतरित नहीं होता, अपितु उन पतित बद्धात्माओं या जीवों का उद्धार करने के लिए आता है जो मन, तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा भोग करने के उद्देश्य से भौतिक जगत में आये हैं। वह वेदों का प्रकाश उद्घाटित करने के लिए तथा उस पूर्ण स्वतन्त्रता का आशीर्वाद देने के लिए आता है जिसके लिए हम अपनी जीवन यात्रा के पग-पग पर लालायित रहते हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु शिष्य को अमरता की राह दिखाने का उत्तरदायित्व अपने

ऊपर लेता है

हमें समझना चाहिए कि हम सभी जन्मजात मूर्ख तथा धूर्त हैं और हमें प्रबुद्ध किये जाने की आवश्यकता है। हमें अपने जीवनों को पूर्ण बनाने के लिए ज्ञान प्राप्त करना होता है। यदि हम अपने जीवनों को पूर्ण नहीं बनाते तो हम पराजित होते हैं। यह पराजय क्या है? जीवन-संघर्ष। हम श्रेष्ठतर जीवन प्राप्त करने, श्रेष्ठतर पद पाने के लिए प्रयास करते हैं और इसके लिए हम कठिन संघर्ष करते हैं। किन्तु हम यह नहीं जानते कि वास्तव में यह श्रेष्ठतर पद है क्या।

हमें इस भौतिक जगत् में जो भी पद मिला है उसका परित्याग कर देना चाहिए। हमें अच्छा पद या बुरा पद मिला हो सकता है किन्तु हम किसी भी दशा में यहाँ बने नहीं रह सकते। हम लाखों डालर कमा सकते हैं और सोच सकते हैं कि "मैं अच्छे पद पर हूँ" किन्तु थोड़ी सी पेचिश या हैजा हमारे पद को समाप्त कर देगी। यदि बैंक डूब जाय तो हमारा पद मानो गया। अतः इस भौतिक जगत में कोई अच्छा पद नहीं है। यह सब बकवास है। जो लोग इस भौतिक जगत् में श्रेष्ठतर पद प्राप्त करना चाहते हैं वे अन्ततोगत्वा पराजित होते हैं, क्योंकि श्रेष्ठतर पद नहीं है।

...क्या कोई ऐसा विज्ञान है जो हमें ज्ञान देता है जिससे हम अमर हो सकें? हाँ, हम अमर बन सकते हैं, किन्तु भौतिक अर्थों में नहीं। हम इस ज्ञान को तथाकथित विश्वविद्यालयों में नहीं पा सकते। किन्तु वैदिक शास्त्रों में ऐसा ज्ञान है जिससे हम अमर बन सकते हैं। यह अमरता हमारा श्रेष्ठतर पद है। फिर न तो जन्म, न मृत्यु, न वृद्धावस्था, न रोग। इस प्रकार गुरु बहुत बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। उसे अपने शिष्य का मार्गदर्शन करना चाहिए और उसे इस योग्य बनाना चाहिए कि वह पूर्ण पद, अमरता, के लिए सुपात्र बन सके। गुरु को अपने शिष्य को भगवद्धाम ले जाने में दक्ष होना चाहिए।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु का कार्य है कि वह अपने शिष्यों को विरक्ति की शिक्षा

दे

हम इस भौतिक जगत् में अत्यधिक आसक्त रहते हैं। किन्तु वैदिक प्रणाली के अनुसार वैराग्य (संन्यास) अनिवार्य है, क्योंकि पचास वर्ष की आयु प्राप्त करने पर मनुष्य अपने परिवार का परित्याग कर देता है। प्रकृति आगाह करती है "अब तुम पचास के हो गये। तुम इस भौतिक जगत् में लड़ चुके। अब यह कार्य बन्द करो।" बच्चे समुद्र के किनारे खेल-खेल में बालू के घरौंदे बनाते हैं, किन्तु थोड़ी देर बाद पिता आता है और कहता है, "बच्चों! अब समय हो चुका। यह कार्य बन्द करो और घर चलो।" यह है गुरु का कार्य—अपने शिष्यों को विरक्ति की शिक्षा देना। यह संसार हमारा स्थान नहीं है, हमारा स्थान तो वैकुण्ठलोक है।

—*भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ*

गुरु हृदय के भीतर चिन्ता की प्रज्ज्वलित अग्नि को शमित करता है

हर व्यक्ति के हृदय के भीतर अग्नि प्रज्ज्वलित होती रहती है—यह चिन्ता की प्रज्ज्वलित अग्नि है। यही भौतिक जगत का स्वभाव है। हर व्यक्ति को चिन्ता सदैव सताती है, कोई भी इससे मुक्त नहीं। यहाँ तक कि छोटे से पक्षी में चिन्ता होती है। यदि आप छोटे पक्षी को चुगने के लिए दाने दें तो वह उन्हें खाएगा, किन्तु शान्तिपूर्वक नहीं खाएगा। वह इधर-उधर ताकेगा—"क्या कोई व्यक्ति मुझे मारने आ रहा है?" यही भौतिक जगत है। हर व्यक्ति, यहाँ तक कि राष्ट्रपति निक्सन महोदय भी चिन्ता-मग्न थे। सारे राजनीतिज्ञ चिन्तामग्न रहते हैं। भले ही वे अति उच्च पद पर हों, किन्तु तो भी भौतिक रोग यानी चिन्ता सताती है। इसलिए यदि आप चिन्तारहित होना चाहते हैं तो आपको गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए और गुरु की परीक्षा है कि उसके आदेशों का पालन करने से आप चिन्ता-मुक्त हो जाएँगे। यही परीक्षा है। आप सस्ता गुरु या फैशनपरस्त गुरु खोजने का प्रयास न करें। जिस प्रकार आप कभी कभी फैशन के रूप में कुत्ते की

खोज करते हैं, उसी तरह यदि आप फैशनवश गुरु बनाना चाहते हैं—"मेरे गुरु हैं" तो इससे काम नहीं चलेगा। आपको ऐसा गुरु बनाना चाहिए जो आपके हृदय के भीतर की चिन्ता की प्रज्ज्वलित अग्नि को शमित कर सके।

—*बैक टु गाडहेड* भाग १३ अंक १-२

शुद्ध भक्त के शिष्य आसानी से शुद्ध किये जा सकते हैं और भगवद्धाम में प्रवेश कर सकते हैं

शुद्धभक्त न केवल अपना निजी जीवन शुद्ध बनाता है अपितु जो भी उसका शिष्य बनता है वह अन्ततोगत्वा शुद्ध बन जाता है और बिना कठिनाई के भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है। शुद्ध भक्त न केवल मृत्यु को आसानी से लाँघ सकता है, अपितु उसकी कृपा से उसके अनुयायी भी बिना किसी कठिनाई के लाँघ जाते हैं। भक्ति की शक्ति इतनी अधिक है कि शुद्ध भक्त अज्ञान के सागर को पार करने के लिए अपने दिव्य उपदेश द्वारा अन्य व्यक्ति को विद्युन्मय कर सकता है।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

गुरु मनुष्य जीवन रूपी नौका का नाविक है जिससे अज्ञान-सागर को पार करना होता है

जब मनुष्य को कोई विशाल सागर पार करना होता है तो एक सुदृढ़ नाव की आवश्यकता होती है। कहा जाता है कि अज्ञान रूपी सागर को पार करने के लिए मानव शरीर नाव स्वरूप है। मनुष्य जीवन में गुरु अच्छे नाविक का काम करता है। श्रीकृष्ण की कृपा से अनुकूल हवाएँ भी मिल जाती हैं जो श्रीकृष्ण के उपदेश तुल्य हैं। मनुष्य शरीर नाव है, श्रीकृष्ण के आदेश अनुकूल हवाएँ हैं और गुरु नाविक है। गुरु यह जानता है कि पाल को कैसे साधा जाय कि हवा अनुकूल रहे और गन्तव्य तक नाव खे ली जाय। किन्तु यदि इस अवसर का लाभ नहीं उठाया गया तो यह मनुष्य जीवन नष्ट हो जाता है। समय तथा जीवन को नष्ट करना आत्मघात जैसा

है।

—*भागवत* ४.२३.२८

गुरु का कर्तव्य है शिष्य को शिक्षा दे कि किस तरह भौतिकतावादी जीवन त्यागा जाय और शिष्य का कर्तव्य है कि ऐसा ही करे

अनुवाद: शुकदेव गोस्वामी बोले: हे राजन! नारद मुनि के उपदेश सुन लेने के अनन्तर प्रजापति दक्ष के पुत्र हर्यश्वगण पूर्णतया आश्वस्त हो गये। उन सभी ने नारद मुनि के उपदेश पर विश्वास किया और सभी एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे। उनको अपना आध्यात्मिक गुरु मान कर उन्होंने महामुनि की परिक्रमा की और उस पथ पर चल पड़े जो पुन: इस भौतिक जगत् में वापस नहीं लाता।

तात्पर्य: इस श्लोक से हम दीक्षा का अर्थ तथा शिष्य और गुरु के कर्तव्यों को समझ सकते हैं। गुरु अपने शिष्य को भूलकर भी यह उपदेश नहीं देता, "मुझसे मंत्र लो, मुझे कुछ रुपये दो, योगाभ्यास करते हुए तुम भौतिक जीवन में पूर्ण प्रवीण बन जाओगे।" यह गुरु का कर्तव्य नहीं है। इसके स्थान पर गुरु अपने शिष्य को सिखाता है कि भौतिक जीवन किस प्रकार छोड़ा जाय और शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु के उपदेशों को आत्मसात् करे और अन्ततः उस पथ का पथिक बन जाय जो परमधाम को जाता है और जहाँ से कोई पुन: इस भौतिक जगत में लौट कर नहीं आता।...(हर्यश्वों के) भौतिकवादी पिता ने उन्हें जनसंख्या बढ़ाने का आदेश दिया था परन्तु नारदमुनि के उपदेशों को याद कर उन्होंने पिता के निर्देशों पर ध्यान नहीं दिया। नारद मुनि ने उनके गुरु रूप में उन्हें शास्त्रीय उपदेश दिये कि वे इस भौतिक जगत को छोड़ दें और प्रामाणिक शिष्यों की तरह उन्होंने उनके उपदेशों का अनुसरण किया।

—*भागवत* ६.५.२१

साधु या गुरु की संगति करने से मनुष्य पदार्थ से विरक्ति सीखता

है और भक्ति में बढ़-चढ़ जाता है

अनुवाद: प्रत्येक विद्वान पुरुष अच्छी तरह जानता है कि सांसारिक आसक्ति ही आत्मा का सबसे बड़ा बन्धन है। किन्तु वही आसक्ति यदि स्वरूपसिद्ध भक्तों के प्रति हो जाय तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

तात्पर्य: यहाँ संस्तुति की गई है कि आसक्ति को स्वरूपसिद्ध भक्तों या साधुओं में स्थानान्तरित कर दिया जाय और साधु कौन है? साधु कोई सामान्य व्यक्ति नहीं होता जो गेरुआ वस्त्र पहने हो या लम्बी सी दाढ़ी रखे हो। *भगवद्गीता* में बताया गया है कि साधु वह है जो बिना हिचक के भक्ति में लगा रहता है। भले ही वह भक्ति के नियमों का दृढ़ता से पालन न करता हो किन्तु यदि परम पुरुष कृष्ण में उसकी अडिग आस्था है तो वह साधु समझा जाता है। *साधुरेव स मन्तव्यः*। साधु भक्ति का कट्टर अनुयायी होता है। यहाँ यह संस्तुति की गई है कि जो ब्रह्म-साक्षात्कार करना चाहता है या आध्यात्मिक सिद्धि का इच्छुक है उसे चाहिए कि साधु या भक्ति पर आसक्त हो। भगवान् चैतन्य ने भी इसकी पुष्टि की है। *लवमात्र साधु संगे सर्वसिद्धि हय*—साधु की क्षणमात्र संगति से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

महात्मा शब्द साधु का पर्यायवाची है। कहा जाता है कि महात्मा की सेवा मुक्ति का राजमार्ग है—*द्वारमाहुर्विमुक्तेः। महत् सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्*। (भागवत ५.५.२)। भौतिकवादियों की सेवा करने से उल्टा प्रभाव होता है। यदि कोई किसी निरे भौतिकवादी या इन्द्रियभोग में लगे व्यक्ति की सेवा करता है तो ऐसे व्यक्ति की संगति से नरक का द्वार खुल जाता है। यहाँ इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है। भक्त के प्रति आसक्ति भगवत्सेवा के प्रति आसक्ति है, क्योंकि यदि कोई साधु की संगति करता है तो वह शिक्षा देगा कि किस प्रकार भगवान् का भक्त, पूजक तथा निष्ठावान् दास बना जाय। साधु के ये ही वरदान हैं। यदि हम साधु की संगति करना चाहें तो हमें यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि

वह हमें यह बताए कि हम अपनी भौतिक स्थिति किस प्रकार सुधारें, अपितु वह हमें यह शिक्षा देगा कि भौतिक आकर्षण रूपी कलमष की गाँठ को कैसे काटा जाय और भक्ति में कैसे ऊपर उठा जाय। साधु की संगति का यही फल है। कपिल मुनि सर्वप्रथम बताते हैं कि मुक्ति मार्ग का शुभारम्भ ऐसी ही संगति से प्रारंभ होता है।

—*भागवत* ३.२५.२०

गुरु की कृपा से मनुष्य को समुचित मुक्त पद प्राप्त हो सकता है

जीव को भगवान् तथा गुरु की कृपा से अपनी स्थिति को समझना होता है...मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की खोज करके अपनी मूल चेतना प्राप्त करनी चाहिए। तब जीव को समझ में आएगा कि वह परमात्मा के सदैव अधीन है। ज्योंही वह अधीनता अस्वीकार करके भोक्ता बनता है, उसका भौतिक बन्धन प्रारम्भ हो जाता है। जब वह भोक्ता बनने के भाव का परित्याग करता है तो वह मुक्त अवस्था को प्राप्त करता है। *स्वस्थ* शब्द का अर्थ है "अपनी मूल स्थिति में होना।" जब वह श्रेष्ठता की मनोवृत्ति त्याग देता है तो वह अपनी मूल स्थिति को प्राप्त करता है। *तद्व्यभिचारेण* शब्द भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सूचित करता है कि जब जीव अवज्ञावश ईश्वर से विलग हो जाता है तो उसकी वास्तविक चेतना जाती रहती है। केवल कृष्ण तथा गुरु की कृपा से वह अपनी मुक्त-अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

—*भागवत* ४.२८.६४

गुरु (शिष्य के लाभ के लिए) शिष्य को प्रताड़ित करता है

अनुवाद: भगवान् ने कहा: तुम पाण्डित्यपूर्ण वचन कहते हुए ऐसे लोगों के लिए शोक कर रहे हो जो शोक करने योग्य नहीं हैं। जो विद्वान् होते हैं वे न तो जीवित के लिए, न ही मृत के लिए शोक करते हैं।

—*भगवद्गीता* २.११

अपने शिष्य के शुभेच्छु के रूप में गुरु को अधिकार है कि

वह उसे प्रताड़ित करे

"हे प्रभु! आप परम पिता, परम गुरु तथा परम राजा हैं। अतएव आपको अधिकार है कि जब भी जीवों के आचरण में कोई त्रुटि आए तो आप उन्हें प्रताड़ित कर सकते हैं। पिता, गुरु तथा राजा का परम प्रशासनिक अधिकार सदैव अपने अपने पुत्रों, शिष्यों तथा नागरिकों के हितेच्छु होते हैं। फलतः इन हितेच्छुओं को अपने आश्रितों को प्रताड़ित करने का अधिकार है।"

—*लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण*

गुरु शिष्य के भले के लिए उसे प्रताड़ित करता है

अनुवाद: तो रामचन्द्र पुरी इतना मूर्ख निकला कि उसने निडर होकर अपने गुरु को उपदेश देने का दु:साहस किया। उसने कहा, "यदि आप दिव्य आनन्द को प्राप्त हैं तो आपको अब केवल ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए। आप क्यों रो रहे हैं?" यह उपदेश सुनकर माधवेन्द्र पुरी अत्यधिक क्रुद्ध हुए और "निकल जा रे पापी!" कहकर उसको प्रताड़ित किया।

तात्पर्य: रामचन्द्र पुरी यह नहीं समझ सका कि उसके गुरु माधवेन्द्र पुरी को विरह भाव सता रहा है। उनका शोक भौतिक न था, प्रत्युत यह कृष्ण प्रेमावेश की सर्वोच्च अवस्था से उत्पन्न था। जब वे विरह में चिल्ला रहे थे कि "मैं कृष्ण को न पा सका। मैं मथुरा न पहुँच सका" तो यह सामान्य भौतिक शोक न था। रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी के उद्गारों को समझने में पर्याप्त दक्ष न था तो भी वह अपने को बहुत बढ़ा-चढ़ा मानता था। इसलिए माधवेन्द्र पुरी की अभिव्यक्ति को सामान्य भौतिक शोक मानते हुए उसने उन्हें ब्रह्म का स्मरण करने के लिए कहा, क्योंकि वह प्रच्छन्न रूप में निर्विशेषवादी था। माधवेन्द्र पुरी रामचन्द्र पुरी की मूर्खता समझ गये इसलिए तुरन्त उसे डाँटा। गुरु द्वारा ऐसी डाँट निश्चय ही शिष्य की अच्छाई के लिए होती है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य ८.२०-२२*

गुरु अपने शिष्यों को प्रगति करता देख हर्षित होता है

जब शिष्य आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करता है तो गुरु हर्षित होता है

अनुवाद: भाववश भगवन्नाम कीर्तन में मनुष्य नाचने, हँसने और रोने लगता है। जब मेरे गुरु ने यह सब सुना तो वे हँसने लगे...

तात्पर्य: जब शिष्य आध्यात्मिक जीवन में ठीक से प्रगति करता हो तो इससे गुरु प्रसन्न होता है और वह भी यह सोच कर भाववश हँसता है कि मेरा शिष्य कितना सफल हो चुका है। वह इतना प्रसन्न होता है कि अपने शिष्य की उन्नति से हँसने लगता है जिस प्रकार कि माता-पिता अपने छोटे से बालक के खड़े होने या घुटने के बल चलने के प्रयास को देखकर हँसते हैं।

—चैतन्य-चरितामृत आदि ७.८२

जब गुरु शिष्य को विधि-विधानों का पालन करते तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करते देखता है तो वह अत्यधिक हर्षित होता है

अनुवाद: "हे पुत्र! यह तो अच्छा हुआ कि तुमने भगवत्प्रेम उत्पन्न करके जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। इस तरह तुमने मुझे अत्यधिक प्रसन्न कर लिया है और मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।"

तात्पर्य: कृष्ण विज्ञान को समझना बहुत कठिन है और भगवत्प्रेम उत्पन्न करना तो और भी कठिन है। अतः यदि श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं गुरु की कृपा से किसी शिष्य को शुद्धभक्ति का पद प्राप्त हो सके तो गुरु अत्यधिक सुखी होता है। यदि शिष्य उसके लिए धन लाता है तो वह उतना प्रसन्न नहीं होता जितना यह देखकर कि उसका शिष्य अनुष्ठानों का पालन कर रहा है और आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर रहा है। गुरु ऐसे प्रगत शिष्य से अत्यन्त हर्षित होता है और उससे कृतार्थ हो जाता है।

गुरु अपने शिष्य को प्रगति करते देखने में स्वयं प्रगति करने की अपेक्षा अधिक रुचि लेता है

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा कि उनके गुरु ने उन्हें बतलाया, "यह अत्युत्तम बात है कि तुमने भगवत्प्रेम की ऐसी सिद्धावस्था प्राप्त कर ली है। तुम्हारी इस उपलब्धि के कारण मैं तुम्हारा अत्यधिक कृतज्ञ हूँ।" पिता जब अपने पुत्र को अपने से भी आगे बढ़ता देखता है तो वह अधिक उत्साहित होता है। इसी तरह गुरु स्वयं प्रगति करने की अपेक्षा अपने शिष्य को प्रगति करते देखने में अधिक रुचि लेता है।

—*श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु का जीवनलक्ष्य पूरा हो जाता है यदि वह एक भी आत्मा को शुद्ध भक्त बना सके

अनुवाद: "हे पुत्र! यह तो अच्छा हुआ कि तुमने भगवत्प्रेम उत्पन्न करके जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। इस तरह तुमने मुझे अत्यधिक प्रसन्न कर लिया है और मैं तुम्हारा अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।"

तात्पर्य: शास्त्रों के अनुसार यदि कोई किसी एक व्यक्ति को भी शुद्ध भक्त बना लेता है तो उसका जीवन-उद्देश्य पूरा हो जाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर हमेशा कहा करते थे, "मेरे पास जितनी सम्पत्ति, मन्दिर तथा मठ हैं, यदि उन्हें देकर भी मैं एक भी व्यक्ति को शुद्ध भक्त बना सकूँ तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जाएगा।" किन्तु कृष्णविज्ञान को समझना बहुत कठिन है। अतः यदि श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं गुरु की कृपा से किसी शिष्य को शुद्ध भक्ति का पद प्राप्त हो सके तो गुरु अत्यधिक प्रसन्न होता है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि ७.९१*

प्रचारक के रूप में गुरु (सामान्य आदेश)

प्रामाणिक गुरु दयालु वैष्णव है जो बद्धात्माओं को प्रबुद्ध करने

का प्रयास करते हैं

वैष्णव या भक्तजन सदा की तरह बद्धात्माओं पर अत्यन्त दयालु होते हैं। भक्त बिना बुलाये ही लोगों को प्रबुद्ध करने तथा भगवान् कृष्ण के सेवक के रूप में जीव की स्वाभाविक स्थिति का ज्ञान प्रविष्ट करके अविद्या के अंधकार से बाहर निकालने के लिए द्वार-द्वार जाता है। ऐसे भक्त जनता को कृष्णभावनामृत या भक्तिमयी चेतना का वितरण करने के लिए भगवान् द्वारा शक्त्याविष्ट किये जाते हैं। वे प्रामाणिक गुरु के रूप में जाने जाते हैं और उनकी कृपा से ही बद्धात्मा को भक्तिबीज मिलता है।

—*चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

प्रामाणिक, साधु स्वभाव वाला गुरु सदा ही हर सामान्य जन को कृष्णभावनामृत तक उठाना चाहता है

प्रामाणिक गुरु या साधु पुरुष सदैव अपने पास आने वाले को ऊपर उठाने के लिए इच्छुक रहते हैं। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति माया के मोहवश है और वह अपने मुख्य कर्तव्य, कृष्ण भक्ति, को भूलता रहता है, अतः सन्त साधु पुरुष चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति साधु बन जाय। प्रत्येक साधु पुरुष का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक भुलक्कड़ सामान्य पुरुष में कृष्णभक्ति जागृत करे।

—*भागवत* ३.२२.७

आचार्य सदा जनता के आध्यात्मिक हितचिंतन में निमग्न रहता है

अनुवाद: अतएव अनेक वर्षों तक कृपापात्र रहने के कारण आप सरलता से समझ में आने वाली विधि से हमें समझावें कि आपने जनसामान्य के परम कल्याण के लिए क्या निश्चय किया है।

तात्पर्य: *भगवद्गीता* में आचार्य की पूजा का आदेश है। आचार्य तथा गोस्वामी निरन्तर सामान्य जनता के कल्याण के विचारों में, विशेषतया उनके आध्यात्मिक हितचिन्तन में लीन रहते हैं। आध्यात्मिक उन्नति होने

पर भौतिक उन्नति स्वतः हो जाती है। अतएव आचार्यगण सामान्य जनता को आध्यात्मिक कल्याण के लिए उपदेश देते हैं।

—*भागवत* १.१.९

मानवता के लिए दया ही आचार्य की योग्यता

अनुवाद: संसार के क्रियाकलापों को देखकर आचार्य को दया आई और वे विचारमग्न हो गये कि किस तरह जनता का हित किया जाय।

तात्पर्य: जनता के कल्याण के लिए इस प्रकार की गम्भीर रुचि मनुष्य को प्रामाणिक आचार्य बनाती है। आचार्य कभी भी अपने अनुयायियों का शोषण नहीं करता। चूँकि आचार्य भगवान् का विश्वस्त सेवक होता है अतएव उसका हृदय मानव कष्टों के प्रति दया से ओतप्रोत रहता है। वह जानता है कि सारे कष्ट भगवद्भक्ति के अभाव से उत्पन्न हैं, अतएव वह लोगों के कार्यों को बदलने के लिए साधन ढूँढता रहता है जिससे उन्हें भक्ति प्राप्त हो सके। यही *आचार्य* की योग्यता है...इस उद्योग के कारण वह भगवान् का प्रिय बन जाता है, क्योंकि भगवान् *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहते हैं कि मानव समाज में भक्त से बढ़कर उन्हें अन्य कोई प्रिय नहीं, क्योंकि वह जगत के वास्तविक लाभ के लिए ईश्वर के सन्देश का प्रचार करने के लिए साधनों को खोजता रहता है। कलियुग के तथाकथित आचार्य अपने अनुयायियों के कष्टों को कम करने के लिए उतने चिन्तित नहीं रहते जितना कि उनके संसाधनों का दोहन करने में। लेकिन एक आदर्श आचार्य की तरह श्री अद्वैत प्रभु संसार की दशा को सुधारने के प्रति चिन्तित थे।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि ३.९८

गुरु का मिशन सारे जगत् में कृष्णभावनामृत को फैलाना है

आचार्य का अर्थ है "शिक्षक"। ऐसे शिक्षक का विशिष्ट कार्य है लोगों को कृष्णभावनाभावित बनाना। अद्वैत आचार्य के चरणचिन्हों का अनुगमन करते समय प्रामाणिक गुरु के पास सारे जगत में कृष्णभावनामृत के सिद्धान्तों का विस्तार करने के अलावा अन्य कोई कार्य नहीं रहता।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि ६.२८

जो शास्त्र के अनुसार कार्य करता है और साथ ही साथ प्रचार करता है वह प्रामाणिक गुरु है

अनुवाद : "कुछ लोग बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं, किन्तु कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार नहीं करते जबकि अन्य लोग प्रचार करते हैं, किन्तु वे उचित रीति से व्यवहार नहीं करते। तुम अपने निजी आचरण तथा अपने प्रचार द्वारा नाम से सम्बद्ध दोनों कार्यों को एक ही साथ करते हो। इसलिए तुम सारे जगत के गुरु हो, क्योंकि तुम जगत में सबसे बड़े भक्त हो।"

तात्पर्य : यहाँ पर सनातन गोस्वामी प्रामाणिक जगद्गुरु की परिभाषा देते हैं। इस सम्बन्ध में जो योग्यताएँ बताई गई हैं वे हैं: मनुष्य शास्त्रीय आदेशों के अनुसार कार्य करे और उसी के साथ साथ प्रचार करे। जो ऐसा करता है वही प्रामाणिक गुरु है। हरिदास ठाकुर आदर्श गुरु थे, क्योंकि वे नियत संख्या में नाम जप करते थे। वे प्रतिदिन तीन लाख नाम जप करते थे। इसी तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य प्रतिदिन कम से कम सोलह माला नाम जप करते हैं जिसे बिना कठिनाई के किया जा सकता है और उसी के साथ उन्हें *भगवद्गीता* की शिक्षा के अनुसार चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। जो ऐसा करता है वह जगद्गुरु बनने के लिए उपयुक्त है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ४.१०२-३

आचार्य को प्रचार करने के लिए उत्सुक होना चाहिए न कि मन्दिर-आय से अपनी जीविका चलाने के लिए

अनुवाद : अद्वैत आचार्य सदैव इन विचारों में लीन रहते थे कि सम्पूर्ण जगत के पतितात्माओं का किस तरह उद्धार किया जाय। उन्होंने सोचा, "सारा जगत अभक्तों से भरा है। उनका किस तरह उद्धार हो सकेगा?"

तात्पर्य : श्रील अद्वैत आचार्य वैष्णव सम्प्रदाय में आचार्यों के लिए आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं। आचार्य को पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए सदैव उत्सुक रहना चाहिए। जो लोगों द्वारा देवपूजा के लिए चढ़ाये गये धन को अपनी जीविका के लिए प्रयुक्त करके, लोगों की

भावनाओं का लाभ उठाने के लिए मठ या मन्दिर स्थापित करता है वह *गोस्वामी* या *आचार्य* नहीं कहा जा सकता है। जो व्यक्ति शास्त्रों के निर्णय को जानता है, वह अपने पूर्ववर्तियों के पदचिह्नों पर चलता है और विश्वभर में भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार करने का प्रयास करता है उसे ही *आचार्य* माना जायेगा। आचार्य की भूमिका मन्दिर की आय के द्वारा जीविकोपार्जन करने में नहीं है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे कि यदि कोई मन्दिर में अर्चाविग्रह दिखला कर जीविका चलाता है तो वह आचार्य या गोस्वामी नहीं है। इससे अच्छा तो सड़क में झाड़ू लगाने का काम श्रेयस्कर होगा, क्योंकि जीविकोपार्जन का यह अधिक सम्मानित साधन है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ३.२२३

गुरु का मुख्य कर्तव्य प्रचार करना है न कि मन्दिर निर्मिति करना

हम श्रीचैतन्य महाप्रभु की पंक्ति के विभिन्न आचार्यों के जीवन में यह देख सकते हैं कि वे मन्दिर निर्मित कराने के विषय में अधिक उत्साही नहीं थे। किन्तु यदि कोई व्यक्ति कुछ सेवा अर्पित करने के लिए तैयार होता है तो वे ही आचार्य ऐसे सेवकों द्वारा कीमती से कीमती मन्दिर बनवाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करेंगे। उदाहरणार्थ, रूपगोस्वामी के समक्ष सम्राट अकबर के सेनापति महाराज मानसिंह ने उपहार का प्रस्ताव रखा तो रूपगोस्वामी ने गोविन्द जी का विशाल मन्दिर बनवाने का आदेश दिया जिसमें विपुल धन लगा।

अतः प्रामाणिक गुरु को मन्दिर बनवाने का भार अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए किन्तु यदि किसी के पास धन हो और वह कृष्ण की सेवा में लगाना चाहे तो रूपगोस्वामी जैसे आचार्य भक्त के धन का उपयोग भगवान् की सेवा के लिए उत्तम मूल्यवान मन्दिर बनवाने में करा सकते हैं। दुर्भाग्यवश, ऐसा होता है कि जो गुरु होने के योग्य नहीं होता ऐसा व्यक्ति धनी व्यक्तियों के पास जाकर मन्दिर-निर्माण हेतु उनसे दान देने के लिए कहता है। यदि ऐसे धन का उपयोग अयोग्य गुरुओं द्वारा मूल्यवान मन्दिरों में आराम से रहने के लिए प्रयुक्त किया जाता है और कोई प्रचार कार्य नहीं किया जाता तो यह स्वीकार्य

नहीं है। दूसरे शब्दों में, तथाकथित आध्यात्मिक उन्नति के नाम पर मन्दिर-भवन निर्मित करने के लिए गुरु को अधिक उत्साह दिखाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्युत उसका सर्वप्रथम कार्य प्रचार करना होना चाहिए। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज ने संस्तुति की है कि गुरु पुस्तकों का प्रकाशन करे। यदि किसी के पास धन है तो उसे कीमती मन्दिर का निर्माण कराने के बजाय कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने के लिए विभिन्न भाषाओं में प्रामाणिक पुस्तकें प्रकाशित करने में अपना धन व्यय करना चाहिए।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

प्रचार कार्यों के लिए गुरु उत्तम अधिकारी पद से मध्यम अधिकारी पद पर उतर आता है

ऐसा माना जाता है कि गुरु सर्वाधिक बढ़ी-चढ़ी अवस्था में होता है, किन्तु प्रचार कार्यों के लिए वह मध्यम अवस्था में (मध्यम अधिकारी) उतर आता है। उत्तम अधिकारी यानी सर्वाधिक बढ़ा-चढ़ा भक्त भक्तों तथा अभक्तों में भेदभाव नहीं करता। वह अपने अतिरिक्त हर एक को भक्त के रूप में देखता है। वास्तविक बढ़ा-चढ़ा भक्त देखता है कि वह भक्त नहीं है किन्तु अन्य हरव्यक्ति भक्त है...। मध्यम अधिकारी ऐसा भक्त है जो भगवान् की पूजा प्रेम की सर्वोच्च वस्तु के रूप में करता है, भगवद्भक्तों से मैत्री स्थापित करता है, अज्ञानियों पर दयालु होता है तथा जो स्वभाव से ईर्ष्यालु हैं उनसे दूर रहता है...।''

—*भागवत* ११.२.४६ (भगवान् कपिलदेव की शिक्षाओं में उद्धृत

प्रचार के रूप में (देश काल के अनुसार) गुरु को प्रचार करना चाहिए

आचार्य से आशा की जाती है कि वह पुराणपंथी न हो अपितु देश-काल के अनुसार प्रचार करे

अनुवाद: यह देखकर कि मायावादी तथा अन्य लोग भागे जा रहे हैं, चैतन्य महाप्रभु ने सोचा, ''मैं यह चाह रहा था कि प्रत्येक व्यक्ति

भगवत्प्रेम की बाढ़ में निमग्न हो जाय, किन्तु उनमें से कुछ लोग भाग निकले हैं। अतएव मैं उन्हें भी इसमें डुबाने की कोई तरकीब निकालूँगा।''

तात्पर्य : यहाँ पर एक महत्वपूर्ण बात कही गई है। चैतन्य महाप्रभु ऐसा मार्ग खोजना चाह रहे थे जिससे वे मायावादियों तथा कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि न रखने वालों को पकड़ सकें। यह आचार्य का लक्षण है। एक आचार्य जो भगवान् की सेवा करने के लिए आता है उससे यह उम्मीद नहीं की जाती कि वह घिसे-पिटे मार्ग पर चलेगा, क्योंकि उसे ऐसे मार्ग और साधन ढूँढने होंगे जिनसे कृष्णभावनामृत का प्रसार हो सके।

—चैतन्य-चरितामृत आदि ७.३१-३२

आचार्य को कृष्णभावनामृत की ओर लोगों को आकृष्ट करने के उपाय खोजने चाहिए

आदर्श आचार्य के रूप में श्रीचैतन्य महाप्रभु सभी तरह के नास्तिकों तथा भौतिकतावादियों को फँसाने के लिए उपाय निकालते रहते थे। प्रत्येक आचार्य के पास अपने आध्यात्मिक आन्दोलन के प्रचारार्थ विशेष साधन होते हैं जिससे लोग कृष्णभावनामृत में सम्मिलित हों। अतएव आचार्य के साथ-साथ विधियाँ भिन्न हो सकती हैं, किन्तु उनका चरम लक्ष्य एक ही रहता है। श्रील रूपगोस्वामी की संस्तुति है—

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥

आचार्य को ऐसा उपाय निकालना चाहिए जिससे लोग कृष्णभावनामृत की ओर आयें। सबसे पहले वे कृष्णभावनाभावित बनें और तब उन्हें सारे विधि-विधानों से परिचित कराया जाये। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में श्रीचैतन्य महाप्रभु की इसी नीति का अनुसरण करते हैं। उदाहरणार्थ, पाश्चात्य देशों में लड़के तथा लड़कियाँ मुक्तभाव से परस्पर मिलते-जुलते हैं, अतएव उन्हें कृष्णभावनामृत के प्रति आकर्षित करने के लिए उनकी आदतों तथा प्रथाओं के विषय में विशेष छूट देने

की आवश्यकता है। आचार्य को ऐसा उपाय निकालना चाहिए कि सभी लोग भक्ति में दीक्षित हों। अतएव मैं संन्यासी होते हुए भी कभी-कभी इन लड़कों तथा लड़कियों के ब्याहों में सम्मिलित होता हूँ, यद्यपि संन्यास के इतिहास में आज तक किसी भी संन्यासी ने अपने शिष्यों के विवाह में भाग नहीं लिया है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.३७

आचार्य को शास्त्रों के विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करना चाहिए फिर भी उसी के साथ साथ देश, काल तथा पात्र के अनुसार नियमों को अनुकूल बना लेना चाहिए

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए। अतएव उन्होंने उन्हें माया के चंगुल से मुक्त कराने के लिए अनेक उपाय ढूँढ निकाले।

तात्पर्य: पतितात्माओं पर दया दिखाना आचार्यों का कार्य है। इस सन्दर्भ में देश-काल-पात्र (स्थान, समय तथा व्यक्ति) पर विचार करना होता है। चूँकि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में युरोपीय तथा अमरीकी लड़के तथा लड़कियाँ साथ-साथ प्रचार करते हैं, अतः अल्पज्ञ यह आलोचना करते हैं कि वे बिना रोक-टोक के परस्पर मिलते हैं। युरोप तथा अमरीका में लड़के तथा लड़कियाँ बिना रोक टोक के मिलते-जुलते हैं और उन्हें समान अधिकार प्राप्त हैं। अतएव पुरुषों को स्त्रियों से सर्वथा विलग रखना असम्भव है। फिर भी हम पुरुषों तथा स्त्रियों को भलीभाँति शिक्षा देते हैं कि किस तरह प्रचार कार्य किया जाय और वे बहुत ही अच्छी तरह यह कार्य सम्पन्न करते हैं। हाँ, हम अवैध यौन का कड़ाई से निषेध करते हैं। जो लड़के तथा लड़कियाँ विवाहित नहीं हैं उन्हें न तो एकसाथ सोने दिया जाता है, न साथ साथ रहने। हर मन्दिर में उनके रहने की पृथक् पृथक् व्यवस्था है। गृहस्थ मन्दिर के बाहर रहते हैं, क्योंकि पति पत्नी तक को मन्दिर के अन्दर रहने की अनुमति नहीं दी जाती। इसके परिणाम बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं भगवान् कृष्ण के उपदेशों का प्रचार द्विगुणित उत्साह के साथ करते हैं। इस श्लोकों

में *सब निस्तारिते करे चातुरी अपार* से यह इंगित होता है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु हर एक का उद्धार करना चाह रहे थे। इसलिए यह सिद्धान्त बना है कि प्रचारक को शास्त्रों द्वारा अनुमोदित विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करना चाहिए, किन्तु साथ ही ऐसा उपाय ढूँढना चाहिए जिससे पतितों के उद्धार के लिए प्रचार कार्य जोर-शोर के साथ चलता रहे।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.३८

गुरु अपने शिष्यों को प्रचार करने (तथा लिखने) का आदेश देता है और शक्त्याविष्ट करता है

गुरु देखना चाहता है कि उसके शिष्य अन्यों के लाभ के लिए संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करें और वह निष्ठावान् भक्त को ऐसा करने के लिए शक्त्याविष्ट करता है

अनुवाद: "पुत्र! भक्तों के साथ तुम नाचना और कीर्तन करना चालू रखो। बाहर जाकर कृष्ण नाम कीर्तन के महत्व का प्रचार करो, क्योंकि इस विधि से तुम सारे पतितात्माओं का उद्धार कर सकोगे।"

तात्पर्य: गुरु की दूसरी अभिलाषा होती है कि उसके शिष्य न केवल कीर्तन, नृत्य तथा अनुष्ठानों का पालन करें अपितु अन्यों का उद्धार करने के लिए संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार भी करें, क्योंकि कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि कोई न केवल भक्ति में यथासम्भव पक्का बने, अपितु अन्यों के लाभ हेतु सम्प्रदाय का प्रचार भी करे।

...श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने *अनुभाष्य* में बतलाते हैं,"जो व्यक्ति अपनी निष्ठापूर्वक सेवा से अपने गुरु का ध्यान आकर्षित कर लेता है वह अपने ही समान कृष्णभावनाभावित भक्तों के साथ नाचना और कीर्तन करना चाहता है। गुरु ऐसे शिष्य को अधिकार देता है कि वह विश्वभर में पतितात्माओं का उद्धार करे।...

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.९२

सारे जगत में प्रचार करने के लिए शिष्यों को गुरु के आदेश का पालन करना चाहिए

अनुवाद: ''महाप्रभु ने पहले ही तुम दोनों भाइयों को आदेश दे रखा है कि वृन्दावन जाकर स्थित हो जाओ। वहाँ तुम्हें सारा सुख मिलेगा।''...सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया...''आपने मुझे बहुत अच्छी सलाह दी है। मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा, क्योंकि उसी स्थान को महाप्रभु ने मेरे रहने के लिए दिया है।''

तात्पर्य: *प्रभुदत्त देश* पद अत्यन्त सार्थक है। श्रीचैतन्य महाप्रभु का भक्ति सम्प्रदाय मनुष्य को एक स्थान पर बैठे रहने को नहीं अपितु सारे जगत में इसका विस्तार करने की शिक्षा देता है। महाप्रभु सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी को वृन्दावन खुदाई करने तथा तीर्थ स्थानों का जीर्णोद्धार करने के लिए और वहाँ से भक्ति सम्प्रदाय की स्थापना करने के लिए भेजा। इसलिए सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी को उनके वासस्थान के रूप में वृन्दावन दिया गया था। इसी तरह से श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्ति सम्प्रदाय की परम्परा के हरव्यक्ति को अपने गुरु के वचनों को शिरोधार्य करके कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार करना चाहिए। उन्हें विश्व के सारे भागों में उन स्थानों को *प्रभुदत्त देश* समझ कर जाना चाहिए। गुरु तो भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधि होता है इसलिए जो अपने गुरु के आदेशों का पालन करता है वह कृष्ण या चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का पालन करता माना जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय को सारे विश्व में फैलाना चाहते थे (*पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम*)। इसलिए कृष्णभावनामृत की परम्परा के लोगों को विश्व के विभिन्न भागों में जाकर गुरु के आदेशानुसार प्रचार करना चाहिए। इससे श्रीचैतन्य महाप्रभु तुष्ट होंगे।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ४.१४२,१४४

जो शिष्य अपने गुरु से कोई भौतिक वस्तु नहीं चाहता अपितु उसकी सेवा ही करना चाहता है उसे गुरु प्रचार करने की शक्ति

प्रदान करता है

हमने सचमुच देखा है कि भक्तिवेदान्त सरस्वती ठाकुर का एक शिष्य अपने गुरु की सम्पत्ति का भोग करना चाहता था और गुरु ने उस पर दयालु होने के कारण उसे अस्थायी सम्पत्ति दे भी दी किन्तु सारे जगत में श्रीचैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय का प्रचार करने की शक्ति नहीं दी। प्रचार करने की यह विशेष दया उस भक्त को दी जाती है जो अपने गुरु से कोई भौतिक वस्तु नहीं चाहता अपितु उनकी केवल सेवा करना चाहता है।

—*भागवत* ५.१८.२२

शक्त्याविष्ट प्रचारक बनने के लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु या उनके भक्त गुरु की कृपा प्राप्त होनी चाहिए

अनुवाद: जो कोई भी श्रीचैतन्य महाप्रभु को 'हरि' 'हरि' कीर्तन करते सुनता, वही हरि तथा कृष्ण के नामों का उच्चारण करने लगता। इस तरह वे सब महाप्रभु का दर्शन पाने की उत्सुकता से उनके पीछे-पीछे चलने लगते। कुछ समय बाद महाप्रभु उन लोगों का आलिंगन करते और उन्हें आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत करने के बाद घर वापस जाने के लिए कहते। इस प्रकार शक्त्याविष्ट होकर वे कृष्ण नाम का कीर्तन करते, और कभी हँसते, चिल्लाते और नाचते हुए अपने अपने घरों को लौटते। ये लोग जिस किसी को देखते उसीसे प्रार्थना करते कि वे कृष्णनाम का कीर्तन करें। इस तरह सारे गाँववाले भी भगवान् के भक्त बन जाते।

तात्पर्य: श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में बतलाया है कि यह आध्यात्मिक शक्ति ह्लादिनी शक्ति तथा शाश्वत शक्ति का सार है। इन दोनों शक्तियों से मनुष्य भक्ति से समन्वित होता है। स्वयं भगवान् कृष्ण या उनका प्रतिनिधि कोई शुद्ध भक्त इन सम्मिलित शक्तियों को किसी भी व्यक्ति को दे सकते हैं। इन शक्तियों से युक्त होकर कोई भी व्यक्ति भगवान् का शुद्ध भक्त बन सकता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने जिस पर भी कृपा की उसे यह *भक्ति शक्ति* प्रदान की। इस तरह

प्रभु के सारे अनुयायी कृष्णभावनामृत का प्रचार करने में समर्थ हो सके।...शक्त्याविष्ट प्रचारक बनने के लिए आवश्यक है कि उसे श्रीचैतन्य महाप्रभु या उनके भक्त की कृपा प्राप्त हो। यही नहीं, मनुष्य को चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति से महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए अनुरोध करे। इस तरह ऐसा व्यक्ति अन्यों को भगवान् का शुद्ध भक्त बनने का मार्ग दिखला कर उन्हें वैष्णव बना सकता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ७.९८-१०१

गुरु द्वारा शक्त्याविष्ट व्यक्ति पूरे संसार का उद्धार कर सकता है

यह कहा जाता है कि अकेला शुद्ध भगवद्भक्त विश्व के सारे पतितात्माओं का उद्धार कर सकता है। इस प्रकार जो नारद या शुकदेव गोस्वामी जैसे शुद्ध भक्त का विश्वासपात्र होता है और इस तरह अपने गुरु द्वारा शक्त्याविष्ट होता है जिस प्रकार नारद जी ब्रह्माजी द्वारा शक्त्याविष्ट थे तो वह माया के पाश से न केवल अपना उद्धार कर सकता है अपितु अपनी शुद्ध तथा शक्त्याविष्ट भक्ति की शक्ति से सारे विश्व का उद्धार कर सकता है।

—*भागवत* २.८.५

दिव्य साहित्य का लेखन करने के लिए शिष्य को अपने गुरु से आज्ञा लेनी चाहिए और उनके द्वारा शक्त्याविष्ट होना चाहिए

अनुवाद: वृन्दावन में अन्य अनेक महान् भक्त थे जो चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक थे। इन सभी भक्तों ने कृपा करके मुझे श्रीचैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाएँ लिखने का आदेश दिया। यद्यपि मैं निर्लज्ज हूँ किन्तु उन्हीं के आदेश से मैंने यह *चैतन्य चरितामृत* लिखने का प्रयास किया है। वैष्णवों की आज्ञा प्राप्त करने के बाद अपने मन में चिन्तित होने के कारण मैं वृन्दावन के मदनमोहन मन्दिर में उनकी भी आज्ञा लेने के लिए गया।

तात्पर्य: जबतक आचार्यों या अग्रणी भक्तों द्वारा शक्ति प्राप्त न हो तब तक ऐसा दिव्य साहित्य नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि ऐसे साहित्य को सन्देहातीत होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, लिखने वाले में बद्धजीवों

के एक भी दोष यथा त्रुटि, मोह, ठगी तथा अधूरा इन्द्रियबोध नहीं होना चाहिए। कृष्ण के वचन तथा कृष्ण के आदेशों का पालन करने वाली परम्परा ही वास्तव में प्रामाणिक है। दिव्य साहित्य लिखने के लिए शक्त्याविष्ट होना लेखक के लिए बड़े ही गर्व का विषय होता है। अकिंचन वैष्णव के रूप में, इस प्रकार शक्त्याविष्ट कृष्ण दास कविराज गोस्वामी को अत्यधिक लज्जा लगी कि उन्हें ही अब चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन करना होगा।

...एक वैष्णव सदैव गुरु तथा कृष्ण का आदेश मानता है। *चैतन्य चरितामृत* का लेखन उन्हीं की कृपा से कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने उन सभी भक्तों को, जिनका उल्लेख हो चुका है तथा मदनगोपाल (श्री मदनमोहन विग्रह) को, जो साक्षात् गुरु हैं अपना उपदेशक गुरु माना। उन्होंने दोनों से ही आज्ञा प्राप्त की और जब उन्हें गुरु तथा कृष्ण दोनों की कृपा प्राप्त हो गई तभी वे यह दिव्य ग्रन्थ *चैतन्य-चरितामृत* लिख पाये। सबों को इसी उदाहरण का पालन करना चाहिए। जो भी व्यक्ति कृष्ण के विषय में कुछ लिखना चाहता है, उसे सर्वप्रथम गुरु तथा कृष्ण की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। कृष्ण तो सबों के हृदय में वास करते है और गुरु उनका साक्षात् बाह्य प्रतिनिधि होता है। इस तरह कृष्ण भीतर और गुरु बाहर स्थित हैं—*अन्तर्बहिः*। सर्वप्रथम मनुष्य को चाहिए कि विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करे और नित्य सोलह माला जाप करे। इस प्रकार जब शुद्ध बन जाय और यह सोचे कि मैं वास्तव में वैष्णव पद पर आसीन हूँ तो उसे अपने गुरु की आज्ञा लेनी चाहिए और उस आज्ञा की पुष्टि अपने हृदय में स्थित कृष्ण द्वारा करानी चाहिए। तब यदि कोई अत्यन्त निष्ठावान् तथा शुद्ध है तो वह दिव्य साहित्य लिख सकता है, चाहे वह गद्य हो या पद्य।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि ८.७१-७३*

आध्यात्मिक विषयों पर लेखनी चलाने के लिए गुरु-परम्परा का आशीर्वाद प्राप्त होना चाहिए

अनुवाद : इस तरह मैंने वैष्णव अनुष्ठानों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत

की। मैंने यह सब संक्षेप में कहा है जिससे तुम्हें कुछ निर्देश मिल सके। जब तुम इस विषय में लिखोगे तो कृष्ण तुम्हें आध्यात्मिक रूप से जाग्रत करके तुम्हारी सहायता करेंगे।

तात्पर्य: कृष्ण तथा गुरु-परम्परा के आशीर्वाद के बिना आध्यात्मिक विषयों पर लिख पाना कठिन है। महाजनों के आशीर्वाद ही अधिकार-पत्र हैं। श्रेष्ठजनों द्वारा अधिकृत किये बिना वैष्णव आचरण एवं कार्यकलापों के विषय में लिखने का प्रयास नहीं होना चहिए। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा होती है—*एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।*

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २४.३४५

गुरु अपने शिष्यों को अर्चाविग्रह पूजन में लगाता है

गुरु का कर्तव्य है कि शिष्यों को अर्चाविग्रह पूजन में लगाए

गुरु का तीसरा लक्षण है—

श्रीविग्रहाराधननित्यनानाशृंगारतन्मन्दिरमार्जनादौ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

गुरु का कर्तव्य है कि अपने शिष्यों को श्रीविग्रह पूजन में लगाए।

...*श्रीविग्रहाराधननित्यनानाशृंगारतन्मन्दिरमार्जनादौ*—अर्चाविग्रह पूजन का अर्थ है श्रीविग्रह को अच्छे अच्छे वस्त्र पहनाना, मन्दिर को अच्छी तरह साफ करना, अर्चाविग्रह को उत्तम खाद्यसामग्री अर्पित करना तथा अर्चाविग्रह की खाद्यसामग्री के उच्छिष्ट को अपने खाने के लिए स्वीकार करना। यह है अर्चाविग्रह पूजन की विधि। अर्चाविग्रह पूजन स्वयं गुरु द्वारा सम्पन्न किया जाता है और वह इस पूजन में अपने शिष्यों को भी लगाता है।

—*गुरु की योग्यताएँ, बैक टु गाडहेड* भाग १३ अंक १-२

गुरु को चाहिए कि अपने शिष्य को श्रीविग्रह पूजन में लगाए

कोरा सैद्धान्तिक किताबी ज्ञान नवदीक्षित के लिए पर्याप्त नहीं है।

किताबी ज्ञान सैद्धान्तिक है जब कि अर्चन विधि व्यावहारिक है। आध्यात्मिक ज्ञान का विकास सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान के मेल से किया जाना चाहिए।...श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु के प्रामाणिक गुणों का बखान किया है और उन श्लोकों में से एक इस प्रकार है—

श्रीविग्रहाराधननित्यनानाशृंगारतन्मन्दिरमार्जनादौ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

श्रीविग्रह अर्चा या भगवान् का पूजनीय स्वरूप है और शिष्य को *शृंगार* द्वारा अर्थात् समुचित अलंकरण तथा वस्त्रों द्वारा एवं *मन्दिर मार्जन* अर्थात् मन्दिर की सफाई द्वारा श्री विग्रह की पूजा करने में लगाया जाना चाहिए। गुरु नवदीक्षित भक्त को वे सारी बातें अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक सिखाता है और धीरे-धीरे भगवान् के दिव्य नाम, रूप, गुण आदि की अनुभूति प्राप्त करने में सहायक बनता है।

—*भागवत* २.३.२२

श्री विग्रह पूजन के लिए प्रामाणिक गुरु से विधि सीखनी चाहिए

यदि कोई *अर्चनम्* (श्रीविग्रह पूजन) विधि में रुचि रखता है तो उसे निश्चय ही प्रामाणिक गुरु की शरण लेनी चाहिए और उससे विधि सीखनी चाहिए।

—*भागवत* ७.५.२४

गुरु अपने शिष्य को प्रसाद को तैयार करने, उसे अर्पित करने तथा वितरित करने के कार्यों में लगाता है

गुरु का कर्तव्य है कि शिष्यों को प्रसाद तैयार करने, उसे अर्पित करने तथा वितरित करने में लगाएँ

अनुवाद: महाप्रभु यह देखकर पूर्णतया सन्तुष्ट थे कि जगन्नाथजी ने किस तरह सारा भोजन ग्रहण किया।

तात्पर्य: वैष्णव को चाहिए कि श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणचिन्हों का अनुसरण करते हुए जगन्नाथ या राधाकृष्ण के अर्चाविग्रह पर तरह तरह के पक्वान्न चढ़ाते देख कर पूर्णतया सन्तुष्ट हो। उसे चाहिए कि अपनी भूख बुझाने के लिए वह नाना प्रकार के व्यंजन न जुटाये, प्रत्युत उसकी तुष्टि तो अर्चाविग्रह पर चढ़ाये जाने वाले विविध भोजन को देखने में है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *गुर्वष्टक* में लिखा है—

चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसादस्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसंघान्।
कृतैव तृप्तिं भजतः सदैव वन्दे गुरोः श्री चरणारविन्दम्॥

''गुरु सदैव कृष्ण को चार प्रकार का भोजन अर्पित करता है—लेह्य, चर्व्य, पेय तथा चूष्य। जब गुरु देखता है कि भक्तगण भगवत्प्रसाद खाकर सन्तुष्ट हो गये हैं तो वह भी सन्तुष्ट होता है। मैं ऐसे गुरु के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ।''

गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्यों को अर्चाविग्रह पर अर्पित करने के लिए तरह तरह का उत्तम भोजन तैयार करने में लगाए। अर्पित किये जाने के बाद यही भोजन प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। ऐसे कार्यों से गुरु तुष्ट होता है, यद्यपि वह न तो स्वयं खाता है न ही उसे इतने प्रकार के प्रसाद की आवश्यकता पड़ती है। प्रसाद को अर्पित होते तथा वितरित होते देखकर उसे भक्ति में प्रोत्साहन मिलता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १४.३६

गुरु प्रसाद-वितरण के लिए प्रोत्साहित करता है और इससे अत्यधिक प्रसन्न होता है

गुरु का चौथा लक्षण है—

चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसादस्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसंघान्।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

गुरु आम जनों में प्रसाद के वितरण को प्रोत्साहन देता है। हमारा

दर्शन केवल शुष्क बातें करना और चलते बनना नहीं है। हम अति भव्य प्रसाद वितरित करते हैं। हर मन्दिर में हम आगन्तुक को प्रसाद देते हैं। हर मन्दिर में ५० से २०० तक भक्त रहते हैं और बाहरी लोग भी आते तथा प्रसाद ग्रहण करते हैं। अत: प्रसाद-वितरण गुरु का अन्य लक्षण है।

...*कृत्वैव तृप्तिं भजत: सदैव*—जब गुरु पूर्णतया तुष्ट होता है तो यह प्रसाद-वितरण चलता रहता है, वह अत्यधिक प्रसन्न होता है और स्वयं को कीर्तन तथा नृत्य करके भगवान् की भक्ति में लगाता है।

—*बैक टु गाडहेड* भाग १३ अंक १-२

गुरु कभी अपने को ईश्वर नहीं बताता

यद्यपि गुरु को भगवान् के तुल्य माना जाता है किन्तु उसे चाहिए कि वह स्वयं को ईश्वर न माने या अपने प्रतिष्ठित पद का दुरुपयोग न करे

विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*साक्षाद् धरित्वेन समस्त शास्त्रै:*—सारे शास्त्रों में गुरु को भगवान् के समान माना जाता है जो ब्राह्मणों में श्रेष्ठ या श्रेष्ठ वैष्णव होता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णव अपने को ईश्वर मानता है, क्योंकि यह अपराध है। यद्यपि ब्राह्मण या वैष्णव को भगवान् के ही समान प्राणी माना जाता है किन्तु ऐसा भक्त भगवान् का आज्ञाकारी दास बना रहता है और कभी भी उस प्रतिष्ठा का भोग नहीं करना चाहता जो भगवान् का प्रतिनिधि होने के कारण प्राप्त हुई रहती है।

—*भागवत* ७.१४.४१

ईश्वर के दास कभी अपने को ईश्वर नहीं बताते

असुरगण भगवान् की इच्छानुसार उनके मुक्त सेवकों की कृपा से विभिन्न देशों में धीरे-धीरे ईशचेतना में परिशोधित किये जाते हैं। ईश्वर के ऐसे भक्त भगवान् के अभिन्न पार्षद होते हैं और जब वे समाज को ईश्वरविहीन होने के खतरे से बचाने के लिए आते हैं तो वे ईश्वर के शक्त्यावेश अवतार, उनके पुत्र, उनके दास या उनके पार्षद

कहलाते हैं। किन्तु इनमें से कोई भी अपने को ईश्वर नहीं कहता। यह तो असुरों द्वारा घोषित निन्दा है और ऐसे असुरों के अनुयायी भी इन बहुरूपियों को ईश्वर या उनका अवतार मान लेते हैं। शास्त्रों में भगवान् के अवतार के विषय में निश्चित सूचना प्राप्त है। जबतक शास्त्रों से पुष्टि न हो ले, तब तक किसी को ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं मानना चाहिए।...ईश्वर के दास यह कभी नहीं सहन कर सकते कि कोई उन्हें ईश्वर कहे। यद्यपि श्रीचैतन्य महाप्रभु शास्त्रों के लक्षणों से साक्षात् भगवान् थे किन्तु वे भक्त की तरह बने रहे। जो लोग उन्हें ईश्वर के रूप में जानते थे वे उन्हें ईश्वर कहते थे किन्तु तब वे अपने कानों को अपने हाथों से बन्द करके विष्णुनाम का कीर्तन करने लगते थे। वे स्वयं को ईश्वर कहलाने का घोर विरोध करते थे यद्यपि वे साक्षात् भगवान् थे। भगवान् ऐसा आचरण हमें उन धूर्तों से आगाह करने के लिए करते हैं जो अपने को ईश्वर कहलवाते हैं।

—*भागवत* १.२.१६

गुरु कभी अपने को ईश्वर नहीं कहता

गुरु यह कभी नहीं कहता कि मैं कृष्ण हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं भगवान् हूँ प्रत्युत वह कहता है कि मैं ईश्वर के दास का अति विनम्र दास हूँ। वह यह तक नहीं कहता कि वह ईश्वर का प्रत्यक्ष दास है प्रत्युत वह दासों में भी सैकड़ों दासों के बाद दास है। *गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः*।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

प्रामाणिक गुरु कभी भी परमेश्वर होने का ढोंग नहीं रचता किन्तु वह भगवान् के ही तुल्य आदर का पात्र होता है

गुरु कभी परमेश्वर होने का ढोंग नहीं करता। वह तो भगवान् का प्रतिनिधि माना जाता है। शास्त्रों में निषेध है कि कोई ईश्वर बनने का ढोंग न रचे। लेकिन प्रामाणिक गुरु भगवान् का सबसे आज्ञाकारी तथा विश्वस्त दास होता है अतएव उसका सम्मान कृष्ण जितना ही

होना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य चरितामृत* आदि १.४४

गुरु को भौतिक मन्तव्यों से मुक्त होना चाहिए

गुरु को किसी भौतिक लाभ के लिए शिष्य नहीं बनाना चाहिए

गुरु को शिष्य का भौतिक ऐश्वर्य देखकर उसे शिष्य बनाने के लिए उत्सुक नहीं होना चाहिए। कभी-कभी बहुत बड़ा व्यापारी या जमींदार गुरु से दीक्षा लेने पहुँचता है। जिनकी रुचि भौतिकता में होती है वे *विषयी* (कर्मी) कहलाते हैं जो यह सूचित करता है कि वे इन्द्रियतृप्ति के अत्यन्त शौकीन हैं। ऐसे विषयी कभी-कभी प्रसिद्ध गुरु के पास जाकर फैशनवश उनका शिष्य बनना चाहते हैं। कभी कभी आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी घोषित करने के लिए विख्यात गुरु का शिष्य बनने का ढोंग रचाते हैं। दूसरे शब्दों में, वे भौतिक सफलता अर्जित करना चाहते हैं। गुरु को इस ओर काफी सावधान रहना चाहिए। ऐसा व्यापार विश्व भर में चल रहा है। गुरु किसी समृद्ध शिष्य को यह प्रचारित करने के लिए स्वीकार नहीं करता कि उसका शिष्य इतना समृद्ध है। वह जानता है कि ऐसे विषयी शिष्यों से सम्पर्क रखने से वह नीचे गिर सकता है। जो व्यक्ति विषयी शिष्यों को स्वीकार करता है वह प्रामाणिक गुरु नहीं है। यदि हो भी तो ऐसे बनावटी विषयी शिष्य की संगति से उसकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँच सकती है। यदि तथाकथित गुरु अपने निजी लाभ या भौतिक लाभ के लिए शिष्य बनाता है तो गुरु और शिष्य का सम्बन्ध भौतिक व्यापार बन जाता है और गुरु *स्मार्त गुरु* बनकर रह जाता है। ऐसे अनेक जाति *गोस्वामी* हैं जो ऐसे शिष्यों को जन्म देते हैं जो न तो उनकी परवाह करते हैं न ही उनके उपदेशों की। ऐसे गुरु अपने शिष्यों से किंचित भौतिक लाभ प्राप्त करके ही सन्तुष्ट रहते हैं। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ने ऐसे सम्बन्ध की निन्दा की है और ऐसे गुरुओं तथा शिष्यों को वंचकों तथा वंचितों का समाज कहा है। वे *बाउल* या *प्राकृत सहजिया* भी कहलाते हैं। उनका उद्देश्य गुरु-शिष्य सम्बन्ध को अत्यन्त बाजारू

बनाना है। उनमें आध्यात्मिक जीवन को समझने के लिए कोई रुचि नहीं रहती।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २४.३३०

गुरु को कभी धनसंग्रह करने या तमाम अनुयायी बनाने की बाढ़ में नहीं बह जाना चाहिए

गुरु को कभी धनसंग्रह करने या तमाम अनुयायी बनाने की बाढ़ में बहना नहीं चाहिए। एक प्रामाणिक गुरु कभी भी ऐसा नहीं करेगा। किन्तु कभी-कभी यदि गुरु को उचित रीति से अधिकार प्राप्त नहीं रहता और वह अपने मन से गुरु बना रहता है तो वह धनसंग्रह तथा तमाम अनुयायियों की बाढ़ में बह सकता है। तब उसकी भक्ति उच्च कोटि की नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति ऐसी सफलताओं के द्वारा बहक जाय तो उसकी शक्ति शिथिल पड़ जाती है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि कड़ाई से गुरु-परम्परा के नियमों का पालन करे।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

वैष्णव गुरु अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं वरन् भगवत्सेवा के लिए दान स्वीकार करता है

कृष्णभावनाभावित भक्तगण अन्यों से कृष्ण-सेवा के लिए धन एकत्र करते हैं और वे कृष्ण का प्रसाद खाकर तथा कृष्ण जो कुछ भी उनके जीवन निर्वाह के लिए देते हैं उसीसे तुष्ट होते हैं। वे भौतिक सुविधाओं की इच्छा नहीं करते। किन्तु वे वेश्याओं या इसी तरह के लोगों की सम्पत्ति को भगवान् की सेवा में लगाने के लिए कष्ट सहते हैं और इस तरह उन्हें पापों से मुक्त कराते हैं। एक वैष्णव गुरु धन या अन्य भेंटें स्वीकार करता है, किन्तु वह इनका उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करता। एक शुद्ध वैष्णव अपने को एक भी व्यक्ति को पाप से छुड़ा पाने में असमर्थ मानता है, किन्तु किसी की गाढ़ी कमाई को भगवान् की सेवा में लगवाकर वह उसे पाप से मुक्त करवाता है। एक वैष्णव गुरु कभी भी अपने शिष्यों के उपहारों पर आश्रित नहीं रहता। हरिदास के उपदेशों का पालन करके शुद्ध

वैष्णव अपने लिए छदाम भी नहीं लेता अपितु अपने अनुयायियों को प्रेरित करता है कि उनके पास जो भी हो उसे भगवान् की सेवा में खर्च करें।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ३.१३९

शिष्य को गुरु से भौतिक लाभ की इच्छा नहीं करनी चाहिए और गुरु को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए शिष्य को आशीर्वाद नहीं देना चाहिए

अनुवाद: जो सेवक अपने स्वामी से भौतिक लाभ की इच्छा रखता है वह योग्य सेवक या शुद्ध भक्त नहीं है। इसी प्रकार जो स्वामी अपने सेवक को इसलिए आशीर्वाद देता है जिससे कि स्वामी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे, तो वह भी शुद्ध स्वामी नहीं है।

—*भागवत* ७.१०.५

गुरु के कर्तव्यों तथा उचित आचरण से सम्बद्ध कुछ महत्वपूर्ण शिक्षाएँ

गुरु आध्यात्मिक शिक्षाओं की प्रबल रस्सियों से गृहस्थजीवन के अंधकूप से गृहस्थ को बचाता है

मनुष्य घरेलू कामकाज में इस तरह व्यस्त हो जाता है कि उन्हें छोड़ पाना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार गृहस्थी *गृहम् अन्धकूपम्*—अर्थात् वह अंधा कुआँ बन जाती है जिसमें मनुष्य गिर जाता है। ऐसे व्यक्ति के लिए उसमें से निकल पाना तब तक मुश्किल रहता है जब तक कोई बलवान् मनुष्य अर्थात् गुरु उसकी सहायता न करे, क्योंकि गुरु आध्यात्मिक उपदेशों की रस्सी से पतित मनुष्य की सहायता करता है। पतित मनुष्य को चाहिए कि इस रस्सी का सहारा ले और तब गुरु या भगवान् कृष्ण उसे अंधकूप से बाहर निकाल लेंगे।

शिष्य को गुरु के मार्गदर्शन में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने

का प्रशिक्षण दिया जाता है

चैतन्य महाप्रभु ने संस्तुति की है कि हृदय की धूल साफ करने के लिए हर व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करे। यदि हृदय की धूल साफ हो जाय तो मनुष्य वास्तव में पवित्र नाम की महत्ता को समझ सकता है। ऐसे लोग जो अपने हृदय की धूल साफ करने के प्रति उन्मुख नहीं होते और वस्तुओं को उसी रूप में रखना चाहते हैं उनके लिए हरे कृष्ण मन्त्र कीर्तन के दिव्य परिणाम को प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है। अतएव मनुष्य को भगवान् के प्रति सेवा-भाव उत्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे उसे बिना किसी अपराध के कीर्तन करने में सहायता मिलेगी। अतः गुरु के निर्देशन में शिष्य को एक ही साथ सेवा करने तथा हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। ज्योंही मनुष्य में स्वतःस्फूर्त सेवा-भाव उत्पन्न हो जाता है वह तुरन्त ही महामन्त्र के पवित्र नाम की दिव्य प्रकृति को समझ सकता है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

गुरु शिष्य को निम्न गुणों से सत्व गुणों की ओर ले जाता है

विभिन्न गुणों के साथ जीव की संगति शाश्वत चलती रही है। चूँकि जीव प्रकृति के संसर्ग में रहता है अतएव वह प्रकृति के गुणों के अनुसार ही विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियाँ अर्जित करता है। लेकिन यदि कोई प्रामाणिक गुरु की संगति करता है और शास्त्रों के विधि-विधानों का पालन करता है तो उसकी यह मनोवृत्ति बदल सकती है। कहने का तात्पर्य यह कि प्रकृति के किसी गुण विशेष में अंधविश्वास करने से ही व्यक्ति सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। उसे प्रामाणिक गुरु की संगति में रहकर बुद्धिपूर्वक बातों पर विचार करना होता है। तब वह उच्चतर गुण की स्थिति को प्राप्त हो सकता है।

—*भगवद्गीता* १७.२

गुरु शिष्य को सत्त्व पद तक उठाता है

भगवान् की भक्ति से ही इस जगत् के बद्धजीवन से छुटकारा प्राप्त

किया जा सकता है। इसके आगे यहाँ यह बताया गया है कि मनुष्य को सत्व पद तक ऊपर उठना होता है जिससे वह भगवद्भक्ति का अधिकारी बन सके। किन्तु यदि प्रगति में बाधाएँ आएँ तो सक्षम गुरु के निर्देशन में *तमस्* पद से भी धीरे धीरे *सत्व* पद तक उठा जा सकता है। अत: निश्छल व्यक्तियों को चाहिए कि प्रगति के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जायँ जो उन्हें तमस्, रजस या सत्त्व में से किसी पद से दिशानिर्देश करने में दक्ष हो।

—*भागवत* १.२.२४

जब गुरु शिष्य के नमस्कार का प्रत्युत्तर देता है तो वह शिष्य के हृदय में स्थित परमात्मा का सम्मान करता है

जब विद्वान पुरुष सत्कार हेतु खड़ा होता है या नमस्कार करता है तो वह प्रत्येक हृदय में वास करने वाले परमात्मा का ही सम्मान करता है। अत: यह देखा जाता है कि वैष्णवों में यदि शिष्य भी जब अपने गुरु को नमस्कार करता है तो बदले में गुरु तुरन्त नमस्कार करता है, क्योंकि यह नमस्कार शरीर को नहीं, अपितु परमात्मा को किया जाता है। फलत: गुरु भी शिष्य के शरीर में स्थित परमात्मा को नमस्कार करता है। *श्रीमद्भागवत* में भगवान् कहते हैं कि सम्मान देना अधिक मूल्यवान् हैं। भक्तजन अपने को शरीर करके नहीं मानते अत: किसी भी वैष्णव को प्रणाम करने का अर्थ है विष्णु को प्रणाम करना। यह भी कहा जाता है कि शिष्टाचार के नाते ज्योंही कोई वैष्णव दिखे उसे तुरन्त नमस्कार किया जाय, जिससे यह सूचित हो कि परमात्मा भीतर स्थित है। शरीर को वैष्णव विष्णु का मन्दिर मानता है।

—*भागवत* ४.३.२२

यद्यपि आचार्य अपने सिद्धान्तों का अत्यन्त पक्का होता है किन्तु स्वतन्त्र होने से वह कभी-कभी नियमों में छूट दे सकता है

अनुवाद: "हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि आप अन्य संन्यासियों से कभी नहीं मिलते किन्तु आप मुझ पर कृपालु हों और मेरा निमन्त्रण स्वीकार

करें।''

तात्पर्य: आचार्य या वैष्णव मतावलम्बी महापुरुष सिद्धान्तों का पक्का होता है, किन्तु वह वज्र के समान कठोर होकर भी कभी-कभी गुलाब के फूल जैसा नम्र भी हो जाता है। इस तरह वह स्वतन्त्र होता है। वह समस्त विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करता है किन्तु कभी-कभी नीति में ढिलाई भी बरत देता है। यह सर्वविदित था कि चैतन्य महाप्रभु कभी भी मायावादी संन्यासियों से नहीं मिलते थे। फिर भी उन्होंने उस ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि ७.५५

गुरु स्वयं सदा ही कीर्तन करने तथा नाचने में लगा रहता है (और इस तरह शिष्यों को ऐसा करने की शिक्षा देता है)

दूसरी परीक्षा है *महाप्रभोः कीर्तननृत्यगीतवादित्रमाद्यन्मनसो रसेन*। गुरु का दूसरा लक्षण है कि वह सदैव कीर्तन करने, श्रीचैतन्य महाप्रभु के गुणगान में यानी उनके कार्य में लगा रहता है। *महाप्रभोः कीर्तन नृत्यगीत*। गुरु नाचता रहता है और महाप्रभु के पवित्र नाम का कीर्तन करता है क्योंकि इस भौतिक जगत् में सारी विपत्तियों की दवा यही है।

अतः गुरु सदैव कीर्तन करने में लगा रहता है। *महाप्रभोः कीर्तन नृत्यगीत*—कीर्तन करना तथा नाचना। जबतक वह स्वयं इन्हें नहीं करे तब तक अपने शिष्यों को कैसे शिक्षा दे सकता है? अतएव उसका पहला लक्षण है कि वह आपको ऐसा उपदेश देगा कि आप तुरन्त सारी चिन्ताओं से राहत का अनुभव करेंगे और दूसरा लक्षण है कि वह स्वयं महाप्रभु के पवित्र नाम का कीर्तन करने तथा नाचने में लगा रहता है। *महाप्रभोः कीर्तन नृत्यगीतवादित्रमाद्यन्मनसो रसेन*—गुरु कीर्तन करने तथा नाचने से अपने मन में दिव्य आनन्द का भोग करता है।

—*गुरु की योग्यताएँ, बैक टु गाडहेड* भाग १३ अंक १-२

गुरु को चाहिए कि शिष्य से गम्भीरतापूर्वक बात करे

सबों के स्वामी होने से कृष्ण सदैव श्रेष्ठ पद पर रहते हैं तो भी

भगवान् अपने भक्त के लिए सखा, पुत्र या प्रेमी बनना स्वीकार करते हैं। किन्तु जब उन्हें गुरु रूप में स्वीकार कर लिया गया तो उन्होंने तुरन्त गुरु की भूमिका निभाने के लिए शिष्य से गुरु की भाँति गम्भीरतापूर्वक बातें कीं जैसा कि अपेक्षित है।

—*भगवद्गीता* २.१०

गुरु को चाहिए कि भौतिकतावादी व्यक्तियों का धन या भोज्य वस्तुएँ स्वीकार न करे:

अनुवाद: "मेरे गुरु अद्वैत आचार्य को धनी पुरुषों या राजाओं का दान कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि यदि गुरु ऐसे भौतिकतावादियों का धन या अन्न स्वीकार करता है तो उसका मन दूषित हो जाता है।"

तात्पर्य: भौतिकतावादी व्यक्तियों का धन या भोज्यपदार्थ स्वीकार करना अत्यन्त घातक है, क्योंकि ऐसा करने से दान लेने वाले का मन दूषित हो जाता है। वैदिक प्रथा के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि संन्यासियों तथा ब्राह्मणों को दान दे, क्योंकि ऐसा करने से वह पापमुक्त हो जाता है। इसलिए पुराने जमाने में ब्राह्मण ऐसे व्यक्ति से दान नहीं लेते थे जो अत्यन्त पवित्र न हो। चैतन्य महाप्रभु ने भी सभी गुरुओं के लिए यह आदेश दिया।...वैष्णव को चाहिए कि वह ऐसे व्यक्तियों का दान या अन्न तक ग्रहण न करे जो वैष्णव नियमों का पालन नहीं करते।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १२.५०

अर्चाविग्रह के समक्ष गुरु को न तो शिष्य का नमस्कार स्वीकार करना चाहिए न अपने चरण धुलाने चाहिए

भगवान् की सेवा करते समय अनेक प्रकार के अपराध हो सकते हैं जिनका वर्णन *भक्तिरसामृत-सिन्धु*, *हरिभक्ति-विलास* आदि पुस्तकों में मिलता है। विधानों के अनुसार ईश्वर-मन्दिर में अर्चाविग्रह के समक्ष किसी का नमस्कार स्वीकार नहीं करना चाहिए। न ही अर्चाविग्रह के समक्ष भक्त के लिए यह उचित है कि वह गुरु को नमस्कार करे

और उसका चरण छुए। यह अपराध माना जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् थे अतएव मन्दिर में उनका पाद-प्रक्षालन (पैर धोना) कोई अपराध नहीं था। किन्तु वे एक आचार्य की भूमिका निभा रहे थे, अतएव महाप्रभु अपने को सामान्य व्यक्ति मान रहे थे। वे सामान्य मनुष्यों को शिक्षा भी देना चाहते थे। बात यह है कि गुरु की भूमिका निभाते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह न तो नमस्कार स्वीकार करे, न ही अपने शिष्य को अर्चाविग्रह के समक्ष अपना पाँव धोने दे। यही शिष्टाचार है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १२.१२७

गुरु को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए कि वह अपने शिष्यों का कृतज्ञ हो

किसी व्यक्ति के अनेक शिष्य हो सकते हैं, किन्तु वह ऐसा कार्य न करे कि किसी विशेष कार्य या किसी पक्षपात के लिए उसे किसी का भी कृतज्ञ होना पड़े।

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

गुरु को भाषणकर्ता के रूप में लोकप्रियता पाने के लिए अनेक पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिए

केवल अपना पाण्डित्य दिखलाने या विभिन्न स्थानों में भाषण दे कर लोकप्रियता पाने के लिए अनेक पुस्तकें पढ़ने का कोई कारण नहीं है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

किसी व्यक्ति का स्वागत करने के लिए व्यासासन पर बैठे व्यक्ति का खड़ा होना अनुचित है

"जब कोई व्यासासन पर बैठा हो तो वह अन्य किसी व्यक्ति का स्वागत करने के लिए उठकर खड़ा न हो।"

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

व्यासासन पर बैठे व्यक्ति को सामान्यत: किसी का स्वागत करने

के लिए खड़ा नहीं होना पड़ता

जब कोई व्यक्ति व्यासासन पर बैठा हो तो उसे सामान्यतया सभा में प्रवेश करने वाले विशिष्ट व्यक्ति का स्वागत करने के लिए खड़ा नहीं होना पड़ता।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

गुरु को विशिष्ट शिष्य के अनुरूप मन्त्र का चुनाव करना होता है

सर्व-मन्त्र-विचारण का अर्थ है "विभिन्न प्रकार के मन्त्रों पर विचार करके।" विभिन्न प्रकार के भक्तों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्र हैं। ये मन्त्र द्वादशाक्षर कहलाते हैं और ये बारह अक्षरों के होते हैं। इसी प्रकार १८ अक्षरों वाले मन्त्र हैं—यथा नृसिंह मन्त्र, राममन्त्र, गोपाल मन्त्र आदि। इनमें से प्रत्येक मन्त्र की अपनी अपनी आध्यात्मिक महत्ता है। गुरु को अपने शिष्य द्वारा विभिन्न मन्त्रों को उच्चारण करने की क्षमता के अनुसार कोई एक मन्त्र छाँट देना होता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २४.३३०

गुरु के आसन के लिए आवश्यक वस्तुएँ (हरिभक्ति विलास में अर्चापूजन की पाँचवीं आवश्यकता)

(५) वेदिका के समक्ष आसन होना चाहिए। यह आसन गुरु के लिए होता है। शिष्य सारी वस्तुएँ गुरु के समक्ष लाता है और गुरु उन वस्तुओं को भगवान् को अर्पण करता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २४.३३४

यदि शिष्य गुरु के चरणों पर गिरता है तो गुरु शिष्य का सिर सूँघता है

यदि कोई बच्चा या शिष्य पिता या गुरु के पाँवों पर गिरता है तो श्रेष्ठजन अपने अधीनस्थ का सिर सूँघकर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

—*भागवत* ७.५.२१

५.गुरु सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण निर्देश

भगवान् कृष्ण गुरु को निष्ठावान आत्मा के पास (या निष्ठावान् आत्मा को गुरु के पास) भेजते हैं

कृष्ण गुरु को निष्ठावान् भक्त के पास भेजते (या गुरु के रूप में प्रकट होते) हैं

जीवे साक्षात् नाहि ताते गुरु चैत्य-रूपे।
शिक्षा-गुरु हय कृष्ण महान्त-स्वरूपे॥

अनुवाद: चूँकि मनुष्य परमात्मा की उपस्थिति का आँखों-देखा अनुभव नहीं कर सकता, अतएव वे हमारे समक्ष मुक्त भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। ऐसा गुरु साक्षात् कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं होता।

तात्पर्य: बद्धजीव के लिए भगवान् कृष्ण से प्रत्यक्ष रीति से भेंट कर पाना सम्भव नहीं होता, किन्तु यदि वह निष्ठावान् भक्त बन जाता है और अपने को भक्ति में गम्भीरतापूर्वक लगाता है तो भगवान् कृष्ण उस पर कृपा करने एवं उसमें भगवत्सेवा की सुप्त प्रवृत्ति को जगाने के लिए शिक्षा-गुरु भेजते हैं। यह उपदेशक उस भाग्यशाली बद्धजीव की बाह्य इन्द्रियों के समक्ष प्रकट होता है और साथ ही साथ वह भक्त भीतर से चैत्यगुरु कृष्ण द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करता है जो हर जीव के हृदय में गुरु-रूप में आसीन हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि १.५८*

भगवान् स्वयं ही निष्ठावान् भक्त के गुरु रूप में प्रकट होते हैं

जो व्यक्ति हृदय से भगवान् की सेवा करने में निष्ठावान् होता है उसके लिए भगवान् स्वयं ही गुरु बनकर प्रकट होते हैं। इसलिए यदि प्रामाणिक गुरु की भेंट किसी निष्ठावान् भक्त से हो जाय तो उसे भगवान् का अत्यन्त विश्वासपात्र तथा प्रिय प्रतिनिधि माना जाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति

ऐसे प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में रखा जाता है तो यह बिना सन्देह के मान लेना चाहिए कि इच्छुक व्यक्ति को भगवान् की कृपा प्राप्त हो चुकी है।

—*भागवत* २.९.७

भक्त को सिद्धि के चरम गन्तव्य तक ले जाने के लिए भगवान् गुरु रूप में प्रकट होते हैं

यदि कोई व्यक्ति प्रामाणिक गुरु की शरण लेता है तो समझना चाहिए कि उसे भगवत्कृपा प्राप्त हो गई। भगवान् भक्त के लिए गुरु रूप में प्रकट होते हैं। इस प्रकार गुरु, वैदिक आदेश तथा अन्तःकरण से स्वयं भगवान् ये सभी बल भर भक्त का मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार भक्त को पुनः माया में आ गिरने की गुंजाइश नहीं रह जाती। इस प्रकार सभी तरह से सुरक्षित भक्त का सिद्धि के चरम गन्तव्य तक पहुँचना सुनिश्चित है।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र १८

बद्धात्माओं पर दयावश भगवान् अपने प्रतिनिधि स्वरूप गुरु को भेजते हैं जिसकी वे रक्षा करते हैं

भगवान् चाहते रहते हैं कि भौतिक सृष्टि के आगे-पीछे मँडराने वाले बद्धजीवों का उद्धार हो, जिससे वे भगवद्धाम वापस जा सकें। इस तरह भगवान् वेदों जैसा दिव्य साहित्य निर्मित करके सन्तों तथा साधुओं को दूत रूप में भेजकर तथा अपना प्रतिनिधि अर्थात् गुरु नियुक्त करके उनकी सहायता करते हैं। ऐसा दिव्य साहित्य, ऐसे दूत तथा भगवान् के ऐसे प्रतिनिधि निष्कलुष होते हैं, क्योंकि भौतिक गुणों का कल्मष उन्हें स्पर्श तक नहीं कर पाता। जब उन्हें विनाश की धमकी दी जाती है तो भगवान् उनकी रक्षा करते हैं।

—*भागवत* १.१२.१६

सिद्धि के खोजी निष्ठावान् आत्मा के लिए भगवान् अपना प्रतिनिधि अर्थात् गुरु भेजते हैं

अनुवाद: अन्यथा (भगवान् कृष्ण की प्रेरणा के बिना) कैसे सम्भव है

कि आप स्वेच्छा से यहाँ प्रकट हुए यद्यपि आप सामान्य लोगों से ओझल रहकर विचरण करते हैं और हम मरणासन्नों को दृष्टिगोचर नहीं होते।

तात्पर्य: महर्षि शुकदेव गोस्वामी निश्चित रूप से भगवान् द्वारा प्रेरित होकर महान् भगवद्भक्त महाराज परीक्षित के समक्ष स्वेच्छा से प्रकट हुए थे जिससे उन्हें *श्रीमद्भागवत* की शिक्षा दे सकें। मनुष्य अपने गुरु तथा भगवान् की कृपा से ही भगवद्भक्ति के केन्द्रबिन्दु को प्राप्त कर सकता है। गुरु भगवान् का व्यक्त प्रतिनिधि होता है जो मनुष्य को चरम सफलता प्राप्त करने में सहायता करता है। जिसे भगवान् अधिकार नहीं देते वह गुरु नहीं बन सकता। श्रील शुकदेव गोस्वामी वैध गुरु थे, अतएव भगवान् ने उन्हें प्रेरणा दी कि वे महाराज परीक्षित के समक्ष प्रकट हों तथा *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाएँ दें। यदि मनुष्य भगवान् द्वारा भेजे गये वैध प्रतिनिधि का कृपापात्र होता है तो वह भगवद्धाम जाकर चरम सिद्धि प्राप्त करता है। ज्योंही भगवान् की भेंट भगवान् के असली प्रतिनिधि से होती है त्योंही वह शरीर त्याग कर भगवद्धाम जाने की गारंटी पा लेता है। किन्तु यह भक्त की निष्ठा पर निर्भर करता है। भगवान् सभी जीवों के हृदयों में विद्यमान हैं, अतएव वे हर व्यक्ति की गतिविधियों से अवगत रहते हैं। ज्योंही भगवान् देखते हैं कि कोई जीव भगवद्धाम जाने के लिए अत्यधिक उत्सुक है तो भगवान् तुरन्त ही अपना प्रामाणिक प्रतिनिधि भेजते हैं। इस प्रकार निष्ठावान् भक्त का भगवद्धाम जाना ध्रुव हो जाता है। निष्कर्ष यह है कि प्रामाणिक गुरु की सहायता प्राप्त करने का अर्थ है साक्षात् भगवान् से प्रत्यक्ष सहायता प्राप्त करना।

—*भागवत* १.१९.३६

यदि कोई अपनी ईशचेतना को पुनरुज्जीवित करने का इच्छुक है तो ईश्वर उसके पास गुरु भेजते हैं

श्रील प्रभुपाद: ...गुरु वह है जिसने भगवत्कृपा प्राप्त कर ली है और भ्रमित मनुष्य के लिए हल प्रस्तुत कर सकता है। जिसने भगवत्कृपा प्राप्त कर ली होती है वह गुरु बन सकता है और उस कृपा को अन्यों को दे सकता है।

ओ' ग्रैडी महोदय: समस्या है इस गुरु को पा लेना।

श्रील प्रभुपाद: यह कोई समस्या नहीं है। समस्या तो है कि आप निष्ठावान् हैं या नहीं। समस्याएँ तो रहती हैं, किन्तु आपके हृदय के भीतर ईश्वर है। *ईश्वरः सर्वभूतानाम्*। ईश्वर दूर नहीं है। यदि आप निष्ठावान् हैं तो ईश्वर आपके पास गुरु भेजता है। इसलिए ईश्वर *चैत्यगुरु* यानी हृदयस्थ गुरु भी कहलाता है। ईश्वर भीतर से और बाहर से सहायता करता है। *भगवद्गीता* में ये सारी बातें वर्णित हैं। यह भौतिक शरीर एक यन्त्र के समान है, किन्तु हृदय के भीतर आत्मा है और आत्मा के भीतर परमात्मा या कृष्ण हैं जो निर्देश देते हैं। वे कहते हैं "तुम यह करना चाहते हो तो लो, अब अवसर आया है। आओ और इसे करो।" यदि आप निष्ठावान् हैं तो कहेंगे "हे ईश्वर! अब मैं आपको चाहता हूँ।" तब वे निर्देश देंगे, "हाँ, अब आओ और इस तरह से मुझे पाओ।" यह उनकी दया है। किन्तु यदि हम कुछ अन्य वस्तु चाहते हैं तो ठीक है। हम उसे पा सकते हैं। ईश्वर अत्यन्त दयालु हैं। जब मैं कोई वस्तु चाहता हूँ तो ईश्वर मेरे हृदय में मुझे निर्देश देते हैं और बताते रहते हैं कि उसे किस तरह पाया जाय। तो फिर वे इसके लिए निर्देश क्यों न दें कि गुरु को कैसे पाया जाय? सर्वप्रथम हमें अपनी ईशचेतना पुनरुज्जीवित करने के लिए उत्सुक रहना चाहिए। तब ईश्वर हमें गुरु प्रदान करेंगे।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

जो व्यक्ति निष्ठापूर्वक भगवान् की शरण में जाना चाहता है उसके पास वे अपना प्रामाणिक प्रतिनिधि यानी गुरु भेजते हैं

कभी कभी लोग प्रश्न करते हैं कि परमेश्वर की शरण में कैसे जाया जाय। *भगवद्गीता* में (१८.६६) भगवान् ने अर्जुन से अपनी शरण ग्रहण करने के लिए कहा, अतएव जो लोग ऐसा नहीं करना चाहते वे यह पूछते हैं कि ईश्वर कहाँ है और वे किसकी शरण लें। ऐसे प्रश्नों का उत्तर सुन्दर तरीके से यहाँ पर दिया गया है। हो सकता है कि भगवान् किसी की आँखों के सामने उपस्थित न हों, किन्तु यदि कोई निष्ठापूर्वक ऐसा मार्गदर्शन चाहता है तो ईश्वर अपना प्रामाणिक व्यक्ति भेजेंगे जो उसे ठीक से भगवद्धाम का मार्गदर्शन करा सके।

—*भागवत* २.७.४६

बद्धात्माओं को मुक्त करने के लिए कृष्ण अपने विश्वस्त सेवकों को गुरु रूप में लगाते हैं और जीवों को ऐसा विवेक प्रदान करते हैं जिससे वे गुरु स्वीकार कर सकते हैं

बद्धजीव माया द्वारा मोहग्रस्त रहता है, क्योंकि वह उसे नाना प्रकार की इन्द्रियतृप्ति में लगाये रहती है। भौतिक कार्यों में व्यस्त रहने से मनुष्य की मूल कृष्णचेतना आच्छादित हो जाती है। किन्तु सारे जीवों के परम पिता रूप कृष्ण चाहते हैं कि उनके सारे पुत्र भगवद्धाम वापस आयें, इसलिए वे *भगवद्गीता* जैसा वैदिक ग्रंथ प्रदान करने के लिए आते हैं। वे अपने विश्वस्त सेवकों को लगाते हैं जो गुरुओं का कार्य करते हैं और इस तरह बद्धजीवों को प्रबुद्ध करते हैं। हर एक के हृदय में उपस्थित होने से, भगवान् सारे जीवों को वह विवेक प्रदान करते हैं जिससे वे वेदों तथा गुरुओं को अंगीकार करते हैं। इस तरह जीव अपनी स्वाभाविक स्थिति और भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझता है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २०.१२५

भगवान् कृष्ण निष्ठावान् जीव को प्रामाणिक गुरु से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

अनुवाद: सारे जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड में घूम रहे हैं। इनमें से कुछ उच्च लोकों को जाते हैं और कुछ निम्नलोकों को। घूम रहे इन जीवों में से कोई एक भाग्यशाली होता है जिसे कृष्ण-कृपा से गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसा व्यक्ति भक्ति रूपी लता के बीज को प्राप्त करता है।

तात्पर्य: कृष्ण हर एक के हृदय में स्थित हैं और यदि मनुष्य कुछ चाहता है तो कृष्ण उसकी पूर्ति करते हैं। यदि संयोगवश या भाग्यवश जीव कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सम्पर्क में आता है और इस आन्दोलन से सम्बन्ध बताना चाहता है तो हर एक के हृदय में विराजमान कृष्ण उसे गुरु से मिलने

का अवसर प्रदान करते हैं। यह *गुरु-कृष्ण-प्रसाद* कहलाता है। कृष्ण सारे जीवों पर अपनी कृपा का दान करना चाहते हैं। ज्योंही जीव भगवत्कृपा की कामना करता है कि वे तुरन्त ही उसे गुरु से मिलने का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसा व्यक्ति कृष्ण तथा गुरु दोनों का प्रसाद पाता है। भीतर से उसे कृष्ण सहायता पहुँचाते हैं और बाहर से गुरु। दोनों ही निष्ठावान् जीव को इस भवबन्धन से मुक्त बनाने में सहायता करने के लिए तैयार रहते हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १९.१५१

कृष्ण निष्ठावान् खोजी को उपयुक्त गुरु ढूँढने के लिए बुद्धि प्रदान करते हैं:

मनुष्य को चाहिए कि वह *तत्त्ववित्* अर्थात् ईशविज्ञान जानने वाले की खोज करे। तत्त्ववित् का अर्थ है "परम सत्य को जानने वाला।"...मनुष्य को समस्त कल्मषों से मुक्त होने के साथ ही साथ कृष्णविज्ञान को जानने वाले व्यक्ति की खोज करनी होगी। कृष्ण निष्ठावान् व्यक्ति की सहायता करते हैं जैसा कि *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में कहा गया है—*गुरु-कृष्ण-प्रसादे*—गुरु तथा कृष्ण की कृपा से मोक्ष का मार्ग प्राप्त होता है। यदि कोई निष्ठा से आध्यात्मिक मोक्ष चाहता है तो हृदय में स्थित श्रीकृष्ण उसे बुद्धि प्रदान करते है कि वह उपयुक्त गुरु खोज निकाले। मैत्रेय जैसे गुरु की कृपा से मनुष्य को उचित शिक्षा प्राप्त होती है और वह आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ता है।

—*भागवत* ३.२०.४

परमात्मा रूप भगवान् मोक्षकामी जीव को अपने प्रतिनिधि रूप गुरु के पास भेज देते हैं

सारे जीव जन्म-जन्मान्तर घूमते हैं और संसार के कष्ट भोगते हैं। किन्तु जब कोई भव-बन्धन से छूटने के लिए उत्सुक रहता है तो उसे गुरु तथा कृष्ण से प्रकाश प्राप्त होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि कृष्ण परमात्मा रूप में प्रत्येक जीव के हृदयों में स्थित हैं और जब जीव वास्तव में उत्सुक होता है तो वे उसे अपने प्रतिनिधि प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण

करने का निर्देश देते हैं। भीतर से आदेश पाकर और बाहर से गुरु द्वारा पथ दिखाये जाने पर मनुष्य को कृष्णभक्ति का मार्ग प्राप्त होता है जो भव-बन्धन से छूटने का मार्ग है।

अत: जब तक भगवान् आशीर्वाद नहीं मिलता तब तक कोई अपने वास्तविक पद पर स्थित नहीं हो पाता। जब तक उसे परम ज्ञान द्वारा प्रकाश प्राप्त नहीं हो लेता तब तक उसे इस जगत में जीवन-संघर्ष के लिए कठिन यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं। अत: गुरु परम पुरुष की कृपा का प्राकट्य होता है। बद्धजीव को गुरु से प्रत्यक्ष आदेश प्राप्त करने होते हैं और इस प्रकार धीरे-धीरे वह कृष्णभक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने लगता है। कृष्णभक्ति का बीज बद्धजीव के हृदय में बोया जाता है और जब मनुष्य गुरु के उपदेश सुनता है तो यह बीज फलित होता है और जीवन धन्य हो जाता है।

—*भागवत* ३.३१.१६

कृष्ण जीव के भीतर से आत्मा के रूप में और बाहर से गुरु के रूप में प्रकाशित करते हैं

कृष्ण भाग्यवान बद्धात्मा के भीतर से परमात्मा के रूप में तथा बाहर से गुरु के रूप में शिक्षा देते हैं

कृष्ण यदि कृपा करे कोन भाग्यवाने।
गुरु-अन्तर्यामीरूपे शिखाय आपने॥

अनुवाद : कृष्ण हर एक के हृदय में *चैत्य गुरु* यानी भीतरी गुरु के रूप में स्थित हैं। जब वे किसी भाग्यवान् बद्धात्मा पर दयालु होते हैं तो वे स्वयं उस व्यक्ति को भीतर से परमात्मा रूप में तथा बाहर से गुरु के रूप में भक्ति में प्रगति करने के लिए शिक्षाएँ देते हैं।''

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २२.४७

देहधारी जीव का उद्धार करने के लिए कृष्ण दो रूपों में, आचार्य

तथा परमात्मा रूप में प्रकट होते हैं

नैवोपयन्त्यपचितं कवयस्तवेश
ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्न
आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥

अनुवाद: "हे प्रभु! दिव्य कवि तथा आध्यात्म विज्ञान के वेत्ता आपके प्रति अपनी कृतज्ञता को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाते चाहे उन्हें ब्रह्मा जितनी दीर्घायु प्रदान की जाय, क्योंकि आप देहधारी जीव का उद्धार करने के लिए यह निर्देश देकर कि वे आपके पास कैसे आएँ दो रूप में प्रकट होते हैं—बाहर से आचार्य के रूप में तथा भीतर से परमात्मा रूप में।

—*भागवत* ११.२९.६

(*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २२.४८ में उद्धृत)

शिष्य अपने गुरु से बाहर से तथा परमात्मा से भीतर से आदेश ग्रहण करता है

परिपूर्ण कृष्णचेतना से युक्त मनुष्य कृष्ण के आदेश के अनुसार कार्य करता है। कृष्णचेतना के आरम्भ में सद्गुरु के पारदर्शी माध्यम से यह आदेश प्राप्त किया जाता है। जब कोई मनुष्य प्रामाणिक सद्गुरु के निर्देश में पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हो जाता है और श्रीकृष्ण के समर्पण रूप श्रद्धा और प्रेम से प्रेरित होकर कार्य करने लगता है तो तारतम्य बैठाने की यह प्रक्रिया अधिक दृढ़ और परिशुद्ध हो जाती है। कृष्णभावनाभावित भक्त के योग की यह अवस्था योग पद्धति की सबसे पूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में कृष्ण अथवा परमात्मा भीतर से आदेश देते हैं जब कि बाहर से भक्त को सद्गुरु से सहायता प्राप्त होती है जो कृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। भीतर से वे भक्त को चैत्य रूप में सहायता करते है, क्योंकि वे प्रत्येक हृदय में समासीन हैं। किंबहुना यह समझ लेना कि भगवान् सबके हृदय में समासीन हैं पर्याप्त नहीं। मनुष्य को भीतर और बाहर दोनों ही ओर से भगवान् से परिचित होना चाहिए और कृष्णचेतना में कार्य करने के लिए उसे भीतर और बाहर से आदेश प्राप्त करना चाहिए।

जीवन के मानव रूप की सर्वोच्च सिद्धि की स्थिति यही है और यही सब योगों की सर्वोच्च सिद्धि है।

—*भागवत* ३.१५.४५

नवदीक्षित अवस्था में कृष्ण भक्त के गुरु के माध्यम से बाहर से आदेश देते हैं। बढ़ी-चढ़ी अवस्था में वे भीतर से चैत्य गुरु के रूप आदेश देते हैं

पूर्ण कृष्णभावनामृत को प्राप्त व्यक्ति कृष्ण के आदेश से कार्य करता है।...कृष्णभावनामृत के प्रारम्भ में भगवान् का यह आदेश गुरु के पारदर्शी माध्यम से प्राप्त किया जाता है। जब वह प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में पर्याप्त प्रशिक्षित हो जाता है और विनयपूर्ण श्रद्धा तथा कृष्ण-प्रेमपूर्वक कार्य करता है तो युक्त होने की क्रिया अधिक दृढ़ तथा यथार्थ हो जाती है। इस अवस्था में कृष्ण भीतर से आदेश देते हैं। बाहर से भक्त की सहायता कृष्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधि गुरु द्वारा की जाती है और भीतर से भगवान् चैत्य गुरु के रूप में भक्त की सहायता करते हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

जब कोई कृष्ण के प्रतिनिधि गुरु द्वारा प्रशिक्षित कर दिया जाता है तो कृष्ण उसके गुरु की भाँति भीतर से कार्य करते हैं

कृष्ण ऐसे किसी भी व्यक्ति के निर्देशक तथा गुरु बन सकते हैं जो उनकी कृपा का इच्छुक रहता है। भगवान् गुरु को इसलिए भेजते हैं कि वह भक्त को प्रशिक्षित करे और जब भक्त बढ़-चढ़ जाय तो भगवान् उसके हृदय में रहकर गुरु की भाँति कार्य करें।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं बुद्धि देता हूँ जिसके द्वारा वे मेरे पास तक आ सकते हैं।" जब तक कोई भगवान् के प्रतिनिधि गुरु द्वारा पूरी तरह प्रशिक्षित नहीं हो जाता तब तक कृष्ण किसी के साक्षात् गुरु नहीं बनते।...कृष्ण भीतर

तथा बाहर से गुरु की भाँति सहायता करते हैं। बाहर से वे अपने प्रतिनिधि बन कर और भीतर से साक्षात् रूप में भक्त से बातें करते हैं और उसे उपदेश देते हैं जिससे वह भगवद्धाम वापस जा सकता है।

—*भागवत* ७.१५.७६ *भगवद्गीता* १०.१०

चैत्यगुरु रूप परमात्मा निष्ठावान् आत्मा को बाह्य गुरु के पास भेजते हैं जो उसे भक्ति में प्रशिक्षित करता है। जब यह शिष्य बढ़-चढ़ जाता है तो परमात्मा भीतर से उसका मार्गदर्शन करते हैं

जब भक्त भगवान् की भक्ति द्वारा अपने को पूर्णतः शुद्ध कर लेता है तो भगवान् स्वयं ही व्यष्टि आत्मा से बात करते हैं...भगवान् प्रत्येक हृदय में परमात्मा रूप में स्थित हैं और *चैत्यगुरु* अर्थात् आन्तरिक गुरु की तरह कार्य करते हैं। किन्तु वे सिद्ध भक्तों को ही प्रत्यक्ष आदेश देते हैं। प्रारम्भ में जब भक्त अत्यन्त निष्ठावान् होता है तो भगवान् उसके अन्तःकरण से आदेश देते हैं कि गुरु के पास जाए किन्तु जब वह गुरु से शिक्षा प्राप्त कर लेता है और *रागभक्ति* को प्राप्त कर लेता है तो भी भगवान् उसे अन्तःकरण से आदेश देते हैं—*तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्*। मुक्त जीव को यही स्पष्ट लाभ हो जाता है।

—*भागवत* ४.२८.४१

जब गुरु दिवंगत हो जाता है तो यदि भक्त शुद्ध हृदय वाला हुआ तो तुरन्त ही परमात्मा उसका मार्गदर्शन करते हैं

जो शुद्ध एवं निष्ठावान् है उसे हृदयस्थ परमात्मा से परामर्श करने का अवसर प्राप्त होता है। परमात्मा शाश्वत चैत्य गुरु है और बाह्यतः वह उपदेशक तथा दीक्षा गुरु के रूप में प्रकट होता है। भगवान् अन्तःकरण में निवास कर सकता है और प्रकट होकर उपदेश भी दे सकता है। इस तरह गुरु अन्तःकरण में स्थित परमात्मा से भिन्न नहीं होता। कल्मषहीन आत्मा या जीव को परमात्मा से साक्षात्कार का अवसर प्राप्त होता है उसी तरह अपने सम्मुख स्थित परमात्मा को देखने का अवसर लाभ होता है। तब मनुष्य परमात्मा से साक्षात् परामर्श ले सकता है। यह शुद्ध भक्त का कर्तव्य है कि वह प्रामाणिक गुरु की खोज करे और अन्तःकरण में

स्थित परमात्मा से परामर्श करे। ...[जब गुरु शारीरिक रूप से दिवंगत हो जाता है] तो परमात्मा तुरन्त प्रकट होता है बशर्ते कि भक्त गुरु के आदेशों का पालन करके अपने हृदय को शुद्ध बना चुका हो। इस प्रकार निष्ठावान् भक्त की सहायता प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से गुरु तथा परमात्मा द्वारा की जाती है। *श्रीचैतन्य-चरितामृत* से इसकी पुष्टि होती है—*गुरु-कृष्णप्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज*—यदि भक्त अपने गुरु की निष्ठापूर्वक सेवा करता है तो कृष्ण स्वतः प्रसन्न होते हैं। *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*। गुरु को प्रसन्न कर लेने पर श्रीकृष्ण स्वतः प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार भक्त अपने गुरु तथा परमात्मा दोनों का लाभ उठाता है।

—*भागवत* ४.२८.५२

भगवान् बाहर से गुरु रूप में बद्धजीव को सुधार लेते हैं

जीव गुणात्मक रूप से भगवान् से एक होकर भी जगत् के कल्मष के कारण विकृत रूप में दिखता है। अतएव उसे जगत् में तथाकथित सुख तथा दुख का अनुभव होता है।...किन्तु भगवान् से भीतर से तथा बाहर से एक नियमित धारा प्रवाहित होती रहती है जिससे जीव अपनी पतित अवस्था सुधार सकता है। भीतर से वे अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में इच्छा करने वाले जीवों को सुधारते हैं और बाहर से वे गुरु तथा शास्त्रों के रूप में अपनी अभिव्यक्तियों द्वारा उसे सुधारते रहते हैं।

—*भागवत* १.१३.४८

बद्धात्मा की सहायता करने के लिए परमेश्वर, जो कि आदि गुरु हैं, बाह्यतः तथा आन्तरिक रूप में गुरु की भाँति प्रकट होते हैं

परमात्मा रूप भगवान् सबों के हृदय में स्थित हैं और वे प्रत्येक जीव को अपनी शरण में आने और भक्ति में संलग्न होने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। इसलिए वे आदि गुरु हैं। वे बद्धजीव को आन्तरिक तथा बाह्य रूप से सहायता करने के लिए स्वयं गुरु के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए यहाँ पर उन्हें *गुरुम्* कहा गया है।

—*भागवत* ४.२१.३६

बद्धजीवों का उद्धार करने के लिए भगवान् गुरु बनते हैं

बद्धजीवों का उद्धार भगवान् द्वारा दो प्रकार से किया जाता है—एक तो भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा दंडित होकर तथा भगवान् द्वारा अन्तः तथा बाह्य गुरु बनकर। भगवान् प्रत्येक जीव के अन्तःकरण में परमात्मा रूप में गुरु बनते हैं और बाहर से वे शास्त्रों, सन्तों तथा दीक्षा गुरु के रूप में गुरु बनते हैं।

—*भागवत* १.७.५

गुरु परमात्मा का बाह्य स्वरूप है

परम गुरु तो कृष्ण हैं इसलिए वे *चैत्य गुरु* के रूप में जाने जाते हैं। इसका सन्दर्भ परमात्मा से है जो हर एक के हृदय में आसीन हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा है वे भीतर से सहायता करते हैं और गुरु को भेजते हैं जो बाहर से सहायता करता है। गुरु चैत्यगुरु यानी प्रत्येक हृदय में स्थित गुरु का बाह्य स्वरूप है।

—*भागवत* ४.८.४४

भगवान् गुरु रूप में भक्त को भीतर तथा बाहर से प्रकाशित करते हैं:

अनुवाद: हे भगवान्! आपके दोनों चरणकमल इतने सुन्दर हैं मानो शरत् ऋतु में उगने वाले कमल पुष्प के दो खिलते हुए दल हों। आपके चरणकमलों के नाखूनों से इतना तेज निकलता है कि वह बद्धजीव के हृदय के सारे अन्धकार को तुरन्त छिन्न कर देता है। हे स्वामी! मुझे आप वह स्वरूप दिखलाएँ जो भक्त के हृदयान्धकार को नष्ट कर देता है। मेरे भगवान्! आप सबों के परम गुरु हैं, अतः आप जैसे गुरु के द्वारा अज्ञान के अंधकार से आवृत सारे बद्धजीव प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं।

तात्पर्य: भगवान् ही परम गुरु हैं और परमेश्वर का प्रामाणिक प्रतिनिधि भी गुरु होता है। भगवान् अपने चरणकमलों के नाखूनों के तेज से भक्त को भीतर-भीतर प्रकाशित करते हैं और उनका प्रतिनिधि रूप गुरु बाहर से करता है। भगवान् के चरणकमलों का ध्यान करने तथा गुरु का उपदेश

ग्रहण करने से ही आध्यात्मिक जीवन में प्रगति तथा वैदिक ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। ...वेदों का आदेश है कि भगवान् के चरणकमलों में तथा गुरु में अविचल श्रद्धा होने पर वैदिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

—*भागवत* ४.२४.५२

कृष्ण बद्धजीव का उद्धार वैदिक ग्रंथों, स्वरूपसिद्ध गुरु तथा परमात्मा के माध्यम से करते हैं

अनुवाद: "कृष्ण विस्मरणशील बद्धजीव को वैदिक ग्रन्थों, स्वरूपसिद्ध गुरु तथा परमात्मा के माध्यम से शिक्षा देते हैं। इनके द्वारा वह भगवान् को यथारूप में समझ सकता है कि कृष्ण उसके नित्यगुरु तथा माया के पाश से उद्धार करने वाले हैं। इस तरह वह अपने बद्धजीवन का असली ज्ञान प्राप्त कर सकता है और यह जान सकता है कि मुक्ति कैसे प्राप्त की जाती है।"

तात्पर्य: अपनी असली स्थिति भूल जाने के कारण बद्धजीव शास्त्र, गुरु तथा अपने हृदय के भीतर स्थित परमात्मा की सहायता ले सकता है। कृष्ण हर एक के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित रहते हैं।...शक्त्यावेश अवतार के रूप में व्यासदेव बद्धजीव को वैदिक ग्रन्थों के माध्यम से शिक्षा देते हैं। कृष्ण बाहर से आध्यात्मिक गुरु के रूप में प्रकट होकर बद्धजीव को कृष्णभावनामृत प्राप्त करने की शिक्षा देते हैं। जब बद्धजीव को अपना मूल कृष्णभावनामृत प्राप्त हो जाता है तो वह भौतिक पाश से मुक्त हो जाता है। इस तरह भगवान् बद्धजीव की तीन प्रकार से सहायता करते हैं—शास्त्र, गुरु तथा हृदय के भीतर परमात्मा रूप में।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २०.१२३

तीन प्रकार के गुरु (दीक्षा, शिक्षा तथा वर्त्म प्रदर्शक)

तीन प्रकार के गुरुओं की परिभाषा

आध्यात्मिक जीवन के विषय में सूचना देने वाले को *वर्त्म प्रदर्शक*-गुरु कहा जाता है। जो गुरु शास्त्रों के नियमानुसार दीक्षा देता है वह *दीक्षा गुरु* कहलाता है और जो ऊपर उठने के लिए शिक्षा देता है वह शिक्षा गुरु कहलाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ८.१२८

दीक्षा तथा शिक्षा गुरुओं के स्वभाव तथा कार्य

अनुवाद: मैं गुरुओं, भगवद्भक्तों, ईश्वर के अवतारों, उनके स्वांशों, उनकी शक्तियों तथा साक्षात् आदि भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य: गुरून् बहुवचन में दिया गया है, क्योंकि शास्त्रों पर आधारित आध्यात्मिक शिक्षाएँ देने वाला कोई भी व्यक्ति गुरु होता है। यद्यपि अन्य लोग भी नौसिखियों को मार्ग दिखलाने में सहायता करते हैं किन्तु गुरु सर्वप्रथम महामन्त्र से दीक्षित करता है, अतएव वह दीक्षा गुरु है और वे सन्त महात्मा जो कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के लिए उपदेश देते हैं वे शिक्षा गुरु कहलाते हैं। दीक्षा गुरु तथा शिक्षा गुरु समान होते हैं और कृष्ण से एकरूप होते हैं, भले ही उनके कार्य भिन्न भिन्न होते हैं। इनका कार्य है बद्धजीवों को भगवद्धाम वापस जाने में मार्गदर्शन करना।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.३४

भक्त का केवल एक दीक्षा गुरु होना चाहिए किन्तु शिक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं

मन्त्र गुरु आर व्रत शिक्षा-गुरु-गण।
ताँहार चरण आगे करिये वन्दन॥

अनुवाद: मैं सर्वप्रथम अपने दीक्षा गुरु तथा अपने समस्त शिक्षा गुरुओं के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य: भक्त का एक ही दीक्षा गुरु होना चाहिए क्योंकि शास्त्रों में एक से अधिक गुरु वर्जित हैं। किन्तु शिक्षा गुरुओं की संख्या में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सामान्यतया वह गुरु जो शिष्य को निरन्तर आध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा देता है वही बाद में उसका दीक्षा गुरु बन जाता है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि १.३५

दो प्रकार के शिक्षा गुरु

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि शिक्षा गुरु श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। शिक्षा गुरु दो प्रकार के होते हैं। एक

वह जो मुक्त पुरुष के रूप में भक्ति में पूर्णतया निमग्न रहता है और दूसरा वह जो सम्बद्ध शिक्षाओं के द्वारा शिष्य की आध्यात्मिक चेतना को जगाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.४७

शिष्य अपने विभिन्न गुरुओं की एक सी वन्दना करता है

अनुवाद: चिन्तामणि तथा मेरे दीक्षा गुरु सोमगिरि की जय हो। मेरे शिक्षा गुरु अर्थात् भगवान् की जय हो जो अपने मुकुट में मोरपंख धारण करते हैं।...(*कृष्णकर्णामृत*)

तात्पर्य: *कृष्णकर्णामृत* के प्रारम्भ में बिल्वमंगल ठाकुर ने अपने विभिन्न गुरुओं को नमस्कार किया है और यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने सबों की समान रूप से वन्दना की है। उन्होंने जिस प्रथम गुरु का उल्लेख किया है वह है चिन्तामणि जो उनकी शिक्षा गुरु थीं, क्योंकि उन्होंने ही उन्हें आध्यात्मिक मार्ग दिखलाया था। चिन्तामणि एक वेश्या थी जिसने बिल्वमंगल की प्रारम्भिक जीवन में घनिष्ठता थी। उन्होंने उसे भक्ति-पथ पर चलने की प्रेरणा दी। चूँकि उन्होंने ही कृष्ण-प्रेम द्वारा सिद्धि के लिए प्रयास करने हेतु इस संसार को त्यागने के लिए उसे आश्वस्त किया था इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम उसे ही नमस्कार किया है। तत्पश्चात् वे अपने दीक्षा गुरु सोमगिरि को नमस्कार करते हैं और उसके बाद भगवान् को, क्योंकि वे भी उनके शिक्षा गुरु थे।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.५७

दीक्षा गुरु श्रील मदनमोहन विग्रह का साकारस्वरूप है। शिक्षा गुरु श्री गोविन्ददेव विग्रह का साकार प्रतिनिधि है

श्रील गोविन्द जी अर्जुन को *भगवद्गीता* की शिक्षा देकर शिक्षा गुरु जैसा कार्य करते हैं। वे आदि उपदेशक हैं, क्योंकि वे हमें उपदेश करते हैं और अपनी सेवा करने का अवसर प्रदान करते हैं। दीक्षा गुरु श्रील मदनमोहन का साकार स्वरूप होता है जबकि शिक्षा गुरु श्रील गोविन्ददेव विग्रह का साकार प्रतिनिधि है। वृन्दावन में इन दोनों अर्चाविग्रहों की पूजा की जाती है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.४७

पथ प्रदर्शक (वर्त्म प्रदर्शक) गुरु, शिक्षा गुरु तथा दीक्षा गुरु की

परिभाषाएँ

अनुवाद: ध्रुव महाराज जब उस दिव्य विमान पर बैठे थे जो चलने वाला था तो उन्हें अपनी बेचारी माता सुनीति का स्मरण हो आया। वे सोचने लगे, "मैं अपनी बेचारी माता को छोड़कर वैकुण्ठलोक अकेले कैसे जा सकूँगा?"

तात्पर्य: ध्रुव महाराज अपनी माता सुनीति के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ थे। उन्हीं के निर्देश पर वे विष्णु के पार्षदों द्वारा वैकुण्ठलोक जाने में समर्थ हो रहे थे। अब उन्हें माता की याद आ रही थी और वे उन्हें भी साथ ले जाना चाहते थे। वस्तुत: ध्रुव महाराज की माता सुनीति उनकी पथ प्रदर्शक गुरु थीं। ऐसा गुरु कभी कभी शिक्षा गुरु कहलाता है। यद्यपि नारद मुनि उनके दीक्षा गुरु थे, किन्तु उनकी माता सुनीति ने ही भगवान् की कृपा प्राप्त करने की शिक्षा दी थी। शिक्षा गुरु या दीक्षा गुरु का कर्तव्य है कि वह शिष्य को सही-सही शिक्षा दे और उसको कार्यान्वित करना शिष्य पर निर्भर करता है। शास्त्रीय आदेशों के अनुसार शिक्षा गुरु तथा दीक्षा गुरु में कोई अन्तर नहीं होता और सामान्यत: शिक्षा गुरु ही बाद में दीक्षा गुरु बनता है।

—*भागवत* ४.१२.३२

अब्राह्मण दीक्षा गुरु के साथ साथ शिक्षा या वर्त्म प्रदर्शक गुरु भी बन सकता है

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
येइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

अनुवाद: यदि कोई गुरु बन जाता है तो वह स्वत: ब्राह्मण है। कभी कभी गुरु जाति के लोग कहते हैं कि *येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय*—का अर्थ है कि जो ब्राह्मण नहीं है वह *शिक्षा गुरु* या वर्त्म प्रदर्शक गुरु तो बन सकता है, किन्तु दीक्षा गुरु नहीं बन सकता। ऐसे जाति गुरुओं के अनुसार जन्म और कुल को सर्वोपरि माना जाता है। किन्तु वैष्णवों को यह कुल परम्परा मान्य नहीं है। गुरु शब्द वर्म प्रदर्शक गुरु, शिक्षा गुरु तथा दीक्षा गुरु पर समान रूप से लागू होता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ८.१२८

सम्मान की उपाधियाँ गुरु पर लागू

गुरु को 'गोस्वामी' कहकर सम्बोधित किया जा सकता है

जिस व्यक्ति का इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है वह *गोसाईं* या *गोस्वामी* कहा जाता है। चूँकि इन्द्रियों को तब तक वश में नहीं किया जा सकता जब तक मनुष्य भगवान् की सेवा में लगा न हो। अतएव प्रामाणिक गुरु, जो अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है, चौबीसों घण्टे भगवान् की सेवा में लगा रहता है। अतएव उसे गोसाईं या गोस्वामी कहा जा सकता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ९.२८९

गोस्वामी की उपाधि वंशागति से नहीं अपितु कृष्णभावनाभावित गुरु को प्रदान की जा सकती है

गोस्वामी उपाधि कभी उत्तराधिकार से नहीं मिलती प्रत्युत प्रामाणिक गुरु को ही प्रदान की जा सकती है।

वृन्दावन के छह महान् गोस्वामी श्रील रूप, सनातन, भट्ट, रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट, तथा दास रघुनाथ में से किसी को भी गोस्वामी की उपाधि उत्तराधिकार में नहीं मिली थी। वृन्दावन के ये सभी गोस्वामी गुरु के रूप में भक्ति के उच्चतम पद को प्राप्त थे इसलिए ये सभी गोस्वामी कहलाये। इन्हीं गोस्वामियों ने वृन्दावन के सारे मन्दिरों का शुभारम्भ किया। बाद में इन मन्दिरों की पूजा का भार गोस्वामियों के गृहस्थ शिष्यों को सौंप दिया गया। तभी से गोस्वामी पदवी वंशानुगत चली आ रही है। किन्तु जो प्रामाणिक गुरु होता है और श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करता है और जिसकी अपनी इन्द्रियों पर पूरा नियन्त्रण है वही *गोस्वामी* कहला सकता है। दुर्भाग्यवश वंशानुगत प्रक्रिया चालू है, अतएव वर्तमान समय में अधिकांशतः इस पदवी का दुरुपयोग शब्द की व्युत्पत्ति की अज्ञानता के कारण हो रहा है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ९.२८९

परमहंस के रूप में गुरु

जो गुरु पूर्णरूपेण भगवान् के प्रति समर्पित होता है और जिसके पास भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता वह सर्वोत्तम *परमहंस* कहलाता है। परमहंस को इन्द्रियतृप्ति से कोई सरोकार नहीं रहता, वह तो भगवान् की इन्द्रियतुष्टि में लगा रहता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ९.२८९

आचार्य परमहंस ठाकुर कहलाता है

चूँकि वह (असली आचार्य) सर्वाधिक बढ़ा-चढ़ा भक्त माना जाता है, अतएव वह *परमहंस ठाकुर* कहलाता है। *ठाकुर* एक सम्मानसूचक पदवी है जो परमहंस को प्रदान की जाती है। अत: जो आचार्य की भूमिका निभाता है, जो कृष्ण के नाम तथा यश का प्रसार करके साक्षात् उनका प्रतिनिधित्व करता है, उसे भी *परमहंस* ठाकुर कहा जाना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* अन्त्य ७.१२

गोसाईं तथा ठाकुर उपाधियों का सही उपयोग

हरिदास ठाकुर इतने बढ़े चढ़े थे कि उन्हें *ठाकुर* तथा *गोसाईं* कहकर पुकारते थे और ये उपाधियाँ सर्वाधिक बढ़े-चढ़े वैष्णवों को प्रदान की जाती हैं। गुरु सामान्यतया *गोसाईं* कहलाता है और *ठाकुर* सम्बोधन परमहंसों के लिए प्रयुक्त होता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ११.१६५

जगद्गुरु का अर्थ

जो व्यक्ति अपने अधीनस्थ या शिष्य को वासुदेव की पूजा करने का उपदेश देता है वह सचमुच प्रामाणिक गुरु है। इस सन्दर्भ में *जगद्गुरुम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कश्यपमुनि ने झूठे ही अपने को जगद्गुरु घोषित नहीं किया, यद्यपि वे वास्तव में जगद्गुरु थे, क्योंकि उन्होंने वासुदेव का समर्थन किया। वस्तुत: वासुदेव जगद्गुरु हैं जैसा कि यहाँ स्पष्ट कहा गया है (*वासुदेवं जगद्गुरुम्*)। जो वासुदेव के उपदेश की अर्थात् *भगवद्गीता* की शिक्षा देता है वह *वासुदेवं जगद्गुरुम्* जैसा ही होता है। किन्तु जब

कोई इस उपदेश की शिक्षा नहीं देता और ऐसा है भी किन्तु अपने आपको जगद्गुरु घोषित कर देता है तो वह जनता को ठगता है। कृष्ण जगद्गुरु हैं और जो यथारूप में कृष्ण के उपदेश की शिक्षा देता है उसे जगद्गुरु मानना चाहिए। जो अपनी स्वयं की पद्धति उत्पन्न करता है उसे जगद्गुरु नहीं माना जा सकता, वह झूठे ही जगद्गुरु बन बैठता है।

—*भागवत* ८.१६.२०

जगद्गुरु की योग्यताएँ

जो व्यक्ति यह जानता है कि क्या आध्यात्मिक है, क्या भौतिक है और कौन अध्यात्मपद को प्राप्त है वही जगद्गुरु बन सकता है। जगद्गुरु बनने के अनिवार्य नियमों को जाने बिना अपने को जगद्गुरु विज्ञापित करने से कोई जगद्गुरु नहीं बन सकता। यहाँ तक कि ऐसे लोग जिन्होंने कभी यह नहीं देखा कि जगद्गुरु क्या होता है और जो कभी किसी से बातें तक नहीं करते वे गर्वित संन्यासी बन जाते हैं और अपने को जगद्गुरु कहने लगते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु को यह पसन्द नहीं था। जो व्यक्ति कृष्णतत्त्व को जानता है और आध्यात्मिक जीवन के लिए पूर्णतया योग्य हो, वही जगद्गुरु बन सकता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ५.८५

दिव्य अवस्था को प्राप्त होने को इंगित करने के लिए गुरु के नाम के पहले अष्टोत्तर शत (१०८) लगा दिया जाता है

जीवात्मा स्वाभाविक रूप से शुद्ध है। *असंगो ह्ययं पुरुषः*। वेदों में कहा गया है कि आत्मा सदैव शुद्ध और भौतिक आसक्ति से अदूषित रहता है। आत्मा के साथ देह की पहचान करना अज्ञान का कारण है। ज्योंही कोई कृष्णभक्त बन जाता है तो यह समझना चाहिए कि वह शुद्ध मूल स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त है। यह देह स्थिति *शुद्ध सत्त्व* कहलाती है।...

शुद्ध भक्ति में मनुष्य अकारण तथा किसी रुकावट के बिना अपना कर्तव्य मानकर भगवान् की मात्र सेवा करता रहता है। यही *शुद्ध सत्त्व* या *वसुदेव* कहलाता है, क्योंकि इस अवस्था में भक्त के हृदय में परम

पुरुष कृष्ण का उदय होता है। श्रील जीव गोस्वामी ने *भागवत-सन्दर्भ* में इस वसुदेव या शुद्धसत्त्व का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। वे बताते है कि गुरु के नाम के आगे *अष्टोत्तर शत* (१०८) जोड़ दिया जाता है जो यह सूचित करता है कि वह शुद्ध सत्व या वसुदेव की दिव्य स्थिति में है।

—*भागवत* ४.३.२३

'प्रभुपाद' का अर्थ है कि गुरु भगवान् के प्रतिनिधि रूप में उन्हीं का पद ग्रहण करता है

यह शब्द (प्रभु) भगवान् के लिए प्रयुक्त होता है। कभी कभी गुरु को *प्रभुपाद* कहकर सम्बोधित किया जाता है। *प्रभु* का अर्थ है "भगवान्" तथा *पाद* का अर्थ है "स्थान"। वैष्णव दर्शन के अनुसार गुरु भगवान् का स्थान ग्रहण करता है अर्थात् वह भगवान् का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है।

—*भागवत* ४.८.६९

प्रभुपाद का अर्थ

जब पृथु महाराज ज्ञान की वृद्धि तथा इच्छाओं से विरक्ति के कारण आध्यात्मिक रूप से सशक्त हो गये तो वे *प्रभु* अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी (कभी कभी *गोस्वामी* या *स्वामी* भी) हो गये। इसका अर्थ यह हुआ कि अब वे माया द्वारा नियन्त्रित नहीं हो रहे थे। जब मनुष्य इतना प्रबल हो जाता है कि माया का प्रभाव त्याग सके तो वह प्रभु कहलाता है।...जब कोई पूर्णतया स्वरूपसिद्ध हो जाता है और उसी स्थिति के अनुसार कार्य करता है तो वह *प्रभु* कहलाता है। गुरु को *प्रभुपाद* कहा जाता है, क्योंकि वह पूर्णतया स्वरूपसिद्ध जीव होता है। *पाद* का अर्थ है "स्थान या पद" अतः *प्रभुपाद* से यह सूचित होता है कि उसे प्रभु या भगवान् का पद प्रदान किया गया है, क्योंकि वह भगवान् के एवज में कार्य करता है। जब तक कोई इन्द्रियों का नियामक या *प्रभु* नहीं होता वह गुरु की तरह कार्य नहीं कर सकता।

—*भागवत* ४.२३.१८

प्रभु तथा प्रभुपाद का अर्थ

अनुवादः जब काशी मिश्र ने यह प्रस्ताव सुना तो उन्होंने कहा, "मैं परम भाग्यशाली हूँ कि समस्त प्रभुओं के प्रभु श्रीचैतन्य महाप्रभु मेरे घर पर ठहरेंगे।"

तात्पर्यः इस श्लोक में श्रीचैतन्य महाप्रभु के लिए प्रयुक्त *प्रभुपाद* शब्द महत्त्वपूर्ण है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने प्रभुपाद की टीका की है—"श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं और उनके सारे दास उन्हें प्रभुपाद कहते हैं। इसका अर्थ है कि उनके चरणकमलों में शरण लेने वाले अनेक प्रभु हैं।" शुद्ध वैष्णव को *प्रभु* कहा जाता है और वैष्णवों में यह सम्बोधन शिष्टाचार के रूप में प्रयुक्त होता है। जब कोई प्रभु किसी अन्य प्रभु के चरणों में शरण लेता है तो प्रभुपाद का सम्बोधन किया जाता है। श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्री अद्वैत प्रभु भी प्रभुपाद कहलाते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्री अद्वैत प्रभु तथा श्री नित्यानन्द प्रभु ये सभी *विष्णुतत्त्व* हैं अतएव सारे जीव उनके चरणकमलों के नीचे हैं। भगवान् हरएक के नित्य प्रभु हैं और भगवान् विष्णु का प्रतिनिधि भगवान् का विश्वस्त दास होता है। ऐसा व्यक्ति नौसिखिये वैष्णवों के लिए गुरु का काम करता है अतएव गुरु का आदर श्रीकृष्ण चैतन्य या भगवान् विष्णु के समान ही होता है। इसलिए गुरु को *ॐ विष्णुपाद* या *प्रभुपाद* कहा जाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १०.२३

गुरु द्वारा प्रयुक्त वस्तुएँ पूजनीय

गुरु एवं गुरु द्वारा प्रयुक्त वस्तुएँ पूजनीय हैं

अनुवादः तब नित्यानन्द प्रभु ने गोविन्द से कहकर महाप्रभु का पहना हुआ बाह्यवस्त्र प्राप्त कर लिया। नित्यानन्द ने वह पुराना वस्त्र सार्वभौम को दे दिया और सार्वभौम ने उसे राजा के पास भेज दिया। जब राजा को वह पुराना वस्त्र मिल गया तो उसने उसकी वैसी ही पूजा शुरू कर दी जैसे साक्षात् महाप्रभु की पूजा कर रहा हो।

तात्पर्य: हमें भगवान् की प्रत्येक वस्तु की पूजा करनी सीखनी चाहिए। शिव जी ने *तदीयानाम्* कहकर इस ओर इंगित किया है। *पद्म-पुराण* में कहा गया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

"हे देवि! समस्त पूजा विधियों में विष्णु पूजा सर्वश्रेष्ठ है। उससे भी महान् है *तदीय* यानी विष्णु से सम्बन्धित किसी वस्तु की पूजा।" श्रीविष्णु सच्चिदानन्द विग्रह हैं। इसी तरह कृष्ण का सर्वाधिक विश्वस्त दास अर्थात् गुरु तथा विष्णु के सारे भक्त *तदीय* हैं। सच्चिदानन्द विग्रह, गुरु, वैष्णवजन तथा उनके द्वारा प्रयुक्त कोई भी वस्तु *तदीय* है, एवं निस्सन्देह सभी जीवों द्वारा पूजनीय मानी जानी चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १२.३६-३८

गुरु द्वारा काम में लाई गई वस्तुएँ पूजनीय हैं और उनका प्रयोग अन्य किसी द्वारा नहीं होना चाहिए

अनुवाद: "अब कृपा करके इस स्थान पर बैठकर भोजन करें।" चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "यह स्थान पूज्य है, क्योंकि इसका उपयोग कृष्ण द्वारा हो चुका है।"

तात्पर्य: शिष्टाचार के अनुसार जो वस्तुएँ कृष्ण द्वारा ग्रहण हो चुकी हैं उनका उपयोग अन्य किसी के द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। यही बात गुरु के द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं पर भी लागू होती है। कृष्ण या गुरु द्वारा ग्रहीत वस्तुएँ पूज्य हैं। विशेषतया उनके बैठने या भोजन करने के स्थान का प्रयोग अन्य किसी के द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। भक्त को चाहिए कि सावधानी से इसका पालन करे।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १५.२३४

गुरु द्वारा छोड़े गये भोजन को खाने से शिष्य लाभान्वित

होता है

गुरु द्वारा छोड़ा गया भोजन शुद्ध करने वाला होता है

अनुवाद: जब नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंका गया चावल अद्वैत आचार्य के शरीर से जा लगा तो आचार्य ने परमहंस नित्यानन्द द्वारा फेंके गये उस जूठन के स्पर्श से अपने को परम पवित्र समझा। अतएव वे नाचने लगे।

तात्पर्य: शुद्ध वैष्णव का जूठन *महामहा प्रसाद* कहलाता है। यह अत्यन्त आध्यात्मिक होता है और विष्णुतुल्य माना जाता है। ऐसा जूठन सामान्य नहीं होता। गुरु को परमहंस पद प्राप्त माना जाता है और उस पर वर्णाश्रम व्यवस्था लागू नहीं होती। गुरु तथा उसके ही तुल्य परमहंसों या शुद्ध वैष्णवों के जूठन पवित्र करने वाले होते हैं। जब सामान्य व्यक्ति ऐसे प्रसाद का स्पर्श करता है तो उसका मन शुद्ध हो जाता है और वह शुद्ध ब्राह्मण पद तक उठता है। अद्वैत आचार्य का व्यवहार तथा उनके कथन उन सामान्य लोगों को समझने के लिए हैं जो आध्यात्मिक मूल्यों की शक्ति से अवगत नहीं होते और प्रामाणिक गुरु तथा शुद्ध वैष्णवों के जूठन की शक्ति को नहीं जानते।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ३.९६

गुरु के जूठन को प्रसाद रूप में ग्रहण किया जा सकता है

सर्वप्रथम परमेश्वर को अर्पित किये जा चुके अथवा सन्तों द्वारा या गुरु द्वारा खाये जा चुके भोजन के उच्छिष्ट के एक अंश को खाया जा सकता है।

—*भगवद्गीता* १७.८-१०

गुरु का परित्याग कब किया जा सकता है?

गुरु का परित्याग कब

अनुवाद: श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा: हे राजा परीक्षित! जब बलि महाराज को उनके गुरु तथा कुलपुरोहित शुक्राचार्य ने इस प्रकार सलाह दी तो वे कुछ समय तक चुप रहे और फिर पूर्ण विचार-विमर्श के बाद अपने

गुरु से इस प्रकार बोले

तात्पर्य: श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टिप्पणी की कि बलि महाराज इस सम्बन्ध में मौन रहे। वे अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश की अवज्ञा कैसे कर सकते थे? बलि जैसे गम्भीर व्यक्ति का पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के आदेशों का तुरन्त पालन करे। किन्तु बलि महाराज ने यह भी विचार किया कि शुक्राचार्य अब उनके गुरु नहीं रहे, क्योंकि वे गुरु के कर्तव्य से विमुख हुए हैं। शास्त्रों के अनुसार गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को भगवद्धाम वापस ले जाय। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता और अपने शिष्य को भगवद्धाम वापस जाने में बाधा पहुँचाता है तो वह गुरु नहीं रह सकता। *गुरुर्न स स्यात्* (भागवत ५.५.१८)। यदि कोई अपने शिष्य को कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने में सक्षम नहीं बना सकता तो वह गुरु नहीं हो सकता। जीवन का लक्ष्य कृष्णभक्त बनना है जिससे भवबन्धन से छुटकारा प्राप्त किया जा सके (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। गुरु कृष्णभावनामृत विकसित करके शिष्य को इस अवस्था को प्राप्त कराता है। अब शुक्राचार्य ने बलि महाराज को सलाह दी कि वे वामनदेव को दिये गये वचन से मुकर जायँ। अतएव ऐसी परिस्थिति में बलि महाराज ने सोचा कि यदि वे अपने गुरु के आदेश की अवज्ञा कर दें तो इसमें कोई दोष नहीं होगा। उन्होंने इस बारे में तर्क-वितर्क किया कि क्या वे अपने गुरु के आदेश को स्वीकार करें या अस्वीकार कर दें या फिर वे स्वतन्त्र होकर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए चाहे जो करें। इसमें उन्हें कुछ समय लगा। इसलिए कहा गया है—*तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्*। इस विषय में तर्क-वितर्क करके उन्होंने निर्णय लिया कि प्रत्येक दशा में भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है भले ही इसमें गुरु-उपदेश की अवहेलना क्यों न करनी पड़े।

जिसे गुरु माना जा रहा हो, किन्तु जो विष्णुभक्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध जाता हो तो उसे गुरु स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि किसी ने भूल से ऐसे गुरु को स्वीकार किया है तो उसे त्याग देना चाहिए...श्रील जीव गोस्वामी ने सलाह दी है कि इस प्रकार के व्यर्थ गुरु या कुलगुरु को त्याग देना चाहिए और सही प्रामाणिक गुरु को स्वीकार करना चाहिए।

—*भागवत* ८.२०.१

यदि गुरु उस पद के अयोग्य हो तो उसको त्याग देना चाहिए

अर्जुन ने यह भलीभाँति जानते हुए अश्वत्थामा को बन्दी बनाया था

कि वह द्रोणाचार्य का पुत्र है। कृष्ण भी यह जानते थे, किन्तु उन दोनों ने इस बात पर विचार न करते हुए कि वह ब्राह्मण पुत्र है उस हत्यारे की भर्त्सना की। शास्त्रों के अनुसार यदि शिक्षक या गुरु अपने पद की प्रतिष्ठा नहीं रखता तो वह गुरु बने रहने के अयोग्य है और उसका परित्याग किया जाना चाहिए। गुरु को आचार्य भी कहते हैं अर्थात् वह ऐसा व्यक्ति होता है जिसने समस्त शास्त्रों को आत्मसात् कर लिया है और अपने शिष्यों को ढंग से चलना सिखाता है। अश्वत्थामा ब्राह्मण या गुरु का कर्तव्य-निर्वाह करने में असफल रहा, अतएव ब्राह्मण के उच्च पद से उसका तिरस्कार होना था। इस दृष्टि से भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन दोनों द्वारा अश्वत्थामा की भर्त्सना उचित थी।

—*भागवत* १.७.४३

पतित गुरु त्याज्य है

शास्त्रीय आचार संहिता के अनुसार जो गुरु गर्हित कार्यों में प्रवृत्त होता है और अपना विवेक खो चुकता है वह त्याज्य है।

—*भगवद्गीता* १.५

छद्म गुरु

छद्म गुरु से बद्धात्मा को कोई भी भौतिक या आध्यात्मिक लाभ नहीं मिल सकता

कभी कभी इस संसारारण्य में अपने कष्टों से मुक्ति पाने के लिए बद्धजीव पाखण्डियों से सस्ते आशीर्वाद प्राप्त करता है। उनके सम्पर्क से उसकी मति भ्रष्ट हो जाती है। यह उथली नदी में कूदने के समान है। इसका परिणाम यही होता है कि उसका सिर फूटता है। इस प्रकार वह गर्मी शान्त करने में समर्थ नहीं होता तथा दोनों ओर से उसी की हानि होती है। यह पथभ्रष्ट बद्धजीव तथाकथित साधुओं और स्वामियों की भी शरण में जाता है जो वेदविरुद्ध उपदेश देते हैं। किन्तु इनसे उसे न तो वर्तमान में और न भविष्य में ही लाभ मिलता है।

तात्पर्य: आत्म-साक्षात्कार के लिए धूर्तों ने अपने मार्ग बना रखे हैं। तुच्छ स्वार्थ-लाभ के लिए इन कपटी संन्यासियों तथा योगियों से सस्ते

आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए बद्धजीव उनकी शरण में जाता है, किन्तु उसे न तो ईश्वर और न भौतिक लाभ ही प्राप्त होता है। इस युग में ऐसे अनेक वंचक हैं जो जादू-तिलिस्म दिखाकर ठगते हैं। वे अपने सेवकों को चमत्कृत करने के लिए सोना तक बनाते हैं और उनके सेवक उन्हें ईश्वर मान लेते हैं। कलियुग में इस प्रकार की ठगी का बोलबाला है।...मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसे गुरु की शरण में जाय जो इस भौतिक जगत की ज्वलित अग्नि को शमित कर दे। किन्तु मनुष्य चाहते हैं कि वे ठगे जायँ अतः वे जादू दिखाने वाले योगियों तथा स्वामियों के पास जाते हैं किन्तु इससे भौतिक जीवन के कष्टों में कमी नहीं आती।...झूठे गुरु की शरण में जाकर कोई कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। *श्रीमद्भागवत* में (११.३.२१) जिस प्रकार के गुरु का वर्णन है उसे ही स्वीकार करना चाहिए। *तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्*—जीवन में सर्वोच्च लाभ के लिए वास्तविक गुरु की शरण में जाना चाहिए। ऐसे गुरु का वर्णन इस प्रकार है—*शाब्दे परे च निष्णातम्*। ऐसा गुरु न तो सोना बनाता है, न ही बातें बनाता है। वह वैदिक ज्ञान से ओतप्रोत होता है (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। वह सांसारिक दोषों से सर्वथा मुक्त होता है और श्रीकृष्ण की सेवा में पूर्णतः समर्पित होता है। यदि ऐसे गुरु के चरणकमलों की धूलि प्राप्त हो सके तो जीवन सफल हो जाता है अन्यथा वह इस जीवन में तथा इसके बाद भी भ्रमित होता रहता है।

—*भागवत* ५.१४.१३

चूँकि लोग चाहते हैं कि वे ठगे जायँ अतः उन्हें ठग गुरु मिलता है

संवाददाता: मैं स्पष्ट कहता हूँ कि जो बात मुझे सबसे चिन्तित कर रही है वह यह है कि कुछ समय पहले जब ब्रिटेन में एक भारतीय योगी आया जो ऐसा पहला गुरु था और जिसके बारे में लोगों ने सुन रखा था तब से सहसा तमाम गुरु प्रकट हो आये हैं। कभी कभी मुझे ऐसा लगता है कि ये सभी उतने शुद्ध नहीं हैं जितना होना चाहिए। तो क्या यह उचित होगा कि ऐसे तमाम लोग जो आध्यात्मिक जीवन स्वीकार करने की सोच रहे हैं उन्हें आगाह कर दिया जाय कि वे पहले आश्वस्त

हो लें कि उन्हें शिक्षा देने वाला गुरु असली है?

श्रील प्रभुपाद: हाँ! निस्सन्देह, गुरु को ढूँढ निकालना अति उत्तम है, किन्तु यदि आप सस्ता गुरु चाहते हैं या आप धोका खाना चाहते हैं तो आपको अनेक ठगने वाले गुरु मिल जाएँगे। किन्तु यदि आप निष्ठावान हैं तो आपको निष्ठावान गुरु मिलेगा। चूँकि लोग अत्यन्त सस्ते में हर चीज चाहते हैं अतएव वे ठगे जाते हैं। हम अपने शिष्यों को अवैध यौन, मांसाहार, जुआ खेलना तथा नशा करने से दूर रहने के लिए कहते हैं। लोग सोचते हैं कि यह सब अति कठिन है—माथापच्ची है। किन्तु यदि अन्य कोई कहता है, "तुम चाहे जो भी करो, तुम मेरा मन्त्र लो" तो लोग उसे पसन्द करते हैं। बात यह है कि लोग ठगे जाना चाहते हैं इसलिए ठग आते हैं। कोई व्यक्ति कोई तपस्या करना नहीं चाहता। फलस्वरूप ठग आते हैं और कहते हैं "तपस्या की आवश्यकता नहीं। जो चाहो सो करो। बस मुझे धन दो और मैं तुम्हें कुछ मन्त्र दूँगा और तुम छह महीने में ईश्वर बन जाओगे।" यह सब चल रहा है। यदि आप इस तरह से ठगे जाना चाहते हैं तो ठग तो आएँगे ही।

संवाददाता: उस व्यक्ति के विषय में आप क्या कहते हैं जो आध्यात्मिक जीवन खोजना चाहता है, किन्तु गलत गुरु चुनने से सब कुछ समाप्त हो जाता है?

श्रील प्रभुपाद: यदि आप केवल सामान्य शिक्षा चाहते हैं तो इसके लिए आपको काफी समय, श्रम तथा बुद्धि खर्च करनी पड़ती है। इसी प्रकार यदि आप आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हैं तो आपको गम्भीर बनना होगा। ऐसा भी क्या कि कुछ अद्भुत मन्त्रों से कोई छह महीनों में ईश्वर बन जाय? लोग ऐसा क्यों चाहते हैं? इसका अर्थ हुआ कि लोग चाहते हैं कि ठगे जायँ।

संवाददाता: मुझे आश्चर्य हो रहा है कि न जाने कितने लोग बनावटी गुरुओं के चक्कर में आये होंगे।

श्रील प्रभुपाद: एक तरह से हर एक (हँसी)। गिनने की कोई बात नहीं। हर एक।

संवाददाता: इसका अर्थ हुआ हजारों, ऐसा ही न?

श्रील प्रभुपाद: लाखों। लाखों ठगे जा चुके हैं, क्योंकि वे चाहते हैं

कि ठगे जायँ। ईश्वर सर्वज्ञ हैं। वे आपकी इच्छाएँ जान लेते हैं। वे आपके हृदय में हैं और यदि आप ठगे जाना चाहते हैं तो ईश्वर आपके पास ठग भेज देते हैं।

संवाददाता: जब आप यह कहते हैं कि तमाम लोग ठगे जाना चाहते हैं तो क्या आपका अर्थ होता है कि लोग सांसारिक आनन्द उठाना चाहते हैं और साथ ही मन्त्र का जाप करके या फूल लेकर आध्यात्मिक जीवन का भी लाभ उठाते हैं? क्या ठगे जाने से आपका तात्पर्य यही है?

श्रील प्रभुपाद: हाँ, यह उस रोगी के समान है जो सोचता है "मेरा रोग चलता रहे और उसी के साथ मैं स्वस्थ हो जाऊँगा।" यह विरोध-मूलक है। पहली आवश्यकता है कि मनुष्य को आध्यात्मिक शिक्षा मिले। आध्यात्मिक जीवन ऐसी बात नहीं जिसे कुछ मिनट की बात से समझा जा सके। दर्शन तथा धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थ हैं, किन्तु लोगों की रुचि उनमें नहीं है। यही कठिनाई है। उदाहरणार्थ, *श्रीमद्भागवत* बहुत बड़ा ग्रन्थ है और यदि आप इसे पढ़ने लगें तो इसकी एक पंक्ति को समझने में कई दिन लग जाएँगे। *भागवत* में ईश्वर या परब्रह्म का वर्णन हुआ है किन्तु इसमें लोगों की रुचि नहीं है। यदि कहीं कोई व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में रुचि लेने लगता है तो वह चटपट तथा सस्ती वस्तु चाहता है। इसलिए वह ठगा जाता है। वस्तुतः मनुष्य-जीवन तपस्या के लिए है। ...आध्यात्मिक जीवन का अर्थ है ईशसाक्षात्कार के लिए स्वेच्छा से कुछ तपस्या करना। इसलिए हम अपने दीक्षित छात्रों को अवैध यौन, मांसाहार, जुआ खेलना या नशीले द्रव्य के सेवन का निषेध करने पर बल देते हैं। इन प्रतिबन्धों के बिना कोई भी "योग ध्यान" या तथाकथित आध्यात्मिक अनुशासन कभी असली नहीं हो सकता। वह तो ठगों तथा ठगे जाने वालों के बीच का सौदा है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

वश में रखने के लिए अयोग्य गुरु बनाना आध्यात्मिक साक्षात्कार

के लिए व्यर्थ है

कभी कभी छद्म अध्यात्मवादी ऐसा गुरु बना लेते हैं जो शिष्य होने का भी पात्र नहीं होता, क्योंकि वे उसे अपने वश में रखना चाहते हैं। आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए यह व्यर्थ है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ७.७.१२

अन्धे, जीवन लक्ष्य न जानने वाले बद्धजीव बोगस गुरु बनाते हैं

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणी: कृतस्
तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरु:

अनुवाद: जिस प्रकार एक अन्धा पुरुष न देख सकने के कारण दूसरे अन्धे को अपना नेता मान लेता है उसी तरह जो लोग जीवन-लक्ष्य को नहीं जानते वे किसी धूर्त तथा मूर्ख को अपना गुरु बना लेते हैं...

तात्पर्य : बद्धजीव अज्ञान में डूबा रहने तथा जीवन-लक्ष्य न जानने के कारण ऐसा गुरु बनाता है जो शब्द की जादूगरी जानता हो और ऐसा जादू दिखा सके जिससे लोग मूर्ख बन जायँ। कभी कभी मूर्ख व्यक्ति ऐसे को गुरु बना लेता है जो अपनी योगशक्ति से थोड़ा सोना भी बनाना जानता है। चूँकि ऐसे शिष्य के पास अल्पज्ञान रहता है, अतएव वह यह तय नहीं कर पाता कि सोने का बनाना गुरु की कसौटी है या नहीं। क्यों न उन भगवान् को गुरु बनाया जाय जिनसे अनन्त सोने की खानें उत्पन्न होती हैं। *अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते*। सारी सोने की खानें भगवान् की शक्ति द्वारा उत्पन्न की गई हैं, अतएव उस जादूगर को क्यों गुरु बनाया जाय जो थोड़ा सा ही सोना बना सकता है? ऐसे गुरुओं को वे ही मानते हैं जो अन्धे हैं और जिन्हें जीवन का लक्ष्य ज्ञात नहीं रहता।

—*भागवत* ८.२४.५०

रद्दी गुरु एकमात्र भौतिक जगत् में रुचि लेते हैं और अनेक अन्धानुगामियों को पथभ्रष्ट करते हैं

अनुवाद: जो लोग भौतिक जीवन के भोग की भावना द्वारा दृढ़ता से

बँधे हैं और जिन्होंने अपने ही समान बाह्य इन्द्रियविषयों से आसक्त अन्धे व्यक्ति को अपना नेता या गुरु स्वीकार कर रखा है, वे यह नहीं समझ सकते कि जीवन का लक्ष्य भगवद्धाम जाना तथा भगवान् विष्णु की सेवा में लगे रहना है। जिस प्रकार अन्धे व्यक्ति द्वारा ले जाया गया दूसरा अन्धा व्यक्ति सही मार्ग भूल सकता है और गड्ढे में गिर सकता है उसी प्रकार भौतिकता से आसक्त व्यक्ति अन्य अपने ही जैसे व्यक्ति द्वारा मार्ग दिखाये जाने पर सकाम कर्म की रस्सियों द्वारा बँधे रहते हैं जो अत्यन्त मजबूत रेशों से बनी होती हैं। ऐसे लोग तीनों प्रकार के कष्ट सहते हुए पुनः पुनः भौतिक जीवन प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य: ऐसे (रद्दी) गुरु विष्णु में तनिक भी रुचि नहीं लेते। निस्सन्देह, वे भौतिक सफलता के इच्छुक रहते हैं (*बहिरर्थमानिनः*)। *बहिः* शब्द का अर्थ है "बाह्य", अर्थ का "हित" तथा *मानिनः* का अर्थ गम्भीरता से लेना होता है। एक तरह से सभी लोग आध्यात्मिक जगत् से अनभिज्ञ हैं। भौतिकतावादियों का ज्ञान इस भौतिक जगत् की ४०० करोड़ मील की सीमा तक संकुचित है जो सृष्टि का अंधकारमय अंश है। वे यह नहीं जानते कि इस भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक जगत् भी है। जब तक कोई भगवान् का भक्त नहीं होता वह आध्यात्मिक जगत के अस्तित्व को नहीं समझ सकता। ऐसे गुरु जो इस भौतिक जगत में ही रुचि रखते हैं वे *अन्ध* कहे गये हैं। ऐसे अन्धे उन अनेक अन्धे अनुयायियों का मार्गदर्शन कर सकते हैं जिन्हें भौतिक दशाओं का सही ज्ञान नहीं है। किन्तु ऐसे लोग प्रह्लाद महाराज जैसे भक्त द्वारा स्वीकार नहीं किये जाते। ऐसे अन्धे गुरु बाह्य भौतिक जगत में रुचि रखने के कारण सदैव प्रकृति की मजबूत रस्सियों द्वारा बँधे जाते हैं।

—*भागवत* ७.५.३१

बोगस गुरु अपने शिष्यों को भौतिक उन्नति का उपदेश देते हैं और ऐसे शिष्य भौतिक जगत में रहे आते हैं

अनुवाद : तथाकथित भौतिकतावादी गुरु अपने भौतिकतावादी शिष्य को आर्थिक विकास एवं इन्द्रियतृप्ति के विषय में उपदेश देता है और ऐसे उपदेशों से मूर्ख शिष्य अज्ञान के संसार में रहा आता है।...

तात्पर्य: तथाकथित गुरु अपने शिष्यों को भौतिक लाभ की शिक्षा देते हैं। कुछ गुरु उपदेश देते हैं कि शरीर को इन्द्रियतृप्ति के योग्य बनाये रखने के लिए ऐसा ध्यान किया जाय जिससे उसकी बुद्धि बढ़े। दूसरे प्रकार के गुरु उपदेश देते हैं कि यौन (काम) ही जीवन का चरमलक्ष्य है, अतएव शक्तिभर सम्भोग करना चाहिए। ये उपदेश मूर्ख गुरुओं के हैं। दूसरे शब्दों में, मूर्ख गुरु के उपदेशों के कारण मनुष्य संसार में रहता है और इसके कष्ट सहता है।

—*भागवत ८.२४.५१*

तथाकथित स्वामी तथा योगी स्त्रियों के चक्कर में पड़ जाते हैं और वे अन्यों को अज्ञान-सागर पार करने में सहायता नहीं दे पाते

ब्रह्माण्ड के भयावह तत्त्वों की उपमा समुद्र में रहने वाली बड़ी मछलियों (शार्क) से दी गई है। कोई कितना ही दक्ष तैराक क्यों न हो यदि उस पर ये मछलियाँ आक्रमण कर दें तो वह जीवित नहीं रह सकता। प्राय: देखा जाता है कि अनेक तथाकथित योगी तथा स्वामी कभी कभी अपने को अज्ञान-सागर पार करने में तथा अन्यों को भी पार कराने में समर्थ घोषित करते हैं, किन्तु वस्तुत: वे अपनी ही इन्द्रियों के शिकार हुए रहते हैं। अपने अनुयायियों को अज्ञान-सागर पार कराने में सहायता करने के बजाय ऐसे स्वामी तथा योगी माया के शिकार बनते हैं जो स्त्री के रूप में उपस्थित होती है और इस तरह वे उस सागर में बड़ी मछलियों द्वारा निगल लिये जाते हैं।

—*भागवत ४.२२.४०*

संन्यासी (गुरु) को भौतिक लोभ देकर शिष्य एकत्र नहीं करने चाहिए

अनुवाद: संन्यासी को चाहिए कि वह न तो अनेक शिष्य एकत्र करने के लिए भौतिक लाभों का प्रलोभन दे...

तात्पर्य : सामान्यत: तथाकथित स्वामी तथा योगी भौतिक लाभों का प्रलोभन देकर शिष्य बनाते हैं। ऐसे अनेक तथाकथित गुरु हैं जो रोगों से अच्छा करने या सोना बनाकर ऐश्वर्य बढ़ाने का वादा करके शिष्यों को आकर्षित करते हैं। ये रुपये-पैसे वाले प्रलोभन अज्ञानी व्यक्तियों के लिए होते हैं।

संन्यासी को ऐसे भौतिक प्रलोभनों द्वारा शिष्य बनाना वर्जित है।

—*भागवत* ७.१३.८

धूर्त गुरु अपने को ईश्वर कहते हैं

इस जगत में ऐसे अनेक गुरु हैं जो अपना मत प्रस्तुत करते हैं, किन्तु हम किसी भी धूर्त को ललकार सकते हैं। एक धूर्त गुरु कह सकता है "मैं ईश्वर हूँ" अथवा "हम सभी ईश्वर हैं।" यह तो ठीक है किन्तु हमें चाहिए कि शब्दकोश में से "ईश्वर" का अर्थ ढूँढें। सामान्यतया किसी भी शब्दकोश में लिखा मिलेगा कि ईश्वर "सर्वश्रेष्ठ जीव" का सूचक है। अतः हम ऐसे गुरु से पूछ सकते हैं, "क्या आप सर्वश्रेष्ठ जीव हैं?" यदि वह इसे नहीं समझ सकता तो हमें "सर्वश्रेष्ठ" का अर्थ बताना चाहिए। किसी भी शब्दकोश से पता चलेगा कि "सर्वश्रेष्ठ" का अर्थ है "सर्वोच्च सत्ता"। तब हम पूछ सकते हैं, "क्या आप सर्वोच्च सत्ता हैं?" ऐसा धूर्त गुरु, भले ही अपने को ईश्वर घोषित करता रहे, किन्तु ऐसे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। ईश्वर सर्वश्रेष्ठ जीव तथा सर्वोच्च सत्ता है। न तो कोई उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर। तो भी अनेक गुरु-ईश्वर हैं, अनेक धूर्त हैं जो अपने को सर्वोच्च (परम) घोषित करते हैं। ऐसे धूर्त भौतिक जगत् के अंधकार से छुटकारा दिलाने में सहायक नहीं हो सकते। वे आध्यात्मिक ज्ञान रूपी दीपक से हमारे अन्धकार को प्रकाशित नहीं कर सकते।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

छद्म निर्विशेषवादी गुरु अपने को श्रीकृष्ण कहकर अपने शिष्यों को दिग्भ्रमित करते हैं

शिष्य को चाहिए कि वह सदैव गुरु को श्रीकृष्ण का स्वरूप जानकर उसका सम्मान करे। किन्तु हमें यह स्मरण रखना होगा कि गुरु को भगवान् की दिव्य लीलाओं का अनुकरण करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। छद्म गुरु अपने को सभी तरह से श्रीकृष्ण बतला कर अपने शिष्यों की भावनाओं का दुरुपयोग करते हैं, किन्तु ऐसे मायावादी अपने शिष्यों को गुमराह ही कर सकते हैं, क्योंकि इनका चरम उद्देश्य भगवान् से तदाकार होना है।

यह भक्ति सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.४६

नकली स्वत:निर्मित गुरु यह शिक्षा देते हैं कि सारे मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं

अनुवाद: कहा जाता है कि समस्त कारणों के कारण स्वरूप परमेश्वर की पूजा करने से एक तरह का फल मिलता है और जो परम सत्य नहीं है उसकी पूजा करने से दूसरी तरह का फल मिलता है। यह सब उन धीर पुरुषों से सुना जाता है जिन्होंने इसका स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

तात्पर्य: विभिन्न प्रकार की पूजा से विभिन्न प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। यदि हम परमेश्वर की पूजा करते हैं तो हम अवश्य ही उनके नित्य धाम में उनके निकट पहुँचेंगे, लेकिन यदि हम सूर्यदेव तथा चन्द्र जैसे देवताओं की पूजा करें तो हम उनके लोकों में पहुँच सकते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। किन्तु यदि हम अपने योजना-आयोगों तथा कामचलाऊ राजनीतिक जोड़-तोड़ से इसी मनहूस लोक में बने रहना चाहते हैं तो निश्चित रूप से वह भी कर सकते हैं।

मूल शास्त्रों में यह कहीं भी नहीं कहा गया कि कोई कुछ भी करके या किसी की भी पूजा करके अन्ततोगत्वा एक ही लक्ष्य पर पहुँचेंगे। ऐसे बेहूदे सिद्धान्त स्वत:निर्मित गुरुओं द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं जिनका परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। कोई भी प्रामाणिक गुरु यह नहीं कहेगा कि सारे मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर जाते हैं और कोई भी इस लक्ष्य को देवताओं की या परमेश्वर आदि की पूजा की अपनी विधि से प्राप्त कर सकता है। किसी भी सामान्य व्यक्ति के लिए यह समझना आसान है कि वह अपने गन्तव्य तक तभी पहुँच सकता है जब उसने वहाँ का टिकट खरीदा हो। जिस व्यक्ति ने कलकत्ता का टिकट खरीदा है वह कलकत्ता ही पहुँच सकता है बम्बई नहीं। फिर भी अस्थायी तथाकथित गुरु कहते हैं कि कोई भी टिकट तथा सारे टिकट किसी को परम गन्तव्य तक ले जा सकते हैं। ऐसे सांसारिक तथा समझौतावादी लोग अनेक मूर्ख प्राणियों को आकर्षित करते हैं जो उनके द्वारा निर्मित आध्यात्मिक साक्षात्कार

की विधियों से गर्वित हो उठते हैं। लेकिन वैदिक आदेश उनका समर्थन नहीं करते।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र १३

कलियुग में प्रामाणिक वैदक ग्रन्थों की उपेक्षा करके लोग उत्पात मचाते हैं

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपञ्चरात्रविधिं बिना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

"जो भगवान् की भक्ति उपनिषदों, पुराणों तथा नारद पञ्चरात्र जैसे वैदिक ग्रन्थों की अवमानना करे वह समाज में अनावश्यक उत्पात है।" (*भक्तिरसामृत-सिन्धु* १.२.१०१)। जो लोग ज्ञानी हैं और सतोगुणी हैं वे श्रुति, स्मृति तथा पाञ्चरात्रिकी विधि जैसे अन्य धर्मशास्त्रों के वैदिक उपदेशों का पालन करते हैं। भगवान् को इस तरह से समझे बिना मनुष्य केवल उत्पात मचा सकता है। इस कलियुग में अनेक गुरु उत्पन्न हो गये हैं और चूँकि वे स्मृति, पुराणादि पाञ्चरात्रिक विधि का उल्लेख नहीं करते, अतएव वे परम सत्य को समझने की दिशा में विश्व भर में महान् उत्पात मचा रहे हैं। फिर भी जो कोई उपयुक्त गुरु के निर्देशन में पाञ्चरात्रिकी विधि का पालन करता है वह परम सत्य को समझ सकता है।

—*भागवत* ८.१२.१०

ज्ञान तथा वैराग्य से विहीन छद्म धर्मध्वजी अपने को गुरु तथा आचार्य बताकर नरक में जा गिरते हैं

अज्ञानी छद्म-धर्मध्वजी एवं वैदिक आदेशों का प्रत्यक्ष उल्लंघन करने वाले तथाकथित अवतार ब्रह्माण्ड के अन्धकारमय भाग में प्रवेश करते हैं, क्योंकि वे अपने अनुयायियों को पथभ्रष्ट करते हैं...छद्म धर्मध्वजियों में न तो ज्ञान होता है न भौतिक मामलों से विरक्ति, क्योंकि उनमें से अधिकांश लोग भवबन्धन की स्वर्णिम जंजीरों से बँध कर परोपकारी एवं कल्याणकारी कार्यकलापों की छाया के तले तथा धार्मिक सिद्धान्तों के वश में जीवित रहना चाहते हैं। धार्मिक भावनाओं के झूठे प्रदर्शन द्वारा वे भक्ति के स्वरूप को उपस्थित करते हैं जब कि वे सभी प्रकार के

दुराचार करते रहते हैं। ऐसे धर्म के नियमों का उल्लंघन करने वाले लोग प्रामाणिक आचार्यों के प्रति सम्मान नहीं दिखाते। वे सामान्य जनता को भ्रान्त करने के लिए स्वयं तथाकथित आचार्य बन बैठते हैं, लेकिन वे आचार्य के सिद्धान्तों का पालन तक नहीं करते।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र १२

यदि कोई निष्ठावान हो और अस्थायी रूप से रद्दी नकली से भी सम्पर्क रखे तो कृष्ण उसे असली गुरु के पास ले जाएँगे

संवाददाता: क्या कभी आपके पास ऐसे लोग भी आये हैं जिनका इसके पूर्व नकली गुरु से पाला पड़ा हो?

श्रील प्रभुपाद: हाँ, ऐसे अनेक हैं।

संवाददाता: क्या ऐसे नकली गुरुओं से उनके आध्यात्मिक जीवन किसी प्रकार विनष्ट हुए?

श्रील प्रभुपाद: नहीं। वे किसी आध्यात्मिक वस्तु की सही ढंग से खोज में लगे थे और यही उनकी योग्यता थी। ईश्वर हर एक के हृदय में हैं और ज्योंही कोई उन्हें सही ढंग से खोजता है तो वे उस व्यक्ति को असली गुरु पाने में सहायता करते हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु रूप में जीजस क्राइस्ट

गुरु रूप जीजस क्राइस्ट

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि ईश-चेतना के प्रामाणिक प्रचारक में *तितिक्षा* तथा *करुणा* के गुण होने चाहिए। जीजस क्राइस्ट के चरित्र में हम इन दोनों गुणों को पाते हैं। वे इतने तितिक्षावान (सहिष्णु) थे कि क्रास पर चढ़ाते समय भी उन्होंने किसी की भर्त्सना नहीं की। और वे इतने दयालु थे कि उन्होंने उन व्यक्तियों को क्षमा करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जो उन्हें मार डालने का प्रयास कर रहे थे।...एक वैष्णव अन्यों के कष्ट देख कर दुखी होता है, अतएव जीजस क्राइस्ट ने अन्यों को उनके कष्टों से छुटकारा दिलाने के लिए क्रास पर चढ़ना स्वीकार किया। किन्तु उनके अनुयायी इतने कृतघ्न हैं कि उन्होंने यह तै किया

आत्मा या जीव को परमात्मा से साक्षात्कार का अवसर प्राप्त होता है। जिस तरह अन्तःकरण में स्थित परमात्मा से परामर्श करने का अवसर लाभ होता है उसी तरह अपने सम्मुख स्थित परमात्मा से साक्षात् परामर्श ले सकता है। यह शुद्धभक्त का कर्तव्य है कि वह प्रामाणिक गुरु की खोज करे और अन्तःकरण में स्थित परमात्मा से परामर्श करे बशर्ते कि भक्त गुरु के आदेशों का पालन करके अपने हृदय को शुद्ध कर चुका हो। गुरु के आदेशों का पालन करने वाला निष्ठावान भक्त परमात्मा से अपने हृदय में से प्रत्यक्ष आदेश पाता है। इस तरह निष्ठावान भक्त की सहायता गुरु तथा परमात्मा द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है। *चैतन्य-चरितामृत* से इसकी पुष्टि होती है—*गुरु-कृष्ण-प्रसादेपायभक्ति-लता-बीज*—यदि भक्त अपने गुरु की निष्ठापूर्वक सेवा करता है तो कृष्ण स्वतः प्रसन्न होते हैं। *यस्य प्रसादाद् भगवद्प्रसादः*। गुरु को प्रसन्न कर लेने पर श्रीकृष्ण स्वतः प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार भक्त अपने गुरु तथा कृष्ण दोनों से ही समृद्ध बनता है।

—*भागवत* ४.२८.५२

तिरोधान होने के बाद गुरु के शरीर को कभी भस्मीभूत नहीं किया जाता

गुरु या आचार्य सदैव जीवन की आध्यात्मिक अवस्था में स्थित रहता है। उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि नहीं सताते। अतएव *हरिभक्ति-विलास* के अनुसार आचार्य के तिरोधान के पश्चात् उसका शरीर भस्मीभूत नहीं किया जाता, क्योंकि उसका शरीर आध्यात्मिक होता है। आध्यात्मिक शरीर सदा ही भौतिक दशाओं से अप्रभावित रहता है।

—*भागवत* १०.४.२०

पक्के शिष्यगण आचार्य के तिरोधान के बाद उत्पन्न कुव्यवस्था से छुटकारा दिलाने के लिए उनके आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं

जब कभी भगवान् या उनके प्रतिनिधि की आज्ञा से किसी आचार्य का पदार्पण होता है तो वह धर्म की स्थापना करता है...दुर्भाग्यवश जब

आचार्य नहीं रह जाता तो चोर तथा अभक्त लाभ उठाकर तथाकथित स्वामियों, योगियों, उपकारियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं के रूप में अवैध सिद्धान्तों का प्रचलन कर देते हैं।...आचार्य, जो भगवान् का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है, इन सिद्धान्तों की स्थापना करता है किन्तु जब उसका निधन हो जाता है तो ये सारी बातें अव्यवस्थित हो जाती हैं। आचार्य के असली शिष्य इस स्थिति से निपटने के लिए गुरु के आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं।

—*भागवत* ४.२८.४८

अन्य शिक्षाएँ

गुरु के मार्गदर्शन में सारा जगत आध्यात्मिकीकृत किया जा सकता है

भगवान् की सेवा में मानवीय शक्ति का सदुपयोग मोक्ष का प्रगतिशील मार्ग है। ज्योंही प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में भगवान् के प्रति सेवा की जाती है कि सारी विराट् सृष्टि भगवान् से अभिन्न बन जाती है। दक्ष गुरु प्रत्येक वस्तु को भगवान् के गुण-गान करने में प्रयुक्त करने की कला जानता है, अतएव उसके मार्गदर्शन में भगवान् के दास की दैवी कृपा से सारा जगत आध्यात्मिक धाम में बदला जा सकता है।

—*भागवत* १.५.२३

विश्व भर में कृष्णभावनामृत विज्ञान का प्रसार करने के लिए हजारों गुरुओं की आवश्यकता है

जो कोई भी कृष्ण-विज्ञान जानता है वह गुरु बन सकता है। इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यही एकमात्र अर्हता है और सार रूप में यह विज्ञान *भगवद्गीता* में निहित है। सम्प्रति विश्व भर में इस महान विज्ञान का प्रसार करने के लिए हजारों गुरुओं की आवश्यकता है।

...सर्वोच्च देवता ब्रह्मा से लेकर छोटी से छोटी चींटी तक सारे जीवों को प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने का अधिकार है। नारद मुनि इंगित करते हैं कि हम इन संसाधनों का उपयोग जी भर कर कर सकते हैं, किन्तु यदि हम अधिक लेते हैं तो हम चोर बन जाते हैं।...प्रत्येक

वस्तु परमेश्वर की है। हमें जितने की आवश्यकता हो ले सकते हैं, किन्तु इससे अधिक नहीं। यही ज्ञान है। भगवान् की व्यवस्था से यह जगत इस तरह बनाया गया है कि किसी वस्तु की कमी नहीं है।...हर वस्तु ईश्वर की है—इस ज्ञान में आध्यात्मिक साम्यवाद की पूर्णता निहित है। कृष्णविज्ञान स्वीकार करके हम झूठे स्वामित्व के अज्ञान को आसानी से पार कर सकते हैं।

वस्तुतः हम अपने अज्ञान के कारण कष्ट पाते हैं। न्यायालय में अज्ञानता कोई बहाना नहीं है। यदि हम न्यायाधीश से कहें कि हम कानून से अवगत नहीं तो भी हम दण्डित होंगे।...सम्पूर्ण जगत में इस ज्ञान का अभाव है इसलिए कृष्ण विज्ञान के हजारों शिक्षकों की आवश्यक्ता है। अब तो इस ज्ञान की महती आवश्यक है।

—पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर

कृष्णभावनामृत का समूचा क्षेत्र आध्यात्मिक शक्ति—कृष्ण तथा गुरु के अधीन है

कृष्णभावनामृत का अनुशीलन भौतिक नहीं है। सामान्यतया भगवान् की तीन शक्तियाँ होती हैं—बहिरंगा शक्ति, अन्तरंगा शक्ति तथा तटस्था शक्ति। सारे जीव तटस्था शक्ति कहलाते हैं और भौतिक विराट् अभिव्यक्ति बहिरंगा या भौतिक शक्ति का कार्य है। तब आध्यात्मिक जगत आता है जो अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है। तटस्था शक्ति कहलाने वाले सारे जीव कनिष्ठा बहिरंगा शक्ति के अधीन कार्य करने पर भौतिक कार्यकलाप करते हैं। और जब वे अन्तरंगा आध्यात्मिक शक्ति के अधीन कार्य करते हैं तो उनके कार्यकलाप कृष्णभावनाभावित कहलाते हैं। इसका अर्थ हुआ कि जो महान् आत्माएँ या महान् भक्त हैं वे भौतिक शक्ति के वशीभूत होकर कार्य नहीं करते। भक्ति या कृष्णभावनामृत में किया गया कोई कार्य प्रत्यक्षतः आध्यात्मिक शक्ति के अधीन होता है। दूसरे शब्दों में, शक्ति एक प्रकार का बल है और इस बल को गुरु तथा कृष्ण दोनों की कृपा से आध्यात्मिक बनाया जा सकता है।

कृष्णदास कविराज कृत *चैतन्य-चरितामृत* में श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि भाग्यवान व्यक्ति ही कृष्ण की कृपा से प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क

में आता है। जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन के प्रति गम्भीर होता है उसे कृष्ण बुद्धि देते हैं कि वह प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आए और तब गुरुकृपा से वह कृष्णभावनामृत में बढ़-चढ़ जाता है। इस तरह कृष्णभावनामृत का पूरा प्रभावक्षेत्र आध्यात्मिक शक्ति—कृष्ण तथा गुरु—के प्रत्यक्ष अधीन रहता है। इसका भौतिक जगत से कोई सरोकार नहीं रहता।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु (भूमिका)*

गुरु तथा शास्त्र के निर्देशन में की गई भक्ति तथा आध्यात्मिक जगत में कृष्ण की भक्ति दोनों एक हैं यद्यपि इनमें से पहली अपक्व है और दूसरी पक्व

भक्तों की संगति में की गई भक्ति आगे भी भक्ति के विकास का कारण बनती है। केवल भक्ति से ही कोई गोलोक वृन्दावन नामक दिव्य लोक को जा सकता है और वहाँ भी केवल भक्ति ही भक्ति है, क्योंकि इस लोक में तथा आध्यात्मिक जगत में भक्ति सम्बन्धी कार्यकलाप एक से होते हैं। भक्ति कभी बदलती नहीं। उदाहरण के लिए आम को लें। यदि किसी को कच्चा आम मिले तो वह आम ही रहता है और पकने पर भी आम रहता है, किन्तु उसका स्वाद बढ़ जाता है। इसी प्रकार से एक भक्ति वह है जो गुरु तथा शास्त्र के निर्देशन में की जाती है और दूसरी आध्यात्मिक जगत की भक्ति है जो भगवान् की संगति में की जाती है। किन्तु दोनों एक हैं, इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अन्तर यही है कि एक अपरिपक्व अवस्था है और दूसरी पक्व होने के साथ ही अधिक स्वादयुक्त है। केवल भक्तों की संगति द्वारा भक्ति को परिपक्व बनाया जा सकता है।

—*भागवत ४.९.११*

भाग ३

परम्परा

१.परम्परा पालन का महत्त्व

शुद्ध भक्ति सम्पन्न करने के लिए उपयुक्त रूप गोस्वामी के छह सिद्धान्तों में से एक है: पूर्व आचार्यों के पदचिह्नों का अनुगमन

....*सतो-वृत्ते:*...शुद्धभक्ति सम्पन्न करने के लिए पूर्ववर्ती आचार्यों के पदचिन्हों का अनुगमन करते हुए अनुकूल छह सिद्धान्त हैं...(६)।

—*उपदेशामृत* श्लोक ३

विनीत शिष्यपरम्परा प्रणाली के द्वारा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है

पूर्णज्ञान *परम्परा* या निगमनीय ज्ञान कहलाता है जो एक अधिकारी से दूसरे विनीत श्रोता तक पहुँचता है जो सेवा तथा आत्मसमर्पण द्वारा प्रामाणिक होता है। ऐसा नहीं कि कोई परमेश्वर के प्रमाण को चुनौती भी दे और उन्हें जान भी सके। उन्हें अधिकार है कि ऐसे ललकारने वाले जीव के समक्ष, जो पूर्ण का क्षुद्र स्फुलिंग मात्र है और ऐसे स्फुलिंग जो माया के अधीन हैं, प्रकट ही न हों। भक्तगण विनीत होते हैं, अतः यह दिव्य ज्ञान भगवान् से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से उनके पुत्रों तथा शिष्यों को क्रम से प्राप्त होता है। इस विधि में भक्तों के अन्त:करण में स्थित परमात्मा द्वारा सहायता मिलती है। दिव्य ज्ञान सीखने की यही सही विधि है।

—*भागवत* १.२.२१

परम्परा से तथा प्रत्यक्षतः कृष्ण से ज्ञान प्राप्त करना एक सा है

श्रील प्रभुपाद: (कृष्ण) आदि गुरु हैं। तब उनके शिष्य ब्रह्मा गुरु हैं, तब उनके शिष्य नारद गुरु है, तब उनके शिष्य व्यास गुरु हैं—इस तरह गुरु परम्परा है। *एवम् परम्पराप्राप्तम्*—दिव्य ज्ञान परम्परा के माध्यम से प्राप्त होता है।

बाब: तो क्या गुरु अपना ज्ञान परम्परा से प्राप्त करता है, सीधे कृष्ण से नहीं? क्या आपको सीधे कृष्ण से कोई ज्ञान प्राप्त होता है?

श्रील प्रभुपाद: हाँ, कृष्ण की प्रत्यक्ष शिक्षा है—*भगवद्गीता*।

बाब: मैं जानता हूँ किन्तु...

श्रील प्रभुपाद: किन्तु इसे परम्परा से सीखना पड़ता है अन्यथा तुम इसका गलत अर्थ लगा सकते हो।

बाब: किन्तु क्या वर्तमान समय में आप सीधे, कृष्ण से सूचना नहीं प्राप्त करते? क्या यह पुस्तकों की परम्परा से आती है?

श्रील प्रभुपाद: इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मान लो कि मैं कहता हूँ कि यह पेंसिल है। यदि हम उससे कहें "वह पेंसिल है" और वह दूसरे व्यक्ति से कहे, "यह पेंसिल है" तो उसकी शिक्षा तथा मेरी शिक्षा में अन्तर कहाँ है?

बाब: क्या अब कृष्ण की कृपा से आप जान लेते हैं?

श्रील प्रभुपाद: तुम कृष्ण की कृपा भी पा सकते हो बशर्ते कि वह उसी रूप में प्रदान की जाय जिस तरह हम *भगवद्गीता* पढ़ा रहे हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज*—सभी प्रकार के धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आओ। अब हम कह रहे हैं कि तुम सब कुछ त्याग कर कृष्ण की शरण में जाओ। अतएव कृष्ण की शिक्षा तथा हमारी शिक्षा में अन्तर नहीं है। उसमें कोई विचलन नहीं है। अतएव यदि तुम सही ढंग से ज्ञान प्राप्त करो तो यह प्रत्यक्षत: कृष्ण से शिक्षा प्राप्त करने जैसा है। किन्तु हम किसी बात को बदलते नहीं।

—पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर

ईशप्रेम पाने के लिए मनुष्य को परम्परा स्वीकार करते हुए ईश्वर के दास के दास का दास बनना होता है

वैष्णव यह कभी नहीं सोचता कि श्रीकृष्ण के साथ उसका सीधा सम्बन्ध है। श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं "मैं कृष्ण के दास के दास के दास का दास हूँ—दास का सौ बार दास हूँ।" हमें दास के दास के दास का दास बनना स्वीकार करने पर सहमत होना पड़ता है। यह परम्परा विधि है और यदि कोई असली दिव्य ईशप्रेम चाहता है तो उसे इस विधि को अपनाना होगा। चूँकि लोग इस विधि को स्वीकार नहीं करते, अतएव वे असली ईशप्रेम उत्पन्न नहीं कर पाते। वे ईश्वर की बात चलाते हैं, किन्तु वास्तव में वे ईश्वर से प्रेम नहीं करते, क्योंकि शुद्धभक्ति का अनुशीलन नहीं करते,

वे तो कुत्ते से प्रेम करते हैं।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

मनुष्य परम्परा में पूर्ववर्ती आचार्यों के निर्देशों को स्वीकार करके तथा उनका पालन करते हुए जीवन लक्ष्य प्राप्त करता है

परम्परा से प्राप्त महापुरुषों के विचारों को स्वीकार करना निश्चय ही उस शुष्क चिन्तन विधि से सरल होगा जिसके द्वारा मनुष्य परम सत्य को समझने के लिए कोई साधन खोजने का प्रयास करता है। सर्वोत्तम विधि यही है कि पूर्ववर्ती आचार्यों के उपदेशों को मानकर उनका पालन किया जाय। तब ईशसाक्षात्कार तथा आत्मसाक्षात्कार अत्यन्त सरल हो जाएँगे। इस सरल विधि के पालन से मनुष्य प्रकृति के गुणों के कल्मष से मुक्त हो जाता है और अज्ञान के उस सागर को पार कर लेगा जो कष्टों से पूर्ण है। आचार्यों के पदचिन्हों पर चलकर मनुष्य *हंसों* या *परमहंसों* की संगति प्राप्त करता है जो भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त हैं। निस्सन्देह, आचार्यों के उपदेशों का पालन करके मनुष्य सदा ही सारे भौतिक कल्मषों से मुक्त हो जाता है और इस तरह उसका जीवन सफल हो जाता है, क्योंकि वह जीवन-लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

—*भागवत* ७.९.१८

भागवत धर्म समझने के लिए मनुष्य को चार प्रामाणिक सम्प्रदायों में से किसी एक की शरण ग्रहण करनी चाहिए

भागवत धर्म समझ में आता है यदि कोई ब्रह्मा, शिव, चारों कुमार तथा अन्य प्रामाणिक अधिकारियों की परम्परा पद्धति का अनुसरण करे। गुरु-शिष्य परम्पराएँ चार हैं—एक ब्रह्मा से, एक शिव से, एक लक्ष्मी से तथा एक कुमारों से प्रारम्भ होती है। ब्रह्मा से प्रारम्भ होने वाली 'ब्रह्मसम्प्रदाय', शिव (शम्भु) से प्रारम्भ होने वाली 'रुद्र सम्प्रदाय', लक्ष्मी से प्रारम्भ होने वाली 'श्रीसम्प्रदाय' तथा कुमारों से प्रारम्भ होने वाली परम्परा 'कुमार सम्प्रदाय' कहलाती है। प्राणी को धर्म के गुह्यतम सिद्धान्त को समझने के लिए इन चारों में से किसी एक की शरण लेनी चाहिए। *पद्मपुराण* में कहा गया है—*सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः*—यदि कोई इन चार सर्वस्वीकृत

सम्प्रदायों में से किसी भी एक का अनुसरण नहीं करता है तो उसका मन्त्र या दीक्षा व्यर्थ है। आजकल अनेक *असम्प्रदाय* हो गये हैं जो प्रामाणिक नहीं हैं जिनका ब्रह्म, रुद्र, श्री तथा कुमार सम्प्रदायों में से किसी के भी साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। लोग ऐसे सम्प्रदायों के चक्कर में पड़ जाते हैं। शास्त्र कहते हैं कि ऐसे सम्प्रदाय में दीक्षित होना समय को व्यर्थ विनष्ट करना है, क्योंकि यह असली धर्म सिद्धान्तों के समझने में सहायक नहीं सिद्ध हो सकते।

—*भागवत* ६.३.२०-२१

धर्म सीखने तथा आध्यात्मिक मोक्ष पाने के लिए मनुष्य को कठोरता से परम्परा का पालन करना चाहिए

अनुवाद: शान्त जीवन तथा दया में आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है और आपसे बढ़कर कोई यह नहीं जानता कि किस तरह भक्ति की जाय या किस प्रकार ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ बना जाय। अतएव आप गुह्य धार्मिक जीवन के समस्त सिद्धान्तों के जानने वाले हैं और आपसे बढ़कर उन्हें अन्य कोई नहीं जानता।

तात्पर्य: महाराज युधिष्ठिर जानते थे कि नारद मुनि मानव समाज के परम गुरु हैं जो आध्यात्मिक मुक्ति के मार्ग की शिक्षा दे सकते हैं जिससे भगवान् का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुत: इसी प्रयोजन से नारद मुनि ने *भक्तिसूत्र* का संग्रह किया और *नारद-पञ्चरात्र* की शिक्षाएँ दीं। धार्मिक नियमों तथा जीवन की पूर्णता के विषय में सीखने के लिए मनुष्य को नारद मुनि की शिष्य-परम्परा से उपदेश ग्रहण करने चाहिए। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन सीधे ब्रह्मसम्प्रदाय की पंक्ति में है। नारद मुनि ने ब्रह्मा से जो उपदेश प्राप्त किया था उसे ही उन्होंने व्यासदेव को दिया। व्यासदेव ने अपने पुत्र शुकदेव गोस्वामी को उपदेश दिया जिन्होंने *श्रीमद्भागवत* का प्रवचन किया। कृष्णभावनामृत आन्दोलन *श्रीमद्भागवत* तथा *भगवद्गीता* पर आधारित है। चूँकि श्रीमद्भागवत शुकदेव स्वामी द्वारा कहा गया तथा भगवद्गीता कृष्ण द्वारा कही गई अतएव उनमें कोई अन्तर नहीं है। यदि हम परम्परा के सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन करें तो निश्चय ही हम आध्यात्मिक मोक्ष या भक्ति में नित्य लगे रहने के सही मार्ग पर होते हैं।

—*भागवत* ७.११.४

कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने के लिए मनुष्य को परम्परा के पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेशों का पालन करना चाहिए और निर्णयों को समझना चाहिए

यदि कोई कृष्णभावनाभावित कार्यों में गम्भीरतापूर्वक रुचि लेता है तो उसे आचार्यों द्वारा बनाये गये विधि-विधानों का पालन करने के लिए तैयार रहना चाहिए तथा उनके निर्णयों को समझना चाहिए। शास्त्र कहता है—*धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गत: स पन्था:* (महाभारत, वनपर्व ३१३.११७)। कृष्णभावनामृत के रहस्य को समझ पाना अति कठिन है। किन्तु जो व्यक्ति पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेश के अनुसार प्रगति करता है और परम्परा के अपने पूर्ववर्तियों के पदचिन्हों का अनुगमन करता है उसे सफलता मिलेगी। अन्यों को नहीं।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ८.७

कृष्णभावनामृत प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक परम्परा में श्रद्धा होनी चाहिए

प्रह्लाद महाराज अपने सहपाठियों को यह कहकर आशीर्वाद देते हैं ''तुम भी मेरे समान श्रद्धावान बनो। प्रामाणिक वैष्णव बनो।'' प्रत्येक भगवद्भक्त चाहता रहता है कि प्रत्येक व्यक्ति कृष्णभावनामृत ग्रहण करे। किन्तु दुर्भाग्यवश कभी-कभी लोगों को परम्परा से चले आ रहे गुरु के शब्दों में प्रगाढ़ श्रद्धा नहीं होती, अतएव वे दिव्य ज्ञान को समझ पाने में अक्षम रह जाते हैं। गुरु को प्रह्लाद महाराज की भाँति बँधे परम्परा की श्रेणी में से होना चाहिए जिन्होंने नारद से ज्ञान प्राप्त किया। यदि असुरों के पुत्रों एवं प्रह्लाद महाराज के सहपाठियों को प्रह्लाद से सत्य का पाठ सीखना होता तो वे निश्चित रूप से दिव्य ज्ञान से अवगत हो गये होते।

वैशारदी-धी: शब्द भगवान् विषयक बुद्धि को सूचित करने वाला है, क्योंकि भगवान् अत्यन्त दक्ष हैं। उन्होंने अपनी दक्षता से अलौकिक ब्रह्माण्डों की सृष्टि की है। अत्यन्त दक्ष हुए बिना कोई भी परम दक्ष की दक्ष व्यवस्था को समझ नहीं सकता है। किन्तु यदि कोई इतना भाग्यशाली हो कि उसे ब्रह्मा, शिव, माता लक्ष्मी या कुमारों से चली आ रही परम्परा के प्रामाणिक गुरु से भेंट हो जाय तो वह इसे समझ सकता है। ज्ञान तथा अध्यात्म के

ये चार *सम्प्रदाय* या परम्पराएँ क्रमश: ब्रह्म सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय तथा कुमार सम्प्रदाय कहलाते हैं। *सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मता:*—ऐसे सम्प्रदाय या परम्परा से प्राप्त भगवद्ज्ञान मनुष्य को प्रबुद्ध कराने वाला है। यदि वह परम्परा मार्ग का अनुसरण नहीं करता तो भगवान् को समझ पाना कठिन है। यदि कोई परम्परा में श्रद्धा के साथ भक्ति द्वारा परमेश्वर को समझता है और फिर आगे बढ़ता है तो वह ईश्वर के प्रति अपने प्राकृतिक प्रेम को जागृत करता है। तब जीवन में उसकी सफलता निश्चित है।

—*भागवत* ७.७.१७

परम्परा से बाहर आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर होने का प्रयास हास्यास्पद है

वैष्णव दर्शन के अनुसार हमें चारों सम्प्रदायों के महान् आचार्यों का अनुसरण करना होता है।

सम्प्रदाय (गुरु परम्परा) के बाहर आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर होने का प्रयत्न करना मात्र हास्यास्पद है। अत: कहा गया है—*आचार्यवान् पुरुषो वेद* (छान्दोग्य उपनिषद ६.१४.२)—जो आचार्यों की गुरु-परम्परा का अनुसरण करता है वही वस्तुओं को असली रूप में जान पाता है। *तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—दिव्य ज्ञान समझने के लिए मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु के पास जाए (मुण्डक उपनिषद १.२.१२)।

—*भागवत* ४.२२.२४

२. वैदिक ज्ञान/पूर्ण ज्ञान परम्परा से प्राप्त किया जाना चाहिए

परम सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैदिक ज्ञान को परम्परा से प्राप्त किया जाना चाहिए

शिष्य-परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा को वेद सुनाया, ब्रह्मा ने नारद को और नारद ने व्यास को, तब व्यास ने यही ज्ञान शुकदेव

को दिया। इस तरह इन समस्त पुरुषों के कथनों में कोई अन्तर नहीं है। चूँकि सत्य नित्य है, अतएव सत्य के विषय में कोई नवीन मत नहीं हो सकता। वेदों में निहित ज्ञान को जानने का यही साधन है। इसे न तो प्रकाण्ड पाण्डित्य द्वारा समझा जा सकता है, न संसारी पंडितों की फैशनपरस्त व्याख्याओं द्वारा। इसमें न कुछ जोड़ने को है, न घटाने को क्योंकि सत्य तो सत्य है। किन्तु अन्ततः किसी न किसी *प्रमाण* को स्वीकार करना होता है। आधुनिक विज्ञानी भी कतिपय वैज्ञानिक सत्यों के लिए सामान्य व्यक्तियों के हेतु प्रमाण तुल्य हैं। सामान्य व्यक्ति विज्ञानी के कथन का पालन करता है। इसका यह अर्थ हुआ कि सामान्य व्यक्ति प्रमाण का अनुगमन करता है। वैदिक ज्ञान भी इसी रीति से प्राप्त किया जाता है। सामान्य व्यक्ति यह तर्क नहीं कर सकता कि आकाश या ब्रह्माण्ड के परे क्या है, उसे चाहिए कि वह वेदों के कथनों को उसी तरह स्वीकार करे जिस तरह से वे प्रामाणिक परम्परा द्वारा स्वीकार किये जाते हैं। *भगवद्गीता* में चतुर्थ अध्याय में 'गीता' को समझने की यही विधि बताई गई है। यदि कोई आचार्यों के प्रामाणिक कथन का पालन नहीं करता तो वेदों में वर्णित उसकी सत्य की खोज व्यर्थ है।

—*भागवत* २.२.३२

वैदिक ज्ञान को परम्परा से प्राप्त किया जाय

अनुवाद: जिन्होंने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के हृदय में शक्तिशाली ज्ञान का विस्तार किया और सृष्टि तथा अपने विषय में पूर्ण ज्ञान की प्रेरणा दी और फिर वही ज्ञान ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ, वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों।

तात्पर्य: वैदिक ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा के अन्तःकरण में प्रविष्ट किया गया जिससे ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ही वैदिक ज्ञान का वितरण करने वाले हैं। निस्सन्देह, ब्रह्मा वैदिक ज्ञान के प्रवक्ता हैं, किन्तु वास्तव में भगवान् ने ही उन्हें ऐसा दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया, क्योंकि ज्ञान सीधे भगवान् से अवतरित होता है। इसलिए वेदों को *अपौरुषेय* कहा जाता है। सृष्टि के पूर्व भगवान् उपस्थित थे (*नारायण: परोऽव्यक्तात्*) अतएव भगवान् द्वारा उच्चरित शब्द दिव्य ध्वनि की लहरियाँ हैं। ध्वनि के दो प्रकारों—*प्राकृत* तथा *अप्राकृत*—में महान् अन्तर है। भौतिकशास्त्री केवल प्राकृत ध्वनि या

भौतिक आकाश में स्पन्दित ध्वनि पर ही विचार कर सकता है, अतएव हमें यह जान लेना चाहिए कि सांकेतिक अभिव्यंजनाओं के रूप में अंकित वैदिक ध्वनियाँ इस ब्रह्माण्ड में किसी के द्वारा तब तक नहीं समझी जा सकतीं जब तक उन्हें *अप्राकृत* ध्वनि स्पन्दनों द्वारा प्रेरित न किया जाय और जो शिष्य-परम्परा द्वारा प्रेरित न किया जाय जो शिष्य-परम्परा द्वारा भगवान् से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से नारद को, नारद से व्यास को प्राप्त होती है। कोई भी संसारी विद्वान वैदिक मन्त्रों के असली आशय को न तो प्रकट कर सकता है, न उसका *अनुवाद* कर सकता है। वे तब तक नहीं समझ सकते जब तक वैध गुरु द्वारा प्रेरित या दीक्षित न हों। आदि गुरु तो स्वयं भगवान् हैं और परम्परा से यह ज्ञान चलता रहता है जैसा कि *भगवद्गीता* के चतुर्थ अध्याय में स्पष्ट कहा गया है। अतएव जब तक किसी वैध परम्परा से दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक उसे विफल मानना चाहिए (*विफला मता:*), भले ही वह कला या विज्ञान में कितनी ही प्रगति क्यों न कर ले।

शुकदेव गोस्वामी अपने अन्त:करण में भगवान् द्वारा प्रेरित होकर ही भगवान् से प्रार्थना कर रहे हैं जिससे वे महाराज परीक्षित द्वारा पूछे गये सृष्टि सम्बन्धी तथ्यों को सही सही बतला सकें। गुरु कोई सैद्धान्तिक चिन्तक नहीं होता अपितु वह *श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्* होता है।

—*भागवत* २.४.२२

वैदिक ज्ञान को परम्परा से समझा जाय

अनुवाद: हे राजा! नारद द्वारा पूछे जाने पर आदिजन्मा ब्रह्माजी ने इस विषय में ठीक वही बात बतलाई जो भगवान् ने अपने पुत्र (ब्रह्मा) से प्रत्यक्ष कही थी जो जन्म से ही वैदिक ज्ञान से संपृक्त थे।

तात्पर्य: ज्योंही विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ वे वैदिक ज्ञान से संपृक्त किये गये, अतएव वे *वेदगर्भ* या जन्म से वेदान्ती कहलाते हैं।....ब्रह्माजी को पूर्ण ज्ञान से सम्पृक्त किया गया जिससे वे सृष्टि करने में समर्थ हो सकें। इस तरह ब्रह्मा सृष्टि के पूर्ण विवरण से अवगत हो गये थे, क्योंकि भगवान् हरि ने उन्हें इससे अवगत कराया था। जब नारद ने ब्रह्मा से जिज्ञासा की तो उन्होंने नारद को ठीक उसी तरह से कह सुनाया

जैसा उन्होंने साक्षात् भगवान् से सुना था। नारद ने यही बात व्यास को बताई और व्यास ने भी शुकदेव गोस्वामी को उसी रूप में सुनाया जिस तरह उन्होंने नारद से सुन रखा था। अब शुकदेव गोस्वामी वे ही बातें सुनाने जा रहे थे जिन्हें उन्होंने व्यास से सुना था। वैदिक ज्ञान को समझने की यही विधि है। केवल उपयुक्त परम्परा द्वारा ही वेदों की भाषा समझी जा सकती है अन्यथा नहीं।

सिद्धान्तों से कोई लाभ होने वाला नहीं। ज्ञान को वास्तविक होना चाहिए। ऐसी बातें हैं जो जटिल होती हैं और कोई उन्हें तब तक नहीं समझ पाता जब तक कि किसी ज्ञाता द्वारा बताई न जायँ। वैदिक ज्ञान को जानना भी कठिन है। उसे उपर्युक्त प्रणाली से सीखना चाहिए, अन्यथा समझ में नहीं आता।

अतएव शुकदेव गोस्वामी ने भगवान् से कृपा करने के लिए प्रार्थना की जिससे वे भगवान् द्वारा ब्रह्मा से कहे गये सन्देश को या ब्रह्मा ने जो कुछ नारद से कहा था उसे दुहरा सकें।

—*भागवत* २.४.२५

ईश्वर के विज्ञान को परम्परा के प्रामाणिक प्रतिनिधि से सुनना चाहिए

ब्रह्मा को ईश्वर का विज्ञान सीधे भगवान् से प्राप्त हुआ जिसे उनहोंने नारद को सौंपा, फिर उन्होंने श्री व्यासदेव से विस्तृत करने का आदेश दिया। अत: परमेश्वर का दिव्य ज्ञान कपोल-कल्पित नहीं है वरन् वह शुद्ध, शाश्वत तथा तीनों गुणों की सीमा के परे है। इस प्रकार *भागवत पुराण* दिव्य वाणी के रूप में भगवान् का साक्षात् अवतार है अत: मनुष्य को चाहिए कि वह इस ज्ञान को भगवान् से ब्रह्मा, ब्रह्मा से नारद, नारद से व्यास, व्यास से शुकदेव, शुकदेव से सूतगोस्वामी की परम्परा में भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधि से प्राप्त करे। वैदिक वृक्ष का पक्व फल पृथ्वी में गिरे बिना एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता रहता है। अत: जब तक परम्परा के प्रामाणिक प्रतिनिधि से इस तत्वज्ञान को नहीं सुना जाता तब तक वह इस ज्ञान को समझ नहीं सकता।

—*भागवत* २.७.५१

पूर्ण ज्ञान परम्परा से अवतरित होता है न कि व्यावहारिक ज्ञान से

होकर

भगवान् अनन्त हैं और उनके कार्यकलाप भी अगम्य हैं। कोई भी जीव, यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड के सबसे पूर्ण जीव ब्रह्मा भी अनन्त के विषय में जान पाने की कल्पना तक नहीं कर सकते। हम अनन्त के विषय में थोड़ा बहुत तभी समझ सकते हैं जब अनन्त द्वारा बताया जाय जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* में बतलाया है। शुकदेव गोस्वामी जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति भी कुछ हद तक जान सकते हैं, क्योंकि उन्होंने नारद के शिष्य व्यासदेव से इसे सीखा था। इस तरह शिष्य-परम्परा द्वारा ही पूर्ण ज्ञान अवतरित होता है, किसी भी व्यावहारिक ज्ञान द्वारा नहीं—चाहे वह प्राचीन हो या आधुनिक ज्ञान।

—*भागवत* २.४.८

परम्परा का भक्त जो भगवान् की सुरक्षा के कारण अच्युत होता है, उसकी सेवा के साथ ही भक्ति शुरू होती है

वैदिक विद्या के प्रथम प्रवक्ता ब्रह्माजी हैं और नारद अपने विभिन्न शिष्यों सहित व्यासदेव तथा अन्यों के द्वारा इस दिव्य ज्ञान को पूरे विश्व में वितरित करने वाले हैं। वैदिक ज्ञान के अनुयायी ब्रह्माजी के कथनों को परम सत्य मानते हैं। इस तरह यह दिव्य ज्ञान सारे संसार में सृष्टि के प्रारम्भ से—अनादि काल से—शिष्य-परम्परा द्वारा वितरित होता रहा है। ब्रह्माजी इस भौतिक जगत के पूर्ण मुक्त जीव हैं और अध्यात्म ज्ञान के किसी भी निष्ठावान जिज्ञासु को ब्रह्मा के वचनों को अच्युत मानना पड़ेगा। वैदिक ज्ञान अच्युत है, क्योंकि यह परमेश्वर से ब्रह्मा के हृदय में जाता है और चूँकि ब्रह्माजी सर्वोच्च पूर्ण जीव हैं, अतएव उनके कथन अक्षरश: सत्य होते हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि वे भगवान् के परम भक्त हैं और उन्होंने भगवान् के चरणकमलों को, परम सत्य को, उत्कंठापूर्वक स्वीकार किया है। वे अपने ही द्वारा संकलित *ब्रह्म-संहिता* में इस सूक्ति को दोहराते हैं—*गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि*—मैं आदि भगवान् गोविन्द का पूजक हूँ। अतएव वे जो कुछ कहते हैं, जो भी सोचते हैं और जो भी करते हैं उसे सत्य मानकर ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि आदि भगवान् गोविन्द के साथ उनका प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीगोविन्द,

जो अपने भक्तों की प्रेममयी सेवा को प्रसन्नतापूर्वक करते हैं, अपने भक्तों के वचनों तथा कार्यों का प्रतिपालन करते हैं। भगवान् *भगवद्गीता* में (९.३१) कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि*—हे कुन्ती पुत्र! तुम यह घोषित कर दो। भगवान् अर्जुन से घोषणा करने को कहते हैं तो क्यों? क्योंकि कभी-कभी साक्षात् गोविन्द की घोषणा संसारी जीवों को विरोधात्मक लग सकती है, लेकिन संसारी व्यक्ति भगवद्भक्तों के वचनों में कोई विरोधाभास नहीं पाएगा। भगवान् भक्तों की विशेष रक्षा इसलिए करते हैं जिससे वे अच्युत रहते आएँ। अतएव भक्ति योग उस भक्त की सेवा से प्रारम्भ होता है जो शिष्य-परम्परा में होता है।

—*भागवत* २.६.३४

मनुष्य को चाहिए कि परम्परा श्रेणी से वैदिक ज्ञान समझे

अनुवाद: राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि नारद मुनि, जिनके श्रोता श्री ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट श्रोता हैं किस प्रकार निर्विशेष भगवान् के दिव्य गुणों का वर्णन करते हैं और वे किन किन के समक्ष बोलते हैं?

तात्पर्य: देवर्षि नारद को ब्रह्माजी ने उपदेश दिया था। ब्रह्मा को परमेश्वर ने स्वयं उपदेश दिया था अत: नारद द्वारा विविध शिष्यों को दिये गये उपदेश स्वयं परमेश्वर द्वारा प्रदत्त उपदेशों के तुल्य हैं। वैदिक ज्ञान को समझने की यही विधि है। यह शिष्य-परम्परा द्वारा भगवान् से चलकर अवरोह क्रम से सारे विश्व में वितरित होता है। किन्तु मानसिक चिन्तकों (ज्ञानियों) से वैदिक ज्ञान प्राप्त किये जाने का अवसर ही नहीं आ पाता। अत: नारद मुनि जहाँ कहीं भी जाते हैं वे ईश्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका प्राकट्य परमेश्वर के ही समान उत्तम होता है। इसी प्रकार जो शिष्य-परम्परा दिव्य उपदेश का अनुसरण करती है वही प्रामाणिक होती है और प्रामाणिक गुरुओं की परीक्षा यह है कि प्रारम्भ में भगवान् ने अपने भक्तों को जो उपदेश दिया था और अब शिष्य-परम्परा में जो उपदेश देता है उसमें कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।

—*भागवत* २.८.१

वैदिक ज्ञान परम्परा से ही प्राप्त किया जाना चाहिए

भौतिकतावादी स्वभाव वाले मूर्ख व्यक्ति परम्परा से चले आ रहे प्रामाणिक ज्ञान का कोई लाभ नहीं उठा पाते। वैदिक ज्ञान प्रामाणिक है और इसकी प्राप्ति प्रयोग करके नहीं, अपितु प्रामाणिक व्यक्तियों (अधिकारियों) द्वारा बताये गये ग्रन्थों के प्रामाणिक कथनों से की जाती है। मात्र पण्डित बन जाने से कोई वैदिक कथनों को नहीं समझ सकता। उसे ऐसे वास्तविक विद्वान के पास जाना होता है जिसने शिष्य-परम्परा से ज्ञान प्राप्त किया हो।

—*भागवत* २.२.२७

गुरु को चाहिए कि मानसिक चिन्तन से नहीं अपितु परम्परा से शब्द ब्रह्म को स्वीकार करे

जो व्यक्ति अपने अपूर्ण इन्द्रियबोध से दिव्य ध्वनि या *शब्द ब्रह्म* की व्याख्या करता है वह असली गुरु नहीं हो सकता, क्योंकि प्रामाणिक गुरु के अधीन उचित अनुशासनात्मक प्रशिक्षण के अभाव में व्याख्या करने वाला व्यासदेव से अवश्य ही मतभेद रखेगा (जैसा कि मायावादी करते हैं)। श्रील व्यासदेव वेदों के उद्घाटन के मूल अधिकारी हैं, अतएव ऐसे अनुचित व्याख्याकार को गुरु या आचार्य नहीं माना जा सकता चाहे वह कितना ही भौतिक ज्ञान क्यों न अर्जित कर रखे हो। *पद्मपुराण* में कहा गया है—*सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मता:*—जब तक कोई परम्परा के प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षित न हो तो उसके द्वारा प्राप्त किया गया मन्त्र निष्प्रभावी होता है।

दूसरी ओर, जिसने परम्परा श्रेणी में प्रामाणिक गुरु से श्रवण द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त किया है और जिसके मन में असली गुरु के लिए आदरभाव होता है उसे वेदों के शास्त्रीय ज्ञान से प्रबुद्ध किये जाने की आवश्यकता है। किन्तु यह ज्ञान अनुभववादियों की ग्रहण शक्ति के लिए सदा बन्द रहता है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

व्यासदेव की परम्परा से शिक्षा प्राप्त किये बिना किसी को वेदों के विषय में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचना चाहिए

इस समय शास्त्रों की अनेक टीकाएँ प्राप्त हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश

उस परम्परा से ग्रहीत नहीं है जो श्रील व्यासदेव से प्रारम्भ होती है जिन्होंने पहले पहल वैदिक वाङ्मय का पहला पाठ पढ़ाया। श्रील व्यासदेव की अन्तिम, परम पूर्ण तथा भव्य कृति *श्रीमद्भागवत* है जो *वेदान्त-सूत्र* की प्रमाणिक टीका है। *भगवद्गीता* भी एक कृति है जिसका प्रवचन स्वयं भगवान् ने किया और जिसको व्यासदेव ने लिपिबद्ध किया। ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शास्त्र हैं और ऐसी कोई भी टीका जो *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* का विरोध करती है वह अवैध है। उपनिषदों, वेदान्त सूत्र, भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत के मध्य पूर्ण सहमति है और किसी को वेदों के सम्बन्ध में तब तक किसी भी निर्णय तक पहुँचने का प्रयास नहीं करना चाहिए जब तक व्यासदेव की परम्परा के सदस्यों से या फिर जो भगवान् तथा उनकी विभिन्न शक्तियों पर विश्वास करते हैं उनसे शिक्षाएँ ग्रहण न की गई हों।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र ६

दिव्य ज्ञान को केवल परम्परा से समझा जा सकता है, मानसिक चिन्तन से कदापि नहीं

हमें परम्परा द्वारा कृष्ण को स्वीकार करना चाहिए। सम्पद्राय चार हैं। एक ब्रह्मा से निकला है (ब्रह्म सम्प्रदाय), और दूसरा लक्ष्मी से (श्री सम्प्रदाय)। कुमार सम्प्रदाय तथा रुद्र सम्प्रदाय अन्य दो सम्प्रदाय हैं।...यदि हमारा सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से नहीं है तो हमारा निर्णय निष्फल है। मनुष्य को इस तरह नहीं सोचना चाहिए कि "मैं बहुत बड़ा विद्वान् हूँ और मैं अपने ढंग से *भगवद्गीता* की व्याख्या कर सकता हूँ। ये सारे सम्प्रदाय व्यर्थ हैं।" हम अपनी टीकाएँ नहीं गढ़ सकते। इस तरह की अनेक टीकाएँ बनी हैं, किन्तु वे सभी व्यर्थ हैं। उनका कोई प्रभाव नहीं होता। हमें ब्रह्मा, नारद, मध्वाचार्य, माधवेन्द्रपुरी तथा ईश्वपुरी द्वारा विचारित दर्शन को स्वीकार करना चाहिए। ये महान् आचार्य तथाकथित विद्वानों की अपूर्णताओं से परे हैं। संसारी विज्ञानी तथा दार्शनिक 'शायद' या 'हो सकता है' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि वे किसी उचित निर्णय तक नहीं पहुँच सकते। वे केवल चिन्तन करते रहते हैं और मानसिक चिन्तन काफी पूर्ण नहीं होता।

—*भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ*

जो वैदिक ज्ञान परम्परा माध्यम से प्राप्त नहीं किया जाता वह प्रमाणिक

नहीं होता

सारे दिव्य सन्देश शिष्य-परम्परा शृंखला द्वारा प्राप्त होते चलते हैं। यह शिष्य-परम्परा *परम्परा* कहलाती है। जब तक *भागवत* को या अन्य किसी वैदिक ग्रन्थ को परम्परा पद्धति से ग्रहण नहीं किया जाता तब तक उसे प्रामाणिक नहीं माना जाता। व्यासदेव ने यह सन्देश शुकदेव गोस्वामी को प्रदान किया और उनसे सूत गोस्वामी ने प्राप्त किया। अत: *भागवत* का सन्देश सूत गोस्वामी या उनके प्रतिनिधि से प्राप्त करना चाहिए। ऐरे-गैरे व्याख्याकार से नहीं।

—*भागवत* १.३.४२

३. ज्ञान का प्रसार करने के लिए मनुष्य को परम्परा से ज्ञान प्राप्त हुआ होना चाहिए

परम्परा से प्राप्त पूर्ण ज्ञान से विहीन व्यक्ति अन्यों को ज्ञान प्रदान नहीं कर सकता

ज्ञान सामान्य शोधकार्य का द्योतक नहीं है। *ज्ञान* तो शिष्य-परम्परा से गुरु के माध्यम से प्राप्त होने वाले शास्त्रीय ज्ञान का द्योतक है। इस आधुनिक युग में कल्पना एवं आडम्बर द्वारा शोधकार्य करने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। किन्तु जो व्यक्ति कल्पना करता है वह यह भूल जाता है कि वह स्वयं प्रकृति के चार अवगुणों का दास है-वह त्रुटि करता है, उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं, उसे मोह हो सकता है और वह ठगता है। जब तक किसी को शिष्य-परम्परा से पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक वह कोरे सिद्धान्त प्रस्तुत करता रहता है, अत: वह लोगों को धोखा देता है।

—*भागवत* ३.२४.१७

वैदिक ज्ञान का प्रचार करने के लिए मनुष्य को परम्परा के उचित

अधिकारी से श्रवण किये होना चाहिए

अनुवाद: भगवान् संकर्षण ने इस प्रकार निवृत्तिपरायण महर्षि सनत्कुमार को *श्रीमद्भागवत* का यह सरल तत्व समझाया। सनत्कुमार ने भी यथा समय सांख्यायन मुनि द्वारा पूछे जाने पर *श्रीमद्भागवत* की उसी प्रकार व्याख्या की जैसी भगवान् संकर्षण से सुनी थी।

तात्पर्य: परम्परा पद्धति की यही विधि है। यद्यपि प्रसिद्ध बाल महर्षि सनत्कुमार जीवन की पूर्णावस्था को प्राप्त कर चुके थे फिर भी उन्होंने भगवान् संकर्षण से *श्रीमद्भागवत* का सन्देश सुना। इसी प्रकार जब सांख्यायन मुनि ने उनसे प्रश्न किया तो भगवान् संकर्षण से सुने हुए संदेश का निर्वचन उनसे किया। दूसरे शब्दों में, जब तक कोई व्यक्ति उपयुक्त अधिकारी के तत्त्वज्ञान का श्रवण नहीं करता तब तक वह धर्मोपदेष्टा नहीं बन सकता। इसलिए नवधा भक्तियोग में दो विषय—श्रवण तथा कीर्तन—सबसे महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। ठीक से श्रवण किये बिना कोई व्यक्ति वैदिक ज्ञान के संदेश का उपदेश नहीं कर सकता।

—*भागवत* ३.८.७

परम्परा पद्धति में मनुष्य को वैदिक साहित्य का सन्दर्भ देते हुए प्रश्नों का उत्तर देना होता है; उसे मानसिक चिन्तन द्वारा उत्तर नहीं गढ़ना चाहिए

अनुवाद: हे राजन! आप सब कुछ जानते हैं किन्तु आपने कुछ प्रश्न किये हैं अतएव जैसा मैंने अधिकारियों से सुन रखा है उसके अनुसार उत्तर देने का प्रयास करूँगा।

तात्पर्य: परम्परा पद्धति में जब प्रश्न प्रामाणिक होते हैं तो उत्तर भी प्रामाणिक होते हैं। किसी को मन से गढ़कर उत्तर नहीं देना चाहिए। उसे शास्त्रों का सन्दर्भ देना चाहिए और वैदिक ज्ञान के अनुसार उत्तर देने चाहिए। *यथाश्रुतम्* शब्द वैदिक ज्ञान को बताने वाले हैं। वेदों को *श्रुति* कहा जाता है, क्योंकि यह ज्ञान अधिकारियों से प्राप्त किया जाता है। मनुष्य को चाहिए कि श्रुति से, वेदों या वैदिक वाङ्मय से साक्ष्य दे तभी उसका कथन सही होगा, अन्यथा उसके शब्द मनगढन्त होंगे।

—*भागवत* ७.१३.२३

विद्वान् अधिकारी जन परम्परा का पालन करते हैं

अनुवाद: श्री सूतगोस्वामी ने बतलाया: अब मैं तुम्हें वे सारे विषय बतलाऊँगा जिन्हें राजा परीक्षित द्वारा पूछे जाने पर ऋषि ने उनसे कहे थे। उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो।

तात्पर्य: प्रत्येक पूछे गये प्रश्न का उत्तर यदि किसी अधिकारी विद्वान का उद्धरण देकर दिया जाता है तो उससे तुष्टि होती है। यहाँ तक कि न्यायालयों में भी यही विधि अपनाई जाती है। वकील अपने मुकद्दमे की स्थापना के लिए बिना कोई कष्ट उठाये पूर्ववर्ती फैसले से साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह परम्परा विधि कही जाती है और विद्वान अधिकारी इधर-उधर व्यर्थ तर्क न देकर इसका पालन करता है।

—*भागवत* २.१०.५१

दिव्य ज्ञान प्रस्तुत करते समय वक्ता को पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुगमन करना चाहिए

आत्मसाक्षात्कार का अर्थ यह नहीं होता कि गर्व के कारण पूर्ववर्ती आचार्य का उल्लंघन करके कोई व्यक्ति अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करे। उसे पूर्ववर्ती आचार्य पर पूरा पूरा विश्वास होना चाहिए। साथ ही उसे विषय का ऐसा उत्तम अनुभव होना चाहिए कि वह विशिष्ट अवसर पर उस विषय को उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत कर सके। पाठ के मूल उद्देश्य का पालन होना चाहिए। उससे खींचतान करके कोई अस्पष्ट अर्थ नहीं निकालना चाहिए, अपितु श्रोता को समझाने के लिए रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।...जो व्यक्ति मूल आचार्य का प्रतिनिधित्व नहीं करता उसे कोई भी विद्वान व्यक्ति सुनना नहीं चाहेगा।

—*भागवत* १.४.१

एकमात्र भगवान् का विनीत भक्त सेवक वैदिक ज्ञान को शुद्ध रूप में सम्प्रेति कर सकता है

अनुवाद: जो ब्रह्माण्ड के भीतर शयन करके तत्वों से निर्मित शरीरों को प्राणमय बनाते हैं और जो अपने पुरुष-अवतार में जीवों को उसके जनक रूप गुणों के सोलह विभागों के अधीन करते हैं वे भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत करने के लिए प्रसन्न हों।

तात्पर्य: पूर्ण आश्रित भक्त के रूप में (अपने सामर्थ्य पर गर्व करने वाले संसारी व्यक्ति से सर्वथा भिन्न) शुकदेव गोस्वामी भगवान् से प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करते हैं जिससे उनकी वाणी सफल हो तथा वह श्रोताओं द्वारा समादृत हो।...अतएव शुकदेव गोस्वामी उन परमेश्वर के निर्देशानुसार आगे बढ़ना चाहते हैं जिन्होंने ब्रह्माजी को वैदिक विद्या व्यक्त करने की प्रेरणा दी। वैदिक ग्रंथों में वर्णित सत्य न तो संसारी कल्पना के सिद्धान्त हैं, न वे कपोलकल्पित हैं जैसा कि अल्पज्ञ कभी-कभी सोचते हैं। वैदिक सत्य वास्तविक सत्य के पूर्ण विवरण हैं जिनमें न कोई त्रुटि है, न भ्रम। शुकदेव गोस्वामी सृष्टि सम्बन्धी सत्यों को वास्तविक तथ्यों के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं, दार्शनिक चिन्तक के किसी तत्त्वज्ञान के सिद्धान्त रूप में नहीं, क्योंकि वे उसी तरह भगवान् के संकेत पर चलेंगे जिस तरह ब्रह्माजी अनुप्राणित हुए थे। जैसा कि *भगवद्गीता* में (१५.१५) कहा गया है भगवान् स्वयं *वेदान्त* ज्ञान के जनक हैं और *वेदान्त-दर्शन* के वास्तविक तात्पर्य को जानने वाले एकमात्र वही हैं। अतएव वेदों में वर्णित धर्म के सिद्धान्तों से बढ़कर कोई सत्य नहीं है। ऐसा वैदिक ज्ञान या धर्म शुकदेव गोस्वामी जैसे प्रमाण पुरुष द्वारा फैलता है, क्योंकि वे भगवान् के विनीत दास थे जिन्हें स्व-नियुक्त व्याख्याकार बनने की कोई इच्छा नहीं थी। वैदिक ज्ञान की व्याख्या की यही विधि है जिसे *परम्परा* प्रणाली कहते हैं।

—*भागवत* २.४.२३

४.अपनी कल्पना से परे ज्ञान पाने के लिए परम्परा से श्रवण करना चाहिए

अपनी कल्पना से परे विषयों को जानने के लिए परम्परा के श्रेष्ठ अधिकारी से सीखना चाहिए

अनुवाद: विदुर ने कहा—हे ब्रह्मन्! आप हमारी समझ में न आने वाले विषयों को जानते हैं, अत: मुझे यह बताएँ कि जीवों के आदि जनक प्रजापतियों को उत्पन्न करने के बाद ब्रह्मा ने जीवों की सृष्टि के लिए क्या किया?

तात्पर्य: यहाँ पर *अव्यक्त मार्गवित्* शब्द अत्यन्त सार्थक है। इसका अर्थ है "जो हमारी कल्पना शक्ति से परे है उसे जानने वाला।" अपनी कल्पना शक्ति से अधिक जानने के लिए परम्परा श्रेणी के किसी श्रेष्ठ अधिकारी से सीखना पड़ता है। यह जान पाना भी कि हमारा पिता कौन है हमारी कल्पना से परे है। इसके लिए माता प्रमाण है। इसी प्रकार हमें कल्पना से परे प्रत्येक वस्तु के ज्ञाता अर्थात् विशेषज्ञ से जानना चाहिए। प्रथम *अव्यक्त मार्गवित्* अर्थात् विशेषज्ञ जो ब्रह्मा हैं और उसी शिष्य-परम्परा में नारद दूसरे हैं। मैत्रेय का शिष्य-परम्परा से सम्बन्ध है, अत: वे भी अव्यक्त मार्गवित् हैं। कोई भी व्यक्ति जो प्रामाणिक शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध है अव्यक्तमार्गवित् है, अर्थात् ऐसा महापुरुष है जो सामान्य बुद्धि से परे सब कुछ जानता है।

—*भागवत* ३.२०.९

दिव्य विषय को चिन्तन से नहीं अपितु परम्परा से समझा जा सकता है

प्रायोगिक साधनों से इस भौतिक प्रकृति से परे किसी तरह की सूचना पा सकना सम्भव नहीं है। जो हमारी चिन्तन शक्ति से परे है वह *अचिन्त्य* कहलाता है। अचिन्त्य के विषय में तर्क या चिन्तन करना व्यर्थ है। यदि वह सचमुच अचिन्त्य है तो उसके बारे में चिन्तन या प्रयोग नहीं किया जा सकता। हमारी शक्ति सीमित है और हमारा इन्द्रियबोध भी सीमित है अतएव हमें अचिन्त्य विषयवस्तु के बारे में वैदिक प्रमाणों पर ही निर्भर रहना होगा। हमें प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान को बिना कोई तर्क किये स्वीकार करना होगा। भला जिस वस्तु तक हमारी पहुँच नहीं उसके विषय में तर्क करना किस तरह सम्भव है? दिव्य विषयवस्तु को समझने की विधि स्वयं भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* में (४.१) दी है जहाँ वे अर्जुन को बतलाते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

"मैंने योग के इस सनातन ज्ञान का उपदेश सूर्यदेव विवस्वान को दिया और विवस्वान ने मनुष्य जाति के जनक मनु को दिया जिन्होंने अपनी पारी

में इसका उपदेश इक्ष्वाकु को दिया।''

यही परम्परा विधि है। इसी तरह *श्रीमद्भागवत* में कृष्ण ने ब्रह्माण्ड के प्रथम प्राणी ब्रह्मा के हृदय में ज्ञान प्रकाश किया। ब्रह्मा ने वह उपदेश अपने शिष्य नारद को दिया और नारद ने उसे अपने शिष्य व्यासदेव को दिया। व्यासदेव ने इसे मध्वाचार्य को दिया और मध्वाचार्य से यही ज्ञान माधवेन्द्रपुरी को मिला, उनसे यह ज्ञान ईश्वर पुरी को और ईश्वर पुरी से चैतन्य महाप्रभु को मिला।...उस परम्परा का ज्ञान वास्तव में स्वयं भगवान् से आता है और यदि यह ज्ञान अविच्छिन्न चला आता है तो वह पूर्ण होता है। भले ही हम उस मूल पुरुष से सम्पर्क न कर सकें जिसने सर्वप्रथम उसे प्रदान किया किन्तु हम इस सम्प्रेषण विधि से वही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।...यदि ज्ञान को इस तरह से प्राप्त किया जाता है तो फिर वह अचिन्त्य हो या न हो।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि प्रस्तावना

दिव्य ज्ञान को परम्परा द्वारा विनीत श्रवण विधि से ही समझा जा सकता है

चूँकि हमारा सम्बन्ध श्रीचैतन्य महाप्रभु से चली आ रही श्रेणी से है अत: *चैतन्य-चरितामृत* के इस संस्करण में ऐसा कुछ भी नहीं होगा जो हमारे लघु मस्तिष्क के द्वारा निर्मित किया गया हो, अपितु स्वयं भगवान् द्वारा खाये गये भोजन का उच्छिष्ट मात्र होगा। श्रीचैतन्य महाप्रभु तीन गुणों के संसारी पद से सम्बन्धित नहीं हैं। वे उस दिव्य पद से सम्बन्धित हैं जो जीव के अपूर्ण इन्द्रियबोध की पहुँच से परे हैं। बड़ा से बड़ा संसारी विद्वान् इस दिव्य पद तक नहीं पहुँच सकता जबतक वह श्रोता बनकर दिव्य ध्वनि के प्रति समर्पित न हो ले, क्योंकि उसी भाव में ही श्रीचैतन्य महाप्रभु के सन्देश की अनुभूति की जा सकती है। इसलिए इसमें जो कुछ भी वर्णन किया जायगा उसमें निष्क्रिय मन की चिन्तनशील आदतों से उत्पन्न प्रयोगात्मक विचारों का कोई सरोकार नहीं है। इस पुस्तक की विषयवस्तु मनगढंत नहीं अपितु वास्तविक आध्यात्मिक अनुभव है जिसे परम्परा पंक्ति स्वीकार करके ही अनुभव किया जा सकता है।...उस पंक्ति से कोई भी विचलन पाठक को *चैतन्य-चरितामृत* के रहस्य को समझने में मोहग्रस्त बना

देगा।...चैतन्य-चरितामृत का यह संस्करण उन निष्ठावान विद्वानों के अध्ययन हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है जो सचमुच ही परम सत्य की खोज में हैं। यह मानसिक चिन्तक का अहंवादी पाण्डित्य नहीं, अपितु श्रेष्ठ अधिकारी के आदेश का पालन करने का निष्ठायुक्त प्रयास है जिसकी सेवा इस विनीत प्रयास का जीवनधन है। यह शास्त्रों से रंचभर भी विचलित नहीं हुआ, अतएव जो भी परम्परा का अनुगमन करता है वह श्रवण विधि के द्वारा ही इस पुस्तक के सार की अनुभूति कर सकेगा।

—*चैतन्य-चरितामृत* प्रस्तावना

५. मन्त्रों को परम्परा से प्राप्त करना चाहिए

मन्त्र का प्रभाव पड़ने के लिए इसे परम्परा प्राप्त प्रामाणिक गुरु से ग्रहण करना चाहिए

अनुवाद: "अब तक आप परम्परा के प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षित न हों, आपके द्वारा ग्रहण किया गया मन्त्र निष्फल होता है।"

—*पद्म पुराण*

मन्त्र जब तक परम्परा से प्राप्त न किया जाय, उच्चारणकर्ता के लिए कोई लाभ नहीं होता

मनुष्य कहीं भी प्रकाशित मन्त्र प्राप्त कर सकता है, किन्तु मन्त्र जब तक परम्परा श्रेणी से होकर स्वीकृत न हुआ हो, परम्परा से प्राप्त हुए बिना उच्चारण किये जाने पर कोई लाभ नहीं देता।

—*भागवत* ४.८.५३

परम्परा पद्धति से प्राप्त किये बिना मन्त्र का कोई प्रभाव नहीं होता

जब तक इस परम्परा पद्धति का पालन नहीं किया जाता, तब तक प्राप्त किया मन्त्र उच्चारण करने पर व्यर्थ होगा। आजकल न जाने कितने धूर्त गुरु हैं जो अपने मन्त्रों को किसी आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं, अपितु भौतिक उन्नति के लिए गढ़ते हैं। फिर भी, गढ़ा हुआ मन्त्र सफल नहीं

हो सकता। मन्त्र तथा भक्तियोग में विशेष शक्ति होती है बशर्ते इन्हें अधिकृत व्यक्ति से प्राप्त किया जाय।

—*भागवत* ८.१६.२४

गुरु को प्रामाणिक सम्प्रदाय के अधिकृत गुरु से मन्त्र लेना चाहिए यदि वह आध्यात्मिक जीवन में सफलतापूर्वक अग्रसर होना चाहता है

मध्वाचार्य इंगित करते हैं—

विद्या: कर्मणि च सदा गुरो: प्राप्ता: फलप्रदा:।
अन्यथा नैव फलदा: प्रसन्नोक्ता: फलप्रदा:॥

मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु से ही सभी प्रकार के मन्त्र ग्रहण करे अन्यथा ये मन्त्र फलीभूत नहीं होंगे।...सभी प्रकार के मन्त्रों को अधिकृत गुरु से ग्रहण करना चाहिए और शिष्य को चाहिए कि गुरु की शरण में जाकर उसे सभी प्रकार से प्रसन्न रखे। *पद्मपुराण* में भी कहा गया है—*सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मता:*। शिष्य परम्पराएँ या सम्प्रदाय चार प्रकार के होते हैं—ब्रह्म सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय तथा कुमार सम्प्रदाय। यदि कोई आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रसर होना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह इन प्रामाणिक सम्प्रदायों में से किसी से मन्त्र ग्रहण करे, अन्यथा वह आध्यात्मिक जीवन में कभी अग्रसर नहीं हो सकेगा।

—*भागवत* ६.८.४२

६. दिव्य साहित्य का लेखन केवल परम्परा के अनुकूल होना चाहिए

दिव्य साहित्य का लेखन परम्परा के सिद्धान्त के अनुसार होना चाहिए

अनुवाद: मैंने श्री स्वरूप दामोदर के गुटकों के अनुसार श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की मिलन लीलाओं का प्रचार किया है।

तात्पर्य: लेखक अध्याय के अन्त में शिष्य-परम्परा के महत्व को स्वीकार करता है। वह यह दावा कभी नहीं करता कि उसने शोध कार्य के आधार पर यह दिव्य साहित्य रचा है। वह स्वरूप दामोदर, रघुनाथ दास गोस्वामी तथा अन्य अधिकारी व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये गुटकों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है। दिव्य साहित्य का वर्णन इसी तरह से किया जाता है, क्योंकि यह साहित्य तथाकथित विद्वानों और शोधार्थियों के लिए नहीं है। सही विधि है—*महाजनो येन गत: स पन्था:*। मनुष्य को चाहिए कि महापुरुषों तथा आचार्यों का अनुगमन करे। *आचार्यवान् पुरुषो वेद*—जिसे आचार्य की कृपा प्राप्त होती है वह हर बात जान जाता है। कविराज गोस्वामी का भी यह कथन शुद्ध भक्तों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है।

...इस तरह कोई सन्देश एक प्रामाणिक गुरु से प्रामाणिक शिष्य तक पहुँचाया जाता है। इसलिए श्रील कविराज गोस्वामी पहले ही की तरह इस अध्याय की समाप्ति षड्गोस्वामियों के चरणकमलों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए करते हैं। इस प्रकार वे यह दिव्य साहित्य—*चैतन्य-चरितामृत*—प्रस्तुत कर सके।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य ८.३१२

टीकाएँ लिखने के लिए पूर्ववर्ती आचार्यों पर निर्भर रहना चाहिए तथा अहंकारवश उनसे इधर उधर नहीं जाना चाहिए

अनुवाद: "तुमने श्रीधर स्वामी की आलोचना करने का दुस्साहस किया है और उनके पाण्डित्य को अस्वीकार करके *श्रीमद्भागवत* पर टीका करनी शुरू की है। यही तुम्हारा मिथ्या अहंकार है। श्रीधर स्वामी सारे जगत के गुरु हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हम *श्रीमद्भागवत* समझ सके हैं। अतएव मैं उन्हें गुरु रूप मानता हूँ। श्रीधर स्वामी से आगे निकल जाने का प्रयास करते हुए तुम चाहे जो भी लिखो उसका विपरीत अर्थ होगा इसलिए उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं देगा।"

तात्पर्य: परम्परा प्रणाली के अनुसार *श्रीमद्भागवत* की अनेक टीकाएँ हैं, किन्तु श्रीधर स्वामी की टीकाएँ सर्वप्रथम हैं। अन्य आचार्यों की टीकाएँ उनकी ही टीका का अनुगमन करती हैं। परम्परा प्रणाली किसी को पूर्ववर्ती आचार्यों की टीकाओं से इधर उधर चलने की अनुमति नहीं देती। पूर्ववर्ती

आचार्यों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। इस मिथ्या अहंकार से जिससे मनुष्य यह सोचता है कि वह पूर्ववर्ती आचार्यों से अच्छा लिख सकता है उसकी टीका दोषपूर्ण हो जाती है। सम्प्रति यह फैशन बन गया है कि हर कोई अपने ढंग से शास्त्रों की, विशेषतया *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या करके अपने पाण्डित्य को प्रदर्शित करना चाहता है। अपने ढंग से टीका करने की पद्धति की श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भर्त्सना की है। इसलिए वे कहते हैं *'अर्थव्यस्त' लिखन सेइ*। अपनी दार्शनिक विचार धारा के अनुसार लिखी गई टीकाएँ मान्य नहीं होतीं। शास्त्रों पर इस तरह की टीकाओं की कोई प्रशंसा नहीं करता।

—*चैतन्य-चरितामृत* अन्त्य ७.१३२-१३४

दिव्य साहित्य का रचयिता कभी भी पूर्ववर्ती आचार्यों को मात नहीं देना चाहता

अनुवाद: रे मूर्खो! जरा चैतन्य मंगल तो पढ़ो! इस पुस्तक को पढ़कर तुम लोग श्रीचैतन्य महाप्रभु की समस्त महिमा को समझ सकोगे।

तात्पर्य: श्रीवृन्दावनदास ठाकुर कृत *चैतन्य भागवत* का मूल शीर्षक चैतन्य मंगल था।...कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा *चैतन्य-भागवत* को स्वीकार करना उनके द्वारा परम्परा की स्वीकृति का सूचक है। दिव्य साहित्य का रचयिता कभी भी पूर्ववर्ती आचार्यों को मात नहीं देना चाहता।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ८.३३

परम्परा में लेखन विषयक शिष्टाचार

अनुवाद: वृन्दावन दास ठाकुर ने इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है, अतएव मैंने संक्षेप में ही इसे कहा है।

तात्पर्य: यह शिष्टाचार की बात है। यदि कोई पूर्ववर्ती आचार्य किसी बारे में कुछ लिखता है तो निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए उसे दुहराने की या उससे आगे बढ़ जाने की आवश्यकता नहीं रहती। जब तक किसी विशेष सुधार की गुंजाइश न हो, ऐसा नहीं करना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य १२.१५०

हैं विद्यानिधि और इनके शिष्य हैं राजेन्द्र। राजेन्द्र के शिष्य हैं जयधर्म और इनके शिष्य हैं पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तम के शिष्य ब्रह्मण्यतीर्थ, ब्रह्मण्यतीर्थ के व्यासतीर्थ और व्यासतीर्थ के शिष्य लक्ष्मीपति हुए जिनके शिष्य हैं माधवेन्द्रपुरी।''

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि ६.४०

ब्रह्म-सम्प्रदाय के सदस्य पतितात्माओं का उद्धार करने का प्रयास करते हैं

जगत की सृष्टि न तो आँख मूँदकर हुई है, न आकस्मिक है। इस तरह नित्यबद्ध जीवात्माओं को भगवान् द्वारा ब्रह्माजी जैसे अपने प्रतिनिधि के मार्गदर्शन में मुक्ति के लिए अवसर प्राप्त होता है। भगवान् ब्रह्माजी को वैदिक ज्ञान का उपदेश देते हैं जिससे इस ज्ञान का प्रसार बद्धजीवों तक हो सके। बद्धजीव भगवान् से अपने सम्बन्ध को भूलते रहते हैं, अतः भगवान् के लिए आवश्यक है कि वे सृष्टि करें और वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। बद्धजीव के उद्धार का गुरुतर भार ब्रह्माजी पर है इसलिए वे भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं।

ब्रह्माजी भी अपना कर्तव्य भलीभाँति निबाहते हैं। वे न केवल जीवात्माओं को उत्पन्न करते हैं, वरन् पतित जीवों के उद्धार के लिए अपने दल को चारों ओर फैला देते हैं। यह दल *ब्रह्म-सम्प्रदाय* कहलाता है और इस दल का हर सदस्य आज भी पतितात्माओं का उद्धार करके उन्हें भगवान् के धाम भेजने में संलग्न है। भगवान् अपने अंशों को वापस बुलाने के लिए उत्सुक रहते हैं जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है। जो पतितात्माओं को भगवान् के धाम ले जाने का कार्य करता है उन्हें उससे अधिक प्रिय अन्य कोई नहीं है।

—*भागवत* २.९.१९

८. अप्रामाणिक परम्पराएँ (असम्प्रदाय)

कलियुग में अवैध-सम्प्रदाय बन-बनकर लोगों को गुमराह करते हैं

अनुवाद: परम साधु राजा महाराज पृथु ने परम वैदिक पंडित सनत्कुमार से यह ज्ञान प्राप्त किया। अपने जीवन में इस ज्ञान को व्यवहृत करने के लिए ज्ञान प्राप्त करके उस राजा ने इच्छित पद किस तरह प्राप्त किया?

तात्पर्य: वैष्णवों के चार सम्प्रदाय हैं। ये चारों क्रमशः ब्रह्मा, लक्ष्मी, कुमारों तथा शिव से उत्पन्न है। ये चारों सम्प्रदाय अभी भी चल रहे हैं। जैसा राजा पृथु ने दिखलाया है, जो दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक हो उसे इन चार सम्प्रदायों में से किसी को गुरु मानना चाहिए। कहा गया है कि जब तक इन सम्प्रदायों में से किसी एक से मन्त्र नहीं लिया जाता तब तक कलियुग में वह मन्त्र काम नहीं करता। अब तो अनेक सम्प्रदायों का उदय हो चुका है और वे अनधिकृत मन्त्र प्रदान करके जनता को गुमराह कर रहे हैं। इन कथित सम्प्रदायों के धूर्त वैदिक विधि-विधानों का पालन नहीं करते वे सभी प्रकार के पापकर्मों में रत रहते हुए लोगों को मन्त्र देकर उन्हें गुमराह करते हैं। किन्तु बुद्धिमान लोग जानते हैं कि ये मन्त्र कभी फलित नहीं होते, अतः वे उन्हें प्रश्रय नहीं देते। लोगों को इन व्यर्थ के सम्प्रदायों से सावधान रहना चाहिए। किन्तु पृथु महाराज ने यह दिखला दिया कि मनुष्य को प्रामाणिक सम्प्रदाय से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अतः महाराज पृथु ने सनत्कुमार को गुरु रूप में स्वीकार किया।

—*भागवत* ४.१७.५

मनोधर्मियों की परम्परा से प्राप्त ज्ञान सदैव अपूर्ण होता है

अनुवाद: हे ऋषि! आप आदि प्राणी ब्रह्मा के तुल्य हैं। अन्य लोग केवल प्रथा का पालन करते हैं जिस प्रकार पूर्ववर्ती दार्शनिक चिन्तन किया करते थे।

तात्पर्य: यहाँ यह दलील पेश की जा सकती है कि एकमात्र शुकदेव गोस्वामी

ही अध्यात्म सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान के अधिकारी नहीं—अनेक मुनि तथा उनके अनुयायी इसके अधिकारी हैं। व्यासदेव के समकालीन अथवा उनसे भी पूर्व अनेक ऋषि हुए हैं यथा गौतम, कणाद, जैमिनि, कपिल तथा अष्टवक्र और इन सबों ने अपने अपने दार्शनिक पन्थ प्रस्तुत किये हैं। पतञ्जलि भी इनमें से एक हैं। इस प्रकार इन छहों ऋषियों की आधुनिक दार्शनिकों तथा चिन्तकों के ही समान अपनी अपनी विचारधाराएँ हैं। श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा उपर्युक्त छहों ऋषियों में यही अन्तर है कि जहाँ छहों ऋषि अपने अपने चिन्तन के अनुसार तथ्यों का वर्णन करते हैं वहीं *श्रीमद्भागवत* में शुकदेव गोस्वामी प्रत्यक्ष ब्रह्मा से प्राप्त ज्ञान को प्रस्तुत करते हैं जो *आत्मभू* कहलाते हैं अर्थात् जो भगवान् द्वारा उत्पन्न तथा शिक्षित किये गये हैं।...

भले ही उपर्युक्त छहों ऋषि महान चिन्तक हों, किन्तु उनका ज्ञान पूर्ण नहीं है। कोई दार्शनिक अपना दार्शनिक मत प्रस्तुत करने में चाहे कितना ही पूर्ण क्यों न हो ऐसा ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता, क्योंकि वह अपूर्ण मस्तिष्क की उपज होता है। ऐसे ऋषियों की भी शिष्य-परम्पराएँ होती हैं, किन्तु वे प्रामाणिक नहीं होतीं, अतएव वे स्वतन्त्र भगवान् नारायण से सीधे प्राप्त नहीं हैं। नारायण के अतिरिक्त कोई भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता, अत: किसी का भी ज्ञान पूर्ण नहीं है, क्योंकि हर एक का ज्ञान चलायमान मन (मस्तिष्क) पर आश्रित है। मन पदार्थ है, अत: भौतिक चिन्तकों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान कभी भी दिव्य और पूर्ण नहीं हो सकता। संसारी दार्शनिक स्वयं अपूर्ण होने के कारण अन्य दार्शनिकों से मतभेद रखता है और संसारी दार्शनिक का कोई अपना सिद्धान्त न होने से वह दार्शनिक नहीं कहा जा सकता। महाराज परीक्षित जैसे बुद्धिमान पुरुष इन चिन्तकों को नहीं मानते, चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों। वे तो केवल शुकदेव गोस्वामी जैसे अधिकारी से सुनते हैं जो परम्परा पद्धति में होने से भगवान् से अभिन्न होते हैं जैसा कि *भगवद्गीता* में विशेष बल दिया गया है।

—*भागवत* २.८.२५

मनुष्य को चाहिए कि ऐसे तथाकथित चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों

के अवैध समुदायों की संगति न करे जो शास्त्रों के निर्णयों का दृढ़ता से पालन नहीं करते

परम्परा पद्धति में प्रामाणिक गुरु से प्राप्त उपदेशों को वैदिक शास्त्रों पर भी आधारित होना चाहिए। परम्परा-बद्ध व्यक्ति अपने मन के अनुसार आचरण नहीं कर सकता। चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव सम्प्रदाय के अनेक तथाकथित अनुयायी, जो शास्त्रों के प्रमाणों का पालन नहीं करते, वे असम्प्रदाय माने जाते हैं जिसका अर्थ है ''सम्प्रदाय से विलग।'' इनमें से कुछ समूह आउल, बाउल, कर्ताभजा, नेडा, दरवेश, साँई, सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त, जाट गोसाईं अतिवाडी, चूडाधारी तथा गौरांगनागरी कहलाते हैं। चैतन्य महाप्रभु की परम्परा का दृढ़ता से पालन करने वालों को चाहिए कि इन सम्प्रदाय वालों की संगति न करें।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ७.४८

९. परम्परा सिद्धान्त विषयक अन्य महत्त्वपूर्ण निर्देश

दिव्य परम्परा में स्थित होने के लिए अर्हता

इस युग में मनुष्य को हरि तथा कृष्ण के पवित्र नामों के महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए। *सनातन धर्म* का यही सार है।...वैष्णव शास्त्र श्रुति या वेदों का सन्दर्भ देते हैं जो *शब्द प्रमाण* कहलाते हैं। यदि कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का दृढ़ता से पालन करता है और भगवन्नाम का कीर्तन करता है तो वह निश्चय ही दिव्य परम्परा में स्थान प्राप्त करेगा।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ९.३६२

हरे कृष्णमन्त्र की दिव्य शक्ति परम्परा द्वारा सम्प्रेषित होती है

अनुवाद: यदि किसी ने श्रीचैतन्य के मुख से नाम कीर्तन सुना और अन्य किसी ने इस व्यक्ति से यह कीर्तन सुना तो फिर तीसरे ने इससे सुना। इस तरह की परम्परा के माध्यम से सारे देश के लोग वैष्णव बन गये। हर व्यक्ति कृष्ण तथा हरि नाम का कीर्तन करता, नाचता, चिल्लाता और हँसता।

तात्पर्य: यहाँ पर हरे कृष्ण महामन्त्र की दिव्य शक्ति का वर्णन हुआ है। पहली बात यह कि नाम का उच्चारण महाप्रभु द्वारा किया जा रहा था। जब कोई व्यक्ति उनसे सुनता है तो वह शुद्ध हो जाता है। इस तरह शुद्ध भक्तों में यह शुद्धिक्रम चलता रहता है। इस तरह श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् हैं और कोई उनकी शक्ति का दावा नहीं कर सकता। फिर भी किसी शुद्ध भक्त के उच्चारण से हजारों लोग शुद्ध हो सकते हैं। यह शक्ति हर व्यक्ति के भीतर है बशर्ते कि वह निरपराध भाव से हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करे। इस तरह निरपराध भाव से जब कोई शुद्ध भक्त कीर्तन करता है तो दूसरा व्यक्ति वैष्णव बन जाएगा और तब उससे अन्य वैष्णव प्रकट होंगे। यही परम्परा पद्धति है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १७.४८-४९

परम्परा द्वारा मनुष्य इतना शक्त्याविष्ट हो सकता है कि वह महाप्रभु से आगे निकल जाय

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुम वह कार्य कर सकते हो जिसे मैं नहीं कर सकता। तुम्हारे अतिरिक्त मुझे गौड देश में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सकता जो मेरे मिशन को पूरा कर सके।"

तात्पर्य: गौर-निताई अवतार में यह माना जाता है कि भगवान् असुरों का वध नहीं करेंगे, अपितु कृष्णभावनामृत का प्रचार करके उनका उद्धार करेंगे। जगाइ तथा माधाइ से महाप्रभु इतने क्रुद्ध थे कि वे उन्हें मार डालते, किन्तु नित्यानन्द प्रभु इतने दयालु थे कि उन्होंने उन्हें न केवल मृत्यु से बचाया अपितु उन्हें दिव्य पद दिलाया। अत: जो महाप्रभु के द्वारा सम्भव नहीं हो सका उसे नित्यानन्द प्रभु ने कर दिखाया।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति परम्परा में गौर-निताई की सेवा के प्रति सत्यनिष्ठ है तो वह नित्यानन्द प्रभु की सेवा से भी बाजी मार ले जा सकता है। यह परम्परा विधि है। नित्यानन्द प्रभु ने तो जगाइ तथा माधाइ का ही उद्धार किया, किन्तु नित्यानन्द प्रभु का दास उनकी कृपा से हजारों जगाइयों तथा माधाइयों का उद्धार कर सकता है। परम्परा का यही विशेष वर है। परम्परा में स्थित व्यक्ति को उसके कार्यकलापों से जाना जा सकता है।...विष्णु की कृपा से एक वैष्णव विष्णु से अच्छी सेवा कर सकता है—यही वैष्णव

का विशेष दैवी अधिकार है। भगवान् तो यही चाहते रहते हैं कि उनके दास उनसे बढ़कर कार्य करें।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य १६.६५

गुरु कृष्ण की ओर से शिष्य का आदर स्वीकार करता है

मनुष्य को सीधे नहीं वरन् गुरु के माध्यम से कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण करना होता है। इसकी यही विधि है। गुरु अपने लिए शिष्य का आदर स्वीकार नहीं करता, अपितु वह इस आदर को कृष्ण तक पहुँचाता है।... *भगवद्गीता* में कहा गया है कि कृष्ण का ज्ञान परम्परा से प्राप्त किया जाता है। गुरु अपने गुरु को वह आदर देता है और उसका गुरु अपने गुरु का आदर करता है और यह क्रम कृष्ण तक चलता रहता है। इस तरह कृष्ण की कृपा परम्परा के माध्यम से नीचे आती है और कृष्ण को प्रदत्त आदर परम्परा प्रणाली द्वारा प्रदान किया जाता है। मनुष्य को इस विधि से भगवान् के पास तक पहुँचना सीखना चाहिए। यदि हम ईश्वर के पास पहुँचना चाहते हैं तो हमें प्रारम्भ में गुरु की शरण ग्रहण करनी होगी।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

मनुष्य को परम्परा के द्वारा चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् कृष्ण को समझना चाहिए

मनुष्य को चाहिए कि परम्परा में गोस्वामियों से श्रीकृष्ण चैतन्य तथा श्रीकृष्ण के विषय में समझे। यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन गोस्वामियों के चरणचिन्हों पर चलने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*एइ छय गोसाञि याँर, मुइ ताँर दास*—मैं छहों गोस्वामियों का दास हूँ। कृष्णभावनामृत का दर्शन है भगवान् के दास के दास का भी दास बनना। जो कोई भी कृष्णकथा के जटिल विषय को समझना चाहता है उसे परम्परा स्वीकार करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार कृष्ण को समझ लेता है तो उसका जीवन सफल हो जाता है। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*। सिद्ध भक्त कृष्ण को परम्परा से समझ सकता है और इस तरह भगवद्धाम में उसका प्रवेश सम्भव हो जाता है। जब कोई कृष्ण

को समझ लेता है तो फिर वैकुण्ठ लोक जाने में कोई कठिनाई नहीं होती।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य २५.२७१

परम्परा प्रणाली से श्रीचैतन्य महाप्रभु का श्रवण करके शुद्ध बना जा सकता है

श्रीचैतन्य महाप्रभु ५०० वर्ष पूर्व प्रकट हुए किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी उपस्थिति के समय हरे कृष्ण महामन्त्र जितना शक्तिशाली था उससे अब वह कम शक्तिशाली है। परम्परा के माध्यम से श्रीचैतन्य महाप्रभु का श्रवण करके मनुष्य शुद्ध हो सकता है। इसलिए इस श्लोक में कहा गया है—*तथापि ताँर दर्शन-श्रवण-प्रभावे*। ऐसा नहीं है कि हर व्यक्ति कृष्ण या श्रीकृष्ण चैतन्य को सशरीर देखे ही, किन्तु यदि वह *चैतन्य-चरितामृत* जैसी पुस्तक से तथा वैष्णवों की परम्परा से उनके विषय में श्रवण करता है तो वह शुद्ध वैष्णव—संसारी इच्छाओं तथा निजी प्रेरणाओं से रहित—बन सकता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य १७.५१

गुरु का आदर आदि गुरु ब्रह्मा के प्रतिनिधि रूप में किया जाता है

अनुवाद: श्रीनारद के शुभागमन पर व्यासदेव सम्मान करने के लिए उठ खड़े हुए और उनकी पूजा स्रष्टा ब्रह्मा के समान की।

तात्पर्य: *विधि* का अर्थ है प्रथम जीव ब्रह्मा। वे वेदों के मूल जिज्ञासु तथा आचार्य भी हैं। उन्होंने इन्हें सर्वप्रथम श्रीकृष्ण से सीखा और सबसे पहले नारद को शिक्षा दी। अतएव आध्यात्मिक परम्परा में नारद द्वितीय आचार्य हैं। वे ब्रह्मा के प्रतिनिधि हैं, अत: उनका सम्मान समस्त विधियों के पिता ब्रह्मा के समान किया जाता है। इसी प्रकार शृंखला के अन्य क्रमागत शिष्यों का भी सम्मान आदि गुरु के प्रतिनिधियों के समान ही किया जाता है।

—*भागवत* १.४.३३

मध्व सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ साथ राधा की पूजा की स्थापना माधवेन्द्र पुरी ने की

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु को ऐसे भाववेश में देखकर श्रीरंगपुरी ने कहा,

''श्रीपाद उठें। श्रीपाद! आप श्रीमाधवेन्द्र पुरी से सम्बन्धित हैं जिनके बिना प्रेम की कोई सुगन्धि नहीं होती।''

तात्पर्य: श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि मध्वाचार्य से लेकर पूज्यपाद श्रीपाद लक्ष्मीपति तीर्थ तक की शिष्य परम्परा में केवल भगवान् कृष्ण की पूजा चालू हुई। श्रील मध्वाचार्य पुरी के बाद राधा तथा कृष्ण दोनों की पूजा प्रतिष्ठित हुई। इसी हेतु माधवेन्द्र पुरी को भावमय पूजा का मूल माना जाता है। जो माधवेन्द्र पुरी की शिष्य परम्परा में नहीं होता उसमें भावलक्षण उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ९.२८८-८९

कीर्तन की अनेक विधियाँ गढ़ने के बजाय मनुष्य को परम्परा से चले आ रहे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा छोड़े गीतों तथा कथाओं का उच्चारण करना चाहिए

अनुवाद: हे नृसिंहदेव!...मैं ब्रह्मा तथा उनकी परम्परा के पदचिन्हों पर चलकर आपकी महिमा का कीर्तन करूँगा। इस प्रकार मैं अज्ञान सागर को निश्चय ही पार कर लूँगा।

तात्पर्य: ज्योंही भक्त भगवान् के पवित्र नाम तथा उनके यश का कीर्तन करता है उसे मुक्ति पद मिलता है। भगवान् के पवित्र नाम तथा कार्यकलापों के श्रवण तथा कीर्तन के प्रति अनुराग होने से (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः*) मनुष्य को ऐसी स्थिति प्राप्त होती है जहाँ भौतिक कल्मष नहीं होता। मनुष्य को परम्परा से प्राप्त प्रामाणिक गीतों का कीर्तन करना चाहिए। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि परम्परा के पालन से कीर्तन शक्तिशाली बनता है (*एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*)। कीर्तन की तमाम विधियाँ गढ़ने से कोई प्रभाव नहीं होगा। किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा छोड़े गीतों या कथाओं का कीर्तन अत्यन्त प्रभावशाली होगा और यह विधि सरल भी है (*महाजनो येन गतः स पन्थाः*)।

—*भागवत* ७.९.१८

परम्परा के कार्यों को सम्पन्न करने वाला कोई भी व्यक्ति इस जीवन

में यश कमाता है औ

भगवान् से सीधे
परम्परा में उनके द्वारा
इस जीवन में यश औ

में यश कमाता है और अगले जीवन में मोक्ष

भगवान् से सीधे वैदिक ज्ञान को प्राप्त करने वाले ब्रह्मा हैं और ब्रह्म परम्परा में उनके द्वारा सौंपे गये कर्मों को सम्पन्न करने वाला कोई भी व्यक्ति इस जीवन में यश और अगले जीवन में मोक्ष लाभ करता है।

—*भागवत* ३.१३.८

भाग ४

शिष्य के गुण, लक्षण तथा कर्तव्य

१.शिष्य को गुरु से पूछना तथा सुनना चाहिए

गुरु से पूछने की इच्छा अत्यावश्यक है

अनुवाद: श्रीव्यास देव ने नारद से कहा: आपने उन महामुनियों के चले जाने पर क्या किया जिन्होंने आपसे इस जन्म के पूर्व आपको दिव्य व्यावहारिक ज्ञान-प्रदान किया था?

तात्पर्य: व्यासदेव स्वयं नारद जी के शिष्य थे, अतएव नारद ने गुरु से दीक्षित होने के बाद जो कुछ किया उसे सुनने की उत्कंठा स्वाभाविक थी क्योंकि वे नारद की भाँति सिद्धावस्था प्राप्त करने के लिए उनके चरणचिन्हों का अनुसरण करना चाह रहे थे। गुरु से पूछने की इच्छा (जिज्ञासा) प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए आवश्यक है। इस विधि का शास्त्रीय नाम *सद्धर्मपृच्छा* है।

—*भागवत* १.६.२

गुरु कैसे बनाया जाय

सनातन श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और अत्यन्त विनयपूर्वक उनसे अपनी असली पहचान के बारे में पूछा। सनातन ने कहा, "मैं निम्न कुल में उत्पन्न हूँ, मेरी संगति घृणित है और मैं पतित मनुष्यों में सर्वाधिक अधम हूँ। मैं भौतिक भोग के अंधकूप में पड़ा था और मेरे अपने जीवन के असली लक्ष्य को कभी नहीं जाना। यहाँ तक कि मैं यह भी नहीं जानता कि मेरे लिए क्या लाभदायक है। आपने मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार किया है और आपने मुझे भव-बन्धन से छुड़ाया है। कृपा करके यह बताएँ कि इस मुक्त अवस्था में मेरा क्या कर्तव्य है।"

...सनातन ने यह भी पूछा, "मैं कौन हूँ? तीनों ताप मुझे क्यों सदैव कष्ट पहुँचाते रहते हैं? और अन्त में आप मुझे यह बताएँ कि मैं इस भवबन्धन से कैसे छूट सकता हूँ? मैं नहीं जानता कि आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने के लिए आपसे कैसे पूँछू, किन्तु मेरी आपसे विनती है कि कृपा

करके मुझे वे सारी बातें बताएँ जिन्हें मुझे जानना चाहिए।''

गुरु स्वीकार करने की यही विधि है। मनुष्य को चाहिए कि गुरु के पास जाए, विनयपूर्वक आत्मनिवेदन करे और तब अपनी आध्यात्मिक प्रगति के विषय में उससे पूछे।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु के शिष्य को अत्यधिक जिज्ञासु होना चाहिए

अनुवाद: हे भगवान् के प्रतिनिधिस्वरूप ऋषि! आप उन मेरी समस्त जिज्ञासाओं को शमित कीजिये जिनके विषय में मैंने आपसे प्रश्न किये हैं तथा उनके विषय में भी जिन्हें मैंने प्रस्तुत नहीं किया। चूँकि मैं आपकी शरण में आया हूँ, अत: मुझे इस सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्रदान करें।

तात्पर्य: गुरु अपने शिष्य को ज्ञान प्रदान करने के लिए सदैव उद्यत रहता है, विशेष रूप से तब जब कि शिष्य अत्यन्त उत्सुक हो। प्रगतिशील शिष्य के लिए उत्सुक रहना अत्यावश्यक है। यदि कोई आत्म-साक्षात्कार के लिए अत्यधिक उत्सुक नहीं होता तो केवल शिष्यता दिखाने के लिए गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। महाराज परीक्षित न केवल जो कुछ उन्होंने पूछा है उसके विषय में जानने को उत्सुक हैं, वरन् जो कुछ नहीं पूछ पाये उसके विषय में भी जानने के लिए उत्सुक हैं। वस्तुत: गुरु से हर एक बात नहीं पूछी जा सकती, किन्तु प्रामाणिक गुरु सब प्रकार से शिष्य के लाभ हेतु उसे प्रकाश देना चाहता है।

—*भागवत* २.८.२४

गुरु से बुद्धिमानी के साथ प्रश्न किये बिना कोई आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता

हमें चाहिए कि आँख मूँदकर शरण न ग्रहण करें, अपितु हमें बुद्धिपूर्वक पूछताछ करने में सक्षम होना चाहिए। बिना पूछताछ (जिज्ञासा) के हम प्रगति नहीं कर सकते। पाठशाला में जो विद्यार्थी अपने शिक्षक से प्रश्न पूछा करता है वह असामान्य बुद्धिमान छात्र होता है। सामान्यतया यह बुद्धि का चिन्ह होता है जब छोटा बालक अपने पिता से पूछता है ''ओह! यह क्या है? वह क्या है? भले ही हमारा गुरु अति उत्तम हो किन्तु यदि

हम उससे प्रश्न पूछने की शक्ति नहीं रखते तो हम प्रगति नहीं कर सकते।

...*वेदान्त-सूत्र* की शुरुआत ही है *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*—अब ब्रह्म के विषय में पूछताछ करने का समय है। *अथ* शब्द का अर्थ है कि जो बुद्धिमान है, जिसने जीवन की मूलभूत परेशानियों को समझ लिया है वह पूछताछ करने में सक्षम है। *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है कि मनुष्य को ऐसे विषयों के बारे में पूछताछ करनी चाहिए जो इस "अंधकार से परे हैं।" यह जगत स्वभावतः अंधकारपूर्ण है और इसे कृत्रिम रूप से अग्नि द्वारा प्रकाशित किया जाता है। हमारे प्रश्न इस ब्रह्माण्ड से परे दिव्य लोकों के विषय में होने चाहिए। यदि कोई इन आध्यात्मिक जगतों के विषय में पता लगाने के लिए इच्छुक हो तो उसे गुरु खोजना चाहिए अन्यथा पता लगाना व्यर्थ है...ऐसा नहीं कि हम आँख मूँदकर आत्मनिवेदन करें। गुरु स्वरूपसिद्ध और परम सत्य को प्राप्त हुआ हो सकता है फिर भी हमें समस्त आध्यात्मिक बातें समझने के लिए उससे प्रश्न पूछने चाहिए।

—*राजविद्या*

शिष्य को गुरु से भक्तियोग के बारे में सारी बातें पूछनी चाहिए

भक्तियोग में प्रथम सोपान है गुरु की शरण ग्रहण करना और फिर भक्ति के विषय में गुरु से जिज्ञासा करना। ऐसी जिज्ञासा अनिवार्य है जिससे भक्तिमार्ग में होने वाले समस्त प्रकार के अपराधों के प्रति निश्चेष्टता बनी रहे। महाराज परीक्षित की भाँति भक्ति में स्थित होते हुए भी भक्त को गुरु से इसके विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए।

—*भागवत* २.८.७

गुरु के पास तभी जाया जाए जब वह सिद्धिमार्ग के विषय में गम्भीरतापूर्वक पूछने के लिए उत्सुक हो

अनुवाद: आप महान सन्तों तथा भक्तों के गुरु हैं। अतएव मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप सारे व्यक्तियों के तथा विशेष रूप से उसे जो मरणासन्न है, उन्हें सिद्धि का मार्ग दिखलाइये।

तात्पर्य: जब तक कोई सिद्धिमार्ग के विषय में पूछने के लिए पूरी तरह उत्सुक न हो तब तक गुरु के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

गुरु गृहस्थ का अलंकरण नहीं होता। सामान्यतया फैशनपरस्त भौतिकवादी तथाकथित गुरु को बिना किसी मतलब के अपना गुरु बनाना है। ऐसा छद्म गुरु तथाकथित शिष्य की चापलूसी करता है और निस्सन्देह, इस तरह गुरु तथा शिष्य दोनों ही नरक जाते हैं। महाराज परीक्षित अच्छे शिष्य थे, क्योंकि वे सबों के लिए और विशेषतया मरणासन्न के लिए लाभप्रद प्रश्न पूछते हैं।

—*भागवत* १.१९.३७

अन्धानुकरण तथा बेहूदे प्रश्न करना निन्दनीय है

अन्धानुकरण तथा बेहूदे प्रश्न करना दोनों ही निन्दनीय हैं। मनुष्य को चाहिए कि विनीत होकर गुरु से सुने, किन्तु उसे आत्मनिवेदन तथा सेवा और पूछताछ के बारे में भी उससे स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

—*भगवद्गीता* ४.३४

गुरु के पास आत्मनिवेदन तथा विनयपूर्ण जिज्ञासा के भाव से जाया जाय

विदुर दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए अतीव उत्सुक थे फलतः मैत्रेय उन पर अति प्रसन्न थे। गुरु से आत्मनिवेदन करके तथा यह कहकर "महोदय! मैं आपका अति आज्ञाकारी दास हूँ। कृपया मुझे स्वीकार करें और मुझे उपदेश दें" सेवा करके उसे प्रसन्न किया जा सकता है। यद्यपि अर्जुन कृष्ण का अति घनिष्ठ मित्र था, किन्तु *श्रीमद्भगवद्गीता* ग्रहण करने के पूर्व वह यह कहकर आत्मसमर्पण कर चुका था—*शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्*—अब मैं आपका शिष्य हूँ और आपकी शरण में आ चूका हूँ। आप मुझे उपदेश दें।"

(*भगवद्गीता* २.७)।

ज्ञान के लिए पूछताछ करने का यह सही तरीका है। गुरु के पास ललकार भरी मुद्रा में नहीं जाना चाहिए। अध्यात्म-विज्ञान समझने के लिए मनुष्य को उत्सुक भी होना चाहिए। उसे अपने को गुरु से श्रेष्ठ नहीं मान लेना चाहिए। सर्वप्रथम उसे ऐसे गुरु की खोज करनी चाहिए जिसकी शरण में वह जा सके और यदि ऐसे सम्भव न हो तो उसे अपना समय व्यर्थ नहीं

करना चाहिए। उचित व्यक्ति की शरण में जाने से वह जल्दी से दिव्य ज्ञान को समझ सकता है।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

शिष्य को चाहिए कि विनीत भाव से गुरु से पूछने के लिए इच्छुक हो

अनुवाद: यदि किसी विशेष विषय पर मेरी शंकाएँ रह गई हैं तो मैं उनके सम्बन्ध में आपसे बाद में पूछूँगा। किन्तु इस समय आपने आत्म-साक्षात्कार के लिए जो योग-उपदेश दिये हैं उनको समझ पाना कठिन है। कृपया उन्हें सरल रीति से पुन: कहें जिससे मैं उन्हें समझ सकूँ। मेरा मन अत्यन्त उत्सुक है और मैं भलीभाँति समझ लेना चाहता हूँ।

तात्पर्य: वैदिक साहित्य का उपदेश है—*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्*। बुद्धिमान व्यक्ति को दिव्य विज्ञान (तत्त्व) जानने के लिए परम उत्सुक (जिज्ञासु) होना चाहिए। इसके लिए उसे गुरु के निकट जाना चाहिए। यद्यपि जड भरत ने महाराज रहूगण को प्रत्येक वस्तु विस्तार से समझा दी थी, किन्तु ऐसे प्रतीत होता है कि उसकी बुद्धि उसे समझने में शक्य न थी। अत: उसने आगे विवेचना करने के लिए प्रार्थना की जैसा कि *भगवद्गीता* में (४.३४) कहा गया है—*तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया*। विद्यार्थी को चाहिए कि गुरु के निकट पहुँच कर पूर्ण समर्पण कर दे (*प्रणिपातेन*)। उसे चाहिए कि उसके उपदेश समझने के लिए वह प्रश्न भी पूछे (*परिप्रश्नेन*)। उसे चाहिए कि गुरु को न केवल समर्पण करे, वरन् प्रेमपूर्ण सेवा करे (*सेवया*) जिससे गुरु प्रसन्न होकर उसे दिव्य विषय को ठीक से समझा दे। यदि कोई वैदिक उपदेशों को गम्भीरता से सीखना चाहता है तो गुरु से स्पर्धा नहीं रखनी चाहिए।

—*भागवत* ५.१२.३

शिष्य को चाहिए कि गुरु से सुनने (और इस प्रकार उसकी कृपा पाने) के लिए अत्यन्त उत्सुक रहे

अनुवाद: सौभाग्य से मुझे आपके द्वारा उपदेश प्राप्त हुआ है और इस प्रकार आपने मेरे ऊपर महती कृपा की है। मैं भगवान् को धन्यवाद देता हूँ कि

मैं अपने कान खोल कर आपके विमल शब्दों को सुन रहा हूँ।

तात्पर्य: मनु ने कहा कि कर्दम मुनि से उपदेश प्राप्त करने के कारण वह कृतकृत्य हो गया। कानों से सन्देश प्राप्त करके वह अपने को भाग्यशाली मान रहा है। यहाँ इसका विशेष उल्लेख है कि मनुष्यों को प्रामाणिक गुरु से कान खोल कर सन्देश सुनना चाहिए। लेकिन इसे कैसे प्राप्त किया जाय? उसे कान से सुनकर दिव्य सन्देश प्राप्त करना चाहिए। *कर्णरन्ध्रैः* शब्द का अर्थ है "कान के छेदों से।" गुरु की कृपा शरीर के अन्य किसी भाग से न प्राप्त होकर केवल कानों से प्राप्त होती है।

—*भागवत* ३.२२.७

मनुष्य को परम्परा गुरु से पूछताछ करनी चाहिए

अनुवाद: जो व्यक्ति परमसत्य रूप भगवान् की खोज में लगा हो उसे चाहिए कि वह समस्त परिस्थितियों में, सर्वत्र प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इसकी खोज करे।

तात्पर्य: भक्तियोग के रहस्य को समझ लेना ही जिज्ञासु के लिए समस्त जिज्ञासाओं का परम लक्ष्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने ढंग से आत्म-साक्षात्कार की खोज में लगा हुआ है—चाहे वह कर्म योग से हो, ज्ञान योग से हो या कि ध्यान योग अथवा भक्ति योग से हो। प्रत्येक चेतन जीवात्मा का कर्तव्य है कि आत्म-साक्षात्कार में प्रवृत्त हो। जो चेतना में उद्बुद्ध है वह निश्चय ही आत्मा के विषय में, विश्व के विषय में तथा जीवन के समस्त क्षेत्रों के विषय में—यथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आचार सम्बन्धी विषयों तथा उनकी विविध शाखाओं के विषय में जिज्ञासा करता है।...जो व्यक्ति ऐसी जिज्ञासाओं से प्रेरित होता हो उसे चाहिए कि ब्रह्मा जी की परम्परा के प्रामाणिक गुरु से पूछे और यही इस श्लोक में निर्देश दिया गया है। चूँकि भगवान् ने इस रहस्य को ब्रह्मा के समक्ष प्रकट किया था, अतः आत्म-साक्षात्कार सम्बन्ध सारी जिज्ञासाएँ ऐसे गुरु के सामने प्रकट की जानी चाहिए जो परम्परा द्वारा मान्य भगवान् का प्रतिनिधि हो। ऐसा प्रामाणिक गुरु शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सारी बातों को स्पष्ट करने में समर्थ होता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति

के लिए छूट है कि वह शास्त्रों का अवलोकन करे, किन्तु फिर भी उसे प्रामाणिक गुरु के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। यही इस श्लोक में आदेश है। प्रामाणिक गुरु भगवान् का सबसे अधिक विश्वासपात्र प्रतिनिधि होता है, अतः मनुष्य को चाहिए कि गुरु से उसी भाव से आदेश प्राप्त करे जिस प्रकार ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण से प्राप्त किया था। उस परम्परा द्वारा प्रामाणिक गुरु कभी भी अपने को भगवान् नहीं कहता यद्यपि ऐसा गुरु भगवान् से भी बड़ा होता है, क्योंकि वह अपने व्यक्तिगत अनुभव से भगवान् को दूसरों को दे सकता है। भगवान् को केवल शिक्षा या उर्वर मस्तिष्क के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता किन्तु प्रामाणिक गुरु के पारदर्शी माध्यम से जिज्ञासु को उसकी प्राप्ति हो सकती है।

—*भागवत* २.९.३६

मानव का एकमात्र कार्य है कि वह गुरु से सकाम कर्मों के तथा उनके फलों के बन्धन से छूटने के विषय में पूछताछ करे

अनुवाद: राजा ने उत्तर दिया: हे महर्षि नारद! मेरी बुद्धि सकाम कर्मों में फँसी हुई है, अतः मुझे जीवन के चरम लक्ष्य का ज्ञान नहीं रह गया। कृपा करके मुझे विशुद्ध ज्ञान प्रदान कीजिये जिससे सकाम कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा सकूँ।

तात्पर्य: जबतक मनुष्य कर्मों से बँधा रहेगा उसे एक के बाद एक शरीर धारण करना होगा। यह *कर्म बन्ध फाँस* कहलाती है। चाहे कोई पुण्य कर्मों से बँधा रहे या पाप कर्मों से, दोनों ही भौतिक शरीरों में बँधे रहने के कारण है। कोई पुण्य या पापकर्मों के आधार पर ही सुखी नहीं हो सकता। ऐसे कर्मों से केवल बन्धन तथा एक शरीर से दूसरे में देहान्तरण होता है। नरोत्तमदास ठाकुर इसे ही *कर्मबन्ध फाँस* कहते हैं। राजा प्राचीन बर्हिषत ने इसे स्पष्ट स्वीकार करते हुए नारद मुनि से प्रश्न किया कि वे इस *कर्मबन्ध फाँस* से किस प्रकार निकल सकते हैं? *वेदान्त-सूत्र* के प्रथम श्लोक में वस्तुतः यही बात कही गई है—*अथातो ब्रह्म जिज्ञासा*। जब मनुष्य कर्मबन्ध फाँस का निर्वाह करते हुए हताश दशा को प्राप्त हो जाता है तो वह जीवन के वास्तविक महत्व के विषय में जिज्ञासा प्रकट करता है। यही *ब्रह्मजिज्ञासा* है। जीवन के चरम लक्ष्य के विषय में जिज्ञासा करने के लिए वेदों का

(मुण्डकोपनिषद १.२.१२) आदेश है—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*। तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए।

राजा प्राचीन बर्हिषत की नारद मुनि जैसे परम गुरु से भेंट हो गई, अतः उन्होंने उस ज्ञान के विषय में प्रश्न किया जिसमें कर्मबन्ध फाँस से छूटा जा सके। मानव जीवन का यही उद्देश्य है। जैसा कि *भागवत* में (१.२.१२) कहा गया है—*जीवस्य तत्वजिज्ञासा नार्थो। यश्चेह कर्मभिः*—मनुष्य का एकमात्र कार्य है कि वह प्रामाणिक गुरु से कर्मबन्ध फाँस से निकलने का उपाय पूछे।

—*भागवत* ४.२५.५

शिष्य को गुरु से पूछने के लिए गम्भीरतापूर्वक प्रवृत्त होना चाहिए

अनुवाद: श्रीसूत गोस्वामी ने कहा: तीर्थ यात्रा करते हुए विदुर ने महर्षि मैत्रेय से आत्मगति का ज्ञान प्राप्त किया और फिर वे हस्तिनापुर लौट गये। इच्छानुसार इस विषय में पारंगत हो गये। विविध प्रश्न पूछने के बाद तथा भगवान् की दिव्य भक्ति में स्थिर हो चुकने पर विदुर ने मैत्रेय मुनि से प्रश्न पूछना बन्द कर दिया।

तात्पर्य: विदुर के समान ही जिज्ञासु बद्धजीव को मैत्रेय जैसे प्रामाणिक गुरु के पास पहुँचना चाहिए और बुद्धिपरक जिज्ञासाओं द्वारा कर्म, ज्ञान तथा योग के विषय में प्रत्येक वस्तु जानने का प्रयास करना चाहिए। जो व्यक्ति अपने गुरु से प्रश्न पूछने के प्रति गम्भीरतापूर्वक प्रवृत्त नहीं होता उसे दिखावटी गुरु करने की आवश्यकता नहीं है।

—*भागवत* १.१३.१-२

मनुष्य को किसी भौतिक रोग को अच्छा करने या व्यापार में सफल होने के लिए नहीं अपितु परब्रह्म के विषय में जानने के लिए गुरु की खोज करनी चाहिए

वैदिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उपयुक्त गुरु के पास जाना चाहिए। गुरु की योग्यता प्रत्येक शास्त्र में दी हुई है। *श्रीमद्भागवत* में (११.३.२१) कहा गया है—*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्*। जब तक जीवन के चरम लक्ष्य को जानने के लिए वह उत्सुक न हो तब तक मनुष्य को

गुरु नहीं बनाना चाहिए। शारीरिक सुविधाओं में रुचि रखने वाले सामान्य व्यक्ति को गुरु की आवश्यकता नहीं होती। दुर्भाग्यवश, आजकल गुरु शब्द ऐसे व्यक्ति का द्योतक है जो शारीरिक औषधि दे सके। मनुष्य महात्मा जी के पास पहुँचता है और कहता है "मैं अमुक रोग से पीड़ित हूँ। कृपया मेरी मदद करें।" और महात्मा कहता है, "मेरे पास ऐसा मन्त्र है जो तुम्हें ठीक कर देगा और तुम्हें सफलता देगा। मुझे कुछ धन दो और इसे ले जाओ।" वह असली गुरु नहीं होता। मनुष्य को गुरु के पास *तत्व* यानी परम सत्य के विषय में जानने के लिए जाना चाहिए। उसे किसी भौतिक रोग को अच्छा करने के लिए गुरु की खोज नहीं करनी चाहिए। इसके लिए डाक्टर की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार लोग सोचते हैं कि यदि कोई व्यक्ति उसे व्यापार में सफल बना सकता है तो वह गुरु है। किन्तु शास्त्र इनमें से किसी एक की पुष्टि नहीं करता। गुरु वह है जो वेदों को तथा वैदिक निष्कर्ष को जानता है। वैदिक निष्कर्ष है कृष्ण को समझना। *वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों के द्वारा मुझे ही जानना चाहिए। (*भगवद्गीता* १५.१५)

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

शिष्य को अधिकार है कि किसी गुह्य बात के विषय में पूछे और गुरु का कर्तव्य है कि उसे बताए

छात्र तथा शिष्य को अधिकार है कि वह गुरु से किसी गुह्य सेवा के विषय में पूछे और गुरु का कर्तव्य है कि अपने शिष्य को इन गुह्य बातों को बतलाए।

—*भागवत* १०.१२.४३

आध्यात्मिक प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए योग्य गुरु के पास जाना चाहिए, किसी ऐरे-गैरे के पास नहीं

अनुवाद: हे महान विद्वान! कृपया मेरे सारे सन्देहों का निवारण कीजिये और आदि से अंत तक मैंने जो कुछ आपसे पूछा है वह मुझे बतलाइये।

तात्पर्य: विदुर ने मैत्रेय से सब सुसंगत प्रश्न पूछे, क्योंकि वे अच्छी तरह से जानते थे कि मैत्रेय ही ऐसे उपयुक्त व्यक्ति हैं जो उनकी सारी जिज्ञासाओं

का समाधान कर सकते हैं। मनुष्य को अपने गुरु की योग्यता के विषय में विश्वास होना चाहिए। किसी को विशिष्ट आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए अनाड़ी के पास नहीं जाना चाहिए। जब ऐसी जिज्ञासाओं के गुरु या शिक्षक द्वारा काल्पनिक उत्तर दिये जाते हैं तो केवल समय का अपव्यय होता है।

—*भागवत* ३.१०.२

मनुष्य को चाहिए कि वह गुरु के पास प्रश्न पूछने जाय, फैशन सीखने नहीं

अनुवाद: सन्त शिरोमणि विदुर भगवान् के महान एवं विशुद्ध भक्त थे, अतएव मैत्रेय ऋषि से उनके पूछे गये प्रश्न अत्यन्त सारपूर्ण, उत्तम एवं विद्वन्मण्डली द्वारा अनुमोदित रहे होंगे।

तात्पर्य: मनुष्यों के भिन्न भिन्न वर्गों में प्रश्नों और उत्तरों का मूल्य अलग अलग होता है। किसी व्यापारिक प्रतिष्ठान में लगे हुए व्यवसायी व्यक्तियों के प्रश्नों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे आध्यात्मिक मूल्यों के उच्च अभिप्रायों से पूर्ण होंगे। विभिन्न वर्गों के मनुष्यों के प्रश्नों तथा उत्तरों का अनुगमन उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के स्तर द्वारा किया जा सकता है।...*श्रीमद्भागवत* के अनुसार जब कोई व्यक्ति वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान के उच्च स्तर से प्रश्न पूछने के लिए उन्मुख हो तभी वह प्रामाणिक गुरु के पास जाए। जिसमें आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति कोई रुचि नहीं होती ऐसे साधारण मनुष्य को केवल फैशन के रूप में गुरु के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

—*भागवत* ३.१.४

भक्ति में सबसे महत्त्वपूर्ण विधि है गुरु, साधु तथा शास्त्र से श्रवण करना

मनुष्य को चाहिए कि उस भक्तियोग का परित्याग न करे जो नौ विभिन्न प्रकारों से सम्पन्न किया जाता है (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्*)। सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधि तो गुरु, साधु तथा शास्त्र से श्रवण करना है। *साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य*...श्रवण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनुष्य को वैष्णव साधु, गुरु तथा शास्त्र से सुनना चाहिए।

—*भागवत* १०.२.३७

पूर्ण अधिकारी गुरु से सुनने से मनुष्य का ज्ञान पूर्ण बनता है

प्रत्यक्ष अध्ययन या दर्शन करने की अपेक्षा श्रवण अधिक महत्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति श्रवण में पटु है और सही स्रोत से सुनता है तो उसका ज्ञान तुरन्त पूर्ण बनता है। यह विधि *श्रौतपन्था* यानी अधिकरियों से सुनकर ज्ञानार्जन कहलाती है। समस्त वैदिक ज्ञान इस सिद्धान्त पर आधारित है कि मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक नहीं कि वह अत्यधिक निपुण साहित्यिक व्यक्ति हो। पूर्ण व्यक्ति से ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को श्रवण में पटु होना चाहिए। यह निगमनीय ज्ञान की अवरोही विधि या *अवरोहपन्था* कहलाती है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १६.५२

मनुष्य को स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से श्रवण करना चाहिए

सभी व्यक्तियों को सिद्ध पुरुषों से श्रवण करने का लाभ उठाना चाहिए और इस तरह क्रम से प्रत्येक वस्तु समझने में समर्थ बनना चाहिए। तब निश्चित रूप से परमेश्वर की पूजा हो सकेगी। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि इस युग में मनुष्य को अपना पद बदलने की आवश्यकता नहीं है, अपितु उसे चाहिए कि शुष्क चिन्तन द्वारा परम सत्य को समझने का प्रयास त्याग दे। उसे उन व्यक्तियों का दास बनना चाहिए जिन्हें परमेश्वर का ज्ञान है। यदि कोई इतना भाग्यशाली हुआ कि उसे शुद्ध भक्त की शरण मिल सके और वह उससे आत्मसाक्षात्कार के विषय में श्रवण करके उसके पदचिन्हों पर चल सके तो उसे क्रमशः शुद्ध भक्त का पद प्राप्त हो जाता है।...यद्यपि सामान्य व्यक्ति तथाकथित दार्शनिकों की भाँति समर्थ नहीं होता, लेकिन प्रामाणिक व्यक्ति से श्रद्धायुक्त श्रवण करने से इस परम्परा को पार करके भगवद्धाम वापस जाने में सहायता मिलेगी।

—*भगवद्गीता* १३.२६

गुरु से विनीत होकर सुनने से दैव चेतना जागृत होती है

भगवान् की अनुभूति दिव्य सन्देश का श्रवण करके की जा सकती है और दिव्य विषय का अनुभव करने की यही एकमात्र विधि है। जिस प्रकार अग्नि द्वारा जलाने पर काष्ठ से अग्नि प्रकट होती है उसी प्रकार मनुष्य की दैवी चेतना अन्य दैवी अनुकम्पा से ही प्रकाशित की जा सकती है। श्रीमद् पूज्य गुरु महाराज काष्ठ रूप जीव में कर्णकुहरों द्वारा समुचित दिव्य सन्देश प्रविष्ट करा कर आध्यात्मिक अग्नि प्रज्ज्वलित कर सकता है। अतएव सुनने की इच्छा से ही समुचित गुरु के पास जाना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे दैवी अस्तित्व की अनुभूति हो सकती है। पशुत्व तथा मनुष्यत्व का भेद इसी विधि पर निर्भर करता है। मनुष्य ठीक से सुन सकता है जबकि पशु ऐसा नहीं करता।

—*श्रीमद्भागवत* १.२.३२

शिष्य में गुरु द्वारा डाले गये भक्ति के बीज को श्रवण तथा कीर्तन द्वारा सींचा जाना चाहिए

अनुवाद: "जब किसी व्यक्ति को भक्ति का बीज प्राप्त हो जाता है तो उसे चाहिए कि वह माली बनकर उस बीज को अपने हृदय में बोये। यदि वह बीज को क्रमशः श्रवण तथा कीर्तन की विधि से सींचता है तो वह बीज अंकुरित हो उठेगा।"

तात्पर्य: जो व्यक्ति अपने गुरु के प्रति श्रद्धावान होता है वही *भक्ति-लता-बीज* पाता है। यह *भक्ति-लता-बीज* गुरु से दीक्षा प्राप्त करने पर मिल पाता है। गुरु की कृपा प्राप्त हो जाने के बाद उसे गुरु के उपदेशों को दुहराते रहना चाहिए। इसे *श्रवण कीर्तन* कहते हैं। जिसने गुरु से ठीक से नहीं सुना अथवा जिसने विधानों का ठीक से पालन नहीं किया वह कीर्तन करने के योग्य नहीं होता।...जो गुरु के उपदेशों को ध्यानपूर्वक नहीं सुनता वह कीर्तन करने या भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए उपयुक्त नहीं है। गुरु से उपदेश प्राप्त करने के बाद भक्ति-लता-बीज को सींचना पड़ता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य १९.१५२

यदि शिष्य धैर्यपूर्वक अनावश्यक विरोध के बिना गुरु से सुनता है

तो गुरु उस पर कृपा करेंगे

हम सबों को गुरु से धैर्यपूर्वक सुनना चाहिए। यदि हम अनावश्यक विरोध के बिना दिव्य ध्वनि को सुनते हैं तो वह निश्चय ही हम पर कृपा करेंगे।

—आत्म साक्षात्कार का विज्ञान

जब शिष्य आध्यात्मिक विषयों को सुनने का उत्सुक रहता है तो गुरु अतीव प्रसन्न होता है

अनुवाद: दिव्य साक्षात्कार के लिए अपनी माता की दूषणरहित इच्छा सुनकर भगवान् ने उनके इन प्रश्नों के लिए मन ही मन धन्यवाद दिया और मुखमंडल में हँसी लाते हुए उन्होंने उन अध्यात्मवादियों के पथ की विवेचना की जो आत्मसाक्षात्कार में रुचि रखते थे।

तात्पर्य: जब कोई छात्र ध्यानपूर्वक आध्यात्मिक विषयों को सुनता है तो गुरु अतीव प्रसन्न होता है। कपिल देव यह देखकर अति प्रसन्न थे कि उनकी माता आध्यात्मिक विषयों को समझने के लिए उत्सुक हैं। अत: उन्होंने अपनी माता को उनके प्रश्न के लिए धन्यवाद दिया...। जब कपिल ने अपनी माता को रुचि लेते देखा तो उन्होंने खुलकर नहीं वरन् मन ही मन उन्हें धन्यवाद दिया।

—भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ

दिव्य ज्ञान की असली कुंजी पाने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु से सुनना चाहिए जो भौतिक जगत के परिवर्तनों के विषय में कभी विचलित नहीं होता

अनुवाद: कहा जाता है कि समस्त कारणों के कारणस्वरूप परमेश्वर की पूजा करने से एक तरह का फल मिलता है और जो परम सत्य नहीं है उसकी पूजा करने से दूसरी तरह का फल मिलता है। यह सब उन धीर पुरुषों से सुना जाता है जिन्होंने इसका स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

तात्पर्य: इस मन्त्र से धीर पुरुषों से श्रवण करने की पद्धति प्रमाणित होती है। जब तक ऐसे प्रामाणिक आचार्य से श्रवण नहीं किया जाता जो भौतिक

जगत में होने वाले परिवर्तनों के विषय में तनिक भी विचलित नहीं होता तब तक दिव्य ज्ञान की असली कुंजी प्राप्त नहीं हो पाती। प्रामाणिक गुरु भी अपने धीर आचार्य से श्रुति मन्त्रों या वैदिक ज्ञान को सुने रहता है। वह कभी भी कोई ऐसी चीज बनाकर प्रस्तुत नहीं करता जो वैदिक ग्रन्थों में उल्लिखित न हो।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र १३

भगवान् के दासों की सेवा करने का फल

भगवान् के दासों की सेवा करने से मनुष्य क्रमशः ऐसे दासों के गुण प्राप्त कर लेता है और वह ईश्वर की महिमा सुनने के लिए योग्य बन जाता है। भगवद्धाम में प्रवेश करने के लिए भक्त की प्रथम योग्यता है कि उसमें ईश्वर के विषय में सुनने की उत्सुकता हो।

—*भागवत* १.२.१६

अपने गुरु से विनीत भाव से सुनने के बाद मनुष्य ईश्वर का गुणगान कर सकता है

अनुवाद: मैं अयोग्य होते हुए भी जो कुछ अपने गुरु महाराज से श्रवण कर सका हूँ और जो कुछ समझ सका हूँ उसका वर्णन मैं भगवान् का यश गाकर अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए कर रहा हूँ। यदि मैंने ऐसा न किया तो मेरी वाक्शक्ति अशुद्ध बनी रहेगी।

तात्पर्य: मैत्रेय का कथन है कि असत् क्रियाकलाप से बचने के लिए वे भगवान् की अनन्त कीर्तिमाला का वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं, यद्यपि पूर्णता के साथ उनका वर्णन करने की योग्यता उनमें नहीं है। भगवान् का यह गुणगान किसी शोध का परिणाम नहीं है, अपितु प्रामाणिक गुरु से विनीत होकर श्रवण करने का फल है। यह भी सम्भव नहीं है कि आध्यात्मिक गुरु से जो कुछ सुना गया है उसकी पुनरावृत्ति की जाय, किन्तु सच्चे प्रयत्न द्वारा जितना सम्भव हो सकता है उतना वर्णन किया जा सकता है। भगवान् के गुणों की पूरी व्याख्या हो पाती है या नहीं, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

—*भागवत* ३.६.३६

मुक्तात्मा से उपदेश सुनकर भक्त दिव्य आनन्द से अभिभूत हो जाता है

अनुवाद: हे राजन! इस प्रकार मैत्रेय मुनि से भगवान् तथा उनके भक्तों की दिव्य कथाएँ सुनकर विदुर आनन्दविभोर हो उठे। आँखों में आँसू भर कर वे तुरन्त अपने गुरु के चरणकमलों पर गिर पड़े। तब उन्होंने अपने अन्तःकरण में श्री भगवान् को स्थिर कर लिया।

तात्पर्य: यह महान् भक्तों की संगति का लक्षण है। भक्त किसी मुक्तात्मा से उपदेश ग्रहण करता है और आनन्द में विभोर हो जाता है।

—*भागवत* ४.३१.२८

प्रामाणिक गुरु के उपदेशों को सुनने से मनुष्य को ज्ञान, वैराग्य तथा अन्ततः मोक्ष प्राप्त होता है

जब व्यष्टि आत्मा भौतिक हृदय से बाहर निकल आता है, अथवा हृदय को स्वच्छ करके आध्यात्मिक बना देता है तो वह मुक्त बन जाता है।...जब कोई जीव भगवान् के प्रति आसक्ति बढ़ा देता है तो समझना चाहिए कि वह अग्नि के तुल्य है। प्रज्ज्वलित अग्नि ताप तथा प्रकाश से दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार जब हृदय के भीतर जीव पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान से प्रकाशित एवं संसार से विरक्त हो जाता है तो वह अपने पंचतत्वों के आवरण को जला देता है और पाँच प्रकार की आसक्तियों यथा अविद्या, अहंकार, आसक्ति, ईर्ष्या और भौतिक चेतना में लिप्तता से मुक्त हो जाता है।...जब ये सभी ज्ञान तथा वैराग्य की अग्नि से भस्म हो जाते हैं तो मनुष्य भगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है। जब तक मनुष्य प्रामाणिक गुरु की शरण में नहीं जाता और उसके उपदेश के अनुसार श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्ति नहीं बढ़ाता तब तक जीव के पाँचों आवरण हृदय से दूर नहीं हो सकते। जीव हृदय में केन्द्रित है और हृदय से उसको निकालने का अर्थ है उसको मोक्ष दिलाना। इसकी यही विधि है। मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए और उसके उपदेश से अपने भक्ति विषयक ज्ञान को बढ़ाना चाहिए, भौतिक जगत् से विरक्त होना चाहिए तथा इस तरह मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

—*भागवत* ४.२२.२६

मुक्तात्मा से उपदेश सुनकर भक्त दिव्य आनन्द से अभिभूत हो जाता है

अनुवाद: हे राजन! इस प्रकार मैत्रेय मुनि से भगवान् तथा उनके भक्तों की दिव्य कथाएँ सुनकर विदुर आनन्दविभोर हो उठे। आँखों में आँसू भर कर वे तुरन्त अपने गुरु के चरणकमलों पर गिर पड़े। तब उन्होंने अपने अन्तःकरण में श्री भगवान् को स्थिर कर लिया।

तात्पर्य: यह महान् भक्तों की संगति का लक्षण है। भक्त किसी मुक्तात्मा से उपदेश ग्रहण करता है और आनन्द में विभोर हो जाता है।

—*भागवत* ४.३१.२८

प्रामाणिक गुरु के उपदेशों को सुनने से मनुष्य को ज्ञान, वैराग्य तथा अन्ततः मोक्ष प्राप्त होता है

जब व्यष्टि आत्मा भौतिक हृदय से बाहर निकल आता है, अथवा हृदय को स्वच्छ करके आध्यात्मिक बना देता है तो वह मुक्त बन जाता है।...जब कोई जीव भगवान् के प्रति आसक्ति बढ़ा देता है तो समझना चाहिए कि वह अग्नि के तुल्य है। प्रज्ज्वलित अग्नि ताप तथा प्रकाश से दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार जब हृदय के भीतर जीव पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान से प्रकाशित एवं संसार से विरक्त हो जाता है तो वह अपने पंचतत्वों के आवरण को जला देता है और पाँच प्रकार की आसक्तियों यथा अविद्या, अहंकार, आसक्ति, ईर्ष्या और भौतिक चेतना में लिप्तता से मुक्त हो जाता है।...जब ये सभी ज्ञान तथा वैराग्य की अग्नि से भस्म हो जाते हैं तो मनुष्य भगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है। जब तक मनुष्य प्रामाणिक गुरु की शरण में नहीं जाता और उसके उपदेश के अनुसार श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्ति नहीं बढ़ाता तब तक जीव के पाँचों आवरण हृदय से दूर नहीं हो सकते। जीव हृदय में केन्द्रित है और हृदय से उसको निकालने का अर्थ है उसको मोक्ष दिलाना। इसकी यही विधि है। मनुष्य को प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए और उसके उपदेश से अपने भक्ति विषयक ज्ञान को बढ़ाना चाहिए, भौतिक जगत् से विरक्त होना चाहिए तथा इस तरह मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

—*भागवत* ४.२२.२६

प्रामाणिक गुरु से सुना गया शास्त्रीय ज्ञान वैज्ञानिक (अनुभूत) ज्ञान है

ज्ञान तो शास्त्रों से एकत्र की गई सूचना है और विज्ञान इस ज्ञान की व्यावहारिक अनुभूति है। जब प्रामाणिक गुरु के माध्यम से शास्त्रों से ज्ञान को एकत्रित किया जाता है तो वह वैज्ञानिक होता है, किन्तु जब उसकी व्याख्या कल्पना (चिन्तन) के आधार पर की जाती है तो वह मानसिक ऊहापोह (मनोरथ) है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु द्वारा कृष्णकथा कहने तथा शिष्य द्वारा सुने जाने के लिए दोनों ही को भौतिक इच्छाओं से रहित होना चाहिए

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥

अनुवाद: भगवान् की महिमा का वर्णन परम्परा पद्धति से किया जाता है, अर्थात् यह गुरु से शिष्य तक पहुँचाया जाता है। ऐसे वर्णन का आनन्द उनलोगों को मिलता है जो इस जगत् के मिथ्या, क्षणिक वर्णन में रुचि नहीं लेते। भगवान् का गुणगान जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँसे बद्धजीवों के लिए उपयुक्त औषधि है। अतएव भगवान् की महिमा का सुनना कसाई (पशुघाती) या अपने को ही मारने वाले (आत्मघाती) के अतिरिक्त कौन नहीं चाहेगा?

तात्पर्य: कृष्णकथा के लिए वक्ता तथा श्रोता होने चाहिए और ये दोनों कृष्णभावनामृत में तभी रुचि ले सकेंगे जब उन्हें भौतिक दशाओं में रुचि न हो।...गुरु उत्तमश्लोक अर्थात् भगवान् विषयक कथाएँ कहता है और शिष्य उन्हें ध्यान से सुनता है। जब तक दोनों भौतिक इच्छाओं से मुक्त नहीं हो लेते, तब तक उन्हें कृष्णभावनामृत की कथाओं में रुचि नहीं हो सकती। गुरु तथा शिष्य को कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ समझने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि कृष्ण को समझने तथा कृष्ण के विषय में बातें करने मात्र से ही व्यक्ति पूर्णतया विद्वान बन सकता है (*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति*)।

—*भागवत* १०.१.४

परम्परा के अधिकारी गुरु से रासलीला के विषय में सुनने से मनुष्य आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च मानदण्ड तक उठ सकता है

शुकदेव गोस्वामी ने इस रासलीला प्रकरण का समापन यह इंगित करते हुए किया कि यदि कोई व्यक्ति सही स्रोत से साक्षात् विष्णु रूप कृष्ण तथा उनकी शक्ति की अंशरूपा गोपियों की लीलाओं के विषय में सुनता है तो वह सबसे घातक रोग काम-वासना से छुटकारा पा लेगा। यदि कोई सचमुच रासलीला सुनता है, तो वह यौन जीव की वासनामय इच्छाओं से पूरी तरह मुक्त होगा। सामान्यतया मायावादियों से सुनने तथा स्वयं मायावादी होने से लोग यौन-जीवन के प्रति अधिकाधिक आसक्त होते जाते हैं। बद्धात्मा को अधिकारी गुरु से ही रासलीला सुननी चाहिए और उसी से प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए जिससे वह पूरी स्थिति समझ सके। इस प्रकार वह आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च मानदण्ड को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा वह आसक्त होता जायेगा। भौतिक कामवासना एक प्रकार का हृदय रोग है और बद्धात्मा के भौतिक हृदय रोग को दूर करने के लिए संस्तुति की जाती है कि निर्विशेषवादी धूर्तों के अलावा चाहे जिससे सुने। यदि वह सही ज्ञान से युक्त सही साधनों से सुनता है तो उसकी स्थिति भिन्न होगी।

...मनुष्य को चाहिए कि परम्परा से श्रवण करे। *अनु* का अर्थ है ''के पीछे पीछे'' तथा ''सदैव''। अतएव उसे सदैव परम्परा का पालन करना चाहिए और इधर उधर के पेशेवर वाचकों से नहीं सुनना चाहिए चाहे वह मायावादी हो या सामान्य व्यक्ति *अनुशृणुयात्* का अर्थ है ऐसे अधिकारी व्यक्ति से सुनना जो परम्परा में हो और सदैव कृष्णभावनामृत में लगा रहता हो। जब मनुष्य इस प्रकार से सुनना चाहता है तो उसका प्रभाव पड़ेगा। रासलीला सुन कर आध्यात्मिक जीवन को सर्वोच्च पद तक उठाया जा सकता है।

—*लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण*

अविचल आचार्य से श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक सुनने से कृष्ण की पूजा करने का संकल्प दृढ़ होता है

सारा वैदिक साहित्य इसकी पुष्टि करता है कि नारायण या कृष्ण ही समस्त कारणों के कारण हैं। *ब्रह्म-संहिता* में भी कहा गया है कि परमेश्वर

तो श्रीकृष्ण गोविन्द हैं जो प्रत्येक जीव के हर्ष तथा समस्त कारणों के आदि कारण हैं। असली विद्वान व्यक्ति इसे महर्षियों तथा वेदों द्वारा दिये गये प्रमाण से जानता है। इस तरह विद्वान मनुष्य कृष्ण को सर्वेसर्वा मान कर पूजा करने का निश्चय करता है।

जब लोग अपने को केवल कृष्ण की पूजा से जोड़ लेते हैं तो वे *बुध* या वास्तविक विद्वान कहलाते हैं। यह दृढ़संकल्प तब स्थापित होता है जब अविचल आचार्य से श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक दिव्य सन्देश का श्रवण किया जाता है। जिस व्यक्ति की भगवान् कृष्ण में श्रद्धा या उनके प्रति प्रेम नहीं होता उसे इस सच्चाई के प्रति आश्वस्त नहीं किया जा सकता। *भगवद्गीता* में (९.११) अश्रद्धालुओं को मूढ़, मूर्ख या गधा कहा गया है। यह कहा गया है कि मूढ़ लोग भगवान् का उपहास करते हैं, क्योंकि उन्हें अविचल आचार्य से पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ रहता। जो व्यक्ति भौतिक शक्ति की भँवर से विचलित होता हो वह आचार्य बनने के योग्य नहीं है।

—*ईशोपनिषद* मन्त्र १३

गुरु से दिव्य ज्ञान प्राप्त करने हेतु शिष्य के लिए उचित शर्तें

अनुवाद: हे सूत गोस्वामी! हम भगवान् तथा उनके अवतारों के विषय में जानने के उत्सुक हैं। कृपया हमें पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिये गये उपदेशों को बतलाइये, क्योंकि उनके कहने तथा सुनने दोनों से ही मनुष्य का उत्कर्ष होता है।

तात्पर्य: यहाँ पर परम सत्य के दिव्य सन्देश के श्रवण हेतु आवश्यक शर्तें प्रस्तुत की गई हैं। पहली शर्त यह है कि श्रोता को अत्यन्त निष्कपट एवं उत्सुक होना चाहिए। दूसरी शर्त है कि वक्ता मान्य आचार्यों की परम्परा में से हो। जो लोग भौतिकता में लिप्त रहते हैं वे परमेश्वर के दिव्य सन्देश को नहीं समझ पाते। प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में मनुष्य धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है। अत: उसे परम्परा में से होना चाहिए। सूतगोस्वामी तथा नैमिषारण्य के ऋषि-मुनि इन शर्तों को पूरा करते हैं, क्योंकि सूत गोस्वामी श्रील व्यासदेव की परम्परा के हैं और नैमिषारण्य के ऋषि-मुनि निष्कपट जीव हैं जो सत्य जानने के लिए लालायित रहते हैं। अत: भगवान् कृष्ण के अलौकिक कार्यकलाप, उनका अवतार, उनका जन्म, आविर्भाव या तिरोधान, उनके स्वरूप, उनके

नाम इत्यादि सभी उन लोगों द्वारा ज्ञेय हैं जो समस्त शर्तों को पूरा करते हैं। ऐसे उपदेश आध्यात्मिक साक्षात्कार के मार्ग में सहायक होते हैं।

—*भागवत* १.१.१३

प्रामाणिक गुरु से भगवान् के विषय में सुनकर मनुष्य अपनी मृत्यु के समय भगवान् का स्मरण कर सकता है

अनुवाद: जिन्होंने वैदिक स्तोत्रों से स्तुति किये जाने वाले भगवान् की दिव्य कथाओं के लिए ही अपना जीवन अर्पित कर रखा है और जो निरन्तर भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने में लगे हुए हैं उन्हें अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं होती।

तात्पर्य: जीवन की सर्वोच्च सिद्धि जीवन के अन्तिम क्षणों में भगवान् के दिव्य स्वभाव का स्मरण करके प्राप्त की जाती है। यह जीवन की सिद्धि उसे ही मिल पाती है जिसने शुकदेव गोस्वामी जैसे मुक्तात्मा द्वारा कहे, गाये जाने वाले वैदिक स्तोत्रों से या परम्परा के किसी व्यक्ति से भगवान् के वास्तविक दिव्य स्वभाव के विषय में सीखा है। वैदिक स्तोत्रों को किसी ज्ञानी से सुनने से कोई लाभ नहीं। किन्तु जब उन्हें किसी वास्तविक स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से सुना जाता है तो हर बात स्पष्ट हो जाती है। इस तरह विनीत शिष्य दिव्य रूप से रह सकता है और जीवन के अन्त तक रहा आता है। वैज्ञानिक अनुकूलन द्वारा मनुष्य भगवान् को जीवन के अन्त समय तक स्मरण रख सकता है जब शरीर के जर्जर होने से त्वचा झूलने लगती है। सामान्य व्यक्ति के लिए जीवन के अन्त समय वस्तुओं को यथारूप में स्मरण रख पाना कठिन है किन्तु भगवान् तथा उनके प्रामाणिक भक्तों या गुरुओं की कृपा से मनुष्य को यह अवसर सहज ही प्राप्त हो जाता है और महाराज परीक्षित के साथ ऐसा ही हुआ।

—*भागवत* १.१८.४

२. शिष्य को चाहिए कि गुरु के उपदेशों का दृढ़ता से पालन करे

सामान्य उपदेश

शिष्य को गुरु की इच्छा पूरी करने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए तैयार रहना चाहिए

यदि शिष्य गुरु के सन्देश को कार्यरूप देने में असफल रहे तो उसे गुरु के साथ मर जाना चाहिए। जिस प्रकार भगवान् इसी पृथ्वी पर धर्म की पुनर्स्थापना के लिए आते हैं उसी तरह उनका प्रतिनिधि गुरु भी धर्म की पुनर्स्थापना के लिए आता है। यह तो शिष्य का कर्तव्य है कि गुरु के सन्देश को ग्रहण करके उसे कार्यरूप में परिणत करे। अन्यथा अच्छा हो कि शिष्य भी गुरु के साथ मर जाए। दूसरे शब्दों में, गुरु की इच्छापूर्ति के लिए शिष्य को अपना जीवन-उत्सर्ग करने तथा अपने सारे निजी विचारों को त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए।

—*भागवत* ४.२८.५०

गुरु का आदेश चाहे कितना कष्टप्रद क्यों न हो, जो पूरा करता है वह भगवान् की कृपा प्राप्त करता है

तपस्या करते समय मनुष्य को भगवान् के धाम जाने का संकल्प करना चाहिए और इसके लिए सभी प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। यहाँ तक कि भौतिक सम्पत्ति, नाम तथा यश के लिए भी कठिन तपस्या करनी पड़ती है, क्योंकि उसके बिना वह प्रसिद्ध नहीं हो सकता। तो फिर भक्ति की सिद्धि के लिए कठिन तपस्या क्यों करनी होती है ? सुविधासम्पन्न जीवन तथा दिव्य साक्षात्कार की सिद्धि की प्राप्ति ये दोनों साथ-साथ सम्भव नहीं हैं। भगवान् जीवात्मा से अधिक चतुर हैं, अतः वे देखना चाहते हैं कि भक्ति के लिए भक्त कितना कष्ट उठाता है। तपस्या का आदेश भगवान् से प्राप्त होता है और यह आपको चाहे कितना ही कष्टप्रद क्यों न हो इसका पालन करना ही कठिन तपस्या है। जो इस नियम का दृढ़ता से पालन करता है उसे निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होती है।

—*भागवत* २.९.२४

शिष्य के लिए सफलता का रहस्य—उसे चाहिए कि प्रामाणिक गुरु

से सुने और उसके उपदेशों को कार्यरूप दे

अनुवाद: देवताओं की गणना के अनुसार ब्रह्माजी ने एक हजार वर्षों तक तपस्या की। उन्होंने आकाश से यह दिव्य ध्वनि सुनी और इसे दैवी मान लिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी इन्द्रियों (यथा मन) को वश में किया। उन्होंने जो तपस्या की वह जीवात्माओं के लिए महान् शिक्षा बन गई। इस प्रकार ब्रह्माजी महान तपस्वियों में महानतम माने जाते हैं।

तात्पर्य: ब्रह्माजी ने रहस्यमय ध्वनि *तप* सुनी किन्तु वे यह नहीं देख पाये कि इसे कौन उच्चारित कर रहा है। फिर भी उन्होंने इस आदेश को उपयोगी समझ कर स्वीकार किया और एक हजार वर्षों तक तपस्या करते रहे।...ध्वनि को स्वीकार करने का मूल कारण यह था कि उनमें भगवान् विषयक विशुद्ध दृष्टि थी और इसी सही दृष्टि के कारण उन्होंने भगवान् तथा भगवान् के आदेश में कोई अन्तर नहीं माना। भले ही भगवान् स्वयं उपस्थित नहीं थे, किन्तु उनमें तथा उनकी ध्वनि में कोई अन्तर नहीं था। ईश्वर को जानने की सर्वोत्तम विधि यही है कि ऐसे दैवी आदेश को शिरोधार्य कर लिया जाय और ब्रह्माजी, जो कि हरव्यक्ति के आदि गुरु हैं, दिव्य ज्ञान प्राप्त करने की इस विधि के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। दिव्य ध्वनि की शक्ति कभी क्षीण नहीं होती, क्योंकि ध्वनिकर्ता ओझल रहता है।...मनुष्य को इस दिव्य ध्वनि को उपयुक्त स्रोत से प्राप्त करके उसे सत्य मानकर बिना किसी हिचक के आदेश का पालन करना होता है। सफलता का रहस्य यही है कि प्रामाणिक गुरु से अर्थात् उपयुक्त स्रोत से ध्वनि प्राप्त की जाय। संसारी कृत्रिम ध्वनि में शक्ति नहीं होती, अत: अप्रामाणिक व्यक्ति से प्राप्त तथाकथित दिव्य ध्वनि में कोई शक्ति नहीं होती। ऐसी दिव्य शक्ति को जान लेने की योग्यता होनी चाहिए। जिसे अपने विवेक से या कि भाग्य से गुरु द्वारा यह दिव्य ध्वनि प्राप्त हो सके, समझिये कि उसकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया। किन्तु शिष्य को गुरु के आदेश का पालन करने के लिए उद्यत रहना चाहिए जिस प्रकार ब्रह्मा ने अपने प्रामाणिक गुरु साक्षात् भगवान् के आदेश का पालन किया था। शिष्य का एकमात्र कर्तव्य है कि वह प्रामाणिक गुरु का आदेश माने और प्रामाणिक गुरु के आदेश का पालन ही सफलता का रहस्य है।

—*भागवत* २.९.८

शिष्य को चाहिए कि अपने गुरु के आदेश को जीवन का सम्बल माने

भक्त भगवान् की भक्ति नहीं छोड़ सकता, क्योंकि उसे गुरु से आदेश मिला रहता है। नारद तथा नित्यानन्द प्रभु जैसे शुद्धभक्त गुरु की आज्ञा को प्राणाधार मानते हैं। वे अपने भविष्य जीवन की तनिक भी परवाह नहीं करते। वे इस बात को गम्भीरता से लेते हैं, क्योंकि यह आदेश उच्चतर अधिकारी से, भगवान् के प्रतिनिधि से या कि स्वयं भगवान् से प्राप्त हुआ रहता है।

—भागवत २.८.६

मनुष्य गुरु के आदेशों का पालन करके उसे प्रसन्न करता रहता है

श्रील प्रभुपाद: यदि आप ईश्वर के प्रतिनिधि को प्रसन्न करते हैं तो ईश्वर स्वत: ही प्रसन्न हो जाते हैं और इस तरह आप उन्हें प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं।

भारतीय भद्रव्यक्ति: ईश्वर के प्रतिनिधि को कैसे प्रसन्न करना चाहिए?

श्रील प्रभुपाद: आपको उसके आदेशों का पालन करना होता है। बस! ईश्वर का प्रतिनिधि गुरु होता है। वह आपसे यह या वह करने को कहता है और यदि आप वह करते हैं तो यह उसे अच्छा लगता है।

—पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर

कृष्ण का आदेश गुरु के माध्यम से आता है अतएव गुरु के आदेशों को जीवन का मूल कर्तव्य मानना चाहिए

अनुवाद: सारे कार्यों के लिए मुझ पर निर्भर रहो और मेरे संरक्षण में सदा कर्म करो। ऐसी भक्ति में मेरे प्रति पूर्णतया सचेष्ट रहो।

तात्पर्य: जब मनुष्य कृष्णभावनामृत में कर्म करता है तो वह संसार के स्वामी के रूप में कर्म नहीं करता। उसे चाहिए कि वह सेवक की भाँति परमेश्वर के निर्देशानुसार कर्म करे। सेवक को स्वतन्त्रता नहीं रहती। वह सेवक रूप में अपने स्वामी का कार्य करता है; उस पर लाभ-हानि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह भगवान् के आदेशानुसार अपने कर्तव्य का पालन करता

है। अब कोई यह तर्क कर सकता है कि अर्जुन तो कृष्ण के व्यक्तिगत निर्देशानुसार कार्य कर रहा था, लेकिन जब कृष्ण उपस्थित न हों तो कोई किस तरह कार्य करे? यदि कोई इस पुस्तक में दिये गये कृष्ण के निर्देश के अनुसार कार्य करता है तो उसका फल वैसा ही होगा। इस श्लोक में *मत्परः* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सूचित करता है कि मनुष्य जीवन में कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए कृष्णभावनाभावित होकर कार्य करने के अतिरिक्त कोई अन्य लक्ष्य नहीं होता। जब वह इस प्रकार कार्य कर रहा हो तो उसे केवल कृष्ण का ही चिन्तन इस प्रकार करना चाहिए—''कृष्ण ने मुझे इस विशेष कार्य को पूरा करने के लिए नियुक्त किया है।'' और इस तरह कार्य करते हुए उसे स्वाभाविक रूप से कृष्ण का चिन्तन करना चाहिए। यही पूर्ण कृष्णभावनामृत है। मनुष्य को कृष्ण के आदेशानुसार कर्म करना चाहिए। किन्तु ध्यान रहे कि मनमाना कर्म करके उसका फल परमेश्वर को अर्पित न किया जाय। इस प्रकार का कार्य कृष्णभावनामृत की भक्ति में नहीं आता। मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण के आदेशानुसार कर्म करे। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। कृष्ण के आदेशानुसार कर्म करे। कृष्ण का यह आदेश परम्परा से होता हुआ प्रामाणिक गुरु से प्राप्त होता है। अतएव गुरु के आदेश को जीवन का मूल कर्तव्य समझना चाहिए। यदि किसी को प्रामाणिक गुरु प्राप्त होता है और वह निर्देशानुसार सारा कार्य करता है तो कृष्णभावनाभावित जीवन की सिद्धि सुनिश्चित है।

—*भगवद्गीता १८.५७*

जो लोग कृष्ण से प्रेम करते हैं वे निजी असुविधाओं या विघ्नों की परवाह न करते हुए गुरु के आदेश को सम्पन्न करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं

अनुवाद: गोपाल जी का आदेश पाकर इस महापुरुष ने माँग माँग कर चन्दन एकत्र करने के लिए हजारों मील की यात्रा की। माधवेन्द्रपुरी ने भूखे रहने पर भी किसी से भोजन नहीं माँगा। इस सुप्रसिद्ध पुरुष ने श्रीगोपाल के निमित्त चंदन का बोझा अपने सिर पर रखा। अपनी निजी सुख-सुविधा की परवाह न करके माधवेन्द्रपुरी एक मन चन्दन (लगभग ८२ पौंड) और बीस तोला (लगभग ८ औंस) कपूर गोपाल के शरीर में लेपने के लिए ले आये।

उनके लिए यही दिव्य आनन्द काफी था। चूँकि उड़ीसा प्रान्त से बाहर चन्दन ले जाने पर प्रतिबन्ध था, अतएव चुंगी अधिकारी पूरा स्टाक जब्त कर लेता था, किन्तु माधवेन्द्रपुरी ने उसे सरकार द्वारा दिया गया विमोचन पत्र दिखलाया जिससे वे कठिनाइयों से बच गये। माधवेन्द्रपुरी मुसलमान-शासित प्रांतों से होकर वृन्दावन की लम्बी यात्रा करते समय असंख्य संतरियों के होते हुए भी तनिक भी चिन्तित नहीं थे। यद्यपि माधवेन्द्रपुरी के पास एक छदाम भी नहीं था, किन्तु वे चुंगी अफसरों से तनिक भी भयभीत नहीं थे। उनका एकमात्र उत्साह गोपाल के लिए वृन्दावन तक चन्दन का बोझ ले चलने में था। उत्कट भगवत्प्रेम का यही स्वाभाविक परिणाम होता है। भक्त निजी सुविधाओं या विघ्नों पर विचार नहीं करता। वह सभी परिस्थितियों में भगवान् की सेवा करना चाहता है।

तात्पर्य : जिन लोगों में कृष्ण के लिए उत्कट प्रेम है वे अपनी असुविधाओं तथा विघ्नों की परवाह नहीं करते। ऐसे भक्तजन भगवान् या उनके प्रतिनिधि रूप गुरु का आदेश पालन करने के लिए कृतसंकल्प रहते हैं। यहाँ तक कि घोर संकट आ जाने पर भी वे परम संकल्प के साथ अविचलित भाव से आगे बढ़ते हैं। इससे सेवक का उत्कट प्रेम सिद्ध होता है।...कृष्ण का उत्कट प्रेमी असुविधा, अभाव, बाधा या दुख की परवाह नहीं करता।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ४.१८०-८६

गुरु के आदेश को पूरा करना कृष्णभावनामृत की अनुकूल रीति से सम्पन्नता का सार है

जहाँ तक सम्भव हो मनुष्य को गुरु के आदेश को पूरा करना होता है। इससे वह प्रगति कर सकेगा। यही कृष्णभावनामृत की उपयुक्त सम्पन्नता का सार है। मैं वृद्धावस्था में अमरीका आया हूँ और कृष्णभावनामृत की शिक्षा देने का प्रयास कर रहा हूँ, क्योंकि मेरे गुरु महाराज ने आदेश दिया था कि मैं इसे करूँ। यह मेरा कर्तव्य है। मैं यह नहीं जानता कि सफल हूँगा या विफल। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। यदि मैं आपके सामने वह प्रस्तुत कर सकूँ जो कुछ मैंने अपने गुरु से सुना है तो मेरा कर्तव्य पूरा हो सकता है। इसी को कृष्णभावनामृत की अनुकूल सम्पन्नता कहते हैं। जो लोग वास्तव में गम्भीर हैं उन्हें कृष्ण के प्रतिनिधि के माध्यम से कृष्ण

के आदेश को अपना जीवन एवं आत्मा समझना चाहिए। जो इस सिद्धान्त पर अटल रहता है उसकी प्रगति निश्चित है।

—आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान

शिष्य के लिए सिद्धि का मार्ग यही है कि वह गुरु के उपदेश के अनुसार कार्य करे

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती का भी यही उपदेश है कि यदि हम भगवान् के धाम को वापस जाना चाहते हैं तो हमें गुरु के आदेशों के अनुसार गम्भीरतापूर्वक कार्य करना चाहिए। सिद्धि का यही मार्ग है। सिद्धि प्राप्ति के विषय में तनिक भी चिन्ता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि जो गुरु के आदेशों का पालन करता है वह अवश्य ही सिद्धि प्राप्त करता है। हमारी एकमात्र चिन्ता यही होनी चाहिए कि गुरु के आदेश को कैसे पूरा किया जाय। गुरु अपने शिष्य को विशेष आदेश देने में दक्ष होता है और यदि शिष्य उस आदेश को कार्यरूप में परिणत कर देता है तो वही सिद्धि का मार्ग है।

—भागवत ४.८.७१

शिष्य को चाहिए कि सदैव गुरु के आदेश का चिन्तन करे और उसे पूरा करे

अनुवाद: जब प्राचीनबर्हि के सभी पुत्रों ने तपस्या करने के उद्देश्य से घर छोड़ दिया तो उन्हें भगवान् शिव मिले जिन्होंने अत्यन्त कृपा करके उन्हें परम सत्य के विषय में उपदेश दिया। प्राचीनबर्हि के पुत्रों ने उनके उपदेशों को अत्यन्त सावधानी तथा मनोयोग से सुना और जपते तथा पूजा करते हुए उनके विषय में ध्यान करने लगे।

तात्पर्य: यह स्पष्ट है कि तपस्या करने के लिए या किसी भी प्रकार की भक्ति के लिए गुरु द्वारा पथप्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ यह स्पष्ट उल्लेख है कि महाराज प्राचीनबर्हि के दसों पुत्रों को भगवान् शिव के प्रकट होने से यह कृपा प्राप्त हुई और जिन्होंने दयावश उन्हें तपस्या करने के विषय में उपदेश दिया। वास्तव में भगवान् शिव उन दसों के गुरु हो

गये और बदले में शिष्यों ने अनेक उपदेशों को इतनी गम्भीरता से ग्रहण किया कि मात्र उन पर ध्यान करने से (*ध्यायन्तः*) वे सिद्ध हो सके। यही सफलता का रहस्य है। दीक्षा ग्रहण करके तथा गुरु से आदेश प्राप्त करके शिष्य को बिना हिचक के गुरु के उपदेशों या आदेशों के विषय में ध्यान करना चाहिए और अपने आपको किसी अन्य वस्तु से विचलित नहीं होने देना चाहिए। यही श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का भी मत है जिन्होंने *भगवद्गीता* के एक श्लोक (*व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन* २.४१) की व्याख्या करते हुए इंगित किया है कि शिष्य के लिए गुरु ही जीवनाधार है। शिष्य भगवान् के धाम जा रहा है या नहीं इसकी परवाह न करके उसका पहला कर्तव्य है गुरु के आदेश का पालन करे। इस प्रकार शिष्य को गुरु के आदेश पर ध्यान धारण करना चाहिए। यही समग्र ध्यान है। उसे न केवल उस आदेश के विषय में ध्यान करना चाहिए अपितु उन साधनों की खोज भी करनी चाहिए जिनसे वह ठीक से उपासना कर सके और उसे पूरी कर सके।

—*भागवत* ४.२४.१५

शिष्य को चाहिए कि गुरु के आदेश को सम्पन्न करने को अपना प्राणाधार माने

श्रील रूपगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में निर्देश दिये हैं कि किस प्रकार प्रामाणिक गुरु ग्रहण किया जाय और उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। सर्वप्रथम इच्छुक व्यक्ति को प्रामाणिक गुरु की खोज करनी चाहिए और तब अत्यन्त उत्सुकता के साथ उपदेश प्राप्त करना चाहिए तथा तदनुसार कार्य करना चाहिए। यह दोतरफी सेवा है।...गुरु द्वारा उपदेश और शिष्य द्वारा उसका पालन—इस संयोग से समूची प्रणाली पूर्ण बन जाती है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *भगवद्गीता* के इस श्लोक—*व्यावसायात्मिका बुद्धिः* की व्याख्या में कहते हैं कि जो आत्मिक उन्नति चाहता है उसे चाहिए कि अपने गुरु से उपदेश प्राप्त करे कि उसका विशेष कार्य क्या है। उसे विशेष उपदेश को श्रद्धापूर्वक सम्पन्न करना चाहिए और उसी को अपना सर्वस्व मानना चाहिए। शिष्य का एकमात्र कर्तव्य है कि वह अपने गुरु से प्राप्त उपदेश का श्रद्धापूर्वक पालन करे। इसीसे उसे

सिद्धि मिलेगी। मनुष्य को गुरु के सन्देश को कानों से ग्रहण करने में सतर्क रहना चाहिए और उसे श्रद्धापूर्वक सम्पन्न करना चाहिए। इससे उसका जीवन सफल हो सकेगा।

—*भागवत* ३.२२.७

गुरु की शरण में जाने का अर्थ है कि वे जो कहें उसे स्वीकार करना

हमें गुरु की सेवा करनी होती है और आत्मसमर्पण करना होता है। ऐसा नहीं है कि किसी भी व्यक्ति को गुरु के रूप में स्वीकार किया जाय। गुरु को कृष्ण का प्रतिनिधि होना चाहिए तभी वह आत्मसमर्पण कर सकता है। समर्पण या शरण में जाने का अर्थ है कि जो भी गुरु कहे उसे स्वीकार करना। ऐसा नहीं है कि वह सोचे, ''मुझे गुरु के आदेश की परवाह नहीं। फिर भी मैं शिष्य हूँ।'' वास्तव में यह गुरु स्वीकार करना नहीं है। निस्सन्देह, इस तरह से गुरु बनाना एक फैशन बन चुका है किन्तु इससे किसी को लाभ होने वाला नहीं।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

दिव्य विज्ञान के गम्भीर छात्र को गुरु के वचनों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए और इस प्रकार सिद्ध बनना चाहिए

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, ''महाशय! मेरे गुरु मुझे महामूर्ख मानते थे अतएव उन्होंने यह कहकर एक तरह से मुझे दण्डित किया है कि ऐसा मूर्ख होने के कारण मुझमें वेदान्त का अध्ययन करने की कोई क्षमता नहीं है। अत: बदले में उन्होंने मुझे हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे कीर्तन प्रदान किया। मेरे गुरु ने मुझसे कहा, ''तुम इस हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करते जाओ यह तुम्हें सर्व-पूर्ण बना देगा।''

वस्तुत: चैतन्य महाप्रभु न तो मूर्ख थे न ही वेदान्त के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ।...वे तो यह शिक्षा देना चाह रहे थे कि दिव्य विज्ञान के गम्भीर छात्र को अपने गुरु के वचनों का पालन करना चाहिए। अपने गुरु की गणना के अनुसार श्रीचैतन्य महाप्रभु मूर्ख थे। इसलिए उन्होंने कहा कि श्रीचैतन्य वेदान्त का अध्ययन न करें, अपितु हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन को चालू रखें। श्रीचैतन्य ने इस आदेश का दृढ़ता से पालन किया। दूसरे शब्दों में, श्रीचैतन्य महाप्रभु

ने मायावादियों को प्रेरित किया कि प्रामाणिक गुरु के वचनों का दृढ़ता से पालन होना चाहिए। उनका पालन करने से मनुष्य सभी प्रकार से पूर्ण बनता है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु के आदेशों को दृढ़ता से पूरा करने के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए

अनुवाद: रघुनाथ दास चौबीस घण्टों में से बाईस घंटे हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने तथा भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने में बिताते थे। वे डेढ़ घंटे से भी कम समय खाने तथा सोने में बिताते और किसी किसी दिन तो वह भी सम्भव नहीं हो पाता था। उनके वैराग्य से सम्बन्धित कथाएँ अद्भुत हैं। उन्होंने जीवन भर अपनी जिह्वेन्द्रिय की तृप्ति नहीं होने दी। उन्होंने पहनने के लिए एक छोटे से फटे वस्त्र तथा लपेटने के लिए गुदड़ी के अतिरिक्त किसी वस्तु का स्पर्श नहीं किया। इस तरह उन्होंने कठोरतापूर्वक श्रीचैतन्य महाप्रभु की आज्ञा का पालन किया।

तात्पर्य: गुरु के आदेश का कठोरतापूर्वक पालन करना चाहिए। गुरु विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न आदेश देता है। श्रील चैतन्य महाप्रभु ने जीव गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को प्रचार करने का आदेश दिया और रघुनाथ दास गोस्वामी को संन्यास आश्रम के विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करने का आदेश दिया। छहो गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदेशों का कड़ाई से पालन करते थे। भक्ति में उन्नति का यही नियम है। गुरु से आदेश मिलने पर मनुष्य को कड़ाई से उसका पालन करने का प्रयास करना चाहिए। यही सफलता की विधि है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* अन्त्य ६.३१०-१२

गुरु के उपदेशों का पालन करने से मनुष्य सारे पापपूर्ण फलों से मुक्त हो जाता है

अनुवाद: नारद मुनि ने शिकारी को आश्वस्त किया, "यदि तुम मेरे उपदेशों को ध्यान से सुनोगे तो मैं तुम्हारे मोक्ष का उपाय ढूँढ निकालूँगा।"

तात्पर्य: *गौरांगेर भक्तगणे जने जने शक्ति धरे*। इस गीत का सारांश यह है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्तगण बड़े शक्तिशाली होते हैं और इनमें से एक एक भक्त सारे संसार का उद्धार कर सकता है। तो फिर नारद मुनि

के विषय में क्या कहा जाय? जो कोई नारद मुनि के उपदेशों का पालन करता है वह कितने भी पापकर्मों के फलों से मुक्त किया जा सकता है। यही इसकी विधि है। मनुष्य को चाहिए कि गुरु के उपदेशों का पालन करे, तब वह अवश्य ही सारे पापकर्मों के फलों से मुक्त हो जायेगा। सफलता का यही रहस्य है। *यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ*। यदि किसी को कृष्ण तथा गुरु पर अटल विश्वास है तो इसका परिणाम *तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः* होगा—अर्थात् ऐसे व्यक्ति के समक्ष सारे शास्त्रों के निष्कर्ष प्रकट हो जाएँगे। कृष्ण का शुद्ध भक्त भी नारद मुनि जैसी ही अपेक्षा कर सकता है। वह कहता है, "यदि तुम मेरे आदेशों को मानोगे तो मैं तुम्हारे मोक्ष का जिम्मा लेता हूँ।" नारद जैसा शुद्ध भक्त किसी भी पापी व्यक्ति को आश्वासन दे सकता है, क्योंकि वह भगवत्कृपा से ऐसे पापी व्यक्ति का, जो निर्दिष्ट नियमों का पालन करता हो, उद्धार करने के लिए शक्त्याविष्ट होता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.२५५

गुरु के आदेश का पालन किया जाना चाहिए

अनुवाद: सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "गुरु का आदेश अत्यन्त बलवान होता है और उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। यही शास्त्रों का आदेश है। अपने पिता की आज्ञा पाकर परशुराम ने अपनी माता रेणुका को मार डाला मानो वह कोई शत्रु रही हो। भगवान् रामचन्द्र का छोटा भाई लक्ष्मण तुरन्त अपने बड़े भाई की सेवा में लगकर उनके आदेशों का पालन करने लगा। गुरु की आज्ञा का बिना किसी विचार के पालन किया जाना चाहिए। (*रघुवंश* १४.४६)।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १०.१४४-४५

आध्यात्मिक जीवन का रहस्य है गुरु तथा कृष्ण में श्रद्धा

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा, "महोदय! आप ऐसे भावावेश में क्यों हैं? आपको *भगवद्गीता* के किस अंश से ऐसा दिव्य सुख प्राप्त होता है?" उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैं गँवार हूँ, अतएव शब्दों का अर्थ नहीं जानता। मैं कभी *भगवद्गीता* को शुद्ध शुद्ध बाँचता हूँ तो कभी अशुद्ध, किन्तु ऐसा करके मैं अपने गुरु के आदेश का पालन कर रहा हूँ।"

तात्पर्य: यह ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जो *भगवद्गीता* का गलत पाठ करते हुए भी महाप्रभु का ध्यान आकृष्ट करने में सफल हो सका। उसके आध्यात्मिक कृत्य शब्दों के उच्चारण जैसी भौतिक वस्तुओं पर आश्रित नहीं थे प्रत्युत उसकी सफलता अपने गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करने पर आश्रित थी। ...जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का पालन करते हैं उन्हें *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* के शब्दार्थ प्रकट होते हैं। इसी तरह जिसे भगवान् में समान श्रद्धा होती है उसे भी शब्दार्थ प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण तथा गुरु दोनों के प्रति श्रद्धा ही आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ९.९७-९८

इस्कान की सफलता गुरु के आदेशों में दृढ श्रद्धा के सिद्धान्त पर आधारित है

एक आचार्य के शिष्यों के बीच का सा विरोध गौड़ीय मठ के सदस्यों में भी पाया जाता है। प्रारम्भ में ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद की उपस्थिति में सारे शिष्यों में मतैक्य था, किन्तु उनके तिरोभाव के तुरन्त बाद उनमें विरोध शुरू हो गया। एक दल तो भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के आदेशों का पालन करता रहा, किन्तु दूसरे दल ने उनकी इच्छापूर्ति के लिए अपना निजी मत गढ़ लिया।...इसलिए हम किसी दल से सम्बद्ध नहीं हैं। लेकिन सम्पत्ति बाँटने में व्यस्त रहने के कारण प्रचार कार्य बन्द कर दिया था इसलिए हमने समस्त पूर्ववर्ती आचार्यों के संरक्षण में चैतन्य सम्प्रदाय का विश्वभर में प्रचार करने के लिए भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर तथा भक्ति विनोद ठाकुर के व्रत को अपनाया और हम देख रहे हैं कि हमारा अकिंचन प्रयास सफल रहा है। हमने उन सिद्धान्तों का पालन किया है जिन्हें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *भगवद्गीता* के *व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेह कुरुनन्दन श्लोक की टीका में बताया है। इस आदेश के अनुसार शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के आदेशों का कड़ाई से पालन करे। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति की सफलता का रहस्य शिष्य द्वारा गुरु के आदेशों में दृढ़ विश्वास रखना है। वेदों द्वारा इसकी पुष्टि हुई है*—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:॥

"जो व्यक्ति गुरु तथा भगवान् के वचनों पर अटूट श्रद्धा रखता है उसे वैदिक ज्ञान प्राप्त होता है।" कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार इसी सिद्धान्त के अनुसार किया जा रहा है। इसलिए अनेक विरोधी असुरों के व्यवधानों के बावजूद हमारा प्रचार कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है, क्योंकि हमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से सकारात्मक सहायता मिल रही है। मनुष्य को चाहिए कि हर काम का मूल्यांकन उसके फल से करे। स्वत: नियुक्त आचार्य दल के सदस्य, जिन्होंने गौड़ीय मठ की सम्पत्ति हथियाई थी सन्तुष्ट तो हैं, किन्तु वे प्रचार कार्य में कोई प्रगति नहीं कर सके। अतएव उनके कार्यों के अनुसार उन्हें असार या व्यर्थ कहा जायेगा, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कान) की सफलता गुरु तथा गौरांग की अनुगामिनी होने से दिन प्रतिदिन सारे संसार में बढ़ती जा रही है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती चाहते थे कि अधिक से अधिक पुस्तकें छाप कर उन्हें विश्वभर में वितरित किया जाय। हमने इस कार्य को करने का यथाशक्ति प्रयास किया है और हमें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १२.८

जो शिष्य गुरु के आदेश का पालन नहीं करते वे व्यर्थ हैं, क्योंकि उनकी कोई सत्ता नहीं है

अनुवाद: प्रारम्भ में अद्वैत आचार्य के सारे अनुयायी एक ही मत को मानते थे, किन्तु बाद में वे दैवी प्रमाण से दो भिन्न-भिन्न मतों का अनुसरण करने लगे। कुछ शिष्यों ने आचार्य के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया और कुछ दैवीमाया के वशीभूत होकर अपना मत गढ़ने के कारण विपथ हो गये। आध्यात्मिक जीवन में गुरु का आदेश मुख्य है। जो कोई गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह तुरन्त व्यर्थ (असार) हो जाता है।

तात्पर्य: *दैवी कारण* शब्द इंगित करते हैं कि दैवी प्रभाव से यानी ईश्वर की इच्छा से अद्वैत आचार्य के अनुयायी दो दलों में विभक्त हो गये। एक ही आचार्य के शिष्यों के मध्य जैसा विरोध गौड़ीय मठ के सदस्यों में भी

पाया जाता है। प्रारम्भ में ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद की उपस्थिति में सारे शिष्यों में मतैक्य था, किन्तु उनके तिरोभाव के तुरन्त बाद उनमें विरोध शुरू हो गया। एक दल तो भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के आदेशों का पालन करता रहा, किन्तु दूसरे दल में उनकी इच्छापूर्ति के लिए अपना निजी मत गढ़ लिया। भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने प्रयाण के समय अपने सारे शिष्यों से एक परिचालक समिति बनाकर मिल करके प्रचारकार्य करने की अपील की थी। उन्होंने किसी विशेष व्यक्ति को अगला आचार्य बनने का आदेश नहीं दिया था, किन्तु उनके प्रयाण करते ही उनके प्रमुख सचिवों ने बिना अधिकार के आचार्य पद हथियाने की योजना बना डाली और इस बात को लेकर वे दो दलों में बँट गये कि अगला आचार्य कौन हो। फलतः दोनों ही दल असार अर्थात् व्यर्थ थे, क्योंकि अपने गुरु के आदेश का उल्लंघन करने के कारण उनके पास कोई अधिकार नहीं था। यद्यपि गुरु का आदेश था कि परिचालक समिति बनाई जाय और गौडीय मठ का प्रचार कार्य सम्पन्न किया जाय फिर भी दोनों अवैध दलों में मुकदमा चला पड़ा जो ४० वर्षों बाद भी बिना किसी फैसले के चल रहा है।

...स्वतः नियुक्त आचार्य दल के सदस्य, जिन्होंने गौडीय मठ की सम्पत्ति हथियाई थी संतुष्ट तो हैं किन्तु वे प्रचार कार्य में कोई प्रगति नहीं कर सके। अतएव उनके कार्यों के अनुसार उन्हें असार या व्यर्थ कहा जाएगा।...जब शिष्यगण गुरु के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं करते तो तुरन्त दो मत हो जाते हैं। किन्तु गुरु के मत से भिन्न कोई भी मत व्यर्थ या असार होता है। आध्यात्मिक उन्नति में भौतिकतावादी मनमाने विचारों को प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। यही विपथन है। भौतिक विचारों में आध्यात्मिक उन्नति सम्मिलित करने के लिए कोई स्थान नहीं है।...जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का कठोरता से पालन करते हैं वे भगवान् की इच्छा को पूरा करने में उपयोगी होते हैं, किन्तु जो गुरु के आदेशों से विपथ होते हैं वे असार हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १२.८-१०

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने दृष्टान्त से शिक्षा दी कि शिष्य को बिना

किसी विपथग के गुरु के आदेशों को पूरा करना चाहिए

अनुवाद: उन्होंने कहा, "तुम मूर्ख हो। तुम वेदान्त दर्शन का अध्ययन करने के लायक नहीं हो, अतएव तुम्हें चाहिए कि तुम कृष्ण नाम का सदैव जप करो।...चूँकि मुझे अपने गुरु से यह आदेश मिला है अतएव मैं पवित्र नाम का सदैव जप करता हूँ।...

तात्पर्य: इस प्रसंग में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज टीका करते हैं "यदि कोई अपने गुरु के मुख से सुने गये शब्दों के अनुसार कर्म करता है तो वह पूरी तरह सफल होता है।" गुरु के शब्दों को ग्रहण करना *श्रौतवाक्य* कहलाता है जिससे इंगित होता है कि शिष्य को अविचलित भाव से गुरु के आदेशों का पालन करना चाहिए। इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टिप्पणी है कि शिष्य को चाहिए कि गुरु के वचनों को प्राणाधार माने। श्रीचैतन्य महाप्रभु इसकी पुष्टि यह कहकर करते हैं कि चूँकि मेरे गुरु ने मुझसे श्रीकृष्ण के नाम के कीर्तन का आदेश दिया था इसलिए मैं सदैव हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता हूँ।...यद्यपि श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण हैं, समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु हैं फिर भी उन्होंने शिष्य का पद इसलिए स्वीकार किया जिससे वे आदर्श प्रस्तुत कर सकें कि किस भाँति भक्त को अपने गुरु के आदेश का पालन निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते हुए करना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ७.७२-७७

गुरु के आदेशों को पूरा करने तथा उसे प्रसन्न करने पर शिष्य को असाधारण शक्ति प्रदान की जा सकती है

अनुवाद: देवताओं के गुरु बृहस्पति ने कहा, "हे इन्द्र! मैं वह कारण जानता हूँ जिससे तुम्हारा शत्रु इतना शक्तिशाली बन गया है। भगवान् की ब्राह्मण सन्तानों ने उनके शिष्य बलि महाराज से प्रसन्न होकर उन्हें ऐसी अद्वितीय शक्ति प्रदान की है।"

तात्पर्य: देवताओं के गुरु बृहस्पति ने इन्द्र को बताया, "सामान्यतया बलि

तथा उसकी सेना को ऐसी शक्ति नहीं मिली होती किन्तु ऐसा लगता है कि भृगुमुनि की ब्राह्मण सन्तानों ने बलि महाराज से प्रसन्न होकर उन्हें यह आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की है।" दूसरे शब्दों में, बृहस्पति ने इन्द्र को यह बतलाया कि बलि महाराज का तेज उनका अपना नहीं, अपितु उनके पूज्य गुरु शुक्राचार्य का है। हम नित्य ही स्तुति करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि*। गुरु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को अद्वितीय शक्ति, विशेषतया आध्यात्मिक उन्नति, प्राप्त होती है। गुरु के आशीष ऐसी उन्नति के लिए किये जाने वाले निजी प्रयास से अधिक शक्तिशाली होते हैं। अतएव नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—

गुरु-मुख-पद्म-वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य
आर ना करिह मने आशा

विशेषतया आध्यात्मिक उन्नति के लिए मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु के आदेशों का पालन करे। इस प्रकार परम्परा पद्धति से मनुष्य को ईश्वर से प्राप्त होने वाली मूल आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हो सकती है। (*एवं परम्पराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*)।

—*भागवत ८.१५.२८*

शिष्य को चाहिए कि गुरु के आदेशों से हटे या उसका उल्लंघन किये बिना उन्हें पूरा करे

गुरु से प्राप्त आदेशों का तुरन्त पालन करना चाहिए। गुरु के आदेशों से न तो हटना चाहिए, न ही उनका उल्लंघन करना चाहिए। केवल पुस्तकें पढ़ने में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए, अपितु उसी के साथ गुरु के आदेशों को पूरा करना चाहिए।

—*भागवत ५.५.१४*

यदि शिष्य गुरु के आदेशों का कड़ाई से पालन करता है तो वह बिना कठिनाई के भगवान् का दर्शन करेगा:

जब कोई अपने गुरु के सन्देश का अनुगमन करने के लिए उद्यत रहता है तो उसका संकल्प श्रीभगवान् का दर्शन करने के तुल्य होता है। जैसा

कि पहले कहा जा चुका है इसका अर्थ हुआ गुरु के आदेश से भगवान् से भेंट। यह *वाणी सेवा* कहलाती है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *भगवद्गीता* के *व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन* श्लोक (२.४१) की टीका करते हुए कहते हैं कि मनुष्य को चाहिए कि गुरु के वचनों की सेवा करे। शिष्य को चाहिए कि जो गुरु आज्ञा दे उस पर दृढ़ रहे। इसी दिशा में चलकर वह श्रीभगवान् का दर्शन करता है।...यदि वह अपने गुरु द्वारा बनाये गये नियमों में दृढ़ रहता है तो वह किसी न किसी तरह भगवान् की संगति प्राप्त करता है। चूँकि भगवान् हृदय में स्थित हैं, अत: वे निष्ठावान् शिष्य को अन्त:करण से उपदेश दे सकते हैं।...निष्कर्ष यह निकला कि यदि शिष्य अपने गुरु के सन्देश को कार्य रूप देना चाहता है तो वह तुरन्त वाणी या वपु: से परमेश्वर की संगति प्राप्त करता है। भगवान् के दर्शन का यही रहस्य है। भगवान् को वृन्दावन के किसी कुंज में विहार करते हुए देखने की अपेक्षा यदि कोई अपने गुरु के वचनों पर दृढ़ रहे तो वह बिना किसी कठिनाई के परमेश्वर का दर्शन कर सकता है।

—*भागवत* ४.२८.५१

शिष्य किस तरह मुक्तावस्था में रहा आ सकता है—गुरु के आदेश का पालन करने से

मनुष्य को भगवान् विष्णु के आदेश का पालन करना होता है चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में उनसे प्राप्त हो या उनके प्रामामिक प्रतिनिधि गुरु के माध्यम से हो।...प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह भगवान् कृष्ण या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि से आदेश प्राप्त करे और इन आदेशों को प्राणों से भी प्रिय माने। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि मनुष्य को इसकी तनिक भी परवाह नहीं करनी चाहिए कि वह मुक्त हो रहा है या नहीं। उसे तो अपने गुरु से प्राप्त आदेशों का पालन करते रहना चाहिए। यदि वह गुरु के आदेश के पालन के सिद्धान्त पर दृढ़ रहता है तो वह सदैव मुक्त पद पर बना रहेगा।

—*भागवत* ४.२०.१३

जो शिष्य अपने गुरु के आदेश को प्राणों के तुल्य मानता है वह सिद्ध

बन जाता है

अनुवाद: पुत्रों को अपने पिता की ऐसी ही सेवा करनी चाहिए। पुत्र को चाहिए कि अपने पिता या गुरु के आदेश का पालन सम्मानपूर्वक यह कहते हुए करे, "जो आज्ञा।"

तात्पर्य: पुत्र अथवा शिष्य को चाहिए कि वह बिना झिझक के अपने पिता या गुरु के वचनों को माने। वे जो कुछ भी कहें उसे बिना तर्क के "हाँ" कर दे। ऐसा कोई अवसर नहीं आना चाहिए जब शिष्य या पुत्र यह कहे "यह उचित नहीं है, मैं इसे नहीं कर सकता।" यदि वह यह कहता है तो वह पतित हो चुका है।...गुरु की आज्ञा शिष्यों के लिए जीवन और आत्मा के तुल्य है। जिस प्रकार मनुष्य शरीर से आत्मा को पृथक् नहीं कर सकता उसी प्रकार शिष्य जीवन से गुरु-आज्ञा को दूर नहीं कर सकता। यदि शिष्य इस प्रकार से गुरु उपदेश का पालन करता है तो वह अवश्य सिद्ध बनेगा। उपनिषदों में इसकी पुष्टि हुई है कि जो लोग भगवान् तथा अपने गुरु में श्रद्धा रखते हैं उन्हें वैदिक शिक्षा स्वतः प्राप्त हो जाती है। भौतिक दृष्टि से कोई भले ही अनपढ़ हो किन्तु यदि ईश्वर तथा गुरु पर उसकी श्रद्धा है तो उसे शास्त्रों का अर्थ तुरन्त प्रकट हो जाता है।

—*भागवत* ३.२४.१३

जीवन-सिद्धि प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कृष्ण तथा उनके प्रतिनिधि गुरु के निर्देश का पालन करना चाहिए

भगवान् निर्देश देते हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है और मनुष्य को जीवन-सिद्धि पाने के लिए कृष्णभावनामृत में कर्म करना होता है। कोई व्यक्ति अपने भाग्य को उस तरह सुनिश्चित नहीं कर सकता जिस तरह भगवान् कर सकते हैं, अतएव सर्वोत्तम उपाय है कि भगवान् से निर्देश प्राप्त किया जाय और कर्म किया जाय। किसी को भी भगवान् के आदेश की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उसे बिना हिचक के भगवान् के आदेश का पालन करना चाहिए। इससे वह सभी परिस्थितियों में सुरक्षित रह सकेगा।

—*भगवद्गीता* १८.५८

भक्ति में मनुष्य को अपने गुरु की कृपा के अनुसार उसके आदेशों को धैर्यपूर्वक पूरा करना चाहिए

भक्ति के इन कार्यकलापों को धैर्यपूर्वक सम्पन्न करना चाहिए। मनुष्य को कृष्णभावनामृत में अधीर नहीं होना चाहिए। निस्सन्देह, यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन अकेले ही चालू किया गया था और शुरू में कोई अनुक्रिया नहीं हुई, किन्तु हम अपने भक्तिमय कार्यकलाप धैर्यपूर्वक करते रहे, अत: लोग इस आन्दोलन की महत्ता समझने लगे और अब वे उत्सुकतापूर्वक उसमें भाग ले रहे हैं। भक्ति करते समय अधीर नहीं होना चाहिए, अपितु गुरु से आदेश प्राप्त करके उन्हें धैयपूर्वक गुरु तथा कृष्ण की कृपा के अनुसार पूरा करना चाहिए।

—*उपदेशामृत* श्लोक ३

शिष्य तभी गुरु के आदेशों को प्राप्त करके उन्हें पूरा कर सकता है जब वह अपने को शारीरिक कार्यकलापों से पृथक् रखता है

भगवान् विष्णु ने पृथु महाराज को राजा के रूप में दैहिक कार्यों से अपने को विलग रखने और सदैव भगवान् की सेवा में संलग्न रह कर मुक्ति पद पर स्थित रहने का आदेश दिया था।...यदि मनुष्य अपने को दैहिक कार्यों से पृथक् रखता है तो वह भगवान् के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रह सकता है और उन आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन कर सकता है।...यदि हम गुरु के उपदेशों का पालन करें और भगवान् की भक्ति करें तो हम शारीरिक और भौतिक कर्मों के कल्मष से मुक्त रहकर जीवन को सफल बना सकते हैं।

—*भागवत* ४.२०.१३

इसकी परीक्षा करने के लिए कौन उपयोगी शिष्य है उनके द्वारा गुरु की इच्छा को पूरी करने के लिए किये गये उनके कार्यों से मापा जाना चाहिए

अनुवाद: पहले धान के साथ पुआल मिला रहता है और धान को पुआल से विलग करने के लिए फटकना पड़ता है।

तात्पर्य: कृष्णदास कविराज द्वारा दिया गया यह उदाहरण अत्यन्त उपयुक्त है। गौडीय मठ के सदस्यों के सम्बन्ध में ऐसी ही विधि प्रयुक्त की जा सकती है। भक्ति वेदान्त सरस्वती ठाकुर के तमाम शिष्य हैं किन्तु यह निर्णय करने के लिए कि उनका वास्तव में कौन शिष्य है, व्यर्थ में से उपयोगी को निकालने के लिए ऐसे शिष्यों द्वारा गुरु की इच्छा को पूरा करने के लिए उसके द्वारा किये गये कार्यों को मापना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १२.१२

शिष्य को चाहिए कि गुरु की आज्ञा माने तथा उसे तुष्ट करे

कृष्णभावनामृत में सेवा गुरु के समर्थ निर्देशन में ही ठीक से हो पाती है, क्योंकि गुरु कृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है जो शिष्य के स्वभाव से परिचित होता है और उसे कृष्णभावनामृत की दिशा में कार्य करने के लिए मार्गदर्शन कर सकता है। अतः कृष्णभावनामृत में दक्ष होने के लिए मनुष्य को दृढ़ता से कर्म करना होगा और कृष्ण के प्रतिनिधि की आज्ञा का पालन करना होगा। उसे गुरु के उपदेशों को जीवन का लक्ष्य मानना होगा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर गुरु की प्रसिद्ध प्रार्थना में उपदेश देते हैं—

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसंध्यं वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

"गुरु की तुष्टि से भगवान् भी प्रसन्न होते हैं। गुरु को प्रसन्न किये बिना कृष्णभावनामृत के स्तर तक पहुँच पाने की कोई सम्भावना नहीं रहती। अतः मुझे उनका चिन्तन करना चाहिए और दिन में तीन बार उनकी कृपा की याचना करनी चाहिए और अपने गुरु को सादर नमस्कार करना चाहिए।"

—*भगवद्गीता* २.४१

मनुष्य को नियमाग्रह से बचना चाहिए और प्रामाणिक गुरु के निर्देशानुसार कर्म करना चाहिए जो काल तथा परिस्थिति के अनुसार सब कुछ ठीक कर देता है

कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रसार करने के लिए देश, काल तथा पात्र

के सन्दर्भ में वैराग्य की सम्भावना सीखनी होगी। पाश्चात्य जगत में कृष्णभावनामृत के इच्छुक पात्र को संसार से वैराग्य के विषय में बतलाया जाना चाहिए। आचार्य (गुरु) को देश, काल तथा पात्र पर विचार करना होगा। उसे नियमाग्रह से बचना होगा, अर्थात् असम्भव कार्य करने के लिए नहीं कहना चाहिए। हो सकता है कि जो एक देश में सम्भव हो वह दूसरे देश में सम्भव न हो। आचार्य का कर्तव्य है कि वह भक्ति के सार को ग्रहण करे। जहाँ तक *युक्त वैराग्य* का प्रश्न है उसमें यत्रतत्र थोड़ा बहुत परिवर्तन हो सकता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने शुष्क वैराग्य का निषेध किया है और हमने भी अपने गुरु भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर गोस्वामी से यही सीखा है। भक्ति के सार को ही ग्रहण करना चाहिए, बाह्य साज-सामग्री को नहीं।...यदि वैष्णव अपने प्रामाणिक गुरु के द्वारा बताये गये विधि-विधानों का पालन करता है तो वह तुरन्त शुद्ध हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि भारत में जिन विधि-विधानों का पालन किया जा रहा हो, वे उसी रूप में यूरोप, अमरीका या अन्य पाश्चात्य देशों में हों। बिना प्रभाव के कोरा अनुकरण *नियमाग्रह* कहलाता है। विधि-विधानों का पालन न करके फिजूलखर्ची के साथ जीवन बिताना भी नियमाग्रह है। *नियमाग्रह* दो शब्दों से बना है—नियम तथा आग्रह जिनका अर्थ है "नियमों की उत्सुकता।" *अग्रह* का अर्थ है "स्वीकार न करना।" न तो हमें बिना प्रभाव वाले विधि-विधानों का पालन करना चाहिए, न ही उन्हें स्वीकार करने से मुकरना चाहिए। देश, काल तथा पात्र के अनुसार विशेष विधि के पालन किये जाने की आवश्यकता होती है। हमें गुरु का आदेश प्राप्त किये बिना अनुकरण नहीं करना चाहिए। यहाँ जिस सिद्धान्त की संस्तुति की गई है वह है—*शुष्कवैराग्यज्ञान सब निषेधिल।* यह श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा भक्ति सम्प्रदाय का उदार प्रदर्शन है। हमें गुरु का आदेश प्राप्त किये बिना कोई भी नई बात मनमाने ढंग से चालू नहीं करनी चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २३.१०५

कृष्ण तथा गुरु के आदेश को पूरा करने से कृष्ण द्वारा सारी आवश्यकताएँ

स्वतः प्रदान की जाती है

जैसा कि *भगवद्गीता* में (१३.३) कहा गया है—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत*। जीवात्माएँ अपने अपने शरीर के स्वामी हैं किन्तु भगवान् सभी शरीरों के स्वामी हैं। चूँकि वे हर एक के शरीर के साक्षी हैं अतएव उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। वे जानते हैं कि हमें क्या करना चाहिए। अतएव हमारा कर्तव्य है कि गुरु के निर्देशन में निष्ठापूर्वक भक्ति करें। भक्ति करते समय हमें जो भी चाहिए उसकी पूर्ति कृष्ण करेंगे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हमें कृष्ण तथा गुरु के आदेशों को पूरा करना होता है। तब हमारी सारी आवश्यकताएँ हमारे न माँगने पर भी कृष्ण द्वारा पूरी कर दी जाती हैं।

—*भागवत* ८.६.१४

गुरु बनाने वाले अनेक लोग, जब गुरु सकाम कर्मों को त्यागने तथा भक्ति में पूर्णतया संलग्न होने का आदेश देता है तो हिचकिचाते हैं

श्रील नारद मुनि राजा बर्हिष्मान् के गुरु की भूमिका अदा कर रहे हैं। यह तो नारद की आन्तरिक इच्छा थी जिससे कि राजा उनके उपदेशों के कारण तुरन्त सारे सकाम कर्मों को त्याग कर भक्ति ग्रहण कर लेगा। यद्यपि राजा हर बात को समझता था, किन्तु तिस पर भी वह अपने काम-काज छोड़ने को तैयार न था....अधिकांश लोगों की यही स्थिति होती है। वे गुरु स्वीकार करके उससे सुनते हैं और जब गुरु इंगित करता है कि वे घर त्याग दें तथा भक्ति में पूरी तरह लग जायँ तो वे हिचकिचाते हैं। गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को तब तक शिक्षा देता रहे जब तक उसकी समझ में यह न आ जाय कि यह भौतिकतावादी जीवन शैली यानी सकाम कर्म तनिक भी लाभप्रद नहीं हैं।

—*भागवत* ४.२९.५२

यह तो गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को शिक्षा दे कि किस तरह भौतिकतावादी जीवन को त्यागना चाहिए और शिष्य का कर्तव्य है कि वैसा ही करे

अनुवाद: शुकदेव गोस्वामी ने कहा: हे राजन्! नारद मुनि के उपदेश सुन लेने के अनन्तर प्रजापति दक्ष के पुत्र हर्यश्वगण पूर्णतया आश्वस्त हो गये।

उन सबों ने नारद मुनि के उपदेश पर विश्वास कर लिया और सभी एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे। उनको अपना गुरु मानकर उन्होंने उन महामुनि की परिक्रमा की और उस पथ पर चल पड़े जो पुनः इस भौतिक जगत में वापस नहीं लाता।

तात्पर्य: इस श्लोक से हम दीक्षा का अर्थ तथा शिष्य और गुरु के कर्तव्यों को समझ सकते हैं। गुरु अपने शिष्य को कभी यह उपदेश नहीं देता, "मुझसे मंत्र लो, मुझे कुछ रुपये दो, योग्याभ्यास करते हुए तुम भौतिक जगत् में पूर्ण दक्ष बन जाओगे।" यह गुरु का कर्तव्य नहीं है। इस स्थान पर गुरु अपने शिष्य को सिखलाता है कि भौतिक जीवन का परित्याग किस प्रकार किया जाय और शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु के उपदेशों को आत्मसात् करे और अन्ततः उस पथ का पथिक बने जो परमधाम को ले जाता है और जहाँ से कोई पुनः इस भौतिक जगत् में लौट कर नहीं आता।...हर्यश्वों के भौतिकतावादी पिता ने उन्हें सन्तान उत्पन्न करने का उपदेश दिया था परन्तु नारद मुनि की बातों के कारण उन्होंने अपने पिता की उस सीख पर ध्यान नहीं दिया। नारद मुनि ने उनके गुरु रूप में उन्हें शास्त्रीय उपदेश दिये कि वे इस भौतिक संसार को छोड़ दें। उन्होंने भी प्रामाणिक शिष्यों के समान उनके उपदेश का अनुसरण किया।

—*भागवत* ६.५.२१

भक्ति का अर्थ है कि पूर्ववर्ती आचार्यों की स्वीकृति के बिना कोई स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ भी न करे

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है "हे प्रभु! मुझे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा बताई गई अपनी दिव्य प्रेमाभक्ति में लगावें और मुझे शुद्धभक्तों की संगति में रहने दें। यही जन्म-जन्मान्तर अभिलाषा है।" दूसरे शब्दों में, भक्त को इसकी अधिक परवाह नहीं रहती है कि वह मुक्त है या नहीं, किन्तु वह एकमात्र भक्ति की अधिक परवाह करता है। भक्ति का अर्थ है कि पूर्ववर्ती आचार्यों की स्वीकृति के बिना कोई कुछ भी न करे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के कार्यकलाप श्रील रूपगोस्वामी आदि पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा निर्देशित हैं। भक्तों की संगति में इन सिद्धान्तों का पालन करते हुए भक्त

अपनी दिव्य स्थिति को बनाये रख सकता है।

—*भगवान् लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण*

प्रामाणिक गुरु के आदेशों का पालन इन्द्रियों का वास्तविक नियन्त्रण है

इन्द्रियों को नियन्त्रित करने का अर्थ है उन्हें भगवान् की दिव्य सेवा में लगाना। भगवान् का आदेश प्रामाणिक गुरु के माध्यम से परम्परा में अवतरित होता है और इस तरह प्रामाणिक गुरु के आदेश को पूरा करना ही इन्द्रियों का वास्तविक नियन्त्रण है।

—*भागवत* २.९.८

गुरु के निर्देशों का पालन किये बिना कोई अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता

कभी-कभी लोग गुरु बनाने में लापरवाही बरतते हैं और वे योग्याभ्यास द्वारा आत्मसाक्षात्कार के लिए उद्योग करते हैं, किन्तु इसमें असफल होने वालों के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, यहाँ तक कि विश्वामित्र जैसे योगी असफल हुए। *भगवद्गीता* में अर्जुन ने कहा कि मन को वश में करना उतना ही अव्यावहारिक है जितना कि प्रवहमान गंगा को रोकना। कभी कभी मन की उपमा उन्मत्त हाथी से दी जाती है। गुरु के निर्देश का पालन किये बिना कोई व्यक्ति अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, यदि कोई योग्याभ्यास करता है और प्रामाणिक गुरु नहीं बनाता तो वह निश्चित रूप से असफल होगा। वह व्यर्थ ही अपना समय गँवाएगा।

—*लीला पुरुषोत्तम कृष्ण*

शुद्धभक्त के सरल उपदेशों का पालन करने वाला मोक्ष के द्वार को खुला ही पाता है

शुद्धभक्त द्वारा अपने शिष्य को दिये जाने वाले उपदेश अत्यन्त सरल होते हैं। किसी को भी शुद्धभक्त के पदचिन्हों का अनुगमन करने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं होता। जो कोई भी मान्य भागवद्भक्तों यथा ब्रह्मा,

शिव, कुमारगण, मनु, कपिल, प्रह्लाद, जनक, शुकदेव गोस्वामी, यमराज आदि की परम्परा का अनुगमन करता है वह मोक्ष के द्वार को खुला पाता है।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

आध्यात्मिक विज्ञान में प्रगति करने का उपाय है गुरु के वचनों को स्वीकार करना

अनुवाद: राजा ने कहा, "हे भट्टाचार्य! मैं जानता हूँ कि आप अत्यन्त विद्वान तथा अनुभवी व्यक्ति हैं। अतएव जब आप श्रीचैतन्य महाप्रभु को भगवान् कृष्ण कहते हैं तो मैं इस सत्य को मान लेता हूँ।"

तात्पर्य: आध्यात्मिक विज्ञान में आगे बढ़ने का यही उपाय है। मनुष्य को चाहिए कि वह आचार्य या गुरु के शब्दों को मान ले जिससे कि आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग साफ हो सके। सफलता का यही रहस्य है। हाँ, गुरु को ऐसा शुद्ध भक्त होना चाहिए जो पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेशों का बिना किसी विचलन के दृढ़ता से पालन करने वाला हो। गुरु जो भी कहे, उसे शिष्य को स्वीकार करना चाहिए। तभी सफलता निश्चित होती है। और यही वैदिक पद्धति है।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य १०.१७*

ज्योंही शिष्य गुरु के आदेशों की उपेक्षा करते हुए स्वतन्त्र रूप से सोचता है वह असफल होता है

किसी भी प्रकार की उन्नति के लिए, विशेषतया आध्यात्मिक जीवन में, प्रामाणिक गुरु के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करना होता है। अदिति ने ऐसा किया। उन्होंने अपने पति तथा गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया। वैदिक आदेशों में पुष्टि हुई है—*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ*। मनुष्य को गुरु पर पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि आध्यात्मिक जीवन की प्रगति में गुरु सहायक होता है। जब शिष्य स्वतन्त्र रूप से सोचता है और गुरु के आदेशों की परवाह नहीं करता तो वह असफल होता है। (*यस्यप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*)

—*भागवत ८.१७.१*

शिष्य को गुरु का आज्ञापालक होना चाहिए

अनुवाद: ऋषि मैत्रेय ने कहा: हे विदुर! अपनी साधु प्रकृति के कारण प्राचीनबर्हि के सभी पुत्रों ने अपने पिता के वचनों को शिरोधार्य किया और पिता की आज्ञा पूरी करने के उद्देश्य से पश्चिम दिशा की ओर चले गये।

तात्पर्य: इस श्लोक में *साधवः* (पवित्र या सदाचारी) शब्द आज की परिस्थिति में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह *साधु* शब्द से निकला है। पूर्ण साधु वह है जो सदैव भगवान् की भक्ति में लगा रहता है। प्राचीनबर्हि के पुत्रों को *साधवः* कहा गया है, क्योंकि वे पिता के आज्ञाकारी थे। पिता, राजा तथा गुरु को भगवान् का प्रतिनिधि माना जाता है, अतः उनका आदर भगवान् के ही समान किया जाना चाहिए। पिता, राजा तथा गुरु का धर्म है कि वे अपने अधीनों को इस प्रकार से नियन्त्रित करें कि अन्ततः वे भगवान् के शुद्धभक्त बन सकें। यह तो बड़ों का कर्तव्य है और अधीनस्थों का कर्तव्य है कि वे आदेशों का सही और अनुशासित ढंग से पालन करें। *शिरसा* (अपने मस्तक पर) शब्द भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रचेताओं ने पिता के आदेश को मस्तक पर धारण कर लिया जिसका अर्थ है कि उन्होंने पूरी तरह स्वीकार कर लिया।

—*भागवत* ४.२४.१९

शिष्य गुरु को नमस्कार करने तथा उसके निर्देशों का पालन करने से बढ़-चढ़ जाता है

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कथन है—*दण्डवत्-प्रणामास्तान् अनुपतितः*—गुरु को तुरन्त दण्डवत् प्रणाम करने तथा उनके आदेशों का पालन करने से विद्यार्थी सिद्ध हो जाता है।

—*भागवत* ५.१.३६

शिष्य का कर्तव्य है कि अतीव आदरपूर्वक गुरु के आदेश को पूरा करे

अनुवाद: श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा: इस प्रकार तीनों लोकों के गुरु ब्रह्मा द्वारा भलीभाँति उपदेश दिये जाने पर छोटा होने के कारण प्रियव्रत

साधु प्रकृति के कारण
को शिरोधार्य किया और
की ओर चले गये।

आज की परिस्थिति
है। पूर्ण साधु वह
के पुत्रों को
पिता, राजा तथा
आदर भगवान्
गुरु का धर्म है कि
अन्ततः वे भगवान्
अधीनस्थों का कर्तव्य
पालन करें। *शिरसा*
प्रचेताओं ने पिता के
अर्थ है कि उन्होंने पूरी

—*भागवत* ४.२४.१९

का पालन करने से

—*दण्डवत्-प्रणामास्तान्*
उनके आदेशों का

—*भागवत* ५.१.२६

के आदेश को पूरा

तीनों लोकों के गुरु
के कारण प्रियव्रत

ने नमस्कार करते हुए उनका आदेश स्वीकार किया और अत्यन्त आदरपूर्वक उसका पालन किया।

तात्पर्य: छोटों का यह धर्म है कि अपने गुरुजनों के आदेश का पालन करें। इसलिए प्रियव्रत ने तुरन्त कहा, "जो आज्ञा।" प्रियव्रत को *महाभागवत* अर्थात् महान् भक्त कहा गया है। महान् भक्त का यह कर्तव्य है कि वह अपने गुरु अथवा गुरु के भी गुरु का परम्परानुसार पालन करे। जैसा कि *भगवद्गीता* में (४.२) कथित है—*एवं परम्पराप्राप्तम्*—मनुष्य को गुरु परम्परा से भगवान् के आदेश प्राप्त करना होता है। भगवान् का भक्त अपने को भगवान् के दासों का भी दास मानता है।

—*भागवत* ५.१.२०

परम्परा गुरु के आदेश का पालन करने से मनुष्य बद्धजीवन के चार दोषों पर विजय पा लेता है

अनुवाद: ब्रह्मा ने कहा: प्रिय पुत्र कर्दम! चूँकि तुमने मेरे उपदेशों का आदर करते हुए निष्कपट भाव से स्वीकार किया है, अतः तुमने मेरी समुचित पूजा की है। तुमने मेरे सारे उपदेशों का पालन किया है, अतः तुमने मेरा सम्मान किया है।

तात्पर्य: ब्रह्मा कर्दम की इसलिए प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उसने अपने गुरु की आज्ञाओं को किसी प्रकार के छल के बिना पूर्ण रूप से पालन किया था। भौतिक जगत में बद्धजीव का सबसे बड़ा दुर्गुण है ठगना। उसमें कुल चार दुर्गुण होते हैं—वह त्रुटि करता है, वह मोहग्रस्त होता है, वह अन्यों को ठगने की प्रवृत्ति रखता है और उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। जो परम्परा-प्रणाली से गुरु की आज्ञा का पालन करता है तो वह इन दुर्गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

—*भागवत* ३.२४.१२

गुरु का सम्मान करने का अर्थ होता है उसके आदेशों को पूर्णतया पूरा करना

अनुवाद: ब्रह्माजी ने कहा, प्रिय पुत्र कर्दम! चूँकि तुमने मेरे आदेशों का

गुरु अपनी वाणी के द्वारा शिष्य के साथ सदैव विद्यमान रहता है

यद्यपि भौतिक दृष्टि के अनुसार श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस भौतिक जगत् से १९३६ ई. के दिसम्बर मास के अन्तिम दिन प्रयाण कर चुके हैं, किन्तु अब भी मैं उन्हें उनकी वाणी द्वारा अपने साथ उपस्थित मानता हूँ। संगति के दो साधन हैं—*वाणी* से तथा वपुः से। *वाणी* का अर्थ है शब्द और *वपुः* का अर्थ है भौतिक उपस्थिति। वपुः कभी कभी प्रशंसनीय होता है और कभी कभी नहीं, किन्तु *वाणी* शाश्वत विद्यमान रहती है। अतएव हमें वाणी का लाभ उठाना चाहिए, वपुः का नहीं। उदाहरणार्थ *भगवद्गीता* कृष्ण की वाणी है। यद्यपि कृष्ण पाँच हजार वर्ष पूर्व सशरीर उपस्थित थे और भौतिकवादी दृष्टिकोण से अब सशरीर विद्यमान नहीं हैं, किन्तु *भगवद्गीता* बनी हुई है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* : ५: अन्तिम शब्द

३. शिष्य को गुरु की सेवा करनी चाहिए

शिष्य को चाहिए कि जिज्ञासा तथा विनीत सेवा भाव से गुरु के पास पहुँचे

परिप्रश्नेन सेवया

अनुवाद: उनसे विनीत होकर जिज्ञासा करो और उनकी सेवा करो।

तात्पर्य: गुरु को पूर्ण समर्पण करके ही स्वीकार करना चाहिए और अहंकार रहित होकर दास की भाँति गुरु की सेवा करनी चाहिए। स्वरूपसिद्ध गुरु की प्रसन्नता ही आध्यात्मिक जीवन की प्रगति का रहस्य है। जिज्ञासा और विनीत भाव के मेल से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है। बिना विनीत भाव तथा सेवा के विद्वान गुरु से की गई जिज्ञासाएँ प्रभावपूर्ण नहीं होंगी।

—*भगवद्गीता* ४.३४

हृदय तथा आत्मा से गुरु की सेवा करने से शिष्य गुरु तथा भगवान्

की सम्पूर्ण कृपा प्राप्त करता है

कर्दम मुनि के अनुग्रह से देवहूति को मात्र सेवा करने से वास्तविक बोध हो गया। ऐसा ही उदाहरण हमें नारद मुनि के जीवन में प्राप्त होता है। अपने पूर्व जन्म में वे दासी के पुत्र थे, किन्तु उनकी माता परम भक्तों की सेवा में लगी रहती थीं। उन्हें इन भक्तों की सेवा करने का अवसर मिला और वे उनका जूठन खाकर तथा उनकी आज्ञा का पालन करके ही अगले जन्म में इतने महान् बन सके। आध्यात्मिक उन्नति के लिए सबसे सुगम मार्ग है कि प्रामाणिक गुरु की शरण ग्रहण की जाय और हृदय तथा आत्मा से उनकी सेवा की जाय। सफलता का यही रहस्य है। जैसा कि विश्वनाथ ठाकुर ने गुर्वष्टक के आठवें अनुच्छेद में गुरु की प्रार्थना में कहा है—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*—गुरु की सेवा करने या उनकी कृपा के प्रसाद से मनुष्य को परमेश्वर की कृपा प्राप्त होती है। अपने भक्त पति कर्दम की सेवा करके देवहूति उनकी उपलब्धियों में साझेदार बनी। इसी प्रकार एकनिष्ठ शिष्य प्रामाणिक गुरु की सेवा करके एक ही साथ भगवान् तथा गुरु की कृपा प्राप्त कर सकता है।

—*भागवत* ३.२३.७

जो व्यक्ति गुरु की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देता है वह कृष्ण का अतिप्रिय बन जाता है

''जीवों के परमात्मा रूप में, हर एक के हृदय में स्थित मैं जीवन की हर अवस्था तथा हर आश्रम में हर व्यक्ति के कार्य का अवलोकन करता हूँ। कोई चाहे जिस अवस्था में हो, जब मैं देखता हूँ कि वह गुरु द्वारा आदिष्ट कर्तव्यों को पूरा करने में गम्भीरता तथा निष्ठापूर्वक लगा होता है और इस तरह वह गुरु की सेवा में अपना जीवन समर्पित करता है तो वह व्यक्ति मुझे सर्वाधिक प्रिय होता है।''

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

मनुष्य गुरु को समर्पण तथा सेवा के द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त करता है

दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें जिज्ञासा तथा सेवा की उत्कट भावना से असली आचार्य की शरण ग्रहण करनी चाहिए। आचार्य के मार्गदर्शन

में परम की वास्तविक सेवा करना एकमात्र साधन है जिसके द्वारा हम दिव्य ज्ञान को आत्मसात् करते हैं। आज हम आचार्यदेव के चरणों पर अपनी विनीत सेवा तथा अपना सम्मान अर्पित करने के लिए इस सभा में आये हैं जो हमें उनके द्वारा सभी व्यक्तियों को सम्प्रेषित दिव्य ज्ञान को आत्मसात् करने के लिए क्षमता प्रदान करेगी।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

शिष्य को चाहिए कि चाकर के रूप में गुरु की सेवा करे

गुरु-शुश्रूषया भक्त्या......

अनुवाद: मनुष्य को प्रामाणिक गुरु बनाना चाहिए और अत्यन्त भक्ति तथा श्रद्धा से उसकी सेवा करनी चाहिए।....

तात्पर्य: *गुरु-शुश्रूषया* शब्दों का अर्थ है कि वह स्वयं गुरु को शारीरिक सुविधाएँ प्रदान करके, स्नान करते, वस्त्र बदलते, सोते, खाते समय सहायता करके सेवा करे। यह *गुरु शुश्रूषम्* कहलाता है। शिष्य दास की भाँति गुरु की सेवा करे और उसके पास जो कुछ भी हो उसे गुरु को समर्पित कर दे।

—*भागवत* ७.७.३०

जो शिष्य गुरु की स्वयं सेवा करता है वह उपदेश पाने के लिए प्रामाणिक पात्र है

सुश्रूषाभिरताय शब्द उस व्यक्ति का सूचक है जो गुरु की सेवा में श्रद्धापूर्वक निरत रहता है। गुरु की सभी तरह से सेवा की जानी चाहिए और उसे सारी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। जो भक्त ऐसा करता है वह इस उपदेश को ग्रहण करने का भी प्रामाणिक पात्र है।

—*भागवत* ३.३२.४२

शिष्य को चाहिए कि गुरु को सुविधाएँ प्रदान करे

गुरु अपने शिष्यों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का भोक्ता नहीं होता। वह तो माता-पिता के तुल्य है। जिस प्रकार बच्चा माता-पिता के द्वारा सेवा किये बिना बढ़कर बड़ा नहीं हो सकता उसी तरह गुरु की देखरेख

के बिना कोई दिव्य सेवा-स्तर तक ऊपर नहीं उठ सकता।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.४६

गुरु की अक्षमता उसके शिष्यों को उसकी सेवा करने का अवसर प्रदान करती है

वैष्णव सदैव भगवान् द्वारा रक्षित होता है, किन्तु यदि वह अक्षम प्रतीत हो तो इससे शिष्यों को उसकी सेवा करने का अवसर प्राप्त होता है।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ९.११

शिष्य को मात्र औपचारिकताओं तथा अनुष्ठानों की ही नहीं अपितु व्यावहारिक सेवा की भी चिन्ता होनी चाहिए

भक्त को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में भक्ति का सही सही निर्वाह करे और वह औपचारिकताओं में ही न लगा रहे। प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में मनुष्य को यह देखना चाहिए कि कितनी सेवा की जा रही है और वह केवल अनुष्ठानों में ही न लगा रहे।

—*भागवत* २.८.२१

भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि अज्ञान सागर को पार करने के लिए मानव शरीर रूपी नाव के कर्णधार गुरु की सेवा करे

यह मनुष्य शरीर अत्यन्त मूल्यवान नाव है और गुरु इसका कर्णधार है—*गुरु कर्णधारम्*—जो अज्ञान सागर पार ले जाने में नाव का मार्गदर्शन करने के लिए है। कृष्ण का उपदेश अनुकूल हवा है। मनुष्य को अज्ञान सागर पार करने के लिए इन सुविधाओं का उपयोग करना चाहिए। चूँकि गुरु ही कर्णधार है अतएव गुरु की सेवा निष्ठापूर्वक की जानी चाहिए जिससे उनकी कृपा से परमेश्वर की कृपा प्राप्त हो सके।

—*भागवत* ७.१५.४५

मनुष्य को चाहिए कि सेवा तथा आत्मसमर्पण के भाव से गुरु के

पास पहुँचे

मनुष्य को ललकार या चुनौती की भावना से गुरु के पास नहीं पहुँचना चाहिए अपितु सेवा करने के भाव से जाना चाहिए। *निपत्* शब्द का अर्थ है "नीचे गिर पड़ना" और *प्र* का अर्थ है "बिना भेदभाव के।" दिव्य ज्ञान *प्रणिपात* पर आधारित है इसलिए कृष्ण कहते हैं *सर्वधर्मान् परित्यज मामेकं शरणं व्रज*—बस, तुम मेरी शरण में आ जाओ। जिस तरह हम कृष्ण की शरण में जाते हैं उसी तरह हमें उनके प्रतिनिधि स्वरूप गुरु की शरण में जाना चाहिए।

—*भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ*

गुरु के उपयुक्त सेवा का अर्थ है उसकी इच्छानुसार सेवा करना, न कि मनगढंत सेवा करना

मान लीजिये कि मुझे शिष्य से कहना हो, "हे छात्र! मुझे एक गिलास पानी दो।" तो यह उसका कर्तव्य है कि वह मुझे एक गिलास पानी दे। यदि वह सोचता है कि "प्रभुपाद तो एक गिलास पानी चाहते हैं, किन्तु क्यों न उन्हें इससे अच्छी वस्तु दूँ? एक गिलास गर्म दूध क्यों न दूँ?" यह कोई सेवा नहीं। उसके विचार से गर्म दूध अधिक स्वादिष्ट है और पानी की अपेक्षा उत्तम है फिर भी चूँकि मैंने पानी माँगा है, अतएव उसे चाहिए कि वह मुझे पानी ही दे। यही अनुकूल सेवा है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

प्रामाणिक गुरु की सेवा करके बद्धात्मा मोक्ष प्राप्त कर सकता है

ताते कृष्ण भजे, गुरुर सेवन।
माया-जाल छुटे, पाय कृष्णेर चरण॥

अनुवाद: यदि बद्धजीव भगवान् की सेवा में लगकर साथ ही अपने गुरु की आज्ञा का पालन करता है और उसकी सेवा करता है तो वह माया के जाल से छूट सकता है और कृष्ण के चरणकमलों में शरण पाने के योग्य बन जाता है।

तात्पर्य: यह यथार्थ है कि प्रत्येक जीव कृष्ण का नित्यदास है। किन्तु माया

के प्रभाव से यह बात भुला दी जाती है जिससे मनुष्य भौतिक सुख में विश्वास करने के लिए प्रेरित होता है। माया के मोह से मनुष्य सोचता है कि भौतिक सुख ही एकमात्र वांछित लक्ष्य है। यह भौतिक चेतना बद्धजीव के गले के चारों ओर पड़ी जंजीर के समान है। जब तक वह इस विचार से बँधा रहता है तबतक वह माया के पाश से छूट नहीं सकता। किन्तु यदि कृष्ण की दया से वह प्रामाणिक गुरु के सम्पर्क में आ जाता है, उसके आदेश का पालन करता है और उसकी सेवा करता है, अन्य बद्धजीवों को भगवान् की सेवा में लगाता है तो वह मुक्त हो जाता है एवं कृष्ण की शरण प्राप्त करता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* २२.२५

गुरु की सेवा करके मनुष्य कृष्ण के प्रति भावमयी भक्ति उत्पन्न कर सकता है

अनुवाद: गुरु महाराज के चरणों की सेवा द्वारा मनुष्य उन भगवान् की सेवा में दिव्य आनन्द की अभिवृद्धि करने योग्य हो जाता है जो मधु नामक असुर के अपरिवर्तनीय शत्रु हैं और जिनकी सेवा मनुष्य के लौकिक क्लेशों को निःशेष कर देती है।

तात्पर्य: महर्षि मैत्रेय जैसे प्रामाणिक गुरु का साहचर्य भगवान् कृष्ण की प्रत्यक्ष सेवा के लिए दिव्य अनुराग उपलब्ध करने में सहायक हो सकता है।

—*भागवत* ३.७.१९

४. शिष्य को चाहिए कि गुरु को तुष्ट एवं प्रसन्न करे

शिष्य गुरु की सेवा करके तथा तुष्ट करके दिव्य ज्ञान प्राप्त करता है

अनुवाद: जब नारद ने देखा कि समस्त ब्रह्माण्ड के प्रतिपालक ब्रह्माजी मुझ पर प्रसन्न हैं तो उन्होंने भी अपने पिता से विस्तार में यही पूछा।

तात्पर्य: महात्मा से आध्यात्मिक या दिव्य ज्ञान समझने की विधि पाठशाला के शिक्षक से सामान्य प्रश्न पूछने जैसी नहीं है। आजकल शिक्षकों को शिक्षा प्रदान करने के एवज में धन दिया जाता है, किन्तु गुरु वेतन-भोगी नहीं होता, न ही वह बिना अधिकार के शिक्षा दे सकता है। *भगवद्गीता* में (४.३४) अर्जुन को सलाह दी गई है कि सिद्ध पुरुष से समर्पण, प्रश्न तथा सेवा द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त करे। दिव्य ज्ञान प्राप्त करना डालरों के विनिमय जैसा व्यापार नहीं है। ऐसा ज्ञान गुरु की सेवा करके ही प्राप्त किया जाता है। जिस प्रकार ब्रह्मा ने भगवान् को पूरी तरह तुष्ट करके उनसे प्रत्यक्ष दिव्य ज्ञान प्राप्त किया उसी तरह गुरु को प्रसन्न करके दिव्य ज्ञान प्राप्त करना होता है। गुरु की तुष्टि से ही दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है।

—*भागवत* २.९.४३

शिष्य को चाहिए कि गुरु को तुष्ट करे, क्योंकि शिष्य उसकी सदिच्छा मात्र से भक्ति में अद्‌भुत प्रगति कर सकता है

शिष्य को चाहिए कि हर प्रकार से गुरु को तुष्ट करने के लिए तैयार रहे। प्रामाणिक गुरु आध्यात्मिक ज्ञान की विधियों से पूर्णतया परिचित होता है, वह *भगवद्गीता*, वेदान्त, *श्रीमद्भागवत* या उपनिषद जैसे शास्त्रों में पंडित होता है और वह ऐसा स्वरूपसिद्ध आत्मा भी होता है जो परमेश्वर से दैहिक सम्बन्ध बना चुका होता है। वह ऐसा पारदर्शी माध्यम है जिससे इच्छुक शिष्य वैकुण्ठ के मार्ग में ले जाया जाता है। गुरु को सभी प्रकार से तुष्ट करना चाहिए, क्योंकि उसकी सदिच्छा से शिष्य उस मार्ग में अद्‌भुत प्रगति कर सकता है।

—*अन्यलोकों की सरल यात्रा*

गुरु के आदेशानुसार किये गये कार्य आध्यात्मिक होते हैं जबकि मनगढंत कार्य गुरु को अप्रसन्न करने वाले तथा भौतिक होते हैं

गुरु के निर्देशानुसार भगवान् की तुष्टि के लिए किया गया कोई भी कार्य आध्यात्मिक है। किन्तु ऐसे व्यक्ति के लिए जो गुरु के आदेश की अवज्ञा करे और मनमाना कार्य करते हुए अपने कार्यों को आध्यात्मिक माने, यही *माया* है। मनुष्य को गुरु की कृपा के माध्यम से भगवान् की कृपा प्राप्त

करनी चाहिए। अतएव सर्वप्रथम गुरु को प्रसन्न करना चाहिए और यदि वे प्रसन्न हो जाते हैं तो समझना चाहिए कि भगवान् भी प्रसन्न हो गये। किन्तु यदि हमारे कार्यों से गुरु अप्रसन्न होता है तो वे आध्यात्मिक नहीं है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इसकी पुष्टि करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान् न गतिः कुतोऽपि*। ऐसे कार्य जिनसे गुरु प्रसन्न होते हैं आध्यात्मिक मानना चाहिए और उन्हीं से भगवान् को प्रसन्न होते समझना चाहिए।

चैतन्य-चरितामृत आदि १४.२९

शिष्य को चाहिए कि केवल पूर्ववर्ती आचार्यों को, जिनका प्रतिनिधित्व उसका गुरु करता है, प्रसन्न करने की कामना करे

भक्त को चाहिए कि वह अपने पूर्ववर्ती आचार्य को प्रसन्न रखना न भूले। गोस्वामी गणों का प्रतिनिधित्व गुरु द्वारा होता है। कोई भी व्यक्ति आचार्य परम्परा का दृढ़तापूर्वक पालन किये बिना आचार्य नहीं बन सकता। जो सचमुच ही भक्ति में प्रगति करने का इच्छुक हो उसे चाहिए कि अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की इच्छाओं को तुष्ट करे। *एइ छय गोसाञि यार, मुइ तार दास*। उसे चाहिए कि स्वयं को आचार्यों के दास का दास समझे और इस भाव से वह वैष्णवों के समाज में रहे।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य १९.१५६*

गुरु को प्रसन्न करके कृष्ण को प्रसन्न किया जा सकता है

अनुवाद: सदैव मुक्त रहने वाले तथा प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् उन लोगों से अत्यधिक प्रसन्न रहते हैं जो उनके चरणचिन्हों का अनुसरण करते हैं और बिना किसी हिचक के ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के वंश की सेवा करते हैं, क्योंकि वे ब्राह्मण तथा वैष्णवों के परम प्रिय हैं और उनको प्रिय हैं।

तात्पर्य: कहा जाता है कि भगवान् यह देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं कि कोई उनके भक्त की सेवा करता है। पूर्ण होने के कारण उन्हें किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं रहती लेकिन इसमें तो हमारा हित ही है कि हम श्री भगवान् की किसी प्रकार से सेवा करें। परम पुरुष के प्रति ऐसी सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, किन्तु ब्राह्मणों तथा वैष्णवों की सेवा के द्वारा सम्भव है। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है—*छाडिया वैष्णव*

सेवा निस्तार पायेछे केबा—अर्थात् जब तक वैष्णवों तथा ब्राह्मणों की सेवा नहीं की जाती तब तक कोई निस्तार नहीं है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का भी कहना है—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*—गुरु महाराज की इन्द्रियों को तुष्ट करके ही भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट किया जा सकता है। ऐसे आचरण का शास्त्रों में उल्लेख तो है ही, आचार्य इसका पालन भी करते हैं।

—*भागवत* ४.२१.३९

गुरु को तुष्ट करने से भगवान् की कृपा प्राप्त होती है

अनुवाद: "रामानन्द राय ने उनसे आपके प्रेम का जो विवरण दिया है उससे महाप्रभु ने पहले ही अपना मन बदल लिया है।"

तात्पर्य: पहले महाप्रभु राजा को देखना नहीं चाहते थे, किन्तु भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय के उद्योग के फलस्वरूप उनका विचार बदल गया। महाप्रभु ने पहले ही कह दिया था कि भक्तों की सेवा करने के कारण राजा पर कृष्ण कृपालु होंगे। यही विधि है कृष्णभावनामृत में प्रगति करने की। सर्वप्रथम भक्त की कृपा होनी चाहिए, फिर तो कृष्ण-कृपा अवतरित होती ही है। *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*। अतएव हमारा पहला कर्तव्य है कि गुरु को तुष्ट करें, क्योंकि गुरु भगवान् की कृपा की व्यवस्था करता है। सामान्य व्यक्ति को चाहिए कि पहले वह गुरु या भक्त की सेवा करनी शुरू कर दे। फिर भक्त की कृपा से भगवान् तुष्ट होंगे। भक्त के चरणकमलों की धूल को सिर पर चढ़ाये बिना उन्नति की आशा करना व्यर्थ है।...शुद्ध भक्त के पास गये बिना भगवान् को नहीं समझा जा सकता। महाराज प्रतापरुद्र रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य दोनों की पूजा करते थे। इस तरह उन्होंने शुद्ध भक्तों के चरणकमलों का स्पर्श किया जिससे वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के निकट पहुँचने में समर्थ हो सके।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ११.५८

गुरु की तुष्टि के लिए कष्ट सहने से मनुष्य गुरु-ऋण से मुक्त हो जाता है

कृष्ण अपने ब्राह्मण मित्र से कहते रहे, "हे मित्र! मैं सोचता हूँ कि तुम्हें उन दिनों के कार्य स्मरण होंगे जब हम विद्यार्थियों की तरह रह रहे थे। तुम्हें याद होगा जब हम एक बार गुरुपत्नी के आदेश से लकड़ियाँ एकत्र करने जंगल में गये थे। जब हम सूखी लकड़ियाँ एकत्र कर रहे थे तो सहसा हम घने जंगल में प्रविष्ट हुए और खो गये। तब अचानक बवंडर आया और फिर आकाश में बादल और बिजली तथा बिजली की गडगडाहट हुई। तब सूर्यास्त हो गया और उस घने जंगल में हम खो गये। इसके बाद भारी वर्षा हुई। सारी भूमि जलमग्न हो गई और हम गुरु आश्रम लौटने का मार्ग ढूँढ नहीं पाये। तुम्हें उस वर्षा का स्मरण होगा। भारी वर्षा क्या प्रलय थी! उस बवंडर तथा भारी वर्षा के कारण हम अत्यधिक पीड़ित थे और हम जिधर भी जाते, मोहग्रस्त थे। उस कष्टप्रद अवस्था में हमने एक दूसरे का हाथ पकड़ लिया था और रास्ता ढूँढने का प्रयास करने लगे। इस तरह हमने सारी रात बिताई और प्रात:काल जब हमारे गुरुदेव को हमारी अनुपस्थिति का पता चला तो उन्होंने हमें ढूँढने के लिए अन्य विद्यार्थियों को भेजा। वे भी उनके साथ आये और जब वे जंगल में हमारे पास पहुँचे तो हमें अत्यधिक पीड़ित पाया।

"हमारे गुरु ने अति दयावश कहा, "बच्चों! यह अतीव आश्चर्यजनक है कि मेरे लिए तुमने इतने कष्ट सहे। हर व्यक्ति अपने शरीर की परवाह को प्राथमिकता देता है, किन्तु तुम इतने अच्छे तथा गुरु के प्रति आज्ञाकारी हो कि अपनी शारीरिक सुविधा की परवाह न करते हुए मेरे लिए इतना कष्ट सहा। मैं यह देखकर प्रसन्न भी हूँ कि तुम जैसे प्रामाणिक शिष्य गुरु की तुष्टि हेतु किसी भी प्रकार का कष्ट सह सकते हैं। अपने गुरु-ऋण से उऋण होने के लिए यही सही विधि है। शिष्य का कर्तव्य है कि गुरु की सेवा में अपने जीवन को समर्पित कर दें।"

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

यदि कोई व्यक्ति गुरु को प्रसन्न कर लेता है तो वह उससे ज्ञान प्राप्त

कर सकता है

यह कहा गया है कि विदुर ने मैत्रेय ऋषि से सुना और मैत्रेय ऋषि अत्यन्त प्रसन्न थे। जब तक कोई अपने गुरु को तुष्ट नहीं करता वह उचित ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। यह स्वाभाविक है। यदि कोई अपने गुरु का उचित ढंग से स्वागत करता है और सुखपूर्वक उन्हें बैठाता है और यदि गुरु उसके आचरण से प्रसन्न हो जाता है तो गुरु अत्यन्त स्पष्ट तथा मुक्त रूप से बोल सकता है और यह छात्र के लिए अतीव लाभप्रद होगा।

—*भगवान् कपिल देव की शिक्षाएँ*

शिष्य गुरु को प्रसन्न करके उसीसे अपनी शक्ति प्राप्त करता है

अनुवाद: हे इन्द्र! तुम्हारे शत्रु असुरगण शुक्राचार्य का अनादर करने के कारण अत्यन्त निर्बल हो गये थे, किन्तु अब उन्होंने शुक्राचार्य की पूजा की अत: वे पुन: बलशाली बन गये हैं। अपनी भक्ति के द्वारा उन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली है कि वे अब मुझसे मेरा धाम तक लेने में समर्थ हो चुके हैं।

तात्पर्य: श्रीब्रह्मा ने देवताओं को यह इंगित करना चाहा कि कोई भी अपने गुरु के बल पर इस संसार में अत्यन्त शक्तिशाली बन सकता है और गुरु की अप्रसन्नता से सब कुछ खो सकता है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के इस गीत से इसकी पुष्टि होती है—

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो
यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि

"गुरु की कृपा से श्रीकृष्ण की कृपा का वर प्राप्त होता है। गुरु की कृपा के बिना उन्नति नहीं हो सकती।" यद्यपि ब्रह्मा के समक्ष सभी असुर तुच्छ हैं किन्तु उन्होंने गुरु के बल से इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि वे ब्रह्मा से उनके धाम ब्रह्मलोक को भी छीन सकते थे। अत: हम गुरु से प्रार्थना करते हैं—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे श्रीगुरुं दीन तारणम्॥

गुरु की कृपा से गूँगा भी महान् वक्ता बन सकता है और पंगु व्यक्ति पर्वत लाँघ सकता है। अत: जीवन में सफलता चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह इस शास्त्र-वचन को स्मरण रखे जिसका उपदेश श्रीब्रह्मा ने दिया।

—*भागवत* ६.७.२३

गुरु को प्रसन्न कर लेने से भगवान् स्वत: प्रसन्न हो जाते हैं

अनुवाद: जिस पर ब्राह्मण तथा वैष्णव प्रसन्न हो जाते हैं वह व्यक्ति इस संसार में तथा मृत्यु के बाद में भी दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर सकता है। यही नहीं, ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के साथ साथ रहने वाले कल्याणकर्ता शिव तथा विष्णु का भी अनुग्रह प्राप्त हो जाता है।

तात्पर्य: भक्तगण गोविन्द के अत्यन्त प्रेमवश उन्हें अपने हृदयों में धारण करते हैं। भगवान् तो पहले से सबों के हृदय में विद्यमान हैं किन्तु वैष्णव तथा ब्राह्मण प्रेमविभोर होने पर सदैव उनका दर्शन करते हैं। फलत: ब्राह्मण तथा वैष्णव विष्णु को धारण करने वाले हैं...जब किसी व्यक्ति पर ब्राह्मण तथा वैष्णव प्रसन्न होते हैं तो भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होते हैं। इसकी पुष्टि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा की गई गुरु स्तुति से होती है—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसाद:*। यदि गुरु को, जो ब्राह्मण तथा वैष्णव दोनों ही होता है, प्रसन्न कर लिया जाय तो भगवान् भी प्रसन्न होते हैं और यदि भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं तो मनुष्य को इस संसार में या मृत्यु के बाद और क्या पाने के लिए रह जाता है?

—*भागवत* ४.२२.८

आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य—गुरु को तुष्ट करके उसका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त करना

अनुवाद। और चूँकि आप विनीत हैं, आपके गुरुओं ने एक सौम्य शिष्य जानकर आप पर जिस तरह से अनुग्रह किया है अत: आप हमें वह सब बतायें जिसे आपने उनसे वैज्ञानिक ढंग से सीखा है।

तात्पर्य: आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य गुरु को प्रसन्न करने तथा उसके शुभाशीष प्राप्त करने में है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु के विषय में अपने द्वारा रचित *गुर्वष्टक* में इस प्रकार गाया है, "मैं अपने गुरु के चरणारविन्दों को नमस्कार करता हूँ। उनको तुष्ट करके ही कोई भगवान् को प्रसन्न कर सकता है और जब वे अप्रसन्न रहते हैं तो आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में विघ्न ही विघ्न आते हैं।" अत: यह आवश्यक है कि शिष्य अपने प्रामाणिक गुरु का अत्यधिक आज्ञाकारी तथा विनीत हो। श्रील सूत गोस्वामी शिष्य के इन सारे गुणों से ओतप्रोत थे, अत: उन पर श्रील व्यासदेव तथा अन्य गुरुओं की कृपा-दृष्टि थी। नैमिषारण्य के मुनियों को पूर्ण विश्वास था कि श्रील सूतगोस्वामी प्रामाणिक वक्ता हैं इसलिए वे उनसे सुनने के लिए उतावले थे।

—*भागवत* १.१.८

गुरु को प्रसन्न करके ही उनकी कृपा से भक्ति-लता-बीज को प्राप्त किया जा सकता है

गुरु कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज

अनुवाद: "कृष्ण तथा गुरु दोनों की कृपा से ऐसा व्यक्ति भक्ति रूपी लता के बीज को प्राप्त करता है।"

तात्पर्य: *भक्ति-लता-बीज* का अर्थ है "भक्ति का बीज।" हर वस्तु का मूल कारण या बीज होता है। किसी विचार, योजना या युक्ति के लिए सर्वप्रथम योजना की संकल्पना होनी चाहिए, जिसे *बीज* कहते हैं। जिन विधियों, विधि-विधानों से मनुष्य भक्ति में प्रशिक्षित होता है वह *भक्ति-लता-बीज* है। वह भक्ति-लता-बीज कृष्ण-कृपा से गुरु से प्राप्त होता है। दूसरे बीज *अन्याभिलाष बीज, कर्म बीज* तथा *ज्ञान बीज* कहलाते हैं। यदि किसी को गुरुकृपा से भक्ति-लता-बीज प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं मिल पाता तो वह कर्मबीज, ज्ञानबीज या राजनीतिक, सामाजिक अथवा लोककल्याण बीज का अनुशीलन करता है। किन्तु भक्तिलता बीज अन्य बीजों से भिन्न होता है। भक्तिलता बीज केवल गुरुकृपा से प्राप्त हो सकता है। अत: भक्तिलता बीज प्राप्त करने के लिए गुरु को प्रसन्न करना होता है (*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसाद:*)।

भक्तिलता बीज भक्ति का उद्गम है। गुरु को प्रसन्न किये बिना उसे कर्म, ज्ञान या योग का बीज प्राप्त होता है जिससे भक्ति का लाभ नहीं मिल सकता। यह भक्ति लता बीज गुरु से दीक्षा प्राप्त करने पर मिल सकता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* १९.१५१-५२

गुरु को तुष्ट करके शिष्य स्वतः तुष्ट हो जाता है

जो व्यक्ति भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट करने के उद्देश्य से सेवा करता है वह तुष्ट हो जाता है, क्योंकि कृष्ण परमात्मा हैं और व्यष्टि जीव उनका भिन्नांश है। यदि वे तुष्ट हैं तो जीव भी तुष्ट होता है। यदि उदर तुष्ट हो जाता है तो शरीर के सारे अंग तुष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वे उदर के द्वारा ही पोषण प्राप्त करते हैं। एक बार गर्मी में मेरे एक गुरुभाई मेरे गुरु महाराज पर पंखा झालने लगे तो गुरु महाराज ने पूछा, "तुमने सहसा मेरे ऊपर पंखा झालना क्यों शुरू किया?" उस बालक ने कहा, "यदि आप तुष्ट होंगे तो हम सभी तुष्ट होंगे।" यही सूत्र है—हमें अपनी अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास न करके कृष्ण की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। तब हम स्वभावतः तुष्ट हो जाएँगे।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु को प्रसन्न करने पर शिष्य को भगवान् से ज्ञान के साथ ही साथ शक्ति प्राप्त होती है जिससे अज्ञान के सागर को पार करने के लिए भक्ति में लगा जा सके

अनुवाद: जब तक मनुष्य को इस शरीर को अपने वश में रहने वाले इसके विभिन्न अंगों तथा साज-सामान सहित स्वीकार करना है तब तक उसे अपने श्रेष्ठजनों—अपने गुरु तथा गुरु के पूर्ववर्तियों के चरणकमलों को धारण करना चाहिए। उनकी कृपा से वह ज्ञान की तलवार को तेज कर सकता है और तब उपयुक्त शत्रुओं को पराजित कर सकता है। इस प्रकार भक्त को अपने ही दिव्य आनन्द में लीन होने में समर्थ होना चाहिए और तब वह अपना शरीर-त्याग कर अपना आध्यात्मिक स्वरूप फिर से पा सकता है।

तात्पर्य: गुरु निश्चय ही अपने शिष्यों पर अत्यन्त कृपालु रहता है अतएव

उसे प्रसन्न कर लेने पर शिष्य को भगवान् से बल मिलता है। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*गुरु कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज*—पहले गुरु को प्रसन्न करना चाहिए तब कृष्ण स्वतः प्रसन्न हो जाएँगे और उनसे वह बल प्राप्त हो सकेगा जिससे अज्ञान के सागर को पार किया जा सके। यदि कोई सचमुच भगवद्धाम जाने का इच्छुक है तो उसे गुरु को प्रसन्न करके काफी बलशाली हो जाना चाहिए, क्योंकि तभी उसे शत्रु को जीतने के लिए हथियार मिल सकेगा और मिलेगी कृष्ण की कृपा। केवल ज्ञान रूपी हथियार पा लेना पर्याप्त नहीं। उसे अपने गुरु की सेवा करके तथा उसके आदेशों का पालन करके इस हथियार को तेज करना होगा। तभी भगवान् की कृपा मिल सकेगी।....संक्षेप में जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है मनुष्य को चाहिए कि वह कृष्णभावनामृत की परम्परा में चले आ रहे प्रामाणिक गुरु से सम्पर्क करे, क्योंकि उसी की कृपा तथा उपदेशों से कृष्ण से बल प्राप्त हो सकेगा। इस तरह भक्ति करने से जीवन का चरम लक्ष्य विष्णु के चरणकमल प्राप्त हो जाते हैं।

—*भागवत* ७.१५.४५

महात्मा गुरु को तुष्ट करने से मनुष्य महान् आत्मा बन सकता है

पवित्र पुरुष के चरणकमलों की पवित्र धूल का स्पर्श करके दिव्य जीवन की पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। *भागवत* में कहा गया है—*महत्-पाद-रजोऽभिषेकम्* अर्थात् *महत* अथवा महान् भक्त के चरणकमलों की पवित्र धूलि से अभिषिक्त। जैसा कि *भगवद्गीता* में उल्लेख है *महात्मानस्तु*—महान् पुरुष आत्मिक शक्ति के वश में रहते हैं और उसका लक्षण यह है कि वे कृष्ण-भक्ति में लगे रहते हैं। इसलिए *महत्* कहलाते हैं। जब तक महात्मा के चरणों की धूलि को कोई अपने शिर पर चढ़ा नहीं लेता, आत्म-जीवन में सिद्धि मिलने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

आत्म-उन्नति के लिए शिष्य-परम्परा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य अपने *महत्* गुरु की कृपा से *महत्* बन सकता है। यदि कोई किसी महापुरुष के चरणों की शरण ग्रहण करता है तो उसके महान् बनने की काफी सम्भावना रहती है। जब महाराज रहूगण ने जड़ भरत से उनकी अद्भुत आत्म-उन्नति के विषय में प्रश्न किया तो उन्होंने राजा को उत्तर दिया कि केवल धर्म

का पालन करने या केवल संन्यासी बनने अथवा शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करने से आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती। ये विधियाँ निस्सन्देह आत्म-बोध में सहायक होती हैं, किन्तु वास्तविक प्रभाव तो महात्मा की कृपा से पड़ता है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरु की स्तुति में आठ पद्य लिखे हैं। उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि गुरु को केवल प्रसन्न करने से जीवन में परम सफलता प्राप्त होती है और समस्त अनुष्ठानों को करते हुए यदि कोई गुरु को प्रसन्न नहीं कर पाता तो उसकी पहुँच आत्मसिद्धि तक नहीं हो पाती।

—*भागवत* ३.२२.६

५. शिष्य को गुरु में श्रद्धा होनी चाहिए

सामान्य निर्देश

आध्यात्मिक जीवन में सफलता का रहस्य—गुरु के वचनों में पूरी श्रद्धा रखना

एइ ताँर वाक्ये आमि दृढ़ विश्वास धरि'

अनुवाद: ''मुझे अपने गुरु के वचनों पर दृढ़ विश्वास है......।''

तात्पर्य: वेदों में कहा गया है

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

''जिन महात्माओं में भगवान् तथा गुरु दोनों के प्रति अव्यक्त श्रद्धा होती है उन्हें ही वैदिक ज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है।'' यह वैदिक आदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण है और श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसकी पुष्टि अपने आचरण द्वारा की है। उन्होंने अपने गुरु के शब्दों में विश्वास करके संकीर्तन आन्दोलन का सूत्रपात किया, जिस प्रकार कि हमने अपने गुरु के वचनों में विश्वास करके वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन शुरू किया है। वे चाहते थे कि प्रचार हो और हमने उनके शब्दों पर विश्वास करके उन्हें पूरा करने का प्रयास किया और अब यह आन्दोलन सारे विश्व में सफल हो चुका है। अतएव

गुरु के वचनों में और भगवान् में श्रद्धा रखना ही सफलता का रहस्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कभी-भी अपने गुरु के वचनों का उल्लंघन नहीं किया और संकीर्तन आन्दोलन के प्रसार को नहीं रोका। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने अपनी मृत्यु के समय अपने सारे शिष्यों को आदेश दिया था कि वे एकसाथ मिलकर चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का विश्व भर में प्रसार करें। किन्तु बाद में कुछेक स्वार्थी मूर्ख शिष्यों ने उनके आदेश का उल्लंघन कर दिया। उनमें से हर शिष्य मिशन का अध्यक्ष बनना चाहता था, अतएव वे गुरु के आदेशों की उपेक्षा करके कचहरियों में लड़ने लगे और सारा मिशन व्यर्थ गया। हमें इसका कोई गर्व नहीं है, किन्तु सत्य की व्याख्या होनी ही चाहिए। हमें अपने गुरु के वचनों पर विश्वास था, अतएव हमने अपने विनीत ढंग से असहाय होते हुए भी उसे चालू रखा किन्तु इस परम सत्ता के आदेश के बल पर ही यह आन्दोलन सफल हुआ है।

—*चैतन्य चरितामृत आदि* ७.९५-९६

दिव्य ज्ञान समझने के लिए गुरु के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए

अनुवाद: प्रह्लाद महाराज ने कहा: हे मित्रों! यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास करो तो तुम भी उसी श्रद्धा से मेरे ही समान दिव्य ज्ञान को समझ सकते हो भले ही तुम सभी छोटे-छोटे बालक क्यों न हो...।

तात्पर्य: प्रह्लाद महाराज के ये शब्द परम्परा से चले आनेवाले ज्ञान के प्रसंग में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रह्लाद महाराज अपनी माता के गर्भ में शिशु रूप में रहते हुए भी नारद के शक्तिशाली उपदेश को सुनकर परम शक्ति के अस्तित्व के विषय में आश्वस्त थे और समझ गए थे कि किस प्रकार *भक्तियोग* द्वारा जीवन-सिद्धि प्राप्त की जाती है। ये आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ज्ञातव्य हैं।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"जो महापुरुष भगवान् तथा गुरु दोनों पर निश्चित श्रद्धा रखते हैं उन्हें वैदिक ज्ञान का सारा आशय स्वतः प्रकट हो जाता है।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.२३)....ये वैदिक आदेश हैं। मनुष्य को गुरु के शब्दों में पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए और भगवान् में भी ऐसी श्रद्धा होनी चाहिए। तब आत्मा तथा परमात्मा

का असली ज्ञान एवं भौतिक पदार्थ तथा आत्मा के मध्य का अन्तर स्वतः प्रकट हो जाएगा। यह *आत्मतत्त्व* या आध्यात्मिक ज्ञान भक्त के अन्तस्तल में प्रकट होगा, क्योंकि उसने प्रह्लाद महाराज जैसे *महाजन* के चरणकमलों की शरण ले ली है।

—*भागवत* ७.७.१७

शिष्य को यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि गुरु आलोचना से परे है

अनुवाद: दामोदर पंडित ने ढिठाई करके महाप्रभु से कहा, "सारे लोग आपको महान् शिक्षक कहते हैं, क्योंकि आप अन्यों को उपदेश देते हैं किन्तु अब हम देखेंगे कि आप किस तरह के शिक्षक हैं।"

तात्पर्य: दामोदर पंडित श्रीचैतन्य महाप्रभु का महान् भक्त था किन्तु कभी-कभी ऐसे पद पर स्थित व्यक्ति बहिरंगा शक्ति तथा भौतिक कारणों से ढीठ बन जाता है। इस तरह एक भक्त भूल से अपने गुरु या भगवान् के कार्यों की आलोचना करने लगता है। किन्तु भक्त को अपने कार्यों से उद्वेलित होकर उसकी बुराई नहीं करनी चाहिए। भक्त को यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि गुरु की आलोचना नहीं की जा सकती और उसे सामान्य व्यक्ति नहीं माना जा सकता। यदि किसी अपूर्ण भक्त के अनुमान के अनुसार कुछ त्रुटि भी दिखे तो भी भक्त में यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि यदि गुरु शराब की दुकान भी जाता है तो वह शराबी नहीं है प्रत्युत वह किसी अन्य कार्य से वहाँ जाता होगा। एक बँगला कविता में कहा गया है—

यद्यपि नित्यानन्द सुरा-बाडि याय।
तथापिओ हय नित्यानन्द राय॥

"भले ही नित्यानन्द प्रभु किसी शराब की दुकान में घुसे हों किन्तु मैं इस विश्वास से डिगूँगा नहीं कि नित्यानन्द राय भगवान् हैं।"

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ३.११

गुरु में कट्टर विश्वास हुए बिना मनुष्य योग तथा वैदिक अनुष्ठानों के द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता

अनुवाद: अनुष्ठान (कर्मकाण्ड), विधि-विधान, तपस्या योगाभ्यास—ये सभी

इन्द्रियों तथा मन को वश में करने के लिए हैं, किन्तु इन्द्रियों तथा मन को वश में कर लेने के बाद भी यदि वह भगवान् का ध्यान नहीं करता तो सारे कार्यकलाप श्रम के अपव्यय मात्र है।

तात्पर्य: कोई यह तर्क नहीं कर सकता है कि योग्याभ्यास से तथा वैदिक नियमानुसार कर्मकाण्ड करने से गुरु की एकान्त भक्ति किये बिना ही मनुष्य को जीवन के चरम लक्ष्य—परमात्मा—की अनुभूति हो सकती है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि योग्याभ्यास से मनुष्य भगवान् के ध्यान को प्राप्त करता है। जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है—*ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः*—ध्यान में लीन मनुष्य योग्याभ्यास में सिद्धि प्राप्त करता है तब उसे भगवान् के दर्शन होते हैं। मनुष्य अनेक प्रकार के अभ्यासों से इन्द्रियों को वश में कर सकता है किन्तु इन्द्रियों को वश में करने से कोई सार को प्राप्त नहीं होता। किन्तु गुरु तथा भगवान् में एकान्त श्रद्धा होने से मनुष्य न केवल इन्द्रियों को वश में करता है अपितु भगवान् का साक्षात्कार भी करता है।...आगे कहा गया है—*तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया* तथा *तरन्त्यज्ञो भवार्णवम्*। गुरु की सेवा करके ही अज्ञान के सागर को पार करके भगवद्धाम को लौटा जा सकता है। तब उसे क्रमशः भगवान् के साक्षात् दर्शन होते हैं और वह भगवान् की संगति में जीवन का भोग कर सकता है। योग का चरम लक्ष्य भगवान् के सम्पर्क में आना है। जब तक इसकी प्राप्ति न हो तब तक तथाकथित योगाभ्यास व्यर्थ का श्रम है।

—*भागवत* ७.१५.२८

गुरु में पूर्ण श्रद्धा हो जिस प्रकार भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने अपने गुरुमहाराज के प्रति दिखलाई

आज, रविवार १० नवम्बर १९७४ को हमने श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत *चैतन्य चरितामृत* का अंग्रेजी अनुवाद अपने गुरु, मार्गदर्शक तथा मित्र भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर गोस्वामी महाराज के अधिकारिक आदेश के अनुसार पूरा किया। यद्यपि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद ३१ दिसम्बर १९३६ को ही इस भौतिक जगत से अन्तर्धान हो चुके थे किन्तु मैं आज भी उन्हें उनकी वाणी के द्वारा सदैव अपने साथ उपस्थित मानता हूँ।...मैं सोचता हूँ कि वे मेरे कार्यों को सदैव देख रहे हैं और अपनी वाणी से मेरे हृदय के भीतर मेरा मार्गदर्शन कर रहे हैं। जैसा कि *श्रीमद्भागवत*

में कहा गया है *तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये*। आध्यात्मिक प्रेरणा हृदय के भीतर से आती है जहाँ पर भगवान् अपने परमात्मा रूप में सदैव अपने सारे भक्तों तथा संगियों के सहित आसीन रहते हैं। यह स्वीकार करना होगा कि मैंने जो भी अनुवाद कार्य किया है उसे अपने गुरु की प्रेरणा से ही कर सका हूँ, क्योंकि मैं अपने में अति क्षुद्र तथा इस असम्भव कार्य को पूरा करने में अक्षम हूँ। मैं अपने को बहुत बड़ा विद्वान नहीं मानता किन्तु मुझे अपने गुरु की सेवा में पूर्ण श्रद्धा है। यदि मेरे इस अनुवाद कार्य को कोई श्रेय मिलता है तो यह गुरु महाराज के ही कारण है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* अन्त्य ५ अन्तिम शब्द

गुरु में श्रद्धा से विहीन शिष्य हरे कृष्ण कीर्तन में सफल नहीं हो सकता

जिस शिष्य को गुरु में श्रद्धा नहीं है और जो स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करता है वह हरे कृष्ण कीर्तन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता

श्रीचैतन्य महाप्रभु के गुरु ने उन्हें यह कहकर आशीर्वाद दिया "नाचो, गाओ, इस संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार करो और लोगों को कृष्ण के विषय में शिक्षा देकर उन्हें अज्ञान से उबारो।"

...श्रीचैतन्य महाप्रभु ने प्रकाशानन्द सरस्वती को यह भी सूचित किया, "चूँकि मुझे अपने गुरु के वचनों में विश्वास है अतएव मैं सदैव हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे के कीर्तन में लगा रहता हूँ। मैं यह ठीक से नहीं जानता कि मैं किस तरह उन्मत्त जैसा हो गया हूँ, किन्तु मुझे लगता है कि कृष्ण नाम ने मुझे प्रेरित किया है। मैं अनुभव करता हूँ कि हरे कृष्ण कीर्तन से प्राप्त होने वाला दिव्य आनन्द एक सागर के समान है। इसकी तुलना में अन्य सारे आनन्द जिसमें निर्विशेष अनुभूति का आनन्द सम्मिलित है, नालों के छिछले जल जैसे हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति गुरुवचनों में विश्वास नहीं रखता और स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करता है वह हरे कृष्ण कीर्तन करने में वांछित सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। वैदिक वाङ्मय में

यह कहा गया है कि समस्त दिव्य वाङ्मय का सार उस व्यक्ति को प्रकट हो जाता है जिसे परमेश्वर एवं अपने गुरु के कथनों पर दृढ़ विश्वास हो। श्रीचैतन्य महाप्रभु को अपने गुरु के कथनों पर विश्वास था और उन्होंने अपने संकीर्तन आन्दोलन को बन्द करके अपने गुरु के आदेश को कभी-भी उपेक्षा नहीं की। इस तरह पवित्र नाम की शक्ति ने उन्हें हरे कृष्ण महामन्त्र का अधिकाधिक कीर्तन करने के लिए प्रोत्साहित किया।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

श्रद्धाविहीन स्वतन्त्र शिष्य कभी भी भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं करता

अनुवाद: मुझे अपने गुरु के इन वचनों पर दृढ़ विश्वास है, अतएव मैं एकान्त में तथा भक्तों के साथ भी सदैव भगवन्नाम का कीर्तन करता हूँ। भगवान् कृष्ण का वही नाम कभी-कभी मुझे नचाता है और कीर्तन कराता है। इसलिए मैं नाचता और कीर्तन करता हूँ। कृपया ऐसा न सोचें कि मैं जानबूझकर ऐसा करता हूँ। यह स्वतः होता है।

तात्पर्य: जो व्यक्ति अपने गुरु के वचनों में विश्वास नहीं करता अपितु स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है उसे कभी-भी भगवन्नाम कीर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ७.९५-९६

६. शिष्य को विनीत तथा दीन होना चाहिए

गुरु के समक्ष मूर्ख बने रहना चाहिए

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने मन में कहा, "मेरे गुरु महाराज मुझे महामूर्ख समझते थे।" जो अपने गुरु के समक्ष महामूर्ख बना रहता है वह स्वयं गुरु है। किन्तु यदि वह यह कहे, "मैं इतना बढ़ा-चढ़ा हूँ कि मैं अपने गुरु से अच्छा बोल सकता हूँ" तो वह धूर्त ही है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

शिष्य को गुरु के समक्ष सदैव मूर्ख बने रहना चाहिए

जो मूर्ख हैं वही गुरु सेवा छोड़ कर अपने आपको आध्यात्मिक ज्ञान में अग्रणी मानते हैं। ऐसे मूर्खों को रोकने के लिए ही चैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको आदर्श शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया। गुरु भलीभाँति जानता है कि शिष्य को किस विशेष कार्य में लगाया जाय, किन्तु यदि शिष्य अपने को गुरु से अधिक अग्रसर मानकर उसके आदेशों को न मानकर स्वतन्त्र होकर कार्य करता है तो वह अपने हाथों अपनी आध्यात्मिक प्रगति को रोक देता है। हर शिष्य को स्वयं को कृष्णविज्ञान से अनभिज्ञ मानना चाहिए और कृष्णभावनामृत में दक्ष होने के लिए गुरु के आदेशों का पालन करने के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिए। शिष्य को अपने गुरु के समक्ष मूर्ख बने रहना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ७.७२

उपदेश प्राप्त करने के लिए शिष्य को गुरु के पास विनम्रभाव से जाना चाहिए

भौतिक प्रकृति के कष्टों से मुक्त होने के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जिज्ञासा तथा विनयपूर्वक जाना चाहिए। जब अर्जुन ने कृष्ण की शरण ग्रहण की तो उसने कहा, ''हे कृष्ण! अब मैं आपसे मित्र के रूप में बात नहीं करना चाहूँगा, क्योंकि अब मैत्रीपूर्ण बातों से लाभ नहीं होगा।'' सामान्यतया हम अपने मित्र से समय काटने के लिए बातें करते हैं, किन्तु जब हम गुरु के पास जाँए तो हमें विनम्र होना चाहिए। मित्र एक दूसरे के पास समानता के स्तर पर पहुँचते हैं, किन्तु गुरु के पास पहुँचने का यह तरीका नहीं है। जब तक विनम्र न हुआ जाय तब तक उदात्त शिक्षाएँ स्वीकार नहीं की जा सकतीं। अर्जुन भगवान् कृष्ण से अपना मैत्री सम्बन्ध त्याग कर हमें विनम्रता (आत्मसमर्पण) का पाठ सिखाता है। वह कहता है, ''अब मैं आपका शिष्य बन चुका हूँ। कृपया मुझे शिक्षा दीजिये।''

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

यदि कोई कृष्णभावनाभावित गुरु के पास ललकार भरी या गर्वित मुद्रा से पहुँचता है तो उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता और वह भौतिक

चेतना में रहा आता है

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय के समक्ष अवर स्थान ग्रहण किया। इसकी अत्यधिक महत्ता है। यदि कोई कृष्ण के दिव्य स्वभाव को समझने के विषय में गम्भीर है तो उसे ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो वास्तव में कृष्णभावनामृत से युक्त हो। उसे अपने भौतिक जन्म, भौतिक ऐश्वर्य, भौतिक शिक्षा तथा सौन्दर्य का गर्व नहीं होना चाहिए और उसके द्वारा उसे कृष्णभावनामृत के प्रगत छात्र के मन को जीतने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति इस तरह सोचते हुए कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के पास जाता है कि उसे अनुकूल प्रेरणा प्राप्त होगी वह इस विज्ञान के विषय में भ्रमित है। उसे कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के पास सम्पूर्ण विनम्रता के साथ जाना चाहिए और उससे प्रासंगिक प्रश्न पूछने चाहिए। यदि वह उसे ललकारने जाता है तो ऐसा उच्च कृष्णभावनाभावित व्यक्ति किसी प्रकार की सेवा के लिए उपलब्ध नहीं हो सकेगा। ललकार द्वारा गर्वित व्यक्ति कृष्णभावनाभावित व्यक्ति से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। वह मात्र भौतिक चेतना में बना रहेगा।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएं*

शिष्य को विनीत होकर गुरु से प्रश्न करना चाहिए

जो लोग *भागवत* सुनते हैं वे वक्ता से अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रश्न कर सकते हैं किन्तु ललकारने के उद्देश्य से ऐसा नहीं करना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वक्ता तथा विषय के प्रति सम्मान करते हुए प्रश्न पूछे। *भगवद्‌गीता* में भी इसी विधि की संस्तुति हुई है। मनुष्य को सही स्रोतों से विनीत भाव से सुनकर दिव्य विषय सीखना चाहिए।

—*भागवत* १.१.५

मनुष्य को अति विनम्रता तथा आत्मनिवेदन के साथ गुरु के समक्ष प्रस्ताव रखना चाहिए

अनुवाद: वह ब्राह्मण तुरन्त ही श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़ा और प्रार्थना की कि वे प्रसन्न होकर उसके प्रस्ताव को स्वीकार करें। "हे प्रभु! मैंने बनारस के सारे संन्यासियों को अपने घर पर आमन्त्रित किया है। यदि आप मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लें तो मेरी इच्छा पूरी हो जाय।"

तात्पर्य : वैदिक आदेश है—*तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया*—अपने गुरुजन के पास विनीत भाव से जाना चाहिए (*भगवद्गीता* ४.३४)। अपने से गुरुजन को ललकारा नहीं जा सकता प्रत्युत अत्यन्त विनीत होकर उसके समक्ष अपना सुझाव रखना होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु निजी आचरण से आदर्श शिक्षक हैं और उन्हीं की तरह उनके सारे शिष्य भी हैं। इस तरह इस ब्राह्मण ने श्रीचैतन्य की संगति से शुद्ध होकर उनके समक्ष प्रस्ताव रखा। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा...और उसने निवेदन किया कि वे दया करके प्रार्थना स्वीकार कर लें। इस तरह उसने अपनी इच्छा प्रकट की।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ७.५३-५४

यदि गुरु कटु व्यवहार करे तो भी शिष्य को विनम्र रहना चाहिए

आदरणीय गुरुजन...सदैव पूजनीय होते हैं। यहाँ तक कि वे आक्रमण करें तो भी उनपर उलट कर वार नहीं करना चाहिए। सामान्य शिष्टाचार है कि गुरुजनों से वाक्युद्ध न किया जाय। यदि वे कभी कटु व्यवहार करें तो भी उनके साथ कटुता का आचरण नहीं करना चाहिए।

—*भगवद्गीता* १.४

प्रामाणिक गुरु के पास पहुँच कर प्रामाणिक छात्र किस तरह प्रार्थना करे

जब प्रामाणिक छात्र प्रामाणिक गुरु के पास पहुँचता है तो वह विनीत भाव से गुरु से प्रार्थना करता है, "हे प्रभु! आप मुझे अपना छात्र बना लें और मुझे इस तरह प्रशिक्षित करें कि मैं आत्मसाक्षात्कार के लिए अन्य सारी विधियों का परित्याग कर सकूँ और एकमात्र कृष्णभावनामृत में यानी भक्ति में लग सकूँ।"

—*लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण*

७. शिष्य को चाहिए कि गुरु को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में आदर-सम्मान प्रदान करे

भाग २ के अनुभाग २ को देखें

गुरु कृष्ण की अभिव्यक्ति है (और इसलिए उन्हें साधारण मनुष्य नहीं समझना चाहिए)

८. ब्रह्मचारी शिष्य के गुण तथा कर्तव्य

ब्रह्मचर्य तो तपस्या करते हुए गुरु की सेवा में अपने जीवन को अर्पित करने के लिए है

"हर व्यक्ति को चाहिए कि अपने जीवन को चार भागों में बाँट ले। उसे जीवन के प्रथम भाग का उपयोग प्रामाणिक छात्र बनने, पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करने तथा ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने में करना चाहिए जिससे वह इन्द्रियतृप्ति में लिप्त हुए बिना गुरु की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर सके। ब्रह्मचारी तपस्या का जीवन बिताने के लिए है।

—*लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण*

गुरु के ब्रह्मचारी शिष्य के गुण

अनुवादः नारद मुनि ने कहा: विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखने का अभ्यास करे। उसे विनीत होना चाहिए और गुरु के साथ दृढ़ मित्रता की प्रवृत्ति रखनी चाहिए। ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह गुरुकुल में केवल अपने गुरु के लाभ के लिए ही महान् व्रत ले।

दिन तथा रात्रि के संधिकाल में अर्थात् प्रातःकाल तथा संध्या समय उसे गुरु, अग्नि, सूर्यदेव तथा भगवान् विष्णु के विचारों में लीन रहना चाहिए और गायत्री मन्त्र को जपते हुए उसकी पूजा करनी चाहिए।

गुरु द्वारा बुलाये जाने पर विद्यार्थी को चाहिए कि वह उनसे नियम से वैदिक मन्त्रों का अध्ययन करे। शिष्य को प्रतिदिन अपना अध्ययन प्रारम्भ करने के पूर्व तथा अध्ययन के अन्त में अपने गुरु को नमस्कार करना चाहिए।

ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह सुबह-शाम भिक्षा माँगने के लिए बाहर जाय और जो भी भिक्षा मिले उसे लाकर गुरु को दे। वह तभी भोजन करे जब गुरु उसे भोजन करने का आदेश दे अन्यथा यदि गुरु आदेश न दे तो वह उपवास करे ब्रह्मचारी को सदाचारी तथा भद्र होना चाहिए। उसे न तो आवश्यकता से अधिक खाना चाहिए न एकत्र करना चाहिए। उसे सदैव सक्रिय तथा पटु होना चाहिए और गुरु तथा शास्त्रों के आदेशों में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। उसे अपनी इन्द्रियों पर संयम रखते हुए स्त्रियों से या स्त्रियों के वशीभूत पुरुषों से उतनी ही संगति करनी चाहिए जितनी कि आवश्यक हो।

—*भागवत* ७.१२.१-३, ५-६

शिष्य गुरु के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देता है

गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के पूर्व मनुष्य को गुरु के संरक्षण में उसके स्थान या गुरुकुल में ब्रह्मचारी के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए। *ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो गुरोर्हितम्* (भागवत ७.१२.१)। ब्रह्मचारी को प्रारम्भ से ही सिखाया जाता है कि गुरु के लाभ के लिए सब कुछ न्यौछावर कर दे। ब्रह्मचारी को उपदेश दिया जाता है कि वह सभी स्त्रियों को माता कहकर घर-घर भिक्षा माँगे और जो कुछ एकत्र करे उसे वह गुरु को लाकर दे दे। इस तरह वह अपनी इन्द्रियों को वश में करना तथा प्रत्येक वस्तु गुरु को समर्पित करना सीखता है।

—*भागवत* ७.६.९

ब्रह्मचारी गुरु का सेवक होता है

वैदिक पद्धति के अनुसार बालक को प्रारम्भ से ही गुरुकुल में आध्यात्मिक ज्ञान सीखने के लिए भेज दिया जाता है। जब बालक गुरुकुल जाता है तो वह ब्रह्मचारी बन जाता है और सेवक की तरह कार्य करता है चाहे वह किसी बड़े राजा या बड़े ब्राह्मण का पुत्र क्यों न हो। जब कोई गुरुकुल

जाता है तो वह तुरन्त सेवक बन जाता है। यदि गुरु उससे कोई निम्न सेवा करने को कहता है तो वह उसे करने के लिए तैयार रहता है। यही ब्रह्मचारी का कार्य है। हमें शिक्षा देने के लिए ही कृष्ण भी गुरुकुल गये। भगवान् कृष्ण को गुरुकुल जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु आदर्श प्रस्तुत करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया।

—*भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ*

नैष्ठिक ब्रह्मचारी जो कुछ अपने गुरु से सुन चुका होता है उसको स्मरण कर सकता है

जीवन की ब्रह्मचारी प्रणाली विशेष रूप से लाभप्रद है, क्योंकि इससे स्मरण शक्ति तथा संकल्पशक्ति बढ़ती है। इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेख किया गया है कि चूँकि नारद नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे अतएव उन्होंने अपने गुरु से जो कुछ सुना था उसे वे स्मरण रख सके और कभी नहीं भूले। जो व्यक्ति हर बात को हमेशा स्मरण रख सकता है वह *श्रुतधर* कहलाता है। *श्रुतधर ब्रह्मचारी* किसी प्रकार के गुटके तथा किसी पुस्तक का सन्दर्भ दिये बिना सुनी हुई बात को अक्षरशः दुहरा सकता है।...इस तरह नारद मुनि अपने गुरु नारायण ऋषि से सुनने के बाद पूर्णरूपेण स्वरूपसिद्ध बन गये।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

९. गृहस्थ शिष्य अपने गुरु के आदेशानुसार अपने यौन जीवन को नियमित बनाते हैं

गृहस्थ शिष्यों को गुरु के आदेशानुसार ही यौन-जीवन में लिप्त होना चाहिए

अनुवाद: (स्त्री तथा पुरुष सम्बन्धी) सारे नियम तथा विधान गृहस्थ तथा संन्यासी दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं। किन्तु सन्तोनात्पत्ति के लिए गुरु ही गृहस्थ शिष्यों को उपयुक्त अवसर पर मैथुन करने की अनुमति प्रदान करता है।

तात्पर्य: कभी-कभी गलती से यह समझ लिया जाता है कि गृहस्थ को कभी भी मैथुन करने की अनुमति है। यह गृहस्थ जीवन की मिथ्या धारणा है। आध्यात्मिक जीवन में, चाहे कोई गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो, संन्यासी हो या ब्रह्मचारी, हरएक व्यक्ति गुरु के अधीन रहता है। ब्रह्मचारियों तथा संन्यासियों को मैथुन में रत होने के लिए कठोर वर्जना है। इसी प्रकार गृहस्थों के लिए भी कठोर प्रतिबन्ध है। गृहस्थ को गुरु के आदेशानुसार ही स्त्री-सम्भोग में रत होना चाहिए। इसलिए यहाँ पर उल्लेख है कि मनुष्य अपने गुरु के आदेशों का पालन करे (*गुरुवृत्तिर्विकल्पेन*)। गुरु की आज्ञा होने पर गृहस्थी विषयी जीवन स्वीकार कर सकता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (७.११) हुई है। *धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि*—धार्मिक विधि-विधानों की अवज्ञा किये बिना विषयी जीवन बिताना ही धर्म है। गृहस्थ को गुरु की आज्ञा से सन्तानोत्पत्ति के लिए उपयुक्त अवधि में स्त्रीगमन करने की अनुमति है। यदि गृहस्थ को गुरु किसी विशेष समय में स्त्री-सम्भोग करने की अनुमति देता है तो गृहस्थ ऐसा कर सकता है किन्तु यदि गुरु का आदेश न हो तो गृहस्थ ऐसा न करे। गृहस्थ को चाहिए कि *गर्भाधान संस्कार* सम्पन्न करने के लिए अपने गुरु की अनुमति प्राप्त करे। तभी वह सन्तान उत्पन्न करने के लिए अपनी पत्नी से मिले अन्यथा नहीं। सामान्यतया ब्राह्मण आजीवन ब्रह्मचारी रहा आता है, किन्तु कुछ ब्राह्मण अपने गुरु की आज्ञा से गृहस्थ बनकर स्त्री-गमन करते हैं। क्षत्रिय को एक से अधिक पत्नियों से विवाह की छूट है, किन्तु इसे भी गुरु की ही आज्ञा से करना चाहिए। गृहस्थ होने का अर्थ यह नहीं है कि वह चाहे जितनी बार विवाह करके स्वेच्छापूर्वक विषय-भोग में रत हो। यह कोई आध्यात्मिक जीवन नहीं। आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य को अपना सारा जीवन गुरु के मार्गदर्शन में संचालित करना होता है। जो गुरु के निर्देशानुसार आध्यात्मिक जीवन बिताता है वही कृष्ण की कृपा प्राप्त कर सकता है। *यस्यप्रसादाद् भगवत्प्रसादः*। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति का इच्छुक व्यक्ति यदि मनमाने ढंग से कर्म करता है और गुरु के आदेशों का पालन नहीं करता तो उसको शरण नहीं मिल पाती। *यस्य प्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*। गुरु आदेश के बिना गृहस्थ को भी विषयी जीवन में अनुरक्त नहीं होना चाहिए।

—*भागवत* ७.१२.११

१०. शिष्य अपने गुरुभाइयों से किस तरह बर्ताव करे

किसी को अपने गुरुभाइयों का अनादर नहीं करना चाहिए

अनुवाद: तब श्रीचैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य से बोलते रहे, "इस बात पर विचार करें। गुरु का सेवक मेरे लिए सदैव आदरणीय है। फलतः यह उपयुक्त नहीं है कि गुरु का सेवक मेरी निजी सेवा करे। फिर भी मेरे गुरु ने यह आदेश दिया है। मैं क्या करूँ?"

तात्पर्य: यदि किसी गुरु का सेवक या शिष्य अन्य शिष्य का गुरुभाई बन जाता है तो वे एक दूसरे को *प्रभु* कहकर आदर देते हैं। किसी को भी अपने गुरुभाई का अनादर नहीं करना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १०.१४२-४३

प्रथम तथा द्वितीय दीक्षा प्राप्त भक्तों का सम्मान किस प्रकार हो

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।

अनुवाद: मनुष्य को चाहिए कि भक्त का मन में सम्मान करे जो कृष्ण के पवित्रनाम का कीर्तन करता है, उसे चाहिए कि उस भक्त को सविनय नमस्कार करे जिसने दीक्षा प्राप्त की है और अर्चाविग्रह की पूजा में संलग्न हो।

तात्पर्य: श्रील रूपगोस्वामी सलाह देते हैं कि हमें वैष्णवों से उपयुक्त ढंग से उनके विशेष पद के अनुसार भेंट करनी चाहिए। इस श्लोक में वे यह बताते हैं कि तीन प्रकार के भक्तों—कनिष्ठ अधिकारी, मध्यम अधिकारी तथा उत्तम अधिकारी से किस तरह व्यवहार किया जाय। *कनिष्ठ अधिकारी* नौसिखिया होता है जिसने गुरु से हरिनाम की दीक्षा ली होती है और कृष्ण नाम के कीर्तन करने का प्रयास करता होता है। ऐसे व्यक्ति का आदर *कनिष्ठ वैष्णव* के रूप में मन ही मन करना चाहिए। *मध्यम अधिकारी* गुरु से दीक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में पूरी तरह

लगा रहता है
चाहिए।...वे
और गुरु के अ
करना चाहिए।
होना चाहता है
में स्वीकार कर
गुरु के आदेशों
मान कर उसको

शिष्य को अ
कि प्रगत गुरुभ

शिष्य को
यदि गुरुभाई
गुरु तुल्य ही म
करते देखकर प्र

शिष्य को चा
भगवान् सदृश

अनुवाद: प्रहल
गुरुभाइयों को भ

११. शिष्य
चाहिए

मनुष्य को चा

लगा रहता है। मध्यम अधिकारी को भक्ति के मध्यमार्ग में स्थित मानना चाहिए।...वे नौसिखिये भक्त जो प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षित हुए रहते हैं और गुरु के आदेशों का गम्भीरतापूर्वक पालन करते हैं उन्हें सादर नमस्कार करना चाहिए। जो इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन में रुचि लेता है और दीक्षित होना चाहता है तो हम उसे भगवन्नाम का कीर्तन करने के लिए शिष्य रूप में स्वीकार कर लेते हैं। जब नौसिखिया भक्त वास्तव में दीक्षित होकर अपने गुरु के आदेशों से भक्ति में लगा रहता है तो उसे तुरन्त ही प्रामाणिक वैष्णव मान कर उसको नमस्कार करना चाहिए।

—*उपदेशामृत* श्लोक ५

शिष्य को अपने गुरुभाइयों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए; उसे चाहिए कि प्रगत गुरुभाइयों का आदर गुरु के ही तुल्य करे

शिष्य को व्यर्थ ही अपने गुरुभाइयों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए; प्रत्युत यदि गुरुभाई अधिक प्रबुद्ध तथा कृष्णभावनामृत में बढ़ा-चढ़ा है तो उसे गुरु तुल्य ही मानना चाहिए और ऐसे गुरुभाइयों को कृष्णभावनामृत में प्रगति करते देखकर प्रसन्न होना चाहिए।

—*भागवत* ३.३२.४२

शिष्य को चाहिए कि अपने गुरु तथा अधिक आयुवाले गुरुभाइयों को भगवान् सदृश माने

अनुवाद: प्रहलाद अपने अध्यापकों, अपने गुरुओं तथा अधिक आयु वाले गुरुभाइयों को भगवान् सदृश ही मानते थे।

—*भागवत* ७.४.३२

११. शिष्य को अपने गुरु के गुरुभाइयों का आदर करना चाहिए

मनुष्य को चाहिए कि अपने गुरु के गुरुभाइयों का अपने गुरु के तुल्य

आदर करे

श्रीअद्वैत प्रभु तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी दोनों ही माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे जो कि नित्यानन्द प्रभु के भी गुरु थे। इस तरह चैतन्य महाप्रभु के आध्यात्मिक चाचा के रूप में अद्वैत प्रभु सदैव सम्माननीय थे, क्योंकि मनुष्य को चाहिए कि अपने गुरु के गुरुभाइयों का आदर अपने गुरु के ही तुल्य करे।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ५.१४७

मनुष्य को चहिए कि अपने गुरु के गुरुभाइयों का आदर अपने गुरु के तुल्य करे

अनुवाद: यह सोचकर कि वे (श्री अद्वैत आचार्य) श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य हैं श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने गुरु के समान ही उनका आदर करते हुए उनकी आज्ञा का पालन करते हैं।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ६.४०

१२. शिष्य का युवती गुरु-पत्नी के साथ बर्ताव

शिष्य तथा गुरु-पत्नी के मध्य सम्बन्ध

अनुवाद: यदि गुरु-पत्नी युवती हो तो युवा ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह न तो उससे अपने बाल कढवाए, न शरीर में तेल मालिश कराये, न ही उसे माता तुल्य प्यार से स्नान कराने दे।

तात्पर्य: शिष्य तथा गुरु-पत्नी के मध्य माता-पुत्र का सा सम्बन्ध होता है। कभी-कभी माता अपने पुत्र के बाल काढ़ती है, उसके शरीर पर तेल मलती है या उसे नहलाती है। इसी तरह गुरु-पत्नी भी माता होती है, अतएव उसे भी माता तुल्य शिष्य की परवाह करनी चाहिए। किन्तु यदि गुरु-पत्नी युवती हो तो युवक ब्रह्मचारी को चाहिए कि ऐसी माता को अपना स्पर्श न करने दे। इसका कठोर निषेध है।

—*भागवत* ७.१२.८

यदि गुरुपत्नी युवती हो तो शिष्य को उसे देखना या उसकी सेवा करना वर्जित है

यहाँ पर आगाह किया गया है कि मनुष्य को स्त्रियों के साथ बर्ताव करते समय अत्यधिक सावधान रहना चाहिए। यदि गुरु-पत्नी युवती हो तो ब्रह्मचारी को उसको देखना तक मना है। गुरुपत्नी कभी-कभी अपने पति के शिष्य से कुछ सेवाकार्य ले सकती है जिस तरह वह अपने पुत्र से लेती है, किन्तु गुरु-पत्नी युवती हो तो ब्रह्मचारी को उसकी सेवा करना वर्जित है।

—*भागवत* ९.१९.१७

१३. शिष्य अपने गुरु की कृपा तथा आशीर्वाद से ही कृष्णभावनामृत में अग्रसर होता है

शिष्य अपने गुरु की कृपा से ही कृष्णभावनामृत में अग्रसर होता है

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायन् स्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

अनुवादः गुरु की कृपा से ही मनुष्य को कृष्ण से वर प्राप्त होता है। गुरु की कृपा के बिना वह कोई उन्नति नहीं कर सकता। अतएव मुझे सदैव गुरु का स्मरण एवं प्रशंसा करनी चाहिए। दिन में कम से कम तीन बार मुझे अपने गुरु के चरणकमलों को सादर नमस्कार करना चाहिए।

—श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत
श्री श्री गुर्वष्टक श्लोक ८

गुरु की कृपा से ही शुद्ध भक्ति तथा कृष्ण की कृपा प्राप्त की जा सकती है

श्री-गुरु-चरण-पद्म, केवल भक्ति-सद्म
वन्दो मुइ सावधान-मते।
याहार प्रसादे भाइ, ए भव तरिया याइ
कृष्ण-प्राप्ति हय याहा हइते॥

अनुवादः हमारे गुरु के चरणकमल ही एकमात्र साधन हैं जिनसे हम शुद्ध

भक्ति प्राप्त कर सकते हैं। मैं उनके चरणकमलों पर अतीव सादर श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ। उनकी कृपा से मनुष्य भवसागर को पार कर सकता है और कृष्णकृपा प्राप्त कर सकता है।

—नरोत्तमदास ठाकुर कृत *श्री गुरु चरणपद्म*

गुरु के आशीर्वाद मात्र से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है

वैष्णव के आशीर्वाद से सब कुछ सम्भव है। इसे *भक्तिरसामृत सिन्धु* में कृपा-सिद्धि कहा गया है। सामान्यतया शास्त्रों द्वारा निर्धारित विधि-विधानों का पालन करने से मनुष्य मुक्त तथा पूर्ण बन जाता है। तो भी अनेक लोगों को केवल गुरु या श्रेष्ठजन के आशीर्वाद से सिद्धि प्राप्त हुई है।

—*भागवत* ५.१.१०

गुरु के आशीर्वाद की शक्ति

मनुष्य को चाहिए कि गुरु के पास अत्यन्त दीनतापूर्वक जाए और सभी प्रकार की सेवाएँ अर्पित करे जिससे वह प्रसन्न होकर शिष्य को आशीर्वाद दे सके। चूँकि प्रामाणिक गुरु कृष्ण का प्रतिनिधि होता है, अतएव यदि वह अपने शिष्य को कोई आशीर्वाद देता है तो शिष्य विधि-विधानों का पालन किये बिना तुरन्त ही बढ़-चढ़ जाएगा। या कि जिसने बिना सोचे-विचारे गुरु की सेवा की है उसके लिए विधि-विधान सरलतर हो जाएँगे।

—*भगवद्गीता* १३.८

कृष्ण के परम विश्वस्त सेवक के रूप में गुरु शिष्य को आशीर्वाद दे सकता है

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गुरुकृपा पर अत्यधिक बल दिया है और यह वास्तविकता है कि यदि हम अपनी सेवा से गुरु को तुष्ट कर लेते हैं तो वह हमें आशीर्वाद देगा। यह अहोभाग्य है, क्योंकि गुरु कृष्ण का विश्वस्त सेवक होता है। गुरु यह कभी नहीं दावा करता कि वह कृष्ण है यद्यपि वह कृष्ण के समान पूजनीय है....सारे शास्त्र गुरु को कृष्ण के समतुल्य बताते हैं, क्योंकि वह कृष्ण का प्रतिनिधि होता है। इसलिए वह कृष्ण के समान पूजनीय है। कृष्ण का परम विश्वस्त सेवक होने से गुरु कृष्ण को अतिप्रिय होता है इसलिए यदि वह कृष्ण से किसी के लिए संस्तुति करता है तो कृष्ण उस व्यक्ति को स्वीकार कर लेते हैं।...यदि हम गुरु की कृपा प्राप्त नहीं कर सकते तो कृष्ण के पास सीधे पहुँच पाना अति

कठिन है।

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

गुरु तथा कृष्णकृपा से मनुष्य भक्ति के पद को प्राप्त करता है

साधु-संग-कृपा किंवा कृष्णेर कृपाय।
कामादि 'दुःसंग' छाडि' शुद्ध-भक्ति पाय॥

अनुवाद: "वैष्णव, प्रामाणिक गुरु तथा कृष्ण की विशेष कृपा से मनुष्य भक्तिमय जीवन के पद को प्राप्त करता है। उस पद पर वह सारी भौतिक इच्छाएँ तथा अवांछित लोगों की संगति त्याग देता है। इस तरह वह शुद्ध भक्ति के पद तक उठ जाता है।"

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.९७

जब तक गुरु का आशीर्वाद प्राप्त न हो, आध्यात्मिक शिक्षाएँ हृदय में विकसित नहीं होंगी

जब श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामी को शिक्षाएँ दे चुके तो शक्त्याविष्ट तथा प्रबुद्ध होकर सनातन इतने अधिक प्रसन्न हुए कि वे तुरन्त चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और बोले, "मैं अति निम्न कुल में उत्पन्न हूँ और मैंने सदैव नीच लोगों की संगति की है इसलिए मैं पापियों में सर्वाधिक नीच हूँ। फिर भी आप इतने दयालु हैं कि आपने मुझे ऐसी शिक्षाएँ दी हैं जो इस ब्रह्माण्ड के सबसे महान् प्राणी ब्रह्मा की भी समझ में नहीं आतीं। आपकी कृपा से मैं आपके द्वारा बताये गये निर्णयों का आदर करता हूँ किन्तु मैं इतना नीच हूँ कि आपकी शिक्षा रूपी सागर की एक बूँद का भी स्पर्श नहीं कर सकता। अतः यदि आप मुझ पंगु को नचाना चाहते हैं तो आप मेरे शिर पर अपना पाँव रख कर मुझे अपना आशीर्वाद दें।"

इस तरह सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु से इसकी पुष्टि करने के लिए प्रार्थना की कि उनकी शिक्षाएँ उसके हृदय में वास्तव में विकसित हों। अन्यथा सनातन जानते थे कि उनमें महाप्रभु की शिक्षाओं का वर्णन कर सकने की सम्भावना नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि आचार्य उच्चतर अधिकारियों द्वारा अधिकृत नहीं होते हैं। शिक्षा ही किसी को दक्ष नहीं बना सकती। जब तक गुरु या आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त न हो, ऐसी शिक्षाएँ पूर्णतया प्रकट नहीं हो पातीं। अतएव मनुष्य को अपने गुरु की कृपा की आकांक्षा करनी चाहिए जिससे गुरु की शिक्षाएँ उसके भीतर विकसित हो सकें। सनातन गोस्वामी की प्रार्थना सुनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सनातन के शिर पर अपना

पाँव रखा और उन्हें आशीर्वाद दिया जिससे उनकी शिक्षाएँ पूरी तरह से विकसित हो सकें।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गुरु की कृपा के बिना आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं की जा सकती

आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत भक्त या साधु की संगति से होती है। साधु की कृपा के बिना रंच भी प्रगति नहीं की जा सकती।...हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद महाराज से पूछा, "हे पुत्र प्रह्लाद महाराज! तुम कृष्णभावनामृत में इतना आगे कैसे बढ़ गये हो?" यद्यपि हिरण्यकशिपु असुर था तो भी वह जिज्ञासु था। प्रह्लाद महाराज ने उत्तर दिया, "हे पिता, हे असुरश्रेष्ठ! गुरु की शिक्षाओं से ही मनुष्य कृष्णभावनामृत प्राप्त कर सकता है। इसे मात्र चिन्तन से नहीं प्राप्त किया जा सकता। सामान्य लोग यह नहीं जानते कि उनका चरम गन्तव्य विष्णु के पास लौटना है।"

—*भगवान् कपिल की शिक्षाएँ*

गुरु अपने शिष्यों में महती कृपा का वितरण करता है

गुरु-प्रसाद सूचक है कि गुरु शिष्य को भक्ति का वर देने में अत्यन्त दयालु होता है। गुरु के पास शिष्य को देने के लिए यह सबसे बड़ा उपहार होता है। जिनका जीवन पवित्र है वे जीव के परम लाभ को प्राप्त करने के पात्र होते हैं और इस लाभ को प्रदान करने के लिए भगवान् की कृपा प्राप्त करके गुरु पवित्र लोगों में इस कृपा का वितरण करता है। इस प्रकार गुरु अपने शिष्यों को भागवद्भक्ति करने का प्रशिक्षण देता है। यही गुरुकृपा है। यह *कृष्ण प्रसाद* या कृष्ण की कृपा है कि वे योग्य शिष्य के लिए प्रामाणिक गुरु भेजते हैं। कृष्ण-कृपा से ही गुरु से भेंट होती है और गुरु की कृपा से शिष्य भगवद्भक्ति में प्रशिक्षित हो पाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १९.१५२

गुरु के आशीर्वाद से शिष्य सिद्ध बनता है

श्रीचैतन्य-चरितामृत के अन्तिम भाग के आठवें अध्याय के श्लोक २८-२९ में कहा गया है... "श्री माधवेन्द्रपुरी अपने अन्तिम समय में अशक्त हो गये थे और हिल-डुल नहीं सकते थे। ईश्वर पुरी उनकी सेवा करते थे, यहाँ तक कि उनका मल-मूत्र भी स्वयं साफ करते थे। ईश्वर पुरी ने सदैव हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन और माधवेन्द्रपुरी को उनके अन्तिम समय में भगवान्

कृष्ण की लीलाओं का स्मरण कराकर उनके शिष्यों में से सर्वाधिक सेवा की। इस तरह माधवेन्द्रपुरी ने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया, "हे बालक! भगवान् कृष्ण से मेरी यही विनती है कि वे तुम पर प्रसन्न हों। इस तरह ईश्वर पुरी अपने गुरु की कृपा से भगवत्प्रेम के महासागर में महान् भक्त बन गये।" श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अपने *गुर्वष्टक* में प्रार्थना करते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*—गुरु की कृपा से ही कृष्ण कृपा का वर मिलता है। कोई भी गुरुकृपा के बिना उन्नति नहीं कर सकता। गुरुकृपा से ही मनुष्य पूर्ण बनता है जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट है। भगवान् वैष्णव की सदैव रक्षा करते हैं किन्तु यदि वह अशक्त हो जाता है तो इससे उसके शिष्यों को सेवा करने का अवसर मिलता है। ईश्वर पुरी ने अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न कर लिया और अपने गुरु के आशीर्वाद से वे इतने महान् बन गये कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उन्हें अपना गुरु बनाया।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ९.११

जब गुरु शिष्य की सेवा से तुष्ट हो जाता है तो वह उसे आशीर्वाद देता है

(अपने गुरु के मृत पुत्र को जीवित लौटा कर) दोनों भाइयों ने अपने गुरु से पूछा कि उन्हें और कुछ तो नहीं माँगना किन्तु गुरु ने उत्तर दिया, "हे पुत्रो! तुमने मेरे लिए पर्याप्त किया है। अब मैं पूर्णरूपेण तुष्ट हूँ। जिसके तुम जैसे शिष्य हों उसे और क्या चाहिए? मेरे बच्चों! अब तुम घर जा सकते हो। तुम्हारे ये यशस्वी कार्य सारे जगत में सदैव विख्यात रहेंगे। तुम समस्त आशीर्वाद से परे हो फिर भी मेरा कर्तव्य है कि तुम्हें आशीर्वाद दूँ। मैं तुम्हें यह वर देता हूँ कि तुम जो भी बोलोगे वह वेदों की शिक्षा के ही समान नित नूतन रहेगा। तुम्हारी शिक्षाएँ न केवल इस ब्रह्माण्ड में या इस कल्प में, अपितु सारे स्थानों तथा सारे युग में समादरित होंगी और अधिकाधिक नवीन तथा महत्त्वपूर्ण बनी रहेंगी।" अपने गुरु के इस आशीष से भगवान् कृष्ण की *भगवद्गीता* अधिकाधिक नवीन है और यह न केवल इस ब्रह्माण्ड के भीतर अपितु अन्य लोकों तथा अन्य ब्रह्माण्डों में भी विख्यात है।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

गुरु की कृपा से मनुष्य को सुख, शान्ति तथा समृद्धि प्राप्त हो सकती है और वह मानव जीवन के मिशन को पूरा करने में सक्षम हो सकता है

"हमारे गुरुदेव ने अतीव दयापूर्वक कहा... "यह तो शिष्य का कर्तव्य है कि वह गुरु की सेवा में अपने जीवन को समर्पित कर दे। हे द्विज श्रेष्ठ! मैं तुम्हारे काम से अत्यधिक प्रसन्न हूँ और मैं आशीर्वाद देता हूँ—तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी हों। तुमने मुझसे वेदों का जो ज्ञान प्राप्त किया है वह सदैव तुम्हारी स्मृति में बना रहे जिससे तुम हर क्षण वेदों की शिक्षाओं को स्मरण कर सको और उनके आदेशों को बिना कठिनाई के उद्धृत कर सको। इस तरह तुम इस जीवन में या अगले जीवन में कभी निराश नहीं होगे।"

कृष्ण ने कहा, "मेरे मित्र!...हम दोनों अनुभव कर सकते हैं कि गुरु के आशीर्वाद के बिना कोई सुखी नहीं हो सकता। गुरु की कृपा तथा उनके आशीर्वाद से मनुष्य शान्ति तथा समृद्धि प्राप्त कर सकता है और मानव जीवन के मिशन को पूरा कर सकता है।"

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

अपने गुरु की कृपा हेतु शिष्य द्वारा प्रार्थना

गुरुदेव! इस सेवक को कृपा की एक बूँद ही सही प्रदान कीजिये। मैं घास की पत्ती से भी तुच्छ हूँ। सभी प्रकार से सहायता कीजिये। मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। मुझे भी अपनी तरह निष्काम बनाइये।

मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ, क्योंकि इस तरह से आपको सही-सही जानने की मुझे शक्ति मिल सकती है। तब अत्यधिक आनन्द से पवित्र नाम का कीर्तन करने से मेरे सारे अपराध समाप्त हो जाएँगे।

इस निर्बल तथा बुद्धिहीन पर ऐसा कृपा की वर्षा कब होगी? मुझे अपने साथ रहने की अनुमति दीजिये। आप मुझ पर कृपालु नहीं हैं तो मैं केवल रो सकता हूँ और मैं अपना जीवन धारण नहीं कर सकूँगा।

—भक्तिविनोद कृत *गुरुदेव! कृपाबिन्दु दिया*

१४. शिष्य को चाहिए कि गुरु के प्रति अपराध करने से बचे

माता-हाथी अपराध—गुरु के उपदेशों का उल्लंघन

अनुवाद: "यदि कोई भक्त इस जगत में भक्तिलता का सेवन करते हुए किसी वैष्णव के चरणों में अपराध करता है तो उसके अपराध की तुलना उस पागल हाथी से की जाती है जो लता को उखाड़ कर उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। इस तरह लता की पत्तियाँ सूख जाती हैं।"

तात्पर्य: मनुष्य को चाहिए कि अपने को आचार्यों के दास का दास समझे। यदि यह सोचने लगे कि मैं प्रौढ़ हो गया हूँ और वैष्णवों की संगति से अलग रह सकता हूँ तो उसकी स्थिति बड़ी भयानक बन जाती है। पवित्र नाम के विरुद्ध अपराधों की व्याख्या *आदि लीला* में (८.२४) की जा चुकी है। विधि-विधानों का परित्याग करके मनमाने ढंग से रहने की तुलना उस उन्मत्त हाथी से की गई है जो बलपूर्वक भक्ति-लता को उखाड़कर उसके खंड-खंड कर देता है। इस तरह भक्तिलता मुरझा जाती है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब वह अपने गुरु के आदेशों का उल्लंघन करता है। यह *गुरु-अवज्ञा* है। अत: भक्त को सतर्क रहना चाहिए कि गुरु के विरुद्ध कोई अपराध न कर बैठे। गुरु से विलग होते ही भक्तिलता का उच्छेदन होने लगता है और उसकी सारी पत्तियाँ क्रमश: सूख जाती हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १९.१५६

जब शिष्य भक्तों की संगति छोड़कर अभक्तों की संगति में रह

कर अभक्तिमय कार्य करने लगता है तो माता-हाथी अपराध होता है

अनुवाद: ''माली को चाहिए कि लता की रक्षा उसके चारों ओर बाड बनाकर करे जिससे अपराधों का शक्तिशाली हाथी भीतर न घुस पाए।''

तात्पर्य: जब भक्तिलता बढ़ रही हो तो भक्त को चाहिए कि उसके चारों ओर बाड़ बनाकर उसकी रक्षा करे। नवदीक्षित भक्त की रक्षा शुद्ध भक्तों का घेरा बनाकर करनी चाहिए। इससे प्रमत्त हाथी को अवसर नहीं मिल पाएगा। जब कोई अभक्तों की संगति करता है तो प्रमत्त हाथी खुल जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*असत संग त्याग—एइ वैष्णव-आचार*। वैष्णव का पहला कर्तव्य है कि वह अभक्तों की संगति त्याग दे। किन्तु तथाकथित प्रौढ भक्त शुद्धभक्तों की संगति छोड़कर बहुत बड़ा अपराध करता है। जीव सामाजिक प्राणी है। अतः यदि कोई शुद्ध भक्तों की संगति त्यागता है तो वह अभक्तों की संगति करेगा—*असत संग*। अभक्तों के सम्पर्क में आने तथा अभक्तिमय कार्यों में व्यस्त रहने से तथाकथित प्रौढ भक्त प्रमत्त हाथी रूपी अपराध के चंगुल में आ जाता है। उस अपराध से भक्तिलता में जो भी वृद्धि हुई रहती है वह उच्छिन्न हो जाती है। अतः लता के चारों ओर बाड लगा कर और विधि-विधानों का पालन करके तथा शुद्ध भक्तों की संगति करके उसकी रक्षा करनी चाहिए।

यदि कोई यह सोचता है कि कृष्णभावनामृत संघ में अनेकानेक छद्म-भक्त हैं तो उसे सीधे गुरु की संगति करनी चाहिए और जो भी सन्देह हो उसका निवारण गुरु से करना चाहिए। किन्तु गुरु के आदेशों का तथा श्रवण कीर्तन के नियमों का पालन किये बिना कोई शुद्ध भक्त नहीं बन सकता। केवल मनोकल्पना से उसका पतन होगा। अभक्तों की संगति करने से वह नियमोल्लंघन करता है जिससे उसका विनाश हो जाता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* १९.१५७

भक्तिलता की रक्षा करने के लिए गुर्वपराध से बचना चाहिए

भक्तिरूपी लता की सुरक्षा प्रदान करने का उल्लेख करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने वैष्णवों के चरणकमलों के प्रति अपराध से सुरक्षा पर विशेष बल दिया है। ऐसे अपराध *वैष्णव अपराध* कहलाते हैं। यदि कोई वैष्णव अपराध करता है तो उसकी भक्ति-प्रगति रुक सकती है। चाहे भक्ति में कोई कितना ही अग्रसर क्यों न हो यदि वह किसी वैष्णव के प्रति अपराध करता है तो उसकी सारी उन्नति भ्रष्ट हो जाती है। शास्त्रों में बताया गया है कि महान् योगी दुर्वासा मुनि ने वैष्णव अपराध किया, फलस्वरूप अपने को अपराध से बचाने के लिए उन्हें एक वर्ष तक निरन्तर सारे ब्रह्माण्ड में, यहाँ तक कि वैकुण्ठलोक में भी भ्रमण करते रहना पड़ा। अन्त में जब वैकुण्ठ में भगवान् के पास पहुँचे तो भी सुरक्षा नहीं मिली। अतः वैष्णव के चरणों के प्रति अपराध न करने के लिए सतर्क रहना चाहिए। सबसे जघन्य अपराध *गुर्वपराध* है जो गुरु के चरणों पर किया जाता है। भगवान् के पवित्र नाम का जप करते हुए गुर्वपराध अत्यन्त जघन्य माना जाता है। *गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्र निन्दनम्* (पद्म पुराण)। पवित्र नाम के जप के विरोध में जो दस अपराध किये जाते हैं उनमें गुरु की अवज्ञा तथा वैदिक साहित्य की निन्दा सर्वप्रथम हैं।

—*भागवत* ४.२१.३७

वह मूर्ख शिष्य जो गुरु को सामान्य व्यक्ति मानकर उससे आगे बढ़ने और उसका पद हथियाने का प्रयत्न करता है वह तुरन्त पतित हो जाता है

महापुरुष के चरणकमल की धूलि को धारण किये बिना सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। यदि सद्गुरु के आदेशों का निरन्तर पालन किया जाय तो गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु ज्योंही अज्ञानी शिष्य महत्त्वाकांक्षा के कारण अपने गुरु का स्थान बलात् ले लेता है त्योंही उसका पतन हो जाता है। *यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि*। यदि शिष्य गुरु को सामान्य व्यक्ति मानता है तो उसकी प्रगति रुक जाती है।

—*भागवत* ५.१२.१४

गुरोरवज्ञा—पवित्र नाम के प्रति तीसरा अपराध

पवित्र नाम के चरणकमलों पर किया गया तीसरा अपराध जो *गुरोरवज्ञा* कहलाता है वह गुरु को भौतिक मानना तथा उसके उच्च पद से ईर्ष्या करना है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि ८.२४

(घनिष्ठता होने से) शिष्य को कभी-भी गुरु का निरादर या उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए

अनुवाद: ब्रह्मा ने कहा: हे श्रेष्ठ देवताओं! तुम लोगों ने अपने ऐश्वर्य-मद के कारण सभा में आने पर बृहस्पति का सत्कार नहीं किया। ये परब्रह्म ज्ञाता तथा इन्द्रियों को वश में करने वाले हैं अतः ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि तुम लोगों ने उनके साथ इस प्रकार दुर्व्यवहार किया है।

तात्पर्य: ब्रह्मा ने बृहस्पति के ब्राह्मण-गुणों को पहचान लिया था, क्योंकि वे परब्रह्म के ज्ञाता होने के कारण देवताओं के गुरु थे। बृहस्पति ने अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में कर लिया था, अतः वे योग्यतम ब्राह्मण थे। ब्रह्मा ने देवताओं को फटकारा, क्योंकि उन्होंने गुरु का समुचित सत्कार नहीं किया था। ब्रह्मा ने उन्हें यह बताना चाहा कि किसी भी दशा में गुरु का निरादर नहीं होना चाहिए था। जब बृहस्पति ने सभा में प्रवेश किया तो देवताओं तथा उनके राजा इन्द्र ने समझा कि वे तो प्रत्येक दिन आते रहते हैं, अतः उनको सम्मान प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु जैसा कि कहा गया है अधिक घनिष्ठता से घृणा उत्पन्न होती है। अत्यधिक क्रुद्ध होने के कारण बृहस्पति तुरन्त ही इन्द्र के यहाँ से चले गये। इस प्रकार इन्द्र सहित सारे देवता बृहस्पति के चरणारविन्द के प्रति अपराधी सिद्ध हुए। चूँकि ब्रह्मा को इसका पता था इसलिए उन्होंने इस उपेक्षा के लिए उन्हें धिकारा। नरोत्तमदास ठाकुर का एक गीत जिसे हम नित्य गाते हैं इस प्रकार है—*चक्षुदान दिल जेइ, जन्मे जन्मे प्रभु सेइ*—गुरु ने शिष्य को आध्यात्मिक चक्षु प्रदान किये

हैं, अतः गुरु को जन्म-जन्मान्तर स्वामी (प्रभु) समझना चाहिए। किसी भी दशा में गुरु का अनादर नहीं करना चाहिए। देवताओं ने अपने ऐश्वर्यपद के कारण अपने गुरु का निरादर किया। अतः *श्रीमद्भागवत* का (११.१७.७१) उपदेश है *आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित। न मर्त्यबुद्ध्या सूयेत*—आचार्य को सदैव नमस्कार करना चाहिए, आचार्य को सामान्य पुरुष मान कर उनसे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।

—*भागवत* ६.७.२१

जो ईर्ष्यालु नौसिखिये आचार्य का अनुगमन नहीं करते वे असली आध्यात्मिक उन्नती नहीं कर सकते

नौसिखिये भक्त भक्ति की निम्नतर अवस्था में रहने से ईर्ष्यालु होते हैं और अपने आचार्यों का अनुगमन न करके स्वयं भक्ति के विधि-विधानों का अविष्कार करते हैं, फलस्वरूप वे कितना ही भगवन्नाम जप का प्रदर्शन क्यों न करें वे पवित्र नाम का दिव्य स्वाद प्राप्त नहीं कर पाते। अतएव आँखों में आँसू आना, काँपना, पसीजना या मूर्छित होना—इन सबकी भर्त्सना की जाती है। हाँ, वे भगवान् के शुद्धभक्त की संगति करके अपनी बुरी आदतें सुधार सकते हैं, अन्यथा वे कठोरहृदय बने रहेंगे और किसी भी उपचार के योग्य नहीं हो सकते। भगवद्धाम के मार्ग की पूरी प्रगति शास्त्रों के आदेशों पर निर्भर करती है जिनका निर्देशन अनुवगम्य भक्त करते हैं।

—*भागवत* २.३.२४

शिष्य को गुरु का मुँहलगा नहीं होना चाहिए

मनुष्य को अपने गुरुजन के अति निकट नहीं आना चाहिए। भगवान् के अर्चाविग्रह तथा गुरु को दूर से ही देखना चाहिए। यह *मर्यादा* कहलाती है। अन्यथा, जैसा कि कहा गया है घनिष्ठता (मुँह लगाने) से घृणा उत्पन्न होती है। कभी-कभी अर्चाविग्रह या गुरु के अति निकट आने से नवदीक्षित भक्त का पतन हो जाता है। अतः अर्चाविग्रह तथा गुरु के निजी दासों को सदैव सतर्क रहना चाहिए कि असावधानीवश वे अपना कर्तव्य न भूल जाँय।

—*चैतन्य-चरितामृत* १२.२१२

प्रामाणिक गुरु से ईर्ष्या करना साक्षात् भगवान् से ईर्ष्या करना है; ऐसी ईर्ष्या दिव्य साक्षात्कार के मार्ग में बाधक है

अनुवाद: आचार्य को मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए और किसी भी तरह से उसका अपमान नहीं होना चाहिए। उसे सामान्य व्यक्ति मानकर उससे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह समस्त देवताओं का प्रतिनिधि होता है।

तात्पर्य: प्रामाणिक गुरु अपने को सदैव भगवान् की अनन्य भक्ति में प्रवृत्त करता है। इसी परीक्षा के द्वारा वह भगवान् का प्रत्यक्ष स्वरूप तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु का असली प्रतिनिधि माना जाता है। ऐसा गुरु *आचार्य* देव कहलाता है। सांसारिक व्यक्ति ईर्ष्यालु स्वभाव होने तथा इन्द्रियतृप्ति की प्रवृत्ति से असन्तुष्ट रहने के कारण असली आचार्य की आलोचना करते हैं। किन्तु वस्तुतः प्रामाणिक आचार्य भगवान् से अभिन्न होता है, अतएव ऐसे आचार्य से ईर्ष्या करने का अर्थ है साक्षात् भगवान् से ईर्ष्या करना। इससे दिव्य साक्षात्कार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.४६

गुरु का अनादर करने से मनुष्य पतित हो जाता है

अनुवाद: बृहस्पति के प्रति अपने दुर्व्यवहार के कारण तुम लोग असुरों से पराजित हुए हो। हे देवताओं! चूँकि असुर निर्बल थे और कई बार तुमलोगों के द्वारा हराये जाने पर आखिर तुम सब, जो कि इतने ऐश्वर्यशाली थे उनके द्वारा क्यों हराये गए?

तात्पर्य: देवता गण असुरों से निरन्तर युद्ध करते रहने के लिए विख्यात हैं। ऐसे युद्धों में असुरगण सदैव पराजित होते थे, किन्तु इस बार देवता पराजित हुए थे। क्यों? जैसा कि यहाँ पर कहा गया है कारण यह था कि उन्होंने उनके गुरु का अपमान किया था। उनके गुरु के प्रति किया गया उद्धत अनादर ही असुरों द्वारा उनकी पराजय का कारण था। जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है जब कोई किसी सम्मानित गुरुजन का अनादर करता है तो उसकी आयु तथा उसके

पुण्यकार्यों के फल नष्ट हो जाते हैं और इस तरह वह पतित हो जाता है।

—*भागवत* ६.७.२२

गुरु को अनुशासन सिखाना या सलाह देना अपराध है

शक्ति सम्पन्न वैष्णव के प्रति अनुशासनात्मक कार्यवाही करना अपराध है। उसे सलाह देना या उसको सुधारने का प्रयास करना अपराधपूर्ण है। नौसिखिये वैष्णव तथा प्रगत वैष्णव में उनके कार्यों के आधार पर अन्तर करना चाहिए। प्रगत वैष्णव सदैव गुरु के पद पर होता है और नौसिखिया वैष्णव सदैव उसके शिष्य के रूप में होता है। गुरु को शिष्य से सलाह नहीं दिलानी चाहिए, न ही गुरु को उन लोगों से आदेश लेने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए जो उनके शिष्य नहीं हैं। इस छठे श्लोक में श्रील रूपगोस्वामी के उपदेश का यही सारसंक्षेप है।

—*उपदेशामृत* श्लोक ६

शिष्य गुरु को आदेश नहीं दे सकता

शिष्य को सबसे पहले यह निश्चय करना चाहिए कि उसे परमेश्वर को पूजना है और तब गुरु शिष्य को सही निर्देश देगा। गुरु को कोई आदेश नहीं दे सकता· जिस प्रकार रोगी अपने वैद्य से यह नहीं माँग कर सकता कि वह अमुक ओषधि दे।

—*भागवत* ८.१६.२२

शिष्य को कभी भी गुरु को उपदेश देने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए

अनुवाद: इसके पहले जब माधवेन्द्रपुरी अन्तिम साँसे गिन रहे थे तो रामचन्द्रपुरी उनके स्थान पर आया। माधवेन्द्रपुरी कृष्णनाम का कीर्तन कर रहे थे और कभी-कभी चिल्ला पड़ते थे, "हे प्रभु! मुझे मथुरा में शरण नहीं मिली।" रामचन्द्रपुरी इतना मूर्ख निकला कि तभी उसने निडर होकर अपने गुरु को उपदेश देने का दु:साहस कर बैठा। उसने

कहा, "यदि आप दिव्य आनन्द को प्राप्त हैं तो आपको केवल ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए। आप क्यों रो रहे हैं?"

तात्पर्य: जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा*—ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका व्यक्ति सदैव सुखी रहता है। *न शोचति न कांक्षति*—वह तो शोक करता है, न ही किसी वस्तु की इच्छा करता है। रामचन्द्रपुरी ने बिना समझे-बूझे कि माधवेन्द्रपुरी क्यों चिल्ला रहे हैं, उनका उपदेशक बनना चाहा। इस तरह उसने महान् अपराध किया, क्योंकि शिष्य को कभी भी अपने गुरु को उपदेश नहीं देना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य ८.१८-२१*

चूँकि आचार्य का पद भगवान् के जैसे पद की तरह है अत: नवदीक्षित भक्तों द्वारा उसकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए

भक्ति की उच्चतर अवस्थाओं में भक्त को इसकी चिन्ता नहीं रहती कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। ऐसी स्थिति बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि आचार्यों के पदचिह्नों का अनुसरण किया जाय। चूँकि शुद्धभक्त आचार्यों के पदचिह्नों का अनुसरण करता है, अत: भक्ति सम्पन्न करने के लिए उसके द्वारा किया गया कोई भी कार्य दिव्य पद पर माना जाता है। अतएव कृष्ण हमें शिक्षा देते हैं कि आचार्य आलोचना से परे होता है। नवदीक्षित भक्त को अपने आपको आचार्य के से पद पर नहीं मानना चाहिए। यह स्वीकार करना होगा कि आचार्यों का पद भगवान् जैसा है फलत: न तो कृष्ण न ही उनके प्रतिनिधि रूप आचार्य की किसी तरह की प्रतिकूल आलोचना नवदीक्षित भक्तों द्वारा की जानी चाहिए।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

शिष्य की अयोग्यताएँ, कपट, कृघ्नता, अश्रद्धा, अनादर तथा घनिष्ठता

अनुवाद: राजा इन्द्र ने कहा—अत: अब मैं अत्यन्त निष्कपट भाव से देवताओं के गुरु बृहस्पति के चरणारविन्दों पर अपना शीश झुकाऊँगा।

सात्विक होने के कारण वे समस्त ज्ञान से पूर्णतया अवगत हैं और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। अब मैं उनके चरणारविन्द का स्पर्श करके उन्हें प्रसन्न करने के उद्देश्य से नमस्कार करूँगा।

तात्पर्य: चेत होने पर राजा इन्द्र की समझ में आया कि वह अपने गुरु बृहस्पति का निष्ठावान् शिष्य नहीं है। अतः उसने निश्चय किया कि वह *निशठ* अर्थात् निष्कपट बनेगा। *निष्ठात्शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन्*—उसने अपने गुरु के चरणों को शिर से स्पर्श करने का निश्चय किया।...शिष्य को कभी भी अपने गुरु के प्रति कृतघ्न नहीं होना चाहिए। श्रीमद्भागवत में (११.१७.२७) गुरु को आचार्य कहा गया है—*आचार्यं मां विजानीयात्*—श्रीभगवान् का कथन है कि मनुष्य को चाहिए कि गुरु को ही साक्षात् भगवान् मानकर उसका आदर करे। *नावमन्येत कर्हिचित*—कभी भी आचार्य का अनादर न करे। *न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत*—आचार्य को कभी सामान्य जन नहीं समझना चाहिए। अधिक परिचय से अनादर होता है, किन्तु आचार्य के साथ व्यवहार करते समय सतर्क रहना चाहिए।

—*भागवत* ६.७.१५

किसी को गुरु की शारीरिक दशा की आलोचना नहीं करनी चाहिए

अनुवाद: शुद्धभक्त अपनी मूल कृष्णभावनाभावित स्थिति में अपनी पहचान शरीर के साथ नहीं करता। ऐसे भक्त को भौतिकतावादी दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए। निस्सन्देह, किसी को भक्त के निम्नकुल में उत्पन्न होने, कुरूप शरीर वाला होने, विकृत होने या रुग्ण या जर्जर शरीर होने पर ध्यान नहीं देना चाहिए। सामान्य दृष्टि में शुद्धभक्त के शरीर में ऐसी अपूर्णताएँ मुखर लग सकती हैं, किन्तु इन लक्षित दोषों के बावजूद शुद्धभक्त का शरीर कलमषग्रस्त नहीं किया जा सकता। यह गंगाजल के समान है जो वर्षाऋतु में कभी-कभी बुलबुलों, फेन, तथा कीचड़ से भरा होता है, किन्तु गंगा जल कभी प्रदूषित नहीं होता। जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़े-चढ़े हैं वे जल की दशा

पर विचार किये बिना गंगा में स्नान करेंगे।

तात्पर्य: भक्तियोग आत्मा का सही कार्य है और जब कोई वास्तव में अमिश्रित, कल्मषरहित भक्ति में लगा होता है तो वह पहले ही मुक्त हुआ रहता है (*स गुणान् समतीत्यैतान्*)। कृष्ण का भक्त कभी भी भौतिक बन्धन में नहीं होता, यद्यपि उसका शारीरिक स्वरूप भौतिकत: बद्ध प्रतीत हो सकता है। अत: शुद्धभक्त को भौतिकतावादी दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए।...जब तक कोई वास्तविक रूप में भक्त न हो वह अन्य को सही ढंग से नहीं देख सकता।...किसी को भी शुद्ध भक्त के शारीरिक दोषों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसे दोष हों तो उन पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जिस बात पर ध्यान देना है वह तो गुरु का मुख्य कार्य भक्ति है—भगवान् की शुद्ध सेवा।..यदि हम वैष्णव के शारीरिक दोषों पर विचार करते हैं तो समझ लीजिये कि हम वैष्णव के चरणकमलों पर अपराध कर रहे हैं। वैष्णव के चरणकमलों पर किया गया अपराध अत्यन्त गम्भीर होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस अपराध का वर्णन *हाती माता*—यानी उन्मत्त हाथी रूपी अपराध के रूप में किया है। एक उन्मत्त हाथी गजब ढा सकता है विशेष कर जब वह किसी अच्छी तरह कटे-छटे बगीचे में प्रवेश करता है। अत: सावधान रहना चाहिए कि वैष्णव के प्रति अपराध न हो।...मनुष्य को भौतिक दृष्टि से शुद्धभक्त के कार्यों को देखने का निषेध है। विशेषतया नवदीक्षित भक्त के लिए तो शुद्ध भक्त को भौतिक दृष्टिकोण से देखना अति हानिकारक है। अतएव शुद्धभक्त को बाह्यत: देखने से बचना चाहिए लेकिन उसके आन्तरिक स्वरूप को देखने और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि वह किस तरह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा हुआ है। इस तरह शुद्ध भक्त को भौतिक दृष्टिकोण से देखने से बचना चाहिए और इस तरह मनुष्य स्वयं क्रमश: शुद्ध भक्त बन सकता है।

—*उपदेशामृत* श्लोक ६

श्रेष्ठ व्यक्ति की उपस्थिति में ही आध्यात्मिक उपदेश देने चाहिए

अनुवाद: उद्धव ने कहा—आप विद्वान् महर्षि मैत्रेय से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वे निकट ही हैं और दिव्य ज्ञान के ग्रहीता होने के कारण पूजनीय हैं। जब भगवान् यह मर्त्यलोक छोड़ने की तैयारी कर रहे थे उस समय उनके द्वारा मैत्रेय को प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्रदान किया गया था।

तात्पर्य: भले ही कोई व्यक्ति दिव्य ज्ञान में निष्णात हो, किन्तु उसे सावधान रहकर मर्यादा व्यतिक्रम अर्थात् शिष्टता के साथ श्रेष्ठतर व्यक्ति की अवमानना करने का अपराध नहीं करना चाहिए। शास्त्र के आदेशानुसार मर्यादा व्यतिक्रम के नियम का उल्लंघन करने में मनुष्य को बहुत सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उसकी आयु, ऐश्वर्य, कीर्ति, पुण्य तथा सम्पूर्ण लोक-मंगल का क्षय होता है। दिव्य ज्ञान में निष्णात होने के लिए आध्यात्मिक विज्ञान के तन्त्र की जानकारी आवश्यक है। दिव्य ज्ञान के सभी प्रकार के वैशिष्ट्य में सम्यक निष्णात होने के कारण उद्धव ने विदुर को महर्षि मैत्रेय के पास जाकर दिव्य ज्ञान प्राप्त करने की सलाह दी। विदुर उद्धव को अपने गुरु रूप में चुनना चाहते थे, किन्तु उद्धव ने यह पद स्वीकार नहीं किया। कारण, विदुर उद्धव के पिता की आयु के थे इसलिए जब विशेष रूप से मैत्रेय ऋषि विदुर के निकट विद्यमान थे तो वे उन्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार नहीं कर सके। नियम यह है कि श्रेष्ठतर व्यक्ति की उपस्थिति में सुयोग्य और पूर्ण ज्ञानी होते हुए भी किसी व्यक्ति को स्वयं उपदेश देने के लिए बहुत व्यग्र नहीं होना चाहिए। इसलिए उद्धव ने विदुर जैसे वयोवृद्ध व्यक्ति को दूसरे वयोवृद्ध व्यक्ति मैत्रेय के पास भेजने का निर्णय किया। मैत्रेय पूर्ण ज्ञानी भी थे, क्योंकि मर्त्यलोक छोड़ते समय स्वयं भगवान् ने उनको उपदेश दिया था। उद्धव तथा मैत्रेय दोनों को स्वयं भगवान् ने उपदेश दिया था इसलिए दोनों ही को यह अधिकार था कि वे विदुर अथवा अन्य किसी के भी गुरु बन सकें। किन्तु मैत्रेय वयोवृद्ध होने के कारण विदुर के, जो उद्धव से आयु में बहुत बड़े थे, गुरु होने के प्रथम अधिकारी थे। किसी भी व्यक्ति को सस्ते लाभ और यश के लिए गुरु बनने की आकांक्षा नहीं करनी

चाहिए, गुरु केवल भगवान् की सेवा के लिए ही बनना चाहिए। भगवान् नियम की अवज्ञा कभी सहन नहीं कर पाते। अपने वैयक्तिक लाभ और यश के लिए वयोवृद्ध गुरु को प्राप्य सम्मान का अतिक्रमण किसी को नहीं करना चाहिए। छद्म गुरु की ढिठाई विकासशील आध्यात्मिक साक्षात्कार के इच्छुक व्यक्ति के लिए बहुत ही भयावह है।

—*भागवत* ३.४.२६

जो भक्त अपने गुरु का अपमान करता है उसकी भक्ति भ्रष्ट हो जाती है

श्रील रूपगोस्वामी को वैष्णवों के विधि-विधानों का उपदेश देते समय श्रीचैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव के चरणकमलों पर किये गये अपराधों के प्रभावों का विशद वर्णन किया है। *यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता* (मध्य १९.१५६)। वैष्णव का अपमान करना या निन्दा करना सबसे बड़ा अपराध बताया गया है और इसकी तुलना मत्त हाथी से की गई है। जब मत्त हाथी किसी बगीचे में घुसता है तो वह सारी लताएँ, फूल तथा वृक्ष नष्ट कर देता है। इसी तरह उचित रीति से भक्ति करने वाला भक्त यदि अपने गुरु वैष्णव के चरणकमलों पर अपराध करता है तो उसकी भक्ति भ्रष्ट हो जाती है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य* ३.२१३

यदि कोई गुरु का अपमान करता है तो वह चिन्तन करने के लिए भौतिक स्तर पर आ गिरता है

अनुवाद: इस तरह रामचन्द्रपुरी को माधवेन्द्रपुरी ने तिरस्कृत कर दिया। अपने अपराध के कारण उसके भीतर धीरे-धीरे भौतिक इच्छा उदित हुई।

तात्पर्य: *वासना* शब्द शुष्क चिन्तनपरक ज्ञान का द्योतक है। ऐसा ज्ञान निरा भौतिक होता है।... *भक्तिसन्दर्भ* में (१.१.१) कहा गया है... "भले ही कोई इस जीवन में मुक्त क्यों न हो, यदि वह भगवान् के प्रति अपराध करता है तो वह भौतिक इच्छाओं में गिरता है जिनमें से आध्यात्मिक अनुभूति का शुष्क चिन्तन एक है।"

श्रीमद्भागवत की *लघुतोषणी* टीका में (१०.२.३२) जीव गोस्वामी

ने कहा है..."भले ही कोई इस जीवन में मुक्त हो, किन्तु भगवान् के प्रति अपराध करने से वह भौतिक इच्छाओं में लिप्त हो जाता है।" ये शास्त्रों के सन्दर्भ हैं। यदि कोई अपने गुरु या भगवान् का अपराधी होता है तो वह भौतिक जगत् में केवल चिन्तन करता रह जाता है।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य ८.२६*

यदि शिष्य गुरु का अनादर करता है तो गुरु उसका तिरस्कार कर देता है और वह पतित बन जाता है

अनुवाद: यदि किसी का गुरु उसका तिरस्कार कर देता है तो वह इतना पतित हो जाता है कि रामचन्द्रपुरी की तरह वह भगवान् के प्रति भी अपराध करता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्रपुरी के अपराधों पर विचार नहीं किया, क्योंकि वे उसे अपना गुरु मानते थे। किन्तु उसके चरित्र से हर एक को गुरु के अपमान करने के परिणाम के विषय में शिक्षा दी।

—*चैतन्य-चरितामृत अन्त्य ८.९९-१००*

१५. शिष्य की योग्यताओं, गुणों तथा कर्तव्यों के विषय में अन्य महत्त्वपूर्ण आदेश

शिष्य सदाचरण, आज्ञापालन, विनम्रता तथा बिना हिचक के सेवा के द्वारा अपने गुरु का प्रिय बन जाता है

अनुवाद: ब्रह्मा के उत्तराधिकारी पुत्रों में अत्यन्त प्रिय नारद अपने पिता की सेवा के लिए सदा तत्पर रहते हैं और अपने पिता के आदेशों का अत्यन्त संयम, विनय तथा सौम्यता से पालन करते हैं।

तात्पर्य: ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों के स्रष्टा होने के कारण ब्रह्मा अनेक विख्यात पुत्रों यथा दक्ष, सनकादि तथा नारद के आदि जनक हैं।...किन्तु इन सबों में से नारद को उनके सदाचार, आज्ञापालन,

विनयशीलता तथा पिता के प्रति सेवा सन्नद्धता के कारण ब्रह्मा का अत्यन्त प्रिय पुत्र कहा गया है।

—*भागवत* २.९.४१-४२

निष्ठावान शिष्य की योग्यताएँ

अनुवाद: मैं उन मुनियों के प्रति अत्यधिक आसक्त था। मेरा आचरण विनम्र था और उनकी सेवा के कारण मेरे सारे पाप विनष्ट हो चुके थे। मेरे हृदय में उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी। मैंने इन्द्रियों को वश में कर लिया था और मैं तन-मन से उनका अनुगमन कर रहा था।

तात्पर्य: जो व्यक्ति शुद्धभक्त के पद तक उठना चाहता है उसके लिए ये आवश्यक योग्यताएँ हैं। ऐसे व्यक्ति को सदैव शुद्धभक्तों का सान्निध्य खोजना चाहिए। उसे शुद्ध भक्त के उपदेश ग्रहण करने के लिए सरल तथा विनम्र बनना चाहिए। शुद्धभक्त पूरी तरह से भगवान् की शरण में होता है। वह भगवान् को ही परम स्वामी तथा अन्यों को उनके सेवक के रूप में जानता है। केवल शुद्धभक्तों की संगति से ही लौकिक संगति से संचित होने वाले समग्र पापों से छूटा जा सकता है। नवदीक्षित भक्त को श्रद्धापूर्वक शुद्ध भक्त की सेवा करनी चाहिए। उसे अत्यन्त आज्ञाकारी होना चाहिए और उपदेशों का पालन दृढ़ता के साथ करना चाहिए। ये लक्षण हैं उस भक्त के जो इसी जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है।

—*भागवत* १.५.२९

यदि शिष्य भद्र, विनीत तथा समर्पित हो तो गुरु उसे प्रबुद्ध बनाने में प्रसन्न होता है

अनुवाद: विदुर ने मैत्रेय से अनुरोध किया: हे ब्राह्मण! आप भूत तथा भविष्य के सारे विषयों में पारंगत हैं। अत: मैं आपसे राजा वेन के समस्त कार्यकलापों को सुनना चाहता हूँ। मैं आपका श्रद्धालु भक्त हूँ, अत: आप विस्तार से कहें।

तात्पर्य: विदुर ने मैत्रेय को अपना गुरु स्वीकार किया। शिष्य सदैव

अपने गुरु से प्रश्न करता है और गुरु उन प्रश्नों के उत्तर देता है बशर्ते कि शिष्य भद्र तथा समर्पित हो। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा कि जिस पर गुरु की कृपा होती है उस पर ईश्वर की कृपा होती है। जब तक शिष्य विनीत और समर्पित नहीं होता, गुरु दिव्य ज्ञान प्रकट करने के लिए तत्पर नहीं होता। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है गुरु से ज्ञान प्राप्त करने की विधि में आत्मसमर्पण, उत्सुकता तथा सेवा सम्मिलित हैं।

—*भागवत* ४.१३.२४

प्रामाणिक शिष्य की योग्यताएँ

अनुवाद: तुम्हारी पुस्तक में प्रामाणिक गुरु तथा प्रामाणिक शिष्य के लक्षण दिये जाने चाहिए। तब गुरु बनने के पूर्व गुरु-पद के विषय में आश्वस्त हो लेना चाहिए। इसी तरह गुरु को शिष्य के पद पर विचार कर लेना चाहिए। भगवान् कृष्ण को आराध्य या सेव्य रूप में वर्णित किया जाना चाहिए और तुम्हें कृष्ण, राम या भगवान् के अन्य किसी अंश की पूजा के बीज मन्त्र पर विचार करना चाहिए।

तात्पर्य: *श्रीमद्भागवत* में (११.१०.६) प्रामाणिक शिष्य के गुणों का वर्णन हुआ है

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥

शिष्य में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

उसे भौतिक देहात्मबुद्धि के प्रति रुचि का परित्याग कर देना चाहिए। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, पागलपन तथा ईर्ष्या का परित्याग कर देना चाहिए। उसे भगवत् विज्ञान को समझने में रुचि लेनी चाहिए और इससे सम्बद्ध हर बात पर विचार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि ''मैं यह शरीर हूँ'' या ''यह वस्तु मेरी है।'' उसे गुरु पर अटूट श्रद्धा होनी चाहिए, उसे

स्थिरचित्त होना चाहिए। प्रामाणिक शिष्य को दिव्य विषयों को समझने के प्रति जिज्ञासु होना चाहिए। उसे सद्गुणों में त्रुटियाँ नहीं निकालनी चाहिए और उसे भौतिक विषयों में रुचि नहीं लेनी चाहिए। उसकी एकमात्र सरोकार भगवान् कृष्ण होना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* २४.३३०

शिष्य परम्परा में आत्मसमर्पण, जिज्ञासा तथा सेवा के माध्यम से गुरु से दिव्य ज्ञान प्राप्त करता है

अनुवाद: नारद मुनि ने ब्रह्माजी से पूछा, "हे देवताओं में प्रमुख! हे अग्रजन्मा! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। कृपया मुझे वह दिव्य ज्ञान बतलाएँ जो मनुष्य को आत्मा तथा परमात्मा के सत्य तक ले जाने वाला है।"

तात्पर्य: परम्परा प्रणाली की पूर्णता की एक और पुष्टि हुई है। पिछले अध्याय में यह स्थापना हुई थी कि आदि जीव ब्रह्माजी ने सीधे परमेश्वर से ज्ञान प्राप्त किया और वही ज्ञान अगले शिष्य नारद को प्रदान किया गया। नारद ने ज्ञान प्रदान किये जाने की प्रार्थना की तो ब्रह्माजी ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया। अतएव सही व्यक्ति से ज्ञान के लिए याचना करना और सही ढंग से उसे प्राप्त करना परम्परा का विधान है। इस विधि की संस्तुति *भगवद्गीता* में (४.२) की गई है। जिज्ञासु शिष्य को चाहिए कि वह समर्पण, विनीत जिज्ञासा तथा सेवा द्वारा दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्य गुरु के पास जाय। इस तरह से प्राप्त ज्ञान, धन के बदले प्राप्त होने वाले ज्ञान से अधिक प्रभावशाली होता है। ब्रह्मा और नारद की परम्परा का गुरु कभी डालर और सेंट (रुपये-पैसे) नहीं चाहता। प्रामाणिक शिष्य को तो अपनी निष्ठावान सेवा से उसे प्रसन्न करके आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध तथा प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

—*भागवत* २.५.१

प्रामाणिक गुरु बनाने का लक्षण है कि मनुष्य बुद्धिमत्तापूर्वक

बोलता है

जो गुरु बना चुकता है वह बुद्धिमत्ता से बोलता है। वह व्यर्थ की बातें नहीं कहता। यही प्रामाणिक गुरु बनाने का लक्षण है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

जो शिष्य अपने गुरु से प्रेम करता है वह समस्त गुह्यज्ञान से ओतप्रोत होता है

स्निग्ध (अत्यन्त शान्त) तथा *सुस्निग्ध* (स्नेहमय) शब्द *श्रीमद्भागवत* में (११.८) पाये जाते हैं—*ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत*—जिस शिष्य में गुरु के प्रति वास्तविक प्रेम होता है वह गुरु के आशीर्वाद से समस्त गुह्यज्ञान से युक्त हो जाता है। श्रील श्रीधर स्वामी ने टीका की है कि *स्निग्धस्य* का अर्थ *प्रेमवतः* है। प्रेमवतः सूचित करता है कि उसमें अपने गुरु के प्रति अतीव प्रेम है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १७.१५

गुरु तथा शिष्य दोनों को ही आत्मसंयमी होना चाहिए

जो आत्मसंयमी नहीं है, विशेषतया यौन जीवन में, वह न तो शिष्य बन सकता है, न गुरु। मनुष्य को भाषण, क्रोध, मन, उदर और कामेन्द्रियों पर संयम रखने की शिक्षा मिलनी चाहिए। जो विशिष्ट इन्द्रियों पर संयम प्राप्त कर लेता है वह *गोस्वामी* कहलाता है। गोस्वामी हुए बिना न तो कोई शिष्य बन सकता है और न गुरु। इन्द्रियसंयम के बिना तथाकथित गुरु निश्चय ही वंचक है और उसका शिष्य वंचित है।

—*भागवत* २.९.४३

शिष्य वह है जिसने स्वेच्छा से तप में गुरु द्वारा अनुशासित होना स्वीकार किया हो

श्रील प्रभुपाद: आपके पास तपस्या का पालन करने की रुचि नहीं है किन्तु जब आप गुरु बना लेते हैं तो आपको उनका आदेश-पालन करना होता है। यही तपस्या है।

श्यामसुन्दर: तपस्या न भी कीजिये तो भी पालन करना चाहिए।
श्रील प्रभुपाद: ठीक। क्योंकि आप गुरु को आत्मसमर्पण कर चुके हैं अत: उनका आदेश अन्तिम है। अतएव न चाहते हुए भी आपको करना है। मुझे प्रसन्न करने के लिए।
श्यामसुन्दर: ओह!
श्रील प्रभुपाद: किन्तु तुम्हें पसन्द नहीं...(हँसते हैं)। कोई भी व्यक्ति उपवास नहीं करना चाहता, किन्तु गुरु कहता है "उपवास का दिन है" तो फिर क्या किया जा सकता है? शिष्य वह है जिसने स्वेच्छा से गुरु के द्वारा अनुशासित होना स्वीकार किया है। यही तपस्या है।

—*पेक्युलियर क्वेश्चन पेक्युलियर आन्सर्स*

दीक्षा के बाद शिष्य को भक्तिमयी तपस्या में लगना चाहिए

जीवन में सफलता पाने के लिए ब्रह्मा का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि वे सृष्टि के आदि प्राणी हैं। परमेश्वर द्वारा तपस्या में दीक्षित किये जाने पर उन्होंने तपस्या करने का संकल्प किया और अपने चारों ओर अपने सिवा अन्य किसी को न पाकर यह समझ सके कि ध्वनि स्वयं भगवान् ने की थी।...परमेश्वर में सही गुरु के द्वारा दीक्षित हो लेने पर मनुष्य को भक्ति सम्पन्न करने के लिए अपने को तपस्या में लगाना चाहिए।

—*भागवत* २.९.७

गुरु तथा शिष्य का सम्बन्ध आध्यात्मिक है

भौतिक जगत् में सेवक स्वामी की तब तक सेवा करता है जब तक वह प्रसन्न रहता है और उसका स्वामी प्रसन्न रहता है। सेवक तब तक प्रसन्न रहता है जब तक स्वामी वेतन देता है और स्वामी तब तक प्रसन्न रहता है जब तक सेवक अच्छी तरह सेवा करता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत में यदि किन्हीं परिस्थितियों में सेवक सेवा नहीं कर पाता तब भी स्वामी प्रसन्न रहता है। और यदि स्वामी वेतन नहीं देता तो भी सेवक प्रसन्न रहता है। यह एकात्मता

परम कहलाता है। गुरु के पास भले ही सैकड़ों शिष्य या सैंकड़ों सेवक हों, किन्तु वह उन्हें वेतन नहीं देता। वे आध्यात्मिक प्रेमवश सेवा करते हैं और गुरु विना वेतन पाये शिक्षा देता रहता है। यह आध्यात्मिक सम्बन्ध है। ऐसे सम्बन्ध में न तो वंचक होते हैं, न वंचित।

—भगवान् कपिलदेव की शिक्षाएँ

यदि कोई भौतिक जगत् में रहे आने के लिए कृतसंकल्प है तो अच्छा से अच्छा गुरु बनाने पर भी वह कृष्णभावनाभावित नहीं रह सकता

अच्छा गुरु होने पर भी यदि मनुष्य इस भौतिक जगत में रहा आना चाहता है तो वह कृष्णभावनाभावित नहीं बना रह सकता। यदि मेरा संकल्प भौतिक जीवन का भोग करने के लिए इस भौतिक जगत में रहे आने का हो तो मेरे लिए कृष्णभावनामृत असम्भव है।

—कृष्णभावनामृत-सर्वोच्च योग प्रणाली

तथाकथित शिष्य जो बाह्य मन्तव्य से गुरु बनाते हैं वे कृष्णभावनामृत को नहीं समझ सकते

ऐसे तथाकथित शिष्य होते हैं तो बाह्य मन्तव्य से अत्यन्त कृत्रिम ढंग से गुरु के प्रति विनीत बन जाते हैं। वे यह नहीं समझ सकते कि कृष्णभावनामृत या भक्ति क्या है।

—भागवत ३.३२.४०

सुख प्राप्ति के लिए मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में अपना धन तथा अपना वैभव भगवान् की सेवा में लगा देना चाहिए

पूर्वजन्म के पुण्यकर्मों द्वारा अर्जित धन तथा वैभव का दुरुपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करना चाहिए। इन्द्रियतृप्ति के लिए उनका उपभोग विषवृक्ष के फलों का आस्वाद जैसा होता है। ऐसे कर्मों

से बद्धजीव न तो इस जन्म में, न ही अगले जन्म में किसी प्रकार लाभान्वित होता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है तो उसे इस जन्म में तथा अगले जन्म में सुख-लाभ होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह ''वर्जित सेब'' का आस्वादन करता है जिससे वह स्वर्ग से वंचित रह जाता है।...यदि व्यक्ति कृष्णभावनाभावित है तो पुण्यकर्मों के द्वारा प्राप्त सांसारिक धन तथा वैभव का सदुपयोग अपने इस जन्म तथा अगले जन्म को लाभ पहुँचाने के लिए कर सकता है। उसे अपनी आवश्यकता से अधिक धन नहीं रखना चाहिए और यदि उसके पास आवश्यकता से अधिक धन हो तो उसे चाहिए कि वह इस अतिरिक्त धन को भगवान् की सेवा में अर्पित कर दे। इससे बद्धात्मा, यह संसार तथा श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे और यही इस जीवन का उद्देश्य है।

—*भागवत* ५.१४.१२

शिष्य के पास जो भी (जीवन, धन, बुद्धि वाणी आदि) है उसे वह कर्तव्य समझ कर अपने गुरु को अर्पित कर दे

सर्वलब्धार्पणेन

अनुवाद: मनुष्य के पास जो कुछ भी हो उसे गुरु को अर्पित करना चाहिए।

तात्पर्य: उस (शिष्य) के पास जो कुछ भी हो उसे वह गुरु को समर्पित कर दे। *प्राणै: अर्थैर्धिया वाचा*। प्रत्येक व्यक्ति के पास जीवन, धन, बुद्धि, वाणी होती है और इन सबों को गुरु के माध्यम से भगवान् को अर्पित कर देना चाहिए। कर्तव्य समझ कर गुरु को सब कुछ अर्पित कर देना चाहिए। किन्तु गुरु को यह भेंट भौतिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कृत्रिम रूप से नहीं अपितु हृदय से की जानी चाहिए। गुरु को जो कुछ भी अर्पित किया जाय वह प्रेम तथा स्नेहपूर्वक किया जाय, भौतिक स्तवन के लिए नहीं।

—*भागवत* ७.७.३०

दीक्षा लेने के बाद निष्ठावान् शिष्य अपने तथा अन्यों के लाभ के लिए भगवान् की महिमा का गम्भीरतापूर्वक कीर्तन करता है

अनुवाद: इस प्रकार भौतिक जगत की समस्त औपचारिकताओं की उपेक्षा करते हुए मैं बारम्बार भगवान् के पवित्र नाम तथा यश का कीर्तन करने लगा। भगवान् की दिव्य लीलाओं का ऐसा कीर्तन एवं स्मरण कल्याणप्रद होता है। इस तरह मैं पूर्णतया सन्तुष्ट, विनम्र तथा ईर्ष्यारहित होकर सारी पृथ्वी पर विचरण करने लगा।

तात्पर्य: नारद मुनि ने अपने व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा भगवान् के एक निष्ठावान् भक्त का संक्षेप में वर्णन किया है। ऐसा भक्त भगवान् से या भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधि से दीक्षा ग्रहण करने पर भगवान् की महिमा का गम्भीरतापूर्वक कीर्तन करता है और सारे संसार का विचरण करता है जिससे अन्य लोग भी भगवान् की महिमा का श्रवण कर सकें। ऐसे भक्तों को भौतिक लाभ की इच्छा नहीं रहती। उनकी एकमात्र इच्छा होती है कि वे भगवान् के धाम वापस जायँ। और जब वे यह शरीर छोड़ते हैं तो उन्हें उसकी प्राप्ति होती है। चूँकि उनके जीवन का चरम लक्ष्य भगवद्धाम को वापस जाना रहता है, अतः वे न तो किसी से ईर्ष्या करते हैं न भगवद्धाम जाने का उन्हें अभिमान होता है। उनका एकमात्र व्यापार भगवान् के पवित्र नाम, यश तथा लीलाओं का कीर्तन तथा स्मरण करना और अपनी अपनी क्षमता के अनुसार इच्छा से रहित होकर अन्यों के कल्याण हेतु संदेश का प्रसार करना होता है।

—*भागवत* १.६.२६

गुरु द्वारा आश्वस्त किये जाने पर कि कृष्ण भगवान् हैं शिष्य भक्ति में लग जाता है

महाराज प्रतापरुद्र को भट्टाचार्य में दृढ़ विश्वास था जिन्होंने घोषणा की कि चैतन्य महाप्रभु भगवान् हैं। भट्टाचार्य में अपने गुरु रूप में दृढ़ विश्वास होने से राजा प्रतापरुद्र ने तुरन्त श्रीचैतन्य महाप्रभु को

भगवान् के रूप में स्वीकार कर लिया। इस तरह अपने मन ही मन उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु की पूजा करनी शुरू कर दी। यह भक्ति की विधि है।...यह विधि अतीव सुगम है। मनुष्य को गुरु द्वारा दृढ़तापूर्वक विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि कृष्ण भगवान् हैं। यदि कोई ऐसा निश्चय करता है तो वह कृष्ण के विषय में चिन्तन करने, कृष्ण के विषय में कीर्तन करने और उनका गुणगान करने से आगे प्रगति कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि पूर्ण समर्पित भक्त भगवान् कृष्ण से आशीर्वाद प्राप्त करेगा।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ११.५१

यह आवश्यक है कि शिष्य अपने गुरु से जो विद्या प्राप्त करे उसके बदले वह गुरु-दक्षिणा दे

समस्त कलाओं तथा विज्ञान के आगार कृष्ण तथा बलराम ने अपना ज्ञान पूर्ण तब किया जब उन्होंने अपने शिक्षक को भेंट अर्पण करना चाहा जिस किसी की उन्हें इच्छा हो। शिक्षक या गुरु को छात्र द्वारा दी जाने वाली यह भेंट *गुरुदक्षिणा* कहलाती है। यह आवश्यक है कि छात्र गुरु से प्राप्त भौतिक या आध्यात्मिक विद्या के बदले में गुरु को तुष्ट करे।

—*लीलापुरुषोत्तम कृष्ण*

शिष्य अपने गुरु से कृष्ण-ज्ञान प्राप्त करने के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता

पृथु महाराज ने कहा: जिन व्यक्तियों में भगवान् के सम्बन्ध में आत्म-साक्षात्कार के पथ को बताकर अपार सेवा की हो और जिसकी व्याख्याएँ पूर्ण विश्वास एवं वैदिक साक्ष्य द्वारा हमारे उत्थान के लिए की जाती हों, भला उन्हें प्रसन्न करने के लिए अंजुली भर जल के अतिरिक्त और किस प्रकार उनसे उऋण हुआ जा सकता है? ऐसे महापुरुषों को जिनके कार्य मानव समाज के बीच में फैले हुए हैं उनके ही कार्यों के द्वारा सन्तुष्ट किया जा सकता है।

तात्पर्य: संसार के महापुरुष मानव समाज के कल्याण हेतु सेवा करने के लिए उत्सुक रहते हैं किन्तु वह व्यक्ति सबसे बड़ी सेवा करता है जो श्रीभगवान् के सम्बन्ध में आत्म-साक्षात्कार सबन्धी ज्ञान का वितरण करता है।....कुमारगण, नारद, प्रह्लाद, जनक, शुकदेव गोस्वामी, कपिल जैसे साधु पुरुष तथा वैष्णव आचार्यों के अनुयायी एवं दास भी श्रीभगवान् एवं जीवात्मा सम्बन्धी ज्ञान का प्रसार करके मानवता की बहुमूल्य सेवा करते हैं। ऐसा ज्ञान मानवता के लिए वरदान है।

श्री कृष्ण का ज्ञान ऐसी महान् भेंट है जिसका बदला नहीं चुकाया जा सकता। इसलिए पृथु महाराज ने कुमारों से प्रार्थना की कि वे जीवों को माया के चंगुल से उबारने के लिए अपने उपकारी कार्यों से तुष्ट हों। राजा ने देखा कि उनके महान् कार्यों के लिए सन्तुष्ट करने का कोई अन्य साधन नहीं है। *विनोदपात्रम्* शब्द के दो खण्ड किये जा सकते हैं—*विना* तथा *उद्-पात्रम्*। फिर इसे एक ही शब्द मानने पर इसका अर्थ होगा हँसने वाला'' ''मसखरा''। मसखरे का कार्य केवल हँसना है और जो व्यक्ति गुरु या कृष्ण के दिव्य सन्देश के शिक्षक से उऋण होने का प्रयास करता है वह मसखरे की तरह उपहास का पात्र बन जाता है, क्योंकि ऐसे ऋण को चुका पाना असम्भव है। वह सबों का श्रेष्ठ मित्र और उपकारी है जो मनुष्यों में मूल कृष्णचेतना जागरित कर सके।

—*भागवत* ४.२२.४७

शिष्य तथा उसे सौंपा गया कार्य धन्य हैं यदि वह अपने गुरु द्वारा अधिकृत किया जाता है

अनुवाद: तब भगवान् ने कहा—''हे ब्रह्मा! हे वैदिक ज्ञान की गहनता के मूर्तरूप! सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में तुम विषादग्रस्त मत होवो और न ही चिन्ताकुल। तुम मुझसे जिसकी याचना कर रहे हो वह तुम्हें बहुत पहले प्रदान किया जा चुका है।''

तात्पर्य: जो व्यक्ति स्वयं परमेश्वर श्रीकृष्ण द्वारा अथवा उनके प्रामाणिक

प्रतिनिधि द्वारा अधिकृत किया जाता है वह पहले से कृतकृत्य किया चुका है। उसी प्रकार उसको सौंपा गया कार्य भी मंगल मंडित होता है। निस्सन्देह जिस व्यक्ति को इस तरह का उत्तरदायित्व सौंपा गया हो उसे अपनी असमर्थता का ज्ञान होना चाहिए और अपने कर्तव्य के सम्पादन के लिए सदैव भगवत्कृपा की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जिसे इस प्रकार का उत्तरदायित्व सौंपा गया हो वह भाग्यवान् है और यदि परमेश्वर की इच्छा के अधीन होने की उसकी वृत्ति दृढ़ हो तो अपने कार्य के सम्पादन में उसका सफल होना निश्चित है। अर्जुन को कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में युद्ध करने का कार्य सौंपा गया था। यह उत्तरदायित्व सौंपने के पूर्व भगवान् ने पहले से उसकी विजय की व्याख्या कर दी थी। किन्तु अर्जुन भगवान् के अधीन होने की अपनी स्थिति के प्रति निरन्तर सचेत था और उसने भगवान् को अपने उत्तरदायित्व का सर्वोच्च निर्देशक स्वीकार कर लिया था। जिसको उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने का अभिमान है और जो परमेश्वर श्रीकृष्ण को उसका श्रेय नहीं देता वह निश्चय ही मिथ्याभिमानी है, वह किसी कार्य को चारुता से सम्पन्न नहीं कर सकता। ब्रह्मा और उनकी परम्परा के महापुरुष जो उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हैं परमेश्वर श्रीकृष्ण के प्रति दिव्य प्रेमाभक्ति सम्पन्न करने में सदैव सफल होते हैं।

—*भागवत* ३.९.२९

गुरु के स्मरण से सारे कष्ट नष्ट होते हैं

अनुवाद: इस कथा के आरम्भ में गुरु, भगवद्भक्तों तथा भगवान् का केवल स्मरण करके मैंने उनका आशीर्वाद माँगा। ऐसा स्मरण समस्त कठिनाइयों का विनाश करता है और मनुष्य को उसकी इच्छापूर्ति में समर्थ बनाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.२०-२१

ऐसा शिष्य जो अत्यन्त प्रबल भक्त होता है वह अपने गुरु को

अपने साथ वैकुण्ठलोक ले जा सकता है

अनुवाद: ध्रुव महाराज जब उस दिव्य विमान पर बैठे थे, जो चलने वाला था, तो उन्हें अपनी बेचारी माता सुनीति का स्मरण हो आया। वे सोचने लगे "मैं अपनी बेचारी माता को छोड़कर वैकुण्ठलोक कैसे जा सकूँगा?" वैकुण्ठलोक के महान पार्षद नन्द तथा सुनन्द ध्रुव महाराज के मन की बात जान गये, अतः उन्होंने दिखलाया कि उनकी माता सुनीति दूसरे विमान में आगे आगे जा रही हैं।

तात्पर्य: यह घटना सिद्ध करती है कि जिस शिक्षा या दीक्षा गुरु के ध्रुव महाराज जैसा शिष्य हो जो इतनी दृढ़ता से भक्ति करे तो शिष्य भी उसे अपने साथ ले जाता है भले ही गुरु उतना बढ़ा-चढ़ा न हो। यद्यपि सुनीति ध्रुव महाराज को उपदेश देने वाली थीं, किन्तु स्त्री होने के कारण वे न तो जंगल जा सकीं, न ध्रुव महाराज के समान तपस्या कर सकीं। तो भी ध्रुव महाराज अपनी माता को अपने साथ ले जा सके। इसी प्रकार प्रह्लाद महाराज ने अपने नास्तिक पिता हिरण्यकशिपु का उद्धार किया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यदि शिष्य या सन्तान परम प्रबल भक्त हो तो वह अपने पिता-माता अथवा शिक्षा या दीक्षा गुरु को अपने साथ वैकुण्ठलोक ले जा सकती है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे, "यदि मैं एक भी जीव को भगवान् के धाम पहुँचा सका तो समझूँगा कि मेरा उद्देश्य—कृष्णभावनामृत का प्रसार—सफल हुआ।" अब कृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्वभर में फैल रहा है और कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि यद्यपि मैं अनेक मामलों में पंगु हूँ किन्तु यदि मेरा एक भी शिष्य ध्रुव महाराज के समान शक्तिशाली हो जाय तो वह अपने साथ मुझे भी वैकुण्ठलोक ले जा सकता है।

—*भागवत* ४.१२.३२-३३

सारे कार्यों में गुरु की सलाह लेनी चाहिए

सारे कार्यों में अनुभवी पथप्रदर्शक गुरु की सदैव सलाह लेनी चाहिए, क्योंकि वह भगवान् की प्रकट दयास्वरूप है। इससे प्रगति

का मार्ग सुनिश्चित हो गया।

—*भागवत* १.१०.३६

शिष्य को चाहिए कि कभी-भी अपने को गुरु से स्वतन्त्र न सोचे और उससे अपने सारे सन्देहों को बताए

अनुवाद: मैंने देखा कि मैं पवित्र नाम-कीर्तन करने से पागल हो गया हूँ तो मैंने तुरन्त ही अपने गुरु के चरणकमलों में निवेदन किया।

तात्पर्य: आदर्श शिक्षक के रूप में श्रीचैतन्य महाप्रभु हमें राह दिखाते हैं कि शिष्य को किस तरह अपने गुरु के साथ बर्ताव करना चाहिए। जब भी उसे किसी बात में सन्देह हो तो वह स्पष्टीकरण के लिए अपने गुरु के पास जाय। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने बतलाया कि कीर्तन करते और नाचते हुए उन्हें पागलपन सवार हो गया जो केवल मुक्तात्मा के लिए ही सम्भव है। वे सन्देह उठने पर मुक्तावस्था में भी अपने गुरु के पास जाते थे। इसलिए किसी भी अवस्था में, यहाँ तक कि मुक्त होने पर भी हमें चाहिए कि अपने को गुरु से स्वतन्त्र न मानें। अपितु ज्योंही आध्यात्मिक जीवन विषयक कोई सन्देह उठे तो हमें तुरन्त गुरु को बतलाना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि ७.८०

शिष्य को गुरु की निन्दा नहीं सहन करनी चाहिए

एक भौतिकवादी जो अपने को संस्कृत का पंडित मानता था वह श्रीरूप और सनातन के पास शास्त्रार्थ करने के बहाने पहुँचा। श्री रूप तथा सनातन गोस्वामी अपना समय नष्ट नहीं करना चाहते थे, अतएव उन्होंने लिख कर दे दिया कि वे शास्त्र में उससे हार गये। यह प्रमाणपत्र लेकर वह पंडित जीव गोस्वामी के पास पहुँचा किन्तु वे इस तरह का प्रमाण पत्र देने के लिए राजी नहीं हुए। यद्यपि श्रील जीवगोस्वामी के पक्ष में यह ठीक ही था कि वे एक पंडित द्वारा श्रील रूपगोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी की पराजय का

विज्ञापन किये जाने को रोकना चाहते थे, किन्तु सहजिया जाति वाले अपनी अशिक्षा के कारण इस घटना का उल्लेख यह कहकर करते हैं कि श्रील जीव गोस्वामी अपने दैन्य सिद्धान्त से विचलित हुए, किन्तु वे यह नहीं जानते कि दैन्य भाव वहीं उचित होता है जहाँ निजी सम्मान को धक्का लगता हो। किन्तु जब भगवान् विष्णु या आचार्यों की निन्दा की जाय तो मनुष्य को दीन न बने रहकर विरोध प्रकट करना चाहिए।...मनुष्य को चाहिए कि अपने अपमान को तो सहे, किन्तु जब गुरुजनों की यथा अन्य वैष्णवों की निन्दा की जाय तो उसका दीन या विनीत बने रहना उचित नहीं है। उसे ऐसी निन्दा का प्रतिवाद करने के लिए कदम उठाना चाहिए। जो गुरु तथा वैष्णव के प्रति दासत्व भाव को समझता है वह श्रील जीव गोस्वामी द्वारा अपने गुरुओं—श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी—-पर तथाकथित पंडित की विजय के सम्बन्ध में किये गये कार्य को समझेगा।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १०.८५

उच्चकोटि का भक्त वही है जिसने प्रामाणिक गुरु के प्रशिक्षण के अन्तर्गत भक्ति के विधि-विधानों का कड़ाई से पालन किया हो

भक्तों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम या सर्वोच्च श्रेणी का वर्णन इस प्रकार किया जाता है—वह संगत शास्त्रों के अध्ययन में अत्यन्त दक्ष होता है और उन शास्त्रों से तर्क प्रस्तुत करने में भी दक्ष होता है। वह निर्णयों को पूर्ण विवेक के साथ अच्छी तरह से प्रस्तुत कर सकता है और भक्ति की विधियों पर निर्णायक ढंग से विचार कर सकता है। वह भलीभाँति समझता है कि जीवन का उद्देश्य कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति प्राप्त करना है और वह जानता है कि पूजा तथा प्रेम के एकमात्र लक्ष्य कृष्ण हैं। इस उच्चकोटि का भक्त वह है जिसने प्रामाणिक गुरु के प्रशिक्षण के अन्तर्गत विधि-विधानों का कड़ाई से पालन किया हो और शास्त्रों

के अनुसार उसकी आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन किया हो। इस तरह प्रचार करने तथा स्वयं गुरु बनने के लिए पूर्णतया प्रशिक्षित होने पर वह प्रथम कोटि का माना जाता है। प्रथम कोटि का भक्त कभी उच्चतर अधिकारी के सिद्धान्तों से विपथ नहीं होता और तर्कों के द्वारा शास्त्रों को समझ कर उनमें दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है।

—भक्तिरसामृत सिन्धु

अपने गुरु के पास जाने पर शिष्य को प्रणाम करना चाहिए और उपयुक्त स्तुति करनी चाहिए

पुत्र या शिष्य का कर्तव्य है कि जब वह अपने पिता या गुरु के पास पहुँचे तो नमस्कार करे और उपयुक्त स्तुतिपाठ करे।

—लीलापुरुषोत्तम कृष्ण

गुरु तथा शिष्य के बीच वार्ताएँ गम्भीर होती हैं

अर्जुन कृष्ण के समक्ष शिष्य रूप में आता है। वह मैत्रीपूर्ण बातें बन्द करना चाहता है। गुरु तथा शिष्य के बीच होने वाली बातें गम्भीर होती हैं और अब अर्जुन मान्य गुरु के समक्ष गम्भीरता से बातें करना चाह रहा था।

भगवद्गीता २.७

श्रील प्रभुपाद द्वारा कृष्ण के नित्य सेवक के रूप में अपनी स्थिति प्राप्त करने के लिए अपने गुरु की स्तुति

व्यक्तिगत रूप से मुझे अपने जीवन में आने वाले करोड़ों जन्मों में भी प्रत्यक्ष सेवा की उम्मीद नहीं है, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि किसी न किसी दिन मैं मोह के इस कीचड़ से जिसमें इस समय मैं बुरी तरह फँसा हूँ उद्धार हो सकेगा। इसलिए मैं अपने श्री गुरु के चरणकमलों में ईमानदारी के साथ स्तुति करता हूँ कि मैंने पूर्वजन्म में जो दुष्कर्म किये हैं उसका मुझे फल भोगने दें, किन्तु मुझे इतनी शक्ति तो दें कि मैं स्मरण कर सकूँ कि मैं परमेश्वर का तुच्छ दास हूँ जिसे अपने दैवी गुरु की अटूट कृपा से ज्ञान

प्राप्त हुआ है। अतएव मैं विनम्रतापूर्वक उनके चरणकमलों में नतमस्तक होता हूँ।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु की वृद्धावस्था में शिष्य को सक्रिय रूप से प्रचार करना चहिए जिससे गुरु निर्जन-भजन कर सके

जब शिष्य बड़े हो जायँ और प्रचार कार्य कर सकें तो गुरु को चाहिए कि वह अवकाश ग्रहण कर ले और एकान्त स्थान में बैठ कर लिखे तथा *निर्जन-भजन* करे। इसका अर्थ होता है मौन होकर एकान्त वास और भक्ति करना।...इस आदर्श का पालन करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के भक्तगण संसार भर के विभिन्न भागों में उपदेश देने का कार्य करते हैं। अब वे अपने गुरु को प्रचार कार्य से विराम देने के लिए छोड़ सकते हैं। गुरुओं के जीवन की अन्तिम अवस्था में भक्तों को चाहिए कि उपदेश कार्य अपने हाथों में ले लें। इस प्रकार गुरु निर्जन स्थान में बैठकर निर्जन-भजन कर सकता है।....जब गुरु निर्जन-भजन के लिए एकान्त वास करता है तो उसके कुछ भक्त उसकी सेवा करने के उद्देश्य से उसके साथ हो लेते हैं।

—*भागवत* ४.२८.३३-३४

शिष्य को चाहिए कि आँख मूँदकर गुरु को साक्षात् ईश्वर न माने

अनुवाद: जब हम आपके द्वारा पूर्ण अनुशासन में रहते हुए सम्पन्न कठिन तपस्याओं के बारे में सोचते हैं तो हमें आपसे भी शक्तिशाली किसी व्यक्ति के अस्तित्व के विषय में आश्चर्यचकित होना पड़ता है, यद्यपि आप सृष्टि के मामले में इतने शक्तिशाली हैं।

तात्पर्य: श्रीनारद मुनि के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह अंधे की तरह गुरु को साक्षात् ईश्वर न मान ले। गुरु का सम्मान ईश्वर के समान ही किया जाता है, लेकिन

जो गुरु अपने को साक्षात् ईश्वर कहे उसे तुरन्त त्याग देना चाहिए। नारद मुनि ने ब्रह्मा को सृष्टि करने के अद्भुत कार्य के कारण परमेश्वर मान लिया था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि ब्रह्माजी भी श्रेष्ठ व्यक्ति की पूजा कर रहे हैं तो उनको सन्देह हुआ। परमेश्वर तो श्रेष्ठतम् हैं ही। उनका कोई आराध्य नहीं है। *अहङ्ग्रहोपासिता* या जो साक्षात् ईश्वर बनने के उद्देश्य से अपनी पूजा करता है भ्रामक है लेकिन बुद्धिमान शिष्य तुरन्त पहचान सकता है कि परमेश्वर को ईश्वर बनने के लिए किसी की, यहाँ तक कि अपनी भी पूजा करने की आवश्यकता नहीं रहती।

—*भागवत* २.५.७

दिव्य ज्ञान के विषय में बोलने के पूर्व अपने गुरु को सादर नमस्कार करना चाहिए

अनुवाद: शुकदेव गोस्वामी ने कहा....अब मैं श्रील व्यासदेव को सादर प्रणाम करके भगवान् हरि के कार्यकलापों से सम्बन्धित कथाओं का वर्णन प्रारम्भ करता हूँ।

तात्पर्य: इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी *कृष्णाय मुनये* को सादर नमस्कार करते हैं जिसका अर्थ है कि वे कृष्णद्वैपायन व्यास को नमस्कार करते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने गुरु को नमस्कार करे। शुकदेव गोस्वामी के गुरु उनके पिता व्यासदेव हैं, अतएव वे सर्वप्रथम कृष्णद्वैपायन व्यास को सादर नमस्कार करते हैं; तब वे भगवान् हरि की कथा का वर्णन करते हैं।

—*भागवत* ७.१.४-५

शिष्य न केवल अपने ही गुरु को अपितु समूची परम्परा को नमस्कार करता है

श्रीचैतन्य-चरितामृत के प्रारम्भ में कृष्णदास कविराज गोस्वामी लिखते हैं, "मैं अपने गुरुओं को नमस्कार करता हूँ। बहुवचन का प्रयोग परम्परा को सूचित करने के उद्देश्य से करते हैं। ऐसा नहीं है कि

वे केवल अपने गुरु को नमस्कार करते हैं, अपितु समूची परम्परा को नमस्कार करते हैं जो साक्षात् कृष्ण से प्रारम्भ होती है। इस तरह *गुरु* का प्रयोग सम्बोधन बहुवचन में यह दिखाने के लिए किया गया है कि लेखक को समस्त वैष्णवों के प्रति परम आदर है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि-भूमिका

शिष्य को चाहिए कि शिक्षा गुरुओं के चरणकमलों पर सादर नमस्कार अर्पित करे

अनुवाद: शिक्षागुरु हैं श्री रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, भट्ट रघुनाथ, श्री जीवगोस्वामी, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी। ये छ: मेरे शिक्षा गुरु हैं, अतएव मैं उनके चरणों पर कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.३६-३७

केवल दीक्षित शिष्यों को ही गुरु का चरणस्पर्श करने देना चाहिए

अनुवाद: एक दिन जब महाप्रभु ने अपना नाच समाप्त किया तभी एक ब्राह्मण की पत्नी वहाँ आई और उसने महाप्रभु के चरण पकड़ लिये। जब वह स्त्री बारम्बार उनके चरणों की धूल लेने लगी तो उन्हें अपार दुख हुआ। वे तुरन्त दौड़े-दौड़े गंगा नदी में आये और उस स्त्री के पापों को दूर करने के लिए नदी में कूद पड़े। नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर ने उन्हें पकड़ कर नदी से निकाला।

तात्पर्य: किसी महापुरुष के चरणकमलों को पकड़ना उस व्यक्ति के लिए अच्छा होता है जो धूल लेता है, किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु के दुख का यह उदाहरण सूचित करता है कि वैष्णव को चाहिए कि किसी को अपने चरणों की धूलि न लेने दे। जो व्यक्ति महापुरुष के चरणकमलों की धूलि लेता है वह अपने पाप उस महापुरुष को दे देता है। जब तक वह अत्यन्त बलशाली न हो उसे धूल लेने वाले व्यक्ति के पापों को सहना पड़ता है। अतएव सामान्यतया ऐसा नहीं होने देना चाहिए। कभी-कभी बड़ी सभाओं में लोग हमारे चरण

छूकर लाभ लेना चाहते हैं। इसी कारण से हमें कभी-कभी रोग सहना पड़ता है। जहाँ तक सम्भव हो किसी बाहरी व्यक्ति को अपने पाँव की धूल नहीं लेने देना चाहिए। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने उदाहरण से यही दिखलाया है।...श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं ईश्वर हैं किन्तु वे एक उपदेशक की भूमिका निभा रहे थे। प्रत्येक उपदेशक (प्रचारक) को यह जान लेना चाहिए कि भले ही वैष्णव के पाँव छूना और धूल धारण करना उस व्यक्ति के लिए शुभ हो जो धूल धारण करता है, किन्तु उस व्यक्ति के लिए शुभ नहीं होता जो पाँव छूने देता है। जहाँ तक सम्भव हो इस प्रथा से बचना चाहिए। केवल दीक्षित शिष्यों को इसका लाभ उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए, अन्यों को नहीं। जो पापी हैं उनसे सामान्यतया बचना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १७.२४३-४५

आदर प्रकट करने के लिए गुरु के सम्मुख खड़े हो जाना साधन भक्ति का अंग है

अनुवाद: "मनुष्य को... (१४) अर्चाविग्रह तथा गुरु के समक्ष आदर प्रकट करने के लिए खड़ा होना चाहिए।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य २२.१२२

गुरु की अभ्यर्थना करते समय शिष्टाचार

अनुवाद: तब उस शिकारी ने अपने आँगन में दोनों ऋषियों का स्वागत किया। उसने बैठने के लिए कुशासन बिछाया और बड़ी ही भक्ति के साथ उनसे बैठने की प्रार्थना की। तब वह जल ले आया और बड़ी ही भक्ति के साथ उसने जल से ऋषियों के पाँव धोये। तब पति-पत्नी दोनों ने उस जल को पिया और अपने सिरों पर धारण किया।

तात्पर्य: गुरु या गुरु के समक्ष अन्य किसी का स्वागत (अभ्यर्थना) करते हुए इसी विधि का पालन करना चाहिए। जब गुरु अपने शिष्यों के घर जाता है तो शिष्यों को इस शिकारी के ही पदचिह्नों का

अनुसरण करना चाहिए। इससे अन्तर नहीं पड़ता कि दीक्षा के पूर्व कौन कैसा था। दीक्षा के बाद उसे यहाँ पर उल्लिखित शिष्टाचार को सीखना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.२७४-७५

गुरु को पूर्णतया तुष्ट करने के बाद शुद्ध शिष्य अपने गुरु से कृपा याचना कर सकता है

जब शिष्य गुरु से सन्देश प्राप्त करके और उसे पूरी तरह तथा निष्ठा से पूरा करके गुरु से पूर्णतया सहमत हो तो उसे अधिकार है कि वह गुरु से कोई विशेष कृपा की याचना करे। सामान्यतया शुद्ध भगवद्भक्त या प्रामाणिक गुरु का शुद्ध शिष्य अपने प्रभु या गुरु से कोई कृपा-याचना नहीं करता किन्तु यदि गुरु से कृपायाचना करनी ही पड़े तो वह गुरु को पूरी तरह तुष्ट किये बिना कृपायाचना नहीं कर सकता।

—*भागवत* ३.२२.८

गुरु स्वभावत: शिष्य को साथ तर्क करने में विजयी होता है

अनुवाद: यह सुनकर सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपना फैसला यह कहते हुए सुनाया, ''ब्रह्मानन्द भारती! मैं देख रहा हूँ कि तुम विजयी हुए।'' इस पर चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया ''ब्रह्मानन्द भारती ने जो कुछ कहा है उसे मैं स्वीकार करता हूँ। यह मेरे लिए बिल्कुल सही है।'' इस तरह महाप्रभु ने अपने को शिष्य और ब्रह्मानन्द भारती को अपना गुरु स्वीकार किया। तब उन्होंने कहा, ''यह शिष्य अपने गुरु से तर्क में निश्चय ही हार गया है।''...

तात्पर्य: ब्रह्मानन्द भारती ने स्वीकार किया कि जब भी गुरु तथा शिष्य में कोई तर्क होता है, तो गुरु ही विजयी होता है भले ही शिष्य प्रबल तर्क क्यों न प्रस्तुत करे। दूसरे शब्दों में, गुरु के वचन शिष्य के वचनों की अपेक्षा अधिक पूजनीय हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत मध्य* १०.१७२-७५

शिष्य को गुरु से भौतिक लाभ की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए और गुरु को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए आशीर्वाद नहीं देना चाहिए

अनुवाद: जो सेवक अपने स्वामी से भौतिक लाभ की इच्छा रखता है वह योग्य सेवक या शुद्ध भक्त नहीं है। इसी प्रकार जो स्वामी अपने सेवक को इसलिए आशीष देता है जिससे कि स्वामी रूप में उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे वह भी शुद्ध स्वामी नहीं है।

—*भागवत* ७.१०.५

आज्ञाकारी शिष्य अपने गुरु के जन्म-स्थान की मिट्टी एकत्र करके नित्य थोड़ी-थोड़ी करके खाता है

अन्यों को उदाहरण देकर यह शिक्षा देने के लिए शिष्य को अपने गुरु के प्रति आज्ञाकारी होना चाहिए, भगवान् चैतन्य महाप्रभु ईश्वरपुरी के जन्म-स्थान कामरहट्टी गये और वहाँ से कुछ मिट्टी एकत्र की। उन्होंने इसे बड़ी सावधानी से रख लिया और नित्य ही इसमें से थोड़ा-थोड़ा खाते थे।

—*चैतन्य-चरितामृत आदि* ९.११

गुरु से वेदों का अध्ययन करने तथा गुरुदक्षिणा देने के बाद शिष्य को गुरु के आदेशानुसार गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी बनना चाहिए

अनुवाद: (गुरु से वेदाध्ययन करने के बाद) यदि सम्भव हो तो शिष्य को चाहिए कि वह गुरु द्वारा माँगी गई गुरुदक्षिणा दे और गुरु के आदेशानुसार गुरुकुल छोड़ दे और अपनी इच्छा से किसी अन्य आश्रम को यथा गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम को स्वीकार करे।

—*भागवत* ७.१२.१४

भाग ५

दीक्षा

१.दीक्षा की परिभाषा

दीक्षा की परिभाषा

श्रील जीव गोस्वामी ने *भक्तिसन्दर्भ* में (२८३) दीक्षा की व्याख्या इस प्रकार की है—

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्।
तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः॥

"दीक्षा वह विधि है जिससे मनुष्य अपने दिव्य ज्ञान को जागृत कर सकता है और पापकर्मों से उत्पन्न सारे फलों को समाप्त कर सकता है। शास्त्रों के अध्ययन में दक्ष व्यक्ति इस विधि को *दीक्षा* के नाम से जानता है।"

दीक्षा का अर्थ

दीक्षा का वास्तविक अर्थ है शिष्य को दिव्य ज्ञान की दीक्षा देना जिससे वह समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ४.१११

२. दीक्षा की आवश्यकता तथा उद्देश्य

प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा के समय कृष्ण के साथ वास्तविक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है

(कृष्ण के साथ) यह सम्बन्ध अपने को प्रामाणिक गुरु के साथ जोड़ने पर स्थापित होता है जो परम्परा में कृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होता है।...गुरु के साथ युक्त होना दीक्षा कहलाता है। गुरु द्वारा दीक्षा दिये जाने के दिन से ही कृष्ण तथा कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करने वाले व्यक्ति के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा दिये

बिना कृष्णभावनामृत के साथ वास्तविक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता।

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*, भूमिका

ठीक से दीक्षित हुए बिना भक्तिमय कार्य व्यर्थ होते हैं और मनुष्य पशुयोनियों में पुनः उतर सकता है

वैष्णव नियमों के अनुसार मनुष्य को ब्राह्मण रूप में दीक्षित होना चाहिए। *हरिभक्ति विलास* में *विष्णु यामल* का निम्नलिखित उद्धरण दिया गया है—

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाविरहितो जनः॥

"प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त किये बिना मनुष्य के सारे भक्तिमार्ग व्यर्थ जाते हैं। जिस व्यक्ति की ठीक से दीक्षा नहीं हुई रहती, वह पुनः पशु-योनि को प्राप्त हो सकता है।"

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १५.१०८

दीक्षा का उद्देश्य

शिष्य को हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन में दीक्षित करके माया के पाश से उद्धार करने वाला गुरु ही होता है। इस तरह एक सो रहा व्यक्ति हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करके अपनी चेतना पुनः प्राप्त कर लेता है। दूसरे शब्दों में, गुरु सो रहे जीव को उसकी मूल चेतना में लाता है जिससे वह भगवान् विष्णु की पूजा कर सकता है। यही *दीक्षा* का उद्देश्य है। दीक्षा का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ९.६१

साधन भक्ति के अंगस्वरूप गुरु के आदेश से तथा उसके पालन द्वारा दीक्षा

अनुवादः "सर्वप्रथम श्रद्धा होनी चाहिए। तब मनुष्य शुद्ध भक्तों की संगति करने में रुचि लेता है। तत्पश्चात् वह गुरु द्वारा दीक्षित होता है और तब उसके आदेशानुसार अनुष्ठानों को सम्पन्न करता है। इस तरह वह समस्त

अवांछित आदतों से विलग हो जाता है और भक्ति में स्थिर होता है। इसके बाद रुचि तथा आसक्ति उत्पन्न होती है। यह साधन भक्ति का मार्ग है।"

—*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.४.१५-१६

(*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २३.१४-१५ में उद्धृत)

दीक्षा उत्सव उपनीति कहलाता है—ऐसा उत्सव जो मनुष्य को गुरु के निकट लाता है

प्रामाणिक गुरु शिष्यों का भार स्वीकार करता है, उन्हें वेदों की सारी जटिलताएँ पढ़ाता है और उन्हें दूसरा जन्म देता है। शिष्य को आध्यात्मिक विज्ञान के अध्ययन में दीक्षित करने के लिए सम्पन्न किया जाने वाला संस्कार *उपनीति* कहलाता है—यानी ऐसा उत्सव जो मनुष्य को गुरु के निकटतर लाता है। जो व्यक्ति गुरु के निकटतर नहीं लाया जा सकता वह जनेउ नहीं धारण कर सकता और इस तरह वह शूद्र समझा जाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १.४६

भगवान् को अपने हृदय के भीतर धारण करने के लिए उसे ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा दीक्षित होना चाहिए जो भगवान् को धारण करता हो

अनुवाद: तत्पश्चात् परम तेजस्वी, समस्त जगत के लिए सर्वमंगलमय भगवान् अपने अंशों समेत वसुदेव के मन से देवकी के मन में स्थानान्तरित कर दिये गये। इस तरह वसुदेव से दीक्षा प्राप्त करने से देवकी सबों की आदि चेतना, समस्त कारणों के कारण, भगवान् कृष्ण को अपने अन्त:करण में धारण करने के कारण सुन्दर बन गईं जिस तरह उदित चन्द्रमा को पाकर पूर्व दिशा सुन्दर बन जाती है।

तात्पर्य: *मनस्त:* शब्द बताता है कि भगवान् को वसुदेव के मन से देवकी के हृदय में स्थानान्तरित किया गया। हमें ध्यान देना होगा कि भगवान् को देवकी के हृदय में किसी सामान्य विधि के द्वारा नहीं, अपितु दीक्षा

द्वारा स्थानान्तरित किया गया। इस तरह जहाँ पर दीक्षा की महत्ता का उल्लेख हुआ है। जब तक अपने हृदय में भगवान् को वहन करने वाले उपयुक्त व्यक्ति द्वारा मनुष्य दीक्षित नहीं होता तब तक उसे अपने हृदय के भीतर भगवान् को वहन करने की शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।...योगीजन अपने मन के भीतर परमपुरुष का ध्यान करते हैं, किन्तु भक्त के लिए भगवान् उपस्थित रहते हैं—उनकी उपस्थिति को प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा के माध्यम से जागृत किये जाने की ही आवश्यकता पड़ती है।

—*भागवत* १०.२.१८

द्वितीय जन्म में मनुष्य गुरु को पिता रूप में तथा वेदों को माता रूप में स्वीकार करता है

मनुष्यों को द्विजन्मा होना चाहिए। पहले बच्चे को उत्तम माता तथा पिता जन्म देते हैं और फिर गुरु तथा वेद उसे दूसरा जन्म देते हैं। पहले वाले माता-पिता उसे संसार में लाते हैं, तब गुरु तथा वेद उसके दूसरे पिता-माता बनते हैं।

—*भागवत* ३.२४.१५

सभ्य मनुष्य को गुरु के सम्पर्क से द्विज होना चाहिए

सभ्य मनुष्य वह है जो दो बार जन्म लेता है। इस लौकिक जगत में प्रत्येक जीव का जन्म पुरुष और स्त्री के संभोग से होता है। माता-पिता के समागम से पुरुष का जन्म होता है किन्तु गुरु के सम्पर्क से सभ्य मानव प्राणी दूसरा जन्म लेता है। यह सद्गुरु उसका सच्चा पिता होता है। भौतिक देह के माता और पिता केवल एक ही जन्म के माता-पिता होते हैं। दूसरे जन्म में अन्य युगम उनके माता-पिता हो सकते हैं, किन्तु प्रामाणिक सद्गुरु भगवान् का प्रतिनिधि होने के कारण शाश्वत पिता होता है, क्योंकि गुरु का यह उत्तदायित्व होता है कि वह शिष्य को आध्यात्मिक मोक्ष अथवा जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कराये इसलिए सभ्य मनुष्य को द्विजन्मा होना चाहिए अन्यथा वह निरन्तर पशु से भिन्न कुछ नहीं होता।

—*भागवत* ३.५.७

प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा शिष्य के जीवन को बदल देती है

पूर्वजन्म में जब नारद को ऋषियों ने आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया था तो उनके जीवन में प्रत्यक्ष परिवर्तन आया था यद्यपि वे अभी पाँच वर्ष के बालक मात्र थे। प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के बाद दिखाई देने वाला यह महत्त्वपूर्ण लक्षण है। भक्तों की वास्तविक संगति से जीवन में तेजी से परिवर्तन आता है।

—*भागवत* १.६.५

दीक्षित होने पर नियमों का पालन करने से मनुष्य को भौतिक जीवन के कल्मष से मुक्ति मिल जाती है

यदि कोई निष्ठावान् है तो वह दीक्षित होता है और यह अवस्था *भजन क्रिया* कहलाती है। तब मनुष्य वास्तव में हरे कृष्ण मन्त्र का नित्य सोलह माला जप करके तथा अवैध यौन, नशीली वस्तुओं, मांसाहार तथा जुआ खेलने से दूर रहकर भगवान् की सेवा में लगता है। *भजन क्रिया* से मनुष्य भौतिकवादी जीवन के कल्मष से मुक्त हो जाता है। वह मांस तथा प्याज से बने स्वादिष्ट व्यंजनों का स्वाद लेने किसी भोजनालय या होटल में नहीं जाता, न ही धूम्रपान करने या चाय अथवा काफी पीने की परवाह करता है। वह न केवल अवैध यौन से दूर रहता है, अपितु यौन जीवन से पूरी तरह बचता है। न ही वह अपना समय चिन्तन करने या जुआ खेलने में व्यर्थ गँवाता है। इस तरह यह समझना होगा कि वह अवांछित वस्तुओं से दूर हो जाता है (*अनर्थनिवृत्ति*)। *अनर्थ* द्योतक है अवांछित वस्तुओं का। जब मनुष्य कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रति अनुरक्त होता है तो *अनर्थ* समाप्त हो जाते हैं।

—*उपदेशामृत* श्लोक ७

दीक्षा हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने तथा कृष्णभावनामृत जगाने में सहायता करती है

हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन इतना प्रबल होता है कि यह दीक्षा पर निर्भर नहीं करता किन्तु यदि कोई दीक्षित है और पञ्चरात्र विधि (अर्चाविग्रह) में लगा रहता है तो शीघ्र ही उसकी कृष्णचेतना जागृत हो जाती है और

भौतिक जगत से उसकी पहचान तुरन्त समाप्त हो जाती है। जो जितना ही भौतिक पहचान से मुक्त हुआ रहता है वह उतना ही अनुभव करता है कि आत्मा परमात्मा जैसा है। ऐसे समय में जब मनुष्य परम को प्राप्त हुआ रहता है तो वह समझ सकता है कि भगवन्नाम तथा भगवान् अभिन्न हैं। अनुभूति की इस अवस्था पर भगवन्नाम अर्थात् हरे कृष्ण मन्त्र की पहचान किसी भौतिक ध्वनि से नहीं की जा सकती। जो व्यक्ति हरे कृष्ण महामन्त्र को भौतिक ध्वनि मानता है उसका पतन हो जाता है। मनुष्य को चाहिए कि भगवन्नाम को भगवान् मान कर उसकी पूजा और कीर्तन करे। अतएव प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में शास्त्रीय रीति से दीक्षा लेनी चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १५.१०८

कोई भी व्यक्ति इस्कान में सम्मिलित हो सकता है और द्विजन्मा हो सकता है (तथा इस प्रकार भगवान् को समझ सकता है)

कोई भी व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में सम्मिलित हो सकता है और द्विज होने के लिए दीक्षित हो सकता है। पहला जन्म तो माता-पिता देते हैं किन्तु दूसरा जन्म आध्यात्मिक पिता तथा वैदिक ज्ञान से सम्भव होता है। जब तक मनुष्य द्विजन्मा नहीं होता वह भगवान् तथा उनके भक्तों की दिव्य विशेषताओं को नहीं समझ सकता।

—*भागवत* ४.१२.४८

वैदिक कर्मकाण्डों में लगने या पवित्र नाम की ठीक से पूजा करने के लिए मनुष्य को ब्राह्मण रूप में दीक्षित होना चाहिए

दीक्षा के विधि-विधानों की व्याख्या *हरि भक्ति विलास* (२.३४) तथा *भक्ति सन्दर्भ* में (२८३) की गई है—

द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु
यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयानादनु।
तथात्रादीक्षितानां तु मन्त्रदेवार्चनादिषु
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्तुतम्॥

''भले ही कोई ब्राह्मणकुल में क्यों न उत्पन्न हुआ हो, वह दीक्षा तथा जनेउ के बिना वैदिक कर्मकाण्ड में प्रवृत्त नहीं हो सकता। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर भी मनुष्य दीक्षा तथा व्रतबन्ध संस्कार के बाद ही ब्राह्मण बनता है। ब्राह्मण के रूप में दीक्षित हुए बिना वह ठीक से नाम की पूजा नहीं कर सकता।''

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १५.१०८

३. दीक्षा पाने के लिए योग्यताएँ तथा आवश्यकताएँ

दीक्षा के लिए योग्यताएँ

सम्वादाता: यदि मैं आपके संघ में दीक्षित होना चाहूँ तो मुझे क्या करना होगा?

श्रील प्रभुपाद: सर्वप्रथम आपको अवैध यौन छोड़ना होगा।

सम्वाददाता: क्या इसमें समस्त यौन-जीवन सम्मिलित है? अवैध यौन जीवन क्या है?

श्रील प्रभुपाद: अवैध यौन-विवाह से इतर यौन है। पशुओं में अबाध यौन होता है किन्तु मानव-समाज में प्रतिबन्ध होते हैं। हर देश तथा हर धर्म में यौन-जीवन को प्रतिबन्ध करने की कोई न कोई प्रणाली है। आपको सभी तरह के नशे भी जिसमें चाय, सिगरेट, एल्कोहोल, मैरिजुआना सम्मिलित हैं, त्यागने पड़ते हैं।

सम्वाददाता: और कुछ?

श्रील प्रभुपाद: आपको मांस, अंडे तथा मछली खाना भी छोड़ना होगा। और आपको, जुआ खेलना भी छोड़ना होगा। जब तक आप इन चार पापकर्मों को त्यागेंगे नहीं तब तक आप दीक्षित नहीं हो सकेंगे।

सम्वाददाता: क्या शरणागति का अर्थ है कि मनुष्य को अपना परिवार छोड़ना होगा?

श्रील प्रभुपाद: नहीं।

सम्वाददाता: किन्तु मान लीजिये कि मुझे दीक्षित बनना है तो क्या मुझे

मन्दिर में आकर रहना होगा?

श्रील प्रभुपाद: आवश्यक नहीं है।

सम्वाददाता: क्या मैं घर पर रह सकता हूँ?

श्रील प्रभुपाद: हाँ।

सम्वाददाता: तो मेरे कार्य का क्या होगा? क्या मुझे अपनी वृत्ति छोड़नी होगी?

श्रील प्रभुपाद: नहीं, आपको केवल बुरी आदतें त्यागनी होंगी और माला में हरे कृष्ण मन्त्र का जाप करना होगा—बस।

सम्वाददाता: क्या कोई आर्थिक सहाय देनी होगी?

श्रील प्रभुपाद: नहीं। यह तो आपकी स्वेच्छा पर है। यदि आप देते हैं तो अच्छा और नहीं तो हम बुरा नहीं मानते। हम किसी के आर्थिक सहयोग पर आश्रित नहीं हैं। हम कृष्ण पर आश्रित हैं।

सम्वाददाता: तो क्या मुझे कुछ भी धन नहीं देना होगा?

श्रील प्रभुपाद: नहीं।

सम्वाददाता: क्या मुख्य बातों में यही ऐसी बात है जो असली गुरु तथा नकली गुरु में अन्तर करती है?

श्रील प्रभुपाद: हाँ, असली गुरु व्यापारी नहीं होता। वह ईश्वर का प्रतिनिधि होता है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

वैष्णवजन उन्हें शिष्य नहीं बनाते जो विधि-विधानों का पालन नहीं करते

जो भौतिकवादी व्यक्ति अपने पापकर्मों यथा अवैध यौन, नशा, जुआ खेलना तथा मांसाहार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते कभी-कभी वे हमारे शिष्य बनना चाहते हैं, किन्तु वैष्णवजन ऐसे सस्ते शिष्य नहीं बनाते जब कि पेशेवर गुरु शिष्यों की स्थिति पर विचार किये बिना उन्हें स्वीकार करते हैं। इसके पूर्व कि वैष्णव आचार्य किसी को शिष्य बनाए शिष्य को विधि-विधानों का पालन करने के लिए राजी होना चाहिए।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १२.५०

दीक्षा लेने के साथ शिष्य को भौतिक जीवन के सिद्धान्तों—अवैध

यौन, नशा, जुआ खेलना तथा मांसाहार— का परित्याग कर देना चाहिए

मनुष्य को शास्त्र के सिद्धान्तों के पालन की दीक्षा दी जानी चाहिए। दीक्षा देते समय हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन उससे शास्त्र के परम वक्ता कृष्ण के उपदेश को ग्रहण करके शास्त्र के निर्णय तक पहुँचने के लिए कहता है और भौतिकतावादी जीवन-शैली के नियमों को भूलने को कहता है। अतएव हम जिन नियमों की सलाह देते हैं वे हैं अवैध यौन का निषेध, नशे का निषेध, जुआ खेलने का निषेध तथा मांसाहार का निषेध। इन चार प्रकार की व्यस्तता से बुद्धिमान व्यक्ति भौतिकतावादी जीवन से मुक्त हो सकेगा और भगवद्धाम वापस जा सकेगा।

—*भागवत* ६.५.२०

दीक्षा के समय मनुष्य को सारे पापकर्म त्याग देने चाहिए

जब महाप्रभु अपने सुदर्शन चक्र का अवाहन कर रहे थे और नित्यानन्द प्रभु उन दोनों भाइयों को क्षमा करने की मिन्नत कर रहे थे तो वे दोनों भाई महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और अपने इस अभद्र आचरण के लिए क्षमा माँगी। नित्यानन्द प्रभु ने इन प्रायश्चित्त करने वाले जीवों को स्वीकारने के लिए प्रार्थना की और महाप्रभु ने उन दोनों को इस शर्त पर स्वीकार किया कि अब वे अपने पापकर्मों तथा व्यसनों का सर्वथा परित्याग कर देंगे। इस पर दोनों भाई राजी हो गये और उन्होंने अपनी समस्त पापपूर्ण आदतों को छोड़ने का वचन दिया। दयालु भगवान् ने उन्हें स्वीकार कर लिया और फिर कभी उनके विगत दुष्कर्मों का उल्लेख नहीं किया।

यह भगवान् चैतन्य का विशिष्ट दयाभाव है। इस युग में कोई भी यह नहीं कह सकता कि वह पाप से मुक्त है। ऐसा कह पाना सर्वथा असम्भव है। लेकिन भगवान् चैतन्य सभी प्रकार के पापी पुरुषों को इस शर्त के साथ स्वीकार करते हैं कि वे प्रामाणिक गुरु से दीक्षा लेने के बाद पापपूर्ण आदतों से विरत होने की प्रतिज्ञा करें।

—*भागवत* १.१ भूमिका

दीक्षा लेते समय शिष्य पापकर्म त्यागने तथा गुरु के आदेशों को पूरा करने के लिए राजी होता है

अनुवाद: तब शिकारी ने कहा, "मान्यवर! आप जो कहते हैं वही करूँगा।" नारद ने तुरन्त उसे आदेश दिया, "पहले तुम अपना धनुष तोड़ डालो। तब मैं तुम्हें बताऊँगा कि तुम्हें क्या करना है।"

तात्पर्य: दीक्षा देने की विधि यही है। शिष्य को इसके लिए राजी होना चाहिए कि अब वह पापमय कृत्य यथा अवैध यौन, मांसाहार, जुआ खेलना तथा नशा नहीं करेगा। वह गुरु के आदेशों को पूरा करने का वचन देता है। तब गुरु उसकी देखभाल करता है और उसे आध्यात्मिक उच्च पद तक उठाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.२५६

दीक्षा के लिए आवश्यकताएँ

हम कृष्णभावनामृत अन्तर्राष्ट्रीय संघ में शिष्यों को तुरन्त दीक्षित नहीं करते। दीक्षा के पूर्व छः मास तक शिष्य को पहले आरति तथा शास्त्रों की कक्षाओं में सम्मिलित होना होता है, विधानों का पालन करना होता है और अन्य भक्तों की संगति करनी होती है। जब वह *पुरश्चर्या* विधि में अग्रसर हो जाता है तो स्थानीय मन्दिर अध्यक्ष दीक्षा के लिए संस्तुति करता है। ऐसा नहीं है कि आवश्यकताओं को पूरा किये बिना किसी को दीक्षित किया जा सके। जब वह हरे कृष्ण मन्त्र का सोलह माला जाप करके, नियमों का पालन करके तथा कक्षाओं में उपस्थित होकर आगे बढ़ जाता है तो अगले छह महीनों में उसका यज्ञोपवीत कर दिया जाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १५.१०८

प्रथम तथा द्वितीय दीक्षाओं के लिए योग्यताएँ

अनुवाद: "तुम्हारी पुस्तक में प्रामाणिक गुरु तथा प्रामाणिक शिष्य की विशेषताएँ जानी चाहिए। तब गुरु बनाने के पूर्व गुरु-पद के विषय में आश्वस्त होना चाहिए। इसी तरह गुरु को शिष्य के पद पर विचार कर

लेना चाहिए।....."

तात्पर्य: गुरु को चाहिए कि शिष्य बनाने के पूर्व शिष्य के गुणों की जाँच करे। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शिष्य को पापी जीवन के चार स्तम्भ रूपी मुख्य बातों को त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए। ये हैं अवैध यौन, मांसाहार, नशा तथा जुआ खेलना। पाश्चात्य देशों में हम विशेष ध्यान रखते हैं कि शिष्य अनुष्ठानों का पालन करने के लिए तैयार है कि नहीं। तब वैष्णव-दास के रूप में उसका नामकरण किया जाता है और प्रतिदिन सोलह माला हरे कृष्ण महामन्त्र का जाप करने के लिए दीक्षित किया जाता है। इस तरह शिष्य को अपने गुरु या उसके प्रतिनिधि की देखभाल में छह मास से लेकर एक वर्ष तक भक्ति करनी होती है। इसके बाद द्वितीय दीक्षा की संस्तुति की जाती है जिसमें शिष्य को यज्ञोपवीत प्रदान किया जाता है और उसे प्रामाणिक ब्राह्मण मान लिया जाता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.३३०

प्रथम, द्वितीय तथा संन्यास दीक्षा के लिए आवश्यकताएँ

कृष्णभावानामृत आन्दोलन के सारे छात्रों को नियत दीक्षा विधि से गुजरना पड़ा है। जैसा कि सनातन गोस्वामी ने *हरिभक्ति विलास* में आदेश दिया है-*तथा दीक्षा विधानेन दिजत्वं जायते नृणाम्*—दीक्षा विधि से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन सकता है। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के विद्यार्थी प्रारम्भ में भक्तों के साथ रहने के लिए राजी होते हैं और धीरे-धीरे वे अवैध यौनाचार, द्यूतक्रीड़ा, मांसाहार तथा नशा इन चार वर्जित कार्यों को छोड़ देते हैं और आध्यात्मिक कार्यों में आगे बढ़ते हैं। जब कोई विद्यार्थी इन नियमों का नियमित रूप से पालन करने लगता है तो उसे प्रथम दीक्षा (हरिनाम) दी जाती है और वह नित्य सोलह माला जप करता है। फिर छह मास या एक साल बाद उसकी दुबारा दीक्षा होती है और नियमित यज्ञ तथा अनुष्ठान के साथ उसे जनेउ पहनाया जाता है। कुछ समय बाद जब वह और प्रगति करता है और इस भौतिक जगत का परित्याग करने के लिए राजी हो जाता है तो उसे संन्यास दिलाया जाता है। उस समय उसे *स्वामी* या *गोस्वामी* की पदवी दी जाती है

जिसका अर्थ है कि वह "इन्द्रियों का स्वामी" है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* आदि १७.२६५

दीक्षा के लिए योग्यताएँ—भौतिक भोग में अरुचि तथा परम सत्य में रुचि

दीक्षा की व्याख्या श्रील जीव गोस्वामी द्वारा *भक्ति-सन्दर्भ* में की गई है—

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम।
तस्मात् दीक्षेति स्त प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदै:॥

"दीक्षा वह विधि है जिससे मनुष्य अपने दिव्य ज्ञान को जाग्रत कर सकता है और अपने सारे पापकर्मों का क्षय कर सकता है। शास्त्रों के अध्ययन में पटु व्यक्ति इस विधि को दीक्षा नाम से जानता है।"

हमने इसके अनेक व्यावहारिक उदाहरण, विशेषतया यूरप तथा अमरीका में देखे हैं। ऐसे अनेक छात्र जो हमारे पास धनी तथा सामान्य परिवारों से आते हैं वे तुरन्त भौतिक योग के प्रति रुचि समाप्त करके आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने के लिए अति उत्सुक रहते हैं। यद्यपि वे अत्यन्त धनी परिवारों से आते हैं, किन्तु उनमें से अनेक छात्र ऐसा रहन-सहन स्वीकार कर लेते हैं जो अति सुखद नहीं होता। निस्सन्देह वे जब तक मन्दिर में रह सकते हैं और वैष्णवों की संगति करते हैं तब तक वे कृष्ण के निमित्त कोई भी रहन-सहन स्वीकार करने को तैयार रहते हैं। जब जिस छात्र में भौतिक भोग से अरुचि उत्पन्न हो जाती है तो वह गुरु द्वारा दीक्षा के लिए उपयुक्त हो जाता है। आध्यात्मिक जीवन की प्रगति के लिए *श्रीमद्भागवत* में (६.१.१३) संस्तुति की गई है—*तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च*। जब कोई व्यक्ति दीक्षा लेने के लिए गंभीर हो तो उसे तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा मन एवं शरीर पर संयम बरतने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि वह इसके लिए तैयार रहता है और ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक रहता है (*दिव्यम् ज्ञानम्*) तो वह दीक्षा के लिए उपयुक्त पात्र है। *दिव्यम्-ज्ञानम्* को शास्त्रीय रूप में तद्विज्ञान यानी परम विषयक ज्ञान कहा जाता है। *तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—जब कोई परम सत्य

के दिव्य विषय में रुचि लेता है तो उसको दीक्षा दी जानी चाहिए। ऐसे व्यक्ति को दीक्षा लेने के लिए गुरु के पास जाना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में भी (११.३.२१) संस्तुति हुई है—*तस्मात् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय मुत्तमम्*—जब कोई वास्तव में परम सत्य के दिव्य विज्ञान में रुचि रखे तो उसे गुरु के पास जाना चाहिए।

उसे गुरु के आदेशों का पालन किये बिना गुरु नहीं बनाना चाहिए न ही आध्यात्मिक जीवन के दिखावे के लिए गुरु बनाना चाहिए। उसे *जिज्ञासु* यानी गुरु से सीखने के लिए अत्यधिक उत्सुक होना चाहिए। वह जो भी प्रश्न पूछे उन्हें दिव्यज्ञान से सम्बन्धित होना चाहिए (*जिज्ञासुः श्रेयमुत्तमम्*)। उत्तमम् शब्द द्योतक है उसका जो भौतिक ज्ञान से ऊपर हो। *तम* का अर्थ है "इस भौतिक जगत का अंधकार," उत का अर्थ है "दिव्य"। सामान्यतया लोग संसार की बातों के बारे में पूछने में अधिक रुचि लेते हैं, किन्तु जब उसकी ऐसी रुचि समाप्त हो ले और जब वह केवल दिव्य विषयों में रुचि ले तो वह दीक्षित होने के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

—*उपदेशामृत* श्लोक ५

गुरु के पास तभी जाये जब कोई वास्तव में ज्ञान पाने के लिए उत्सुक हो

अनुवाद: चूँकि आप दोनों महापुरुष हैं, अतः मुझे वास्तविक ज्ञान देने में समर्थ हैं। मैं अविद्या के अंधकार में निमग्न रहने के कारण शूकर अथवा कूकर जैसे ग्राम्य पशु के समान मूढ़ हूँ। अतः मुझे उबारने के लिए ज्ञान का दीपक जलाएँ।

तात्पर्य: ज्ञान प्राप्त करने की यही विधि है। मनुष्य को चाहिए कि ऐसे महापुरुषों के चरणों में शरण ले जो वास्तविक दिव्य ज्ञान प्रदान कर सके। इसलिए कहा गया है—*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमुत्तमम्*—जो जीवन के उच्चादर्श तथा महत्व को जानने का इच्छुक है उसे चाहिए कि गुरु के पास पहुँचे और उनकी शरण ले। जो सचमुच अविद्या के अंधकार से दूर रहना चाहता है उसे ही गुरु के समीप जाना चाहिए। भौतिक लाभ के लिए गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। गुरु के पास जाने का

यह कोई ढंग नहीं है। *तद्विज्ञानार्थम्*—मनुष्य को चाहिए कि दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हेतु ही गुरु के पास जाए। दुर्भाग्यवश इस कलि काल में ऐसे अनेक धूर्त गुरु हैं जो भौतिक लाभ हेतु जादू दिखाते हैं और ऐसे अनेक मूढ़ शिष्य हैं जो भौतिक लाभ हेतु जादू देखना पसंद करते हैं। ऐसे शिष्य अविद्या के अंधकार से बचने के लिए आध्यात्मिक जीवन बिताने में कोई रुचि नहीं रखते।

—*भागवत* ६.१५.१६

गुरु कुपात्र को दीक्षा नहीं दे सकता

गुरु को चाहिए कि अयोग्य व्यक्ति को शिष्य न बनाए, उसे पेशेवर नहीं होना चाहिए और आर्थिक लाभ के लिए शिष्य नहीं बनाने चाहिए। प्रामाणिक गुरु को चाहिए कि जिस व्यक्ति को वह दीक्षा देने जा रहा है उसके प्रामाणिक गुणों को देखे। अयोग्य या कुपात्र को कभी दीक्षा न दी जाय।

—*भागवत* ३.३२.४२

भक्तिवेदान्त जन निष्पक्ष होकर हर एक को आध्यात्मिक जीवन में दीक्षित करते हैं

भक्तिवेदान्त गण निष्पक्ष भाव से दिव्य ज्ञान का वितरण करते हैं। उनके लिए न कोई मित्र है, न शत्रु, न कोई शिक्षित है न अशिक्षित। वे यह देखते हैं कि लोग सामान्य रूप से झूठी कामोदीपक वस्तुओं में अपना समय गँवाते हैं। उनका कार्य है अज्ञानी जनता को भगवान् के साथ उसके भूले हुए सम्बन्ध को पुनःस्थापित कराना। ऐसे प्रयास से विस्मृत से विस्मृत जीव को भी आध्यात्मिक जीवन का बोध हो जाता है और उनके द्वारा दीक्षित सामान्य लोग धीरे-धीरे दिव्य अनुभूति के पथ पर अग्रसर होने लगते हैं।

—*भागवत* १.५.२४

गुरु किसी व्यक्ति की भौतिक दशा की परवाह न करते हुए ऐसे

व्यक्ति को शरण देता है और उसे आध्यात्मिक जीवन में लगाता है

अनुवाद: श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई प्रशंसा सुनकर भवानन्द राय ने निवेदन किया "मैं चातुर्वर्ण्य में चौथा (शूद्र) हूँ और सांसारिक कार्यों में लगा रहने वाला प्राणी हूँ। मैं पतित हूँ फिर भी आपने मेरा स्पर्श किया। यह इसका प्रमाण है कि आप भगवान् हैं।"

तात्पर्य: जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़े-चढ़े हैं वे किसी व्यक्ति की भौतिक अवस्था की परवाह नहीं करते। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से बढ़ा-चढ़ा व्यक्ति हर जीव के आध्यात्मिक स्वरूप को देखता है। फलतः वह ब्राह्मण, कुत्ता, चाण्डाल या अन्य किसी में भेदभाव नहीं बरतता। वह मनुष्य के भौतिक शरीर से प्रभावित नहीं होता, अपितु उसके आत्मिक स्वरूप को देखता है। फलतः भवानन्द राय को महाप्रभु का कथन अच्छा लगा जिससे पता चलता है कि महाप्रभु ने भवानन्द राय की सामाजिक परिस्थिति की परवाह नहीं की कि वे सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने वाले शूद्र जाति के थे। प्रत्युत महाप्रभु ने भवानन्द राय, रामानन्द राय तथा उनके भाइयों की आध्यात्मिक स्थिति पर विचार किया। भगवान् के भक्त में भी ऐसी मनोवृत्ति होती है। वह किसी भी व्यक्ति को—किसी भी जीव को—आश्रय देता है चाहे ब्राह्मण जाति का हो या चंडाल हो। गुरु सारे लोगों का उद्धार करके हर व्यक्ति को आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणा देता है। ऐसे भक्त की शरण लेकर मनुष्य अपना जीवन सफल बना सकता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य १०.५४

श्रीचैतन्य महाप्रभु की परम्परा के गुरु शिष्य बनाने में उदार होते हैं

जिसने संन्यास आश्रम स्वीकार कर लिया है उसे अयोग्य शिष्य बनाने का निषेध है। संन्यासी को सर्वप्रथम यह परीक्षा कर लेनी चाहिए कि इच्छुक विद्यार्थी कृष्णभावनामृत की खोज निष्ठापूर्वक कर रहा है। यदि नहीं तो उसे शिष्य नहीं बनाया जाना चाहिए। किन्तु चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा ऐसी है कि उन्होंने सारे प्रामाणिक गुरुओं को सलाह दी कि वे सर्वत्र कृष्णभावनामृत के विषय में प्रवचन दें। इसलिए चैतन्य की

परम्परा में, संन्यासी भी कृष्णभावनामृत के विषय में कहीं भी प्रवचन कर सकते हैं और यदि कोई गम्भीरतापूर्वक शिष्य बनने के लिए उन्मुख होता है तो संन्यासी उसे स्वीकार कर सकता है।

हाँ, यह बात तो है कि शिष्यों की संख्या बढ़ाये बिना कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रसार नहीं हो सकता। इसलिए कभी-कभी खतरा मोल लेते हुए चैतन्य महाप्रभु की परम्परा का संन्यासी ऐसे व्यक्ति को भी स्वीकार कर सकता है तो सरासर शिष्य बनने के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसा शिष्य बाद में प्रामाणिक गुरु की कृपा से धीरे-धीरे ऊपर उठ जाता है। हाँ, यदि कोई किसी प्रतिष्ठा या झूठे सम्मान के लिए शिष्यों की संख्या बढ़ाता है तो वह कृष्णभावनामृत सम्पन्न करने के मामले में नीचे गिर जाएगा।

—*भक्तिरसामृत सिन्धु*

प्रामाणिक गुरु के मार्गदर्शन में पतित व्यक्ति भी परम पद तक उठ सकता है, गुरु किसी को भी (बशर्ते कि वह निष्ठावान् हो) शिष्य बना सकता है

यदि भगवद्भक्ति में निष्णात प्रामाणिक गुरु द्वारा नराधमों को शिक्षा प्राप्त हो तो वे भक्ति के परम पद तक उठ सकते हैं। ...निष्कर्ष यह निकला कि भगवद्भक्ति के द्वार सबों के लिए खुले हैं चाहे वे जो भी हों। यह भक्ति करने वाले सभी लोगों पर व्यवहृत होने की पुष्टि है।

अत: हर एक के लिए प्रामाणिक गुरु की शिक्षा द्वारा भगवान् की भक्ति की सलाह दी गई है।

...अत: भगवान् की भक्ति करने के लिए समुचित पात्र के ढूँढे जाने की आवश्यकता होती है चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, विद्वान हों अथवा मूर्ख, आसक्त हों या विरक्त, मुक्त हों या मुक्तिकामी, भक्ति करने में सक्षम हों या अक्षम—सभी लोग उचित पथप्रदर्शन से भक्ति करते हुए परम पद को प्राप्त हो सकते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी (९.३०-३२) हुई है...यदि समस्त प्रकार के पापकर्मों में रत कोई पुरुष उचित पथनिर्देशन में भगवान् की भक्ति करता है तो निस्सन्देह उसे परम पवित्र पुरुष समझना चाहिए। अत: कोई भी पुरुष या स्त्री चाहे वह जो भी हो और जैसी

भी हो...यदि भगवान् के चरणकमलों की निष्ठापूर्वक शरण ग्रहण करता है तो वह भगवान् के धाम को लौट कर जीवन की परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यही निष्ठा एकमात्र योग्यता (पात्रता) है जिससे वह जीवन की सर्वोच्च सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है।

—*भागवत* २.९.३६

आध्यात्मिक गुरु जन्म के आधार पर शिष्य ग्रहण नहीं करता।

भक्ति सम्प्रदाय जिसे सामान्यतया वैष्णव सम्प्रदाय कहा जाता है उसके अनुसार ईश-साक्षात्कार के विषय में किसी के भी अग्रसर होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वैष्णव इतना शक्तिशाली होता है कि वह किरात को भी वैष्णव बना लेता है।

भगवद्गीता में (९.३२) भगवान् ने कहा है कि भगवद्भक्त होने के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है (यहाँ तक कि निम्न कुल में उत्पन्न अथवा स्त्रियों, शूद्रों या वैश्यों पर भी) और भगवद्भक्त होने पर प्रत्येक व्यक्ति भगवद्धाम जाने का भागी बन जाता है। इसके लिए एकमात्र योग्यता यह है कि ऐसे भगवद्भक्त की शरण लेनी चाहिए जिसे कृष्ण के दिव्य विज्ञान (*भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत*) का सम्यक् ज्ञान हो। विश्व के किसी भी भाग का ऐसा कोई भी व्यक्ति जो कृष्णविज्ञान में निष्णात बन जाता है शुद्ध भक्त बन सकता है और सामान्य लोगों का गुरु बनकर उनके हृदयों को शुद्ध करके उनका उद्धार कर सकता है। कोई कितना ही बड़ा पापी क्यों न हों, वह शुद्ध वैष्णव के सम्पर्क में तुरन्त शुद्ध हो जाता है। अतएव जाति-पाँति पर विचार किये बिना कोई भी वैष्णव विश्व के किसी भी भाग से शिष्य बना सकता और विधि विधानों द्वारा उसे शुद्ध वैष्णव का पद दिला सकता है जो ब्राह्मण संस्कृति से परे हो...किसी भी देश के रीति-रिवाज का ध्यान रखे बिना किसी को वैष्णव सम्प्रदाय में आध्यात्मिक दृष्टि से स्वीकार किया जा सकता है और इस दिव्य विधि में कोई बाधा नहीं है। अतएव श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदेश से *श्रीमद्भागवत* या *भगवद्गीता* सम्प्रदाय का सारे विश्व में प्रचार किया जा सकता है और जो इस दिव्य सम्प्रदाय को स्वीकार करने के इच्छुक हों उनका उद्धार हो सकता है।'' भक्तों द्वारा इस प्रकार के आन्दोलन को ऐसे सारे लोग

स्वीकार करेंगे जो विवेकी तथा जिज्ञासु हैं और किसी देश के रीति-रिवाज से द्वेष नहीं रखते। एक वैष्णव दूसरे वैष्णव को जन्म अधिकार के आधार पर स्वीकार नहीं करता।...

निष्कर्ष यह है कि सर्वशक्तिमान होने के कारण भगवान् किसी भी परिस्थिति में विश्व के किसी भी कोने से किसी को भी, चाहे स्वयं या गुरु के रूप में अपनी प्रामाणिक अभिव्यक्ति द्वारा स्वीकार कर सकते हैं। भगवान् चैतन्य ने वर्णाश्रम धर्म के अतिरिक्त अन्य जातियों के अनेक भक्तों को स्वीकार किया और हम सबों को शिक्षा देने के लिए स्वयं यह घोषित किया कि वे किसी जाति या वर्ण के नहीं हैं, अपितु वे वृन्दावन की गोपियों के पालनकर्ता भगवान् (कृष्ण) के दासों के दास हैं। यही आत्म-साक्षात्कार की विधि है।

—*भागवत* २.४.१८

शूद्र को दीक्षा से वंचित नहीं रखा जाता है बशर्ते कि गुरु द्वारा उसे स्वीकृति मिल जाय

ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के शरीर में जनेऊ गुरु द्वारा दीक्षा दिये जाने का चिह्न है। यदि इसे उच्च कुल की शेखी के रूप में पहनाया जाय तो यह कुछ नहीं है। गुरु का कर्तव्य है कि शिष्य को जनेऊ प्रदान करके दीक्षित करे और इस संसार के बाद गुरु शिष्य को वेदों की शिक्षा देता है। शूद्र कुल में उत्पन्न व्यक्ति को ऐसी दीक्षा से वंचित नहीं किया जाता बशर्ते कि उसे गुरु की स्वीकृति प्राप्त हो जिसे पूरा अधिकार होता है कि यदि वह शिष्य को पूर्णतया योग्य पाए तो उसे ब्राह्मण बनने का अधिकार दे।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १.४६

पाञ्चरात्रिक विधि के अनुसार कोई भी निष्ठावान् व्यक्ति दीक्षा पाने के योग्य होता है

हरिभक्ति विलास में (१.१९४) निम्नलिखित आदेश प्राप्त है—

तान्त्रकेषु च मन्त्रेषु दीक्षायां योषितामपि।
साध्वीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनां च सद्धियाम्॥

''शूद्र-गण तथा साध्वी स्त्रियाँ जो परब्रह्म को जानने में सचमुच रुचि रखें वे पाञ्चरात्रिक मन्त्रों द्वारा दीक्षा प्राप्त करने के योग्य हैं।''...

यदि कोई सचमुच ही कृष्ण की सेवा करने जाता है तो उसके लिए शूद्र, वैश्य या स्त्री होने से कोई व्यवधान नहीं पड़ता। यदि कोई निष्ठापूर्वक हरे कृष्ण मन्त्र या दीक्षा मन्त्र का जप करता है तो पाञ्चरात्रिक विधि से अनुसार वह दीक्षा प्राप्त करने के योग्य है। शूद्रों तथा स्त्रियों को वैदिक दीक्षा में प्रवेश नहीं दिया जाता। जब तक गुरु की दृष्टि में कोई योग्य नहीं होता तब तक पाञ्चरात्रिक विधि या वैदिक विधि से मन्त्र स्वीकर नहीं कर सकता। जब वह मन्त्र ग्रहण करने के योग्य बनता है तो उसे पाञ्चरात्रिक या वैदिक विधि से दीक्षा दी जाती है। प्रत्येक दशा में परिणाम वही निकलता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.३३१

प्रामाणिक दीक्षा से कोई भी व्यक्ति वैष्णव बन सकता है (और इस तरह पूरा जगत कृष्णभावनामृत को अंगीकार कर सकता है)

जो आचार्यों की पंक्ति में नहीं हैं, अथवा जिन्हें आचार्य की तरह कार्य करने का अनुभव नहीं है वे वृथा ही भारत के बाहर इस्कान के कार्यकलापों की आलोचना करते हैं। तथ्य यह है कि ऐसे आलोचक कृष्णभावनामृत के प्रसार में कुछ भी नहीं कर सकते। यदि कोई बाहर जाता है और देश-काल के अनुसार सभी प्रकार की आपत्तियों का सामना करके धर्म प्रचार करता है तो सम्भावना यही है कि पूजा की विधि में अन्तर आ जाय। किन्तु शास्त्रों के अनुसार यह रंच भर भी दोषपूर्ण नहीं है। रामानुज सम्प्रदाय की परम्परा के आचार्य श्रीमद्वीरराघव ने अपनी टीका में लिखा है कि परिस्थितियों के अनुसार चण्डाल भी, जो शूद्र कुलों से भी निम्न है, दीक्षित किये जा सकते है। उन्हें वैष्णव बनने के लिए औपचारिकताओं में यत्र-तत्र परिवर्तन किये जा सकते हैं।

यह नियम कि केवल भारतीय तथा हिन्दू ही वैष्णव सम्प्रदाय में सम्मिलित हो सकते हैं, भ्रान्तिमूलक है। इसी उद्देश्य से कृष्णभावनामृत आन्दोलन चलाया गया है। इस आन्दोलन को ऐसे लोगों में जो चाण्डाल, म्लेच्छ या यवन कुलों में उत्पन्न हैं, प्रसारित करने की मनाही नहीं है। यहाँ

तक कि भारत में भी यह बात श्रील सनातन गोस्वामी ने अपनी पुस्तक *हरिभक्ति विलास* में कही है जो कि एक स्मृति है और दैनिक व्यवहार के लिए वैष्णवों के लिए प्रामाणिक वैदिक पथप्रदर्शक है। सनातन गोस्वामी भी कहते हैं कि जिस प्रकार काँसा पारद से मिश्रित होने पर सोना बन सकता है उसी प्रकार प्रामाणिक दीक्षा से कोई भी वैष्णव बन सकता है। मनुष्य को चाहिए कि परम्परा से चले आ रहे प्रामाणिक गुरु से दीक्षा प्राप्त करे। यह *दीक्षा विधान* कहलाता है। *भगवद्गीता* में भगवान् कृष्ण ने कहा है *व्ययाश्रित्य*— मनुष्य को गुरु स्वीकार करना चाहिए। इस विधि से समग्र संसार को कृष्णभावनामृत में बदला जा सकता है।

—*भागवत* ४.८.५४

४. गुरु तथा शिष्य बनने वाले में पारस्परिक परीक्षण

सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व गुरु तथा शिष्य को एक दूसरे को सतर्कता से अध्ययन करना चाहिए

शास्त्रों का आदेश है कि गुरु बनाने के पूर्व हमें सावधानी के साथ यह खोज करनी चाहिए कि हम गुरु की शरण ले सकते हैं कि नहीं। हमें सहसा गुरु नहीं बना लेना चाहिए। यह अति घातक है। गुरु को भी चाहिए कि वह उस व्यक्ति का जो शिष्य बनना चाहता है अध्ययन यह देखने के लिए करे कि वह उपयुक्त है कि नहीं। गुरु तथा शिष्य के बीच इसी तरह से सम्बन्ध स्थापित होता है।

—*आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान*

गुरु तथा शिष्य के पारस्परिक परीक्षण की विधि

अनुवाद: तुम्हारी पुस्तक में प्रामाणिक गुरु तथा प्रामाणिक शिष्य के लक्षण दिये जाने चाहिए। तब गुरु बनाने के पूर्व गुरु-पद के विषय में आश्वस्त हो लेना चाहिए। इसी तरह गुरु को शिष्य के पद पर विचार कर लेना चाहिए।...

तात्पर्य: जहाँ तक गुरु तथा शिष्य के पारस्परिक परीक्षण का प्रश्न है, श्रील भक्तिसिद्धान्त स्वामी की व्याख्या है कि प्रामाणिक शिष्य को दिव्य विषयों को समझने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहना चाहिए। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (११.३.२१) कहा गया है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्

"जो जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य और लाभ को जानने के लिए उत्सुक रहता है उसे गुरु के पास जाकर शरण लेनी चाहिए।" प्रामाणिक गुरु चुनाव करते समय गम्भीर शिष्य को सतर्क रहना चाहिए। उसे यह निश्चित कर लेना चाहिए कि वह गुरु की समस्त आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा। गुरु को चाहिए कि वह देखे कि शिष्य कितना जिज्ञासु है और दिव्य विषय को समझने के लिए कितना उत्सुक है। गुरु को चाहिए कि वह शिष्य की उत्सुकता को कम से कम छह मास या एक वर्ष तक परखे।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.३३०

गुरु शिष्यत्व के लिए दृढ़संकल्प की परीक्षा करता है

अनुवाद: अब तुमने अपनी माता के उपदेश से भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए ध्यान योग पालन करने का निश्चय किया है किन्तु मेरे विचार से ऐसी तपस्या सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। भगवान् को प्रसन्न कर पाना अति कठिन है।

तात्पर्य: भक्तियोग की पद्धति का पालन कर पाना सरल भी है और कठिन भी है। परम गुरु नारद मुनि ध्रुव महाराज की परीक्षा यह देखने के लिए कर रहे हैं कि भक्ति करने के लिए वह कितना कृतसंकल्प है। शिष्य बनाने की यही विधि है। नारद मुनि ध्रुव के पास भगवान् के आदेश से दीक्षा देने के लिए आये थे तो भी वे ध्रुव के संकल्प की परीक्षा ले रहे थे। फिर भी यह सच है कि निष्ठावान पुरुष के लिए भक्ति अत्यन्त सरल है, किन्तु जो निष्ठावान तथा कृतसंकल्प नहीं है उसके लिए यह अत्यन्त कठिन विधि है।

—*भागवत* ४.८.३०

गुरु का कर्तव्य है कि यह परीक्षा ले कि शिष्य भक्ति करने के प्रति कितना गम्भीर है

अनुवाद: इसलिए हे बालक! तुम्हें इसके लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इसमें तुम्हें सफलता हाथ लगने वाली नहीं। अच्छा हो कि तुम घर वापस चले जाओ। जब तुम बड़े हो जाओगे तो ईश्वर की कृपा से तुम्हें इन योग कर्मों के लिए अवसर मिलेगा। उस समय तुम यह कार्य पूरा करना।

तात्पर्य: नारद मुनि ध्रुव महाराज की परीक्षा लेने के लिए ऐसा उपदेश दे रहे हैं। वास्तव में सीधा-सादा उपदेश तो यही है कि जीवन के किसी भी बिन्दु से भक्ति प्रारम्भ की जा सकती है। किन्तु गुरु का दायित्व है कि वह देखे कि शिष्य कितनी गम्भीरता से भक्ति में लगना चाहता है। तभी उसे दीक्षित करना चाहिए।

—*भागवत* ४.८.३२

५. गुरु शिष्य को महामन्त्र जप करने के लिए दीक्षा देता है

पवित्रनाम प्रभावी हो इसके लिए इसे गुरु से प्राप्त करना चाहिए

अनुवाद: भगवन्नाम के सौन्दर्य और दिव्य पद को भक्तों के मुख से शास्त्रों का श्रवण करके सीखना होता है। हम अन्यत्र कहीं भी भगवन्नाम की मधुरता नहीं सुन सकते।

तात्पर्य: *पद्म-पुराण* में कहा गया है—*अत: श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियै:*। भगवन्नाम का कीर्तन और श्रवण सामान्य इन्द्रियों द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता। भगवन्नाम की दिव्य ध्वनि पूर्णतया आध्यात्मिक है। अत: इसे आध्यात्मिक स्रोतों से ग्रहण किया जाना चाहिए और गुरु के मुख से सुनने के बाद ही उसका उच्चारण किया जाना चहिए। जो व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन सुनता है उसे चाहिए कि कानों से सुन कर गुरु से प्राप्त करे। श्रील सनातन गोस्वामी ने अवैष्णवों यथा पेशेवर

अभिनेताओं तथा गायकों द्वारा किये जाने वाले कृष्ण नाम के कीर्तन को सुनने से मना किया है। यह सर्प के होठों से छुये हुए दुध के समान है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* अन्त्य १.१०१

दीक्षा से शिष्य अपने गुरु से हरे कृष्ण मन्त्र प्राप्त करता है जो उसके उच्चारण किये जाने से अधिक शक्तिशाली बन जाता है

अनुवाद: अब मैं एक मन्त्र का उच्चारण करूँगा जो न केवल दिव्य, पवित्र तथा शुभ है, वरन् जीवन-उद्देश्य को प्राप्त करने के इच्छुक हर एक के लिए यह श्रेष्ठ स्तुति भी है। जब मैं इस मन्त्र का उच्चारण करूँगा तो तुम ध्यानपूर्वक सुनना।

तात्पर्य: शिव जी स्वेच्छा से राजपुत्रों को आशीर्वाद देने तथा उनके हित की बातें करने आये थे। उन्होंने ही मन्त्र का उच्चारण किया जिससे कि मन्त्र की शक्ति बनी रहे। उन्होंने राजपुत्रों को इस मन्त्र को जपने का आदेश दिया। जब कोई मन्त्र भक्त द्वारा उच्चारित होता है तो वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है। यद्यपि हरे कृष्ण महामन्त्र स्वयं शक्तिशाली है किन्तु दीक्षा के समय गुरु शिष्य को मन्त्र देता है, क्योंकि गुरु द्वारा उच्चारित होने से मन्त्र अधिक शक्तिशाली बन जाता है।

—*भागवत* ४.२४.३१-३२

प्रामाणिक गुरु शिष्य को पवित्र नाम का कीर्तन करने की दीक्षा देता है जो उसे आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करने वाला है

प्रामाणिक गुरु पवित्र नाम—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करता है और दिव्य ध्वनि शिष्य के कानों में प्रवेश करती है। यदि शिष्य गुरु के चरणचिह्नों पर चले और उसी आदर से पवित्र नाम का कीर्तन करे तो वह दिव्य नाम की पूजा करता है। जब भक्त द्वारा दिव्य नाम की पूजा की जाती है तो नाम स्वयं ही अपनी महिमा को भक्त के हृदय में फैलाता है...पवित्र नाम का कीर्तन इतना शक्तिशाली होता है कि यह विश्व में हरवस्तु के ऊपर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर लेता है। जो भक्त इसका उच्चारण करता

है वह भावदशा को प्राप्त होता है और कभी हँसता है, रोता है और भावदशा में नाचता है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

---

६. दीक्षा के समय गुरु शिष्य के पापों के फल का भार सँभालता है (और बाद में उसे शिष्य द्वारा किये गये पापों का फल भोगना पड़ता है)

शिष्य की दीक्षा के तुरन्त बाद गुरु उसके सारे पापफलों को समाप्त कर देता है

जिस प्रकार श्रीकृष्ण अपनी शरण में आने पर मनुष्य के समस्त पापफलों को दूर कर देते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि भी शिष्य को दीक्षित करने के बाद उसके पापमय जीवन के समस्त कर्मफलों को हर लेता है। इस प्रकार यदि शिष्य गुरु द्वारा बताये नियमों का पालन करता है तो वह शुद्ध रहा आता है और भौतिक कलमषों से दूषित नहीं होता।

इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि गुरु को जो सदैव श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि का कार्य करता है शिष्य के सारे पापों को समाप्त करना होता है।

—*भागवत* ४.२१.३१

जब गुरु शिष्य के पापफलों को स्वीकार कर लेता है तो उसके अपने पुण्य कर्मों के फल क्षीण हो जाते हैं

अनुवाद: श्री विश्वरूप ने कहा, "हे देवो! यद्यपि पुरोहिती की निन्दा की गई है, क्योंकि इसकी स्वीकृति से पूर्वअर्जित ब्रह्म तेज घटता है किन्तु मुझ जैसा व्यक्ति आपकी व्यक्तिगत प्रार्थना को फिर कैसे ठुकरा सकता है? आप सभी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के महान् आदेशक हैं। मैं तो आपका शिष्य हूँ और मुझे तो आप से शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिए अत: मैं आपको ना नहीं कर सकता। मैं अपने स्वार्थ के लिए इसे स्वीकार करता

हूँ।

तात्पर्य: ब्राह्मण जनता के उत्थान के लिए पुरोहित बनता है। जो कोई गुरु के पद को स्वीकर कर लेता हैं वह अपने यजमान के पापफलों को निरस्त कर देता है। इस तरह पुरोहित या गुरु द्वारा किये गये पुण्यकर्मों के फलों का ह्रास होता है।

—*भागवत* ६.७.३५

कभी-कभी गुरु को अपने शिष्यों के विगत पापकर्मों के कारण कष्ट उठाना पड़ता है

श्यामसुन्दर: आपने एक बार कहा था कि कभी-कभी आप अपने भक्तों के कारण पीड़ा या रुग्णता अनुभव करते हैं क्या कभी कभी इसके कारण या इससे रोग उत्पन्न हो सकता है?

श्रील प्रभुपाद: कृष्ण कहते हैं *अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:*—मैं तुम्हें सारे पापफलों से उबार लूँगा। डरो मत। अत: कृष्ण इतने शक्तिशाली हैं कि वे तुरन्त अन्यों के सारे पाप ओढ़ सकते हैं और उन्हें ठीक कर सकते हैं। किन्तु जब जीव कृष्ण की भूमिका अदा करता है तो वह भी अपने भक्तों के पापकर्मों का भार ओढ़ता है। अत: गुरु बनना कोई सरल कार्य नहीं है। देखा! उसे विष ग्रहण करके उसे पचाना होता है। अत: कभी-कभी उसे तकलीफ होती है, क्योंकि वह कृष्ण नहीं है न! इसलिए चैतन्य महाप्रभु ने मना किया है ''अनेक शिष्य मत बनाओ।'' किन्तु प्रचारकार्य के लिए, प्रसार का विस्तार करने के लिए हमें अनेक शिष्य बनाने होते हैं। यह तथ्य है। गुरु को अपने शिष्यों के सारे पापकर्मों की पूरी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। अत: अनेक शिष्य बनाना जोखिम भरा काम है जब तक कि कोई सारे पापों को पचा न सके।...वह सारे पतितात्माओं की जिम्मेदारी लेता है। यही विचार बाइबिल में भी है। जीजस क्राइस्ट ने लोगों के सारे पापफलों को ग्रहण कर लिया और अपने जीवन की बलि चढ़ा दी। यह गुरु की जिम्मेदारी है। चूँकि कृष्ण कृष्ण हैं, अत: वे *अपापविद्ध* हैं—उन पर पापफलों का आक्रमण नहीं हो सकता। किन्तु जीव इतना लघु है कि कभी-कभी उस पर इनका प्रभाव पड़ता है। बड़ी आग, छोटी आग। यदि आप छोटी आग पर बड़ी वस्तु रखें

तो आग ही बुझ जाएगी। किन्तु बड़ी आग पर चाहे आप जो भी रख दें बड़ी आग कोई भी वस्तु पचा जाएगी।

—*पेक्युलियर केश्चन्स पेक्युलियर आन्सर्स*

कभी-कभी गुरु को अपने शिष्यों के पापफलों को स्वीकार करने से उसे कष्ट सहने पड़ते हैं

जिस प्रकार श्रीकृष्ण अपनी शरण में आने पर किसी व्यक्ति के समस्त पापफलों को दूर कर देते हैं उसी प्रकार से श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि भी शिष्य को दीक्षित करने के बाद उसके पापमय जीवन के समस्त पापफलों को हर लेता है।....इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि गुरु को तो सारे पापों को समाप्त करना होता है। कभी कभी गुरु को अपने शिष्यों के पापों से अभिभूत हो उसे स्वयं कष्ट उठाना पड़ता है। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु के सलाह दी है कि अधिक शिष्य नहीं बनाये जाएँ।

—*भागवत* ४.२१.३१

असीमित संख्या में शिष्य बनाने से गुरु के लिए खतरा

बहु-शिष्य ना करिब

अनुवादः "मनुष्य को असंख्य शिष्य नहीं बनाने चाहिए।"

तात्पर्यः जो प्रचारक नहीं है उसके लिए तमाम शिष्य बनाना अत्यन्त घातक है। श्रील जीवगोस्वामी के अनुसार शिक्षक को श्रीचैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय का विस्तार करने के लिए अनेक शिष्य बनाने पड़ते हैं। यह अत्यन्त घातक है, क्योंकि यदि कोई गुरु किसी को शिष्य बनाता है तो स्वाभाविक है कि वह शिष्य के पापपूर्ण कार्यों तथा फलों को भी स्वीकार करता है। अत्यन्त शक्तिशाली हुए बिना वह अपने शिष्यों के सारे पापों को पचा नहीं सकता। अतः यदि वह शक्तिशाली नहीं है तो उसे परिणाम भोगने पड़ते हैं, क्योंकि अनेक शिष्य बनाना मना है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य २२.११८

शिष्य द्वारा किन प्रकार के पापकर्मों के करने से गुरु को कष्ट भोगना

होता है

गिरीराज: कल आपने कहा था कि गुरु को अपने शिष्यों के पापकृत्यों के कारण कष्ट भोगना पड़ता है। पापकृत्यों से आपका क्या प्रयोजन है?

श्रील प्रभुपाद: पापकृत्यों का अर्थ है कि मान लो तुमने यह वादा किया कि "मैं विधि-विधानों का पालन करूँगा। यदि तुम उनका पालन नहीं करते तो यह पापमय है। यह वादा है। अति सरल। यदि तुम वादा तोड़ते हो और गन्दे काम करते हो तो तुम पापमय हो। है न?"

गिरीराज: हाँ! किन्तु कुछ ऐसे काम हैं जिन्हें करने के लिए हमें आदेश हुआ रहता है....

श्रील प्रभुपाद: हुं!

गिरीराज: कुछ अन्य कार्य हैं जिन्हें करने का आदेश मिला रहता है, किन्तु उन्हें करने का प्रयास करने पर भी हम ठीक से नहीं कर पाते।

श्रील प्रभुपाद: सो कैसे? तुम करने का प्रयास करो और न कर पाओ? यह कैसे?

गिरीराज: यथा ध्यानपूर्वक जप करना। कभी-कभी हम प्रयास करते हैं किन्तु....

श्रील प्रभुपाद: यह कोई त्रुटि नहीं। मान लो कि तुम करना चाह रहे हो। अनुभवहीन होने से यदि कभी तुम असफल रहो तो यह कोई त्रुटि नहीं। *भागवत* में एक श्लोक है कि यदि भक्त भरसक प्रयास करे, किन्तु अक्षमता के कारण यदि कभी वह असफल रहे तो कृष्ण उसे क्षमा कर देते हैं। *भागवत* में यह भी कहा गया है *अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्*। कभी-कभी न चाहते हुए भी पुरानी बुरी आदतों के कारण मनुष्य कुछ व्यर्थ का कार्य कर बैठता है। किन्तु इसका अर्थ नहीं है कि वह दोषी है। लेकिन इसके लिए उसे पश्चाताप करना चाहिए कि "मैंने किया है।" और उसे चाहिए कि उससे बचने का भरसक प्रयास करे। लेकिन आदत छुटाये नहीं छूटती। कभी-कभी लाख प्रयत्न करने पर भी, माया इतनी प्रबल है कि गड्ढे में डाल देती है। इसको क्षमा किया जा सकता है। कृष्ण क्षमा करते हैं। किन्तु जो लोग जान-बूझ कर करते हैं वे क्षमा नहीं किये जाते। इस बल पर कि मैं भक्त हूँ,

यदि मैं यह सोचूँ "चूँकि मैं कीर्तन करता हूँ इसलिए मैं यह बेहूदगी कर सकता हूँ और यह उपेक्षित कर दी जाएगी" तो यह सबसे बड़ा अपराध है।

—*पेक्युलियर क्वेश्चन्स पेक्युलियर आन्सर्स*

शिष्य से किये गये पापफलों के शमन हेतु गुरु को बुरे सपने दिखते हैं

पापपूर्ण कर्मों के कारण हमें रात में दुःस्वप्न आते हैं जो अत्यन्त कष्टकर होते हैं। महाराज युधिष्ठिर को भगवद्भक्ति में थोड़े से विचलन के कारण नरक-दर्शन करना पड़ा। अतएव दुःस्वप्न पापपूर्ण कार्यों के फल माने जाते हैं। भक्त कभी-कभी पापी व्यक्ति को अपना शिष्य बना लेता है और अपने शिष्य के पापकर्मों को समाप्त करने के लिए भक्त को बुरे स्वप्न देखने पड़ते हैं। फिर भी गुरु इतना दयालु होता है कि कष्टकर कार्य को कलियुग के भक्तयोगियों का उद्धार करने के लिए स्वीकार करता है।

—*भागवत ८.४.१५*

गुरु शिष्य के पूर्वकर्मों के लिए कष्ट उठाता है किन्तु कृष्ण अपनी महिमा के प्रचार में लगे अपने सेवक के ऐसे पापफलों का निराकरण कर देते हैं

भगवान् किसी भी व्यक्ति के पापों को ग्रहण करके उनका निराकरण कर देते हैं, क्योंकि वे सूर्य के समान हैं जो सांसारिक स्पर्श से कभी भी प्रभावित नहीं होता। *तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा* (भागवत १०.३३.२९)। जो अत्यन्त शक्तिमान् है वह किसी पापकर्म से प्रभावित नहीं होता। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि माता गंगा उन लोगों के पाप से बोझिल होने से भयभीत हैं जो गंगा में स्नान करेंगे। इससे सूचित होता है कि भगवान् के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति अपने या अन्यों के पापकर्मों के फलों को दूर करने में समर्थ नहीं है। कभी-कभी गुरु को अपने शिष्य के विगत कर्मों का भार ग्रहण करना पड़ता है फलस्वरूप पापों से बोझिल होने के कारण उसे कष्ट भोगना पड़ता है। अतएव शिष्य को चाहिए कि दीक्षा ग्रहण करने के बाद पापकर्म के प्रति सतर्क रहे।

बेचारा गुरु शिष्य को स्वीकार करते समय अत्यन्त दयावान रहता है और शिष्य के पापकर्मों को अंशत: भोगता है, किन्तु भगवान् अपने दास पर कृपालु होने के कारण उस दास के पापकृत्यों के फलों का निराकरण कर देते हैं जो उनकी महिमा का प्रचार करने में लगा रहता है।

—*भागवत* ९.९.५

दीक्षा के बाद शिष्य को पापपूर्ण कार्य करके गुरु के लिए मुसीबत नहीं खड़ी करनी चाहिए

कभी-कभी भक्त पापी व्यक्ति को अपना शिष्य बना लेता है और अपने शिष्य के पापकर्मों को समाप्त करने के लिए गुरु को बुरे सपने देखने पड़ते हैं। फिर भी गुरु इतना दयालु होता है कि पापी शिष्य के कारण दु:स्वप्न देखने पर भी वह इस कष्टप्रद कार्य को कलियुग के भक्तयोगियों का उद्धार करने के लिए स्वीकार करता है। अतएव दीक्षा के बाद शिष्य को सतर्क रहना चाहिए कि वह फिर से कोई पापपूर्ण कर्म न करे जिससे स्वयं उसे तथा उसके गुरु को कठिनाई उठानी पड़े।

—*भागवत* ८.४.१५

यदि दीक्षा के बाद शिष्य पुन: पापकर्म करता है तो उसके गुरु को कष्ट भोगना पड़ता है:

श्रील प्रभुपाद: जीजस क्राइस्ट ने सारे लोगों के पापफलों को अंगीकार किया इसलिए उन्हें कष्ट भोगना पड़ा...उन्होंने कहा—यह बाइबिल में लिखा मिलता है कि उन्होंने लोगों के पापफलों को अंगीकार किया इसलिए उन्हें अपने जीवन का बलिदान करना पड़ा। किन्तु इन इसाइयों ने नियम बना लिया है कि क्राइस्ट कष्ट भोगे और वे बेहूदगी करते रहें। कितने महामूर्ख हैं ये! उन्होंने जीजस क्राइस्ट को ठेका दे रखा है कि वे जितने भी पाप करें तथा बेहूदी बातें करते रहें उनके पापकर्मों को क्राइस्ट ग्रहण करते रहें। यही उनका धर्म है। क्राइस्ट इतने वदान्य थे कि उन्होंने उनके सारे पापों को स्वीकार कर लिया और कष्ट भोगा, किन्तु इससे उन्हें पाप बन्द करने की प्रेरणा नहीं मिलती। उन्हें अभी इसका चेत नहीं हुआ। उन्होंने इसे ऊपर ही ऊपर लिया है। "जीजस क्राइस्ट कष्ट भोगें और हम बेहूदगी

करते जाएँ।'' है न!

बाब: ऐसा ही है।

श्रील प्रभुपाद: उन्हें शर्म आनी चाहिए थी, ''जीजस क्राइस्ट ने हमारे लिए कष्ट उठाये हैं, किन्तु हम पापकर्म करते चले जा रहे हैं।'' उन्होंने हर एक से कहा, ''तू हत्या नहीं करेगा।'' किन्तु वे यह सोच कर हत्या करते जा रहे हैं कि ''जीजस क्राइस्ट हमें क्षमा कर देंगे और हमारे सारे पापफलों को अंगीकार करेंगे।'' यह सब चल रहा है। हमें अत्यधिक सतर्क रहना है कि ''मेरे पापकर्मों के लिए मेरे गुरु को कष्ट भोगना पड़ता है इसलिए मैं अब रंचभर भी पापकर्म नहीं करूँगा।'' यह शिष्य का धर्म है। दीक्षा के बाद सारे पापफल समाप्त हो जाते हैं। अब यदि वह फिर से पापकर्म करता है तो उसके गुरु को कष्ट भोगना होता है। शिष्य को तरस आनी चाहिए और विचार करना चाहिए कि ''मेरे पापकर्मों के लिए मेरे गुरु को कष्ट भोगना होगा।'' यदि गुरु को कोई रोग हो जाता है तो यह अन्यों के पापकर्मों के फलस्वरूप होता है। ''अनेक शिष्य मत बनाओ'' किन्तु हम ऐसा करते हैं, क्योंकि हम प्रचार करते हैं। परवाह न करो—हमें कष्ट भोगने दो—फिर भी हम उन्हें स्वीकार करेंगे, अतएव तुम्हारा प्रश्न था—जब मैं कष्ट भोगता हूँ तो क्या यह मेरे पूर्व दुष्कर्मों के कारण होता है? था न? वह मेरा दुष्कर्म था—क्योंकि मैंने ऐसे शिष्य बनाये है जो बेहूदे हैं। यही मेरा दुष्कर्म है।

बाब: क्या यह कभी-कभी होता है?

श्रील प्रभुपाद: हाँ! ऐसा होना निश्चित है, क्योंकि हम अनेकानेक व्यक्तियों को शिष्य बना रहे हैं। शिष्यों का कर्तव्य है कि सतर्क रहें। ''मेरे गुरु ने मुझे बचाया है। मुझे उन्हें पुन: कष्ट में नहीं डालना चाहिए।'' जब गुरु कष्ट भोगता है तो कृष्ण उसे बचाते हैं। कृष्ण सोचते हैं ''ओह! उसने पतित व्यक्ति का उद्धार करने के लिए इतना उत्तरदायित्व ले रखा है।'' अत: कृष्ण हैं। *कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति*—हे कुन्ती पुत्र! तुम निडर होकर कह दो कि मेरा भक्त कभी मरता नहीं। चूँकि गुरु कृष्ण के बल पर जोखिम उठाता है।

बाब: आपका कष्ट उस तरह की पीड़ा नहीं है....

श्रील प्रभुपाद: यह कर्म के कारण नहीं है। कभी कभी पीड़ा होती है

जिससे शिष्यगण जान सकें "हमारे पापकर्मों से हमारा गुरु कष्ट उठा रहा है।"

बाब: अब आप बहुत ठीक लग रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद: मैं सदैव ठीक से हूँ...उस अर्थ में कि यदि कष्ट है भी तो मैं जानता हूँ कि कृष्ण मेरी रक्षा करेंगे। किन्तु यह कष्ट मेरे पापकर्मों के कारण नहीं है।

—*पेक्युलियर क्वेश्चन्स पेक्युलियर आन्सर्स*

७. ब्राह्म दीक्षा (तथा गायत्री मन्त्र)

श्रील भक्ति सिद्धान्त ठाकुर ने वैष्णवों के लिए उपवीत दीक्षा क्यों चालू की

ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ जन्मजात ब्राह्मण ने ऐसे व्यक्ति से दीक्षा ग्रहण की जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न नहीं था। *श्रीमद्भागवत* में (७.११.३५) ब्राह्मण के लक्षण इस प्रकार बतलाए गये हैं—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

यदि शूद्र कुल में उत्पन्न कोई व्यक्ति गुरु के समस्त गुणों से युक्त हो तो उसे न केवल ब्राह्मण मान लेना चाहिए अपितु योग्य गुरु भी मान लेना चाहिए। यही आदेश श्री चैतन्य महाप्रभु का भी है। इसलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त ने सारे वैष्णवों के लिए विधिवत् उपवीत संस्कार का सूत्रपात किया।

कभी-कभी *भजनानन्दी* वैष्णव का *सावित्र* (जनेऊ धारण करना) नहीं हुआ रहता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रचार कार्य के लिए इस पद्धति को प्रयोग में लाया जाय। वैष्णव दो प्रकार के होते हैं—*भजनानन्दी* तथा *गोष्ठ्यानन्दी*। भजनानन्दी की रुचि प्रचार कार्य में नहीं होती, किन्तु

गोष्ठ्यानन्दी प्रचार कार्य तथा वैष्णवों की संख्या बढ़ाने में सदैव रुचि लेता है। वैष्णव ब्राह्मण पद से ऊपर माना जाता है। प्रचारक के रूप में उसे ब्राह्मण की मान्यता मिलनी चाहिए अन्यथा लोगों को उसके वैष्णवपद में भ्रम हो सकता है।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* मध्य ८.१२८

गुरु उस शिष्य को जो अपने से कीर्तन करके दक्ष तथा शुद्ध बन चुका हो जनेऊ प्रदान करता है (ब्राह्मदीक्षा)

सामान्यतया दीक्षा शिष्य का निर्देशन करने वाले गुरु पर निर्भर होती है। यदि वह समझता है कि शिष्य दक्ष है और कीर्तन द्वारा शुद्ध हो चुका है तो वह उसका यज्ञोपवीत संस्कार कर देता है जिससे वह शतप्रतिशत ब्राह्मण के तुल्य हो जाय। इसकी पुष्टि श्रील सनातन गोस्वामी कृत *हरिभक्ति विलास* में इस प्रकार हुई है—"जिस प्रकार रासायनिक विधि से काँसा सोने में बदला जा सकता है उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति *दीक्षा-विधान* द्वारा ब्राह्मण में बदला जा सकता है।"

...यह तो गुरु के निर्णय पर निर्भर करता है कि किसी ने ब्राह्मण के गुण प्राप्त कर लिए हैं या नहीं। वह अपने निर्णय द्वारा ही शिष्य को ब्राह्मणत्व प्रदान करता है। जब उसे पाञ्चरात्रिक विधि से यज्ञोपवीत संस्कार के द्वारा ब्राह्मण के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो वह *द्विज* कहलाता है। इसकी पुष्टि सनातन गोस्वामी द्वारा *द्विजत्वं जायते* कह कर की गई है। गुरु द्वारा दीक्षित किये जाने पर मनुष्य ब्राह्मण बनता है और इस शुद्ध अवस्था में भगवान् के पवित्र नाम का जप करता है। फिर प्रगति करता हुआ योग्य वैष्णव बन जाता है जिसका अर्थ है कि उसने पहले ही ब्राह्मण योग्यता प्राप्त कर ली है।

—*भागवत* ३.३३.६

जब गुरु देखता है कि शिष्य महामन्त्र का जप करने में तथा आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है तो वह उसे काम-गायन्त्री मन्त्र देता है

भगवान् कृष्ण की पूजा गायत्री मन्त्र द्वारा की जाती है और वह विशिष्ट मन्त्र जिससे उनकी पूजा की जाती है कामगायत्री कहलाता है। वैदिक

ग्रंथ बताते हैं कि ध्वनि जो मनुष्य को मनोधर्म से ऊपर उठा दे *गायत्री* कहलाती है। काम गायत्री मंत्र की रचना साढ़े चौबीस अक्षरों में इस प्रकार है—

क्लीं कामदेवाय विद्महे
पुष्प-बाणाय धीमहि
तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्

यह कामगायत्री शिष्य को अपने गुरु से तब प्राप्त होती है जब वह हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करने में बढ़-चढ़ जाता है। दूसरे शब्दों में, यह कामगायत्री मंत्र तथा संस्कार (यानी पूर्ण ब्राह्मण का पुनर्निर्माण) गुरु द्वारा तब दिये जाते हैं जब वह देखता है कि उसका शिष्य आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गायत्री मन्त्र का उद्देश्य

श्रीमद्भागवत में व्यासदेव सोद्देश्यपूर्वक गायत्रीमन्त्र *धीमहि* का आह्वान करते हैं। यह गायत्री मंत्र विशेष रूप से आध्यात्मिकतः बढ़े-चढ़े लोगों के लिए है। जब कोई गायत्री मन्त्र के उच्चारण में सफल हो जाता है तो वह भगवान् के दिव्य पद में प्रवेश कर सकता है। किन्तु सर्वप्रथम उसे ब्राह्मण-गुण अर्जित करने होते हैं और गायत्री मन्त्र का सफलतापूर्वक उच्चारण करने के लिए सतोगुण पद को प्राप्त करना होता है। उसी दिन से वह भगवान् नाम, उनके यश तथा उनके गुणों की दिव्य अनुभूति करने लगता है।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

गायत्री मन्त्र की महत्ता

अनुवाद: वृन्दावन के आध्यात्मिक जगत् में कृष्ण चिर नवीन कामदेव हैं। उनकी पूजा क्लीं बीज के साथ कामगायत्री मन्त्र का उच्चारण करके की जाती है।

तात्पर्य: *गायन्तं त्रायते तस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृताः*— जब कोई गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह क्रमशः भौतिक बन्धन से छूट जाता है। जो भवबन्धन से छुड़ाये वही गायत्री है। गायत्री मन्त्र की व्याख्या *मध्यलीला* में (२१.१२५) उपलब्ध है—

काम-गायत्री-मन्त्र, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्ध-चबिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय
त्रिजगत् कैल काम-मय॥

यह मन्त्र वैदिक स्तुति के समान है, किन्तु यह साक्षात् भगवान् है। कामगायत्री तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही २४.५ अक्षरों से बने हैं। अक्षरों द्वारा अंकित यह मन्त्र कृष्ण भी है और यह मन्त्र चन्द्रमा के समान उदय होता है। उसके कारण मानव समाज में तथा सारे जीवों में इच्छा का विकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है। *क्लीं कामदेवाय विद्मह पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनंग प्रचोदयात्*—इस मन्त्र में कृष्ण को कामदेव या मदनमोहन कहा गया है जो कृष्ण के साथ हमारे सम्बन्ध को स्थापित करने वाला अर्चाविग्रह है। *गोविन्द* या *पुष्पबाण* (फूलों के बाण धारण करने वाला) भगवान् है जो हमारी भक्ति को स्वीकार करता है। *अनंग* या *गोपीजन वल्लभ* समस्त गोपियों को तुष्ट करता है और जीवन का चरम लक्ष्य है। यह *कामगायत्री* (*क्लीं कामदेवाय...प्रचोदयात्*) केवल इसी भौतिक जगत् से सम्बद्ध नहीं है। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य अपनी शुद्ध इन्द्रियों से भगवान् की पूजा कर सकता है और भगवान् की इच्छाओं को पूरी कर सकता है।.....

ब्रह्म-संहिता में (५.२७-२८) कहा गया है...''तब वेदमाता गायत्री श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि से प्रकट होकर स्वयंभू ब्रह्मा के कमलमुख में उनके आठ कर्ण कुहरों से प्रविष्ट हुई। कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की वंशी के संगीत से उत्पन्न गायत्री मन्त्र को प्राप्त किया। इस तरह उन्हें द्विज का पद प्राप्त हुआ, क्योंकि परम आदि गुरु साक्षात् भगवान् ने दीक्षा दी। तीन वेदों से युक्त उस गायत्री मन्त्र का स्मरण करके ब्रह्माजी सत्य के समुद्र से अवगत हुए तब उन्होंने स्तोत्र द्वारा वेदों के सार श्रीकृष्ण की

पूजा की।''

कृष्ण की वंशी ध्वनि वैदिक स्तोत्रों का मूल है। कमल पुष्प पर आसीन ब्रह्मा ने कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी और इस तरह वे गायत्री मन्त्र द्वारा दीक्षित हुए।....मनुष्य को चिन्मयी गायत्री मन्त्र का भी जप करना चाहिए....ॐ नमो भगवते वासुदेवाय या क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहितन्नोऽनंग प्रचोदयात्। ये कामगायत्री या कामबीज मंत्र हैं।...जो व्यक्ति पूर्णतया शुद्ध है और गुरु द्वारा दीक्षा प्राप्त है वह इसी मन्त्र से भगवान् की पूजा करता है। वह बीज के साथ-साथ कामगायत्री का जप करता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य ८.१३८-१३९

गायत्री मन्त्र का उद्गम

भगवान् कृष्ण की पूजा गायत्री मन्त्र द्वारा की जाती है और वह विशिष्ट मन्त्र जिससे उनकी पूजा की जाती है कामगायत्री कहलाता है। वैदिक ग्रंथ बताते हैं कि ध्वनि जो मनुष्य को मनोधर्म से ऊपर उठा दे गायत्री कहलाती है।....*ब्रह्म-संहिता* में कृष्ण की वंशी का सुन्दर वर्णन हुआ है। ''जब कृष्ण अपनी वंशी बजाने लगे तो उसकी ध्वनि ब्रह्मा के कानों में वैदिक मन्त्र ॐ के रूप में प्रविष्ट हुई।'' यह ॐ तीन अक्षरों—अ,उ तथा म—से बना है और यह परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध को, हमारे कार्यों को, बताता है जिससे हम प्रेम की सिद्धि तथा आध्यात्मिक स्तर पर प्रेम के वास्तविक पद को प्राप्त कर सकते हैं। जब कृष्ण की वंशी की ध्वनि ब्रह्मा के मुख से व्यक्त की जाती है तो वह गायत्री बन जाती है। इस तरह कृष्ण की वंशी ध्वनि से प्रभावित ब्रह्मा, जो कि इस जगत के प्रथम सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं, ब्राह्मण के रूप में दीक्षित हुए। कृष्ण की वंशी के द्वारा ब्राह्मण रूप में ब्रह्मा के दीक्षित होने की पुष्टि श्रील जीव गोस्वामी द्वारा की गई है। जब ब्रह्मा को कृष्ण की वंशी के माध्यम से गायत्री मन्त्र द्वारा ज्ञान प्राप्त हो गया तो उन्हें समस्त वैदिक ज्ञान मिल गया। कृष्ण द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करने से वे सारे जीवों के आदि गुरु बन गये।

—*श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ*

इसका विरोध करते हैं किन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध कोई प्रबल तर्क नहीं है। कृष्ण तथा उनके भक्त की कृपा से मनुष्य का कायापलट हो सकता है। *श्रीमद्भागवत* में *जहाति बन्धम्* तथा *शुद्धन्ति* जैसे शब्द से इसकी पुष्टि होती है। *जहाति बन्धनम्* बताता है कि जीव विशेष प्रकार के शरीर के कारण बद्ध है। शरीर निश्चय ही बाधक है परन्तु शुद्ध भक्त की संगति करके तथा उसके उपदेशों पर चलकर इस अवरोध से बचा जा सकता है। मनुष्य भक्त के मार्गदर्शन में दीक्षित होकर नियमित ब्राह्मण बन सकता है। श्रील जीवगोस्वामी बतलाते हैं कि किस तरह शुद्ध भक्त की संगति से एक अ-ब्राह्मण ब्राह्मण में बदल सकता है। *प्रभु विष्णवे नमः*—भगवान् विष्णु इतने शक्तिशाली हैं कि जो चाहें सो कर सकते हैं। अतएव भगवद्भक्त के मार्गदर्शन में रहने वाले भक्त के शरीर को बदलना विष्णु के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि. ७.४७

यदि जन्म पर विचार किये बिना कोई व्यक्ति सही व्यक्ति द्वारा दीक्षित किया जाय तो उसे तुरन्त द्विजन्मा ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है

अनुवाद: सभ्य मनुष्य के तीन प्रकार के जन्म होते हैं। पहला जन्म शुद्ध माता-पिता से होता है जिसे *शौक्र* (वीर्यद्वारा) कहते हैं। दूसरा जन्म गुरु से दीक्षा लेते समय होता है और यह *सावित्र* कहलाता है। तीसरा जन्म *याज्ञिक* कहलाता है और यह भगवान् विष्णु की सेवा का अवसर मिलने पर होता है।

तात्पर्य: कहा जाता है कि कलियुग में गर्भाधान संस्कार न होने से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है। यह वैदिक पद्धति है। किन्तु पाञ्चरात्रिक पद्धति के अनुसार, यद्यपि गर्भाधान संस्कार के अभाव में प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है किन्तु यदि किसी में कृष्ण भक्त बनने की तनिक भी प्रवृत्ति हो तो उसे भक्ति के दिव्य पद तक उठने का अवसर मिलना चाहिए। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस पाञ्चरात्रिक विधि को मानता है जैसा कि सनातन गोस्वामी का उपदेश है—

यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वम् जायते नृणाम्॥

"जिस प्रकार काँसा पारे के साथ मिलाये जाने पर सोने में बदल जाता है उसी प्रकार एक पुरुष सोने के समान शुद्ध न होने पर भी केवल दीक्षा द्वारा ब्राह्मण या द्विज बन सकता है।" *हरिभक्ति विलास* २.१२ इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति उपयुक्त व्यक्ति द्वारा दीक्षित हो तो उसे द्विज माना जा सकता है। अत: हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में शिष्य को पहली दीक्षा देकर उसे हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने को कहते हैं। इस मन्त्र को नियमित जपने और विधि-विधानों का पालन करते रहने से वह ब्राह्मण रूप में दीक्षित होने के योग्य हो जाता है, क्योंकि जब तक कोई योग्य ब्राह्मण नहीं बन जाता उसे भगवान् विष्णु की पूजा करने की अनुमति नहीं दी जाती। यह *याज्ञिक जन्म* कहलाता है।

—*भागवत* ४.३१.१०

दीक्षा किसी को ब्राह्मण पद तक ऊपर नहीं ले जाती, उसे कुछ कार्य सम्पन्न करने होते हैं और विधि-विधानों का पालन करना होता है

वैष्णव स्वत: ब्राह्मण बन जाता है। इस विचार का समर्थन सनातन गोस्वामी द्वारा अपने ग्रंथ *हरिभक्ति विलास* में भी किया गया है जो कि वैष्णव निर्देशिका है। उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो व्यक्ति वैष्णव सम्प्रदाय में उचित रीति से दीक्षित किया जाता है निश्चित रूप से ब्राह्मण बन जाता है जिस तरह काँसा पारे के मिश्रण द्वारा सोने में बदल जाता है। प्रामाणिक गुरु, अधिकारियों के मार्गदर्शन में किसी को भी वैष्णव सम्प्रदाय में ले सकता है जिससे वह ब्राह्मण के सर्वोच्च पद पर पहुँच जाता है। किन्तु श्रील रूपगोस्वामी आगाह करते हैं कि यदि कोई व्यक्ति प्रामाणिक गुरु द्वारा ठीक से दीक्षित किया जाता है तो उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि ऐसी दीक्षा स्वीकारने से ही उसका कार्य समाप्त हो गया। उसे तो भी सावधानी के साथ विधि-विधानों का पालन करना होता है। यदि गुरु बनने तथा दीक्षा प्राप्त करने के बाद वह भक्ति के विधि-विधानों का पालन नहीं करता तो वह पुन: नीचे गिर सकता है।....दूसरे शब्दों

में, केवल दीक्षित हो लेने से कोई उच्चकोटि का ब्राह्मण नहीं बन जाता। उसे अपने कर्तव्य निभाने होते हैं और अनुष्ठानों का कड़ाई से पालन करना होता है।

९. दीक्षा से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण आदेश

भगवान् कृष्ण दीक्षित व्यक्ति को अपने समान मानते हैं

दीक्षा-काले भक्ति करे आत्म-समर्पण।
सेइ-काले कृष्ण तारे करे आत्म-सम॥

अनुवाद: दीक्षा के समय जब भक्त पूर्णतया भगवान् की सेवा में आत्मसमर्पण कर देता है तो कृष्ण उसे अपने समान बना लेते हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत* अन्त्य ४.१९२

गुरु की शरण में आने से मनुष्य पापफलों से छुटकारा पा जाता है

अनुवाद: इस तरह नारद मुनि की संगति से वह शिकारी अपने पापकृत्यों के प्रति कुछ-कुछ आश्वस्त हो सका। अतः वह अपने अपराधों से कुछ-कुछ भयभीत हो उठा। तब शिकारी ने स्वीकार किया कि वह अपने पापकर्म के प्रति आश्वस्त है। तब उसने कहा, "मुझे बचपन से ही इस पेशे की शिक्षा दी गई है। अब मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मैं किस तरह अपने असीम पापकर्मों से मुक्त हो सकता हूँ।" उसने कहा, "हे महानुभाव! मुझे बतलाएँ कि मैं अपने पापी जीवन के कर्मफलों से किस प्रकार छुटकारा पा सकता हूँ। अब मैं आपकी शरण में हूँ और आपके चरणकमलों पर पड़ता हूँ। कृपया मेरे पापकर्म फलों से मेरा उद्धार करें।"

तात्पर्य: नारद की कृपा से उस शिकारी में सद्बुद्धि जागी और तुरन्त ही वह उनकी शरण में आ गया। यही विधि है। सन्त-पुरुष की संगति से मनुष्य अपने पापी जीवन के कर्मफलों को समझ सकता है। जब कोई स्वेच्छा से ऐसे सन्त पुरुष की शरण में जाता है जो कृष्ण का प्रतिनिधि

होता है और उसके आदेशों का पालन करता है तो वह पापफलों से मुक्त हो जाता है। कृष्ण पापी व्यक्ति द्वारा समर्पण चाहते हैं और कृष्ण का प्रतिनिधि भी यही उपदेश देता है। कृष्ण का प्रतिनिधि कभी भी अपने शिष्य से यह नहीं कहता कि ''मेरी शरण में आओ'' प्रत्युत कहता है कि ''कृष्ण की शरण में जाओ।'' यदि शिष्य इस नियम को मानकर कृष्ण के प्रतिनिधि के माध्यम से शरणागत बनता है तो उसका जीवन बच जाता है।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.२५२-५४

दीक्षा की विधि में शिष्य को गुरु की शरण में जाना चाहिए, प्रश्न पूछना चाहिए और उससे सुनना चहिए

अनुवाद: शिकारी ने उत्तर दिया, ''यदि मैं अपना धनुष तोड़ता हूँ तो फिर मैं अपना भरण-पोषण कैसे करूँगा?'' नारद मुन ने उत्तर दिया, ''चिन्ता की बात नहीं। मैं तुम्हें प्रतिदिन भोजन दिया करूँगा।'' नारद मुनि द्वारा आश्वस्त किये जाने पर शिकारी ने अपना धनुष तोड़ डाला और तुरन्त आत्मसमर्पण कर दिया। तत्पश्चात् नारद मुनि ने अपने हाथ से उसे उठाया और उसे आध्यात्मिक उन्नति का उपदेश दिया।

तात्पर्य: यही दीक्षा देने की विधि है। शिष्य को कृष्ण के प्रतिनिधि रूप गुरु के समक्ष आत्मसमर्पण करना चाहिए। नारद से चलने वाली परम्परा से सम्बद्ध होने से गुरु नारद मुनि की ही श्रेणी में होता है। मनुष्य अपने पापकर्म से छुटकारा पा सकता है, यदि वह ऐसे व्यक्ति के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है जो वास्तव में नारद मुनि का प्रतिनिधित्व करता है। नारद मुनि ने शिकारी को शरणागत होने पर उपदेश दिया।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.२५७-५८

दीक्षा के समय भक्त दिव्य पद पर स्थित हो जाता है

अनुवाद: दीक्षा के समय जब भक्त भगवान् की सेवा में पूर्णतः समर्पण कर देता है तो कृष्ण उसे अपने समान ही उत्तम मान लेते हैं। जब भक्त का शरीर इस तरह आध्यात्मिक बन जाता है तो भक्त उस दिव्य शरीर

से भगवान् के चरणकमलों की सेवा करता है। जब जन्म-मृत्यु को प्राप्त होने वाला जीव मेरा आदेश पूरा करने के लिए अपना जीवन मुझे समर्पित करते हुए सारे भौतिक कार्य त्याग देता है और इस तरह मेरे आदेशों के अनुसार कर्म करता है उस समय वह अमरता के पद तक पहुँच जाता है और तब वह मेरे साथ प्रेम-रस के बदले आध्यात्मिक आनन्द लूटने के योग्य बन जाता है।

तात्पर्य: दीक्षा के समय भक्त अपने सारे भौतिक विचार त्याग देता है। अतः भगवान् के सम्पर्क में होने से वह दिव्य पद पर स्थित होता है। इस तरह ज्ञान एवं आध्यात्मिक पद पा लेने के बाद वह कृष्ण के आध्यात्मिक शरीर की सेवा में लगा रहता है। जब कोई व्यक्ति इस तरह से भौतिक विचारों से मुक्त हो जाता है तो उसका शरीर तुरन्त आध्यात्मिक बन जाता है और कृष्ण उसकी सेवा स्वीकार कर लेते हैं।

—*श्रीचैतन्य-चरितामृत* अन्त्य ४.१९२-१९४

दीक्षा के बाद शिष्य को अपना नाम बदलना अनिवार्य है

अनुवाद: "हे साकर मल्लिक! आज से तुम्हारे नाम श्रील रूप और श्रील सनातन होंगे। अब अपनी दीनता छोड़ो, क्योंकि तुम लोगों को इतना दीन देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है।

तात्पर्य: वास्तव में यह श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा दबिर खास और साकर मल्लिक की दीक्षा है। वे भगवान् के पास परम दीन बनकर आये और महाप्रभु ने उन्हें प्राचीन 'दासों' या नित्य दासों की तरह स्वीकार किया। उन्होंने उनके नाम भी बदल दिये। इससे यह समझना चाहिए कि दीक्षा के बाद शिष्य को अपना नाम बदलना आवश्यक होता है।

शंखचक्राद्यूर्ध्वपुण्ड्रधारणाद्यात्मलक्षणम् ।
तन्नामकरणं चैव वैष्णवत्वमिहोच्यते ॥

"दीक्षा के बाद शिष्य का नाम बदल दिया जाना चाहिए जिससे सूचित हो कि वह भगवान् विष्णु का दास है। शिष्य को तुरन्त ही अपने शरीर पर, विशेषतया मस्तक पर तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) लगाना चाहिए। ये दिव्य

चिह्न हैं। ये पूर्ण वैष्णव के लक्षण हैं।'' यह श्लोक *पद्म-पुराण* के *उत्तरखण्ड* से है। सहजिया सम्प्रदाय का सदस्य अपना नाम नहीं बदलता अतएव उसे गौड़ीय वैष्णव के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। जब कोई व्यक्ति दीक्षा के बाद अपना नाम नहीं बदलता तो समझना चाहिए कि वह अपनी देहात्मबुद्धि में ही बना रहेगा।

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य १.२०८

यदि दीक्षा के बाद भक्ति के विधि-विधानों का पालन न किया जाय तो मनुष्य पुन: पतित हो जाता है

श्रील रूपगोस्वामी आगाह करते हैं कि यदि कोई व्यक्ति प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षित हुआ हो तो उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि दीक्षा स्वीकार करने के बाद उसका कार्य समाप्त हो गया। उसे तब भी विधि-विधानों का सावधानी से पालन करना होता है। यदि गुरु बनाने तथा दीक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद कोई व्यक्ति भक्ति के विधि-विधानों का पालन नहीं करता तो वह पुन: पतित हो जाता है। उसे यह स्मरण रखना होगा कि यह कृष्ण के दिव्य शरीर का भिन्नांश है और भिन्नांश के रूप में उसका यह कर्तव्य है कि पूर्ण की यानी कृष्ण की सेवा करे। यदि हम कृष्ण की सेवा नहीं करते तो हम पुन: पतित होते हैं। दूसरे शब्दों में, मात्र दीक्षित हो जाने से कोई उच्च श्रेणी के ब्राह्मण पद को प्राप्त नहीं होता। उसे कुछ कर्तव्य निभाने तथा अनुष्ठानों का पालन करना होता है।

—*भक्तिरसामृत-सिन्धु*

ब्राह्मण-आचरण पर संन्यास की दीक्षा दी जा सकती है

वैदिक आदेशों के अनुसार केवल ब्राह्मण को संन्यास दिया जा सकता है। शंकर सम्प्रदाय *(एकदंडसंन्यास सम्प्रदाय)* केवल ब्राह्मण जाति वालों को संन्यास प्रदान करता है, किन्तु वैष्णव विधि में *हरिभक्ति विलास* के अनुसार ब्राह्मण कुल में न उत्पन्न होने वाले को भी ब्राह्मण बनाया जा सकता है (*तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्*)। विश्व के किसी भी भाग के व्यक्ति को नियमित दीक्षा विधि से ब्राह्मण बनाया जा सकता है और जब वह नशा, अवैध यौन, मांसाहार तथा द्यूतक्रीड़ा से विरत

रह कर ब्राह्मण का आचरण करता है तो उसे संन्यास प्रदान किया जा सकता है। सारे विश्व में प्रचार कर रहे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के संन्यासी नियमित ब्राह्मण संन्यासी हैं।

—*चैतन्य-चरितामृत* आदि १७.२६६

ज्योंही प्रामाणिक गुरु से साक्षात्कार हो तो उपयुक्त समय या स्थान की प्रतीक्षा किये बिना दीक्षा दी जा सकती है

दीक्षा का समय गुरु की स्थिति पर आश्रित है। ज्योंही संयोगवश या योजना के अधीन गुरु से भेंट हो मनुष्य को चाहिए कि वह इस अवसर का लाभ दीक्षा पाने के लिए उठाए। *तत्व सागर* में कहा गया है...."यदि संयोगवश किसी को सद्गुरु मिल जाता है तो चाहे वह मंदिर में हो या जंगल में, इसका कोई महत्व नहीं होता। यदि सद्गुरु मान लेता है तो मनुष्य को चाहिए कि उपयुक्त समय या स्थान की प्रतीक्षा किये बिना तुरन्त ही दीक्षित हो ले।"

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य २४.३३१

दीक्षा के लिए पुरश्चर्या विधि की महत्ता

पुरश्चर्या विधि की व्याख्या करते हुए *हरिभक्ति विलास* में (१७.११-१२) *अगस्त्य संहिता* के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत हुए हैं..."मनुष्य को चाहिए कि प्रातः, अपराह्न तथा सायंकाल अर्चाविग्रह पूजन करे, हरे कृष्ण मन्त्र का जप करे, तर्पण करे, अग्नि यज्ञ करे तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये। ये पाँचों कार्य पुरश्चर्या कहलाते हैं। गुरु से दीक्षा लेते समय पूर्ण सफलता पाने के लिए मनुष्य को चाहिए कि पहले इन पुरश्चर्या कार्यों को सम्पन्न करे।" *हरिभक्ति विलास* में (१७.४-५,७) यह कहा गया है..."पुरश्चर्या विधि के बिना इस मन्त्र का सैकड़ों वर्षों तक जप करने पर भी मनुष्य पूर्ण नहीं बन सकता। किन्तु जिसने पुरश्चर्या विधि का पालन किया है उसे सरलता से सफलता प्राप्त हो सकती है। अपनी दीक्षा की पूर्णता के इच्छुक को चाहिए कि पहले वह पुरश्चर्या करे। पुरश्चर्या विधि वह जीवनीशक्ति है जिससे मन्त्रोच्चार में सफलता प्राप्त होती है। इस जीवनीशक्ति के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसी तरह पुरश्चर्या विधि की जीवनीशक्ति के बिना कोई मन्त्र सिद्ध नहीं होता।"

—*चैतन्य-चरितामृत* मध्य १५.१०८

इस युग में, जहाँ व्यापारिक ध्यान, आशु-प्रबोधन तथा 'हर एक अपना गुरु बने' का बोलबोला हो वहाँ यह पुस्तक आध्यात्मिक जीवन में प्रामाणिक गुरु की महत्ता के विषय मे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार की आवश्यक सूचना उपलब्ध कराने वाली है। *गुरु तथा शिष्य* नामक यह पुस्तक गुरु, शिष्य, गुरु-परम्परा तथा आध्यात्मिक दीक्षा विषय पर दार्शनिक तथा व्यावहारिक निर्देशों का परिपूर्ण संग्रह है। इस पुस्तक में सन्निविष्ट सम्पूर्ण सामग्री अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापक आचार्य श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद की कृतियों से छाँट कर प्रस्तुत की गई है।

इसमें निम्नलिखित शीर्षकों पर विस्तृत विवेचना हुई है—

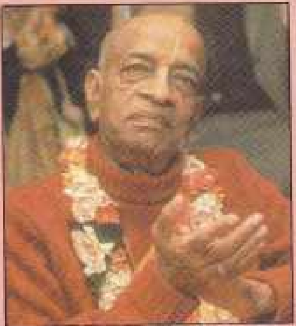

१) प्रामाणिक गुरु बनाने की आवश्यकता।
२) गुरु की योग्यताएँ एवं गुण।
३) गुरु के कार्य तथा सही आचरण।
४) शिष्य की योग्यताएँ, गुण तथा कर्तव्य।
५) गुरु-परम्परा का सिद्धान्त।
६) आध्यात्मिक दीक्षा का महत्व।

इससे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के शिष्यगण तथा व्यावहारिक आध्यात्मिक जीवन में रुचि रखने वाले लोग शिष्यत्व की कला तथा विज्ञान के विषय में उपयोगी सूचना तथा लाभप्रद मार्गदर्शन प्राप्त कर सकेंगे और इस तरह प्रगतिशील आध्यात्मिक पथ पर प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में निरन्तर आगे बढ़ सकेंगे।